विश्व हिंदी पत्रिका
2022

विश्व हिंदी सचिवालय
मॉरीशस

विश्व हिंदी पत्रिका

2022

मुख्य संपादक
डॉ. माधुरी रामधारी

विश्व हिंदी सचिवालय
इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स 73423,
मॉरीशस

World Hindi Secretariat
Independance Street, Phoenix 73423,
Mauritius

info@vishwahindi.com
वेबसाइट / Website : www.vishwahindi.com
फ़ोन / Phone : +230-6600800

ISSN No. : 1694-2477

वरिष्ठ सहायक संपादक
श्री प्रकाश वीर

सहायक संपादक
श्रीमती श्रद्धांजलि हजगैबी-बिहारी

संपादन सहयोग
डॉ. सोमदत्त काशीनाथ, अनुसंधान एवं विकास सहायक

टंकण-टीम
श्री अजय कुमार

निवेदन
विश्व हिंदी पत्रिका में प्रकाशित लेखों के विचार लेखकों के अपने हैं।
विश्व हिंदी सचिवालय और संपादक-मंडल का उनके विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पृष्ठ सज्जा
आर. एस. प्रिंट्स

कवर डिज़ाइन
बहादुर प्रिंटिंग लिमिटेड, मॉरीशस

**स्टार पब्लिकेशंस प्रा. लि., 4/5 बी, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110002 (भारत) द्वारा प्रकाशित**

संपादकीय

संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी

संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने की चर्चा भारत में सन् 1968 से आरम्भ हो चुकी थी, जब केन्द्रीय हिंदी समिति ने यह प्रस्ताव रखा था कि संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को मान्यता दिलाने की दिशा में प्रयास करने हेतु आवश्यक कदम उठाए जाएँ। लगभग आधी शताब्दी से भारत सरकार संयुक्त राष्ट्र की छ: आधिकारिक भाषाओं की सूची में हिंदी को सम्मिलित करने का प्रयास करती रही है। विश्व में अरबी बोलने वाले लोगों की संख्या दूसरी भाषाओं की तुलना में कम है, परन्तु संयुक्त राष्ट्र संघ में 19 देश अरबी का प्रयोग करते हैं, इसीलिए 1973 में अरबी संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बन गयी। तब से भारत, जर्मनी, इज़राइल, जापान आदि देश अपनी-अपनी राष्ट्रभाषा को संयुक्त राष्ट्र संघ में मान्यता दिलाने के लिए अधिक प्रयासरत हैं।

प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन से लेकर 11वें विश्व हिंदी सम्मलेन तक संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने के विषय पर निरंतर विचार-विमर्श होता रहा । सन् 2003 में सूरीनाम में हुए विश्व हिंदी सम्मलेन में जब पुन: प्रस्ताव रखा गया कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ में मान्यता दिलाने के लिए कार्यवाही की जाए तब भारत में लगी कार्यान्वयन-समिति ने हिंदी के पक्ष में मत बनाने के उपायों को अपनाने का अनुरोध किया। 18 अगस्त 2018 को मॉरीशस में आयोजित 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन के उद्घाटन-समारोह में प्रस्तावना-वक्तव्य देते हुए भारत की पूर्व विदेश मंत्री माननीया श्रीमती सुषमा स्वराज जी ने कहा था –

"हर विश्व हिंदी सम्मेलन में प्रस्ताव पारित किए जाते हैं। एक प्रस्ताव यह था कि मॉरीशस में विश्व हिंदी सचिवालय का भवन हो। यह प्रस्ताव अनुपालित हो गया है। दूसरा प्रस्ताव हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने का रहा। उसमें मुख्य समस्या यह है कि समर्थक देशों को संबंधित व्यय वहन करना होगा। यदि भारत को व्यय वहन करना होता, तो चार सौ करोड़ रुपए देकर भी हम उसे हासिल कर लेते।"

स्वर्गीय सुषमा स्वराज जी के इस कथन से एक ओर हिंदी प्रेमियों के मन में ऐसा भाव आया कि जब भारत हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ का आधिकारिक भाषा बनाने से संबंधित खर्च को अकेले ही वहन करने के लिए तैयार है, तब काश संयुक्त राष्ट्र संघ की नियमावली में बदलाव हो और अन्य देशों को खर्च वहन करने की आवश्यकता न पड़े। भारत सरकार ने हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनाने के लिए कमर कस ली है। 2022 में संयुक्त राष्ट्र संघ के ग्लोबल कम्युनिकेशन विभाग को भारत सरकार ने 8 लाख यू.एस. डॉलर प्रदान किए, ताकि संघ की सभी सूचनाओं एवं विज्ञप्तियों का प्रसारण हिंदी भाषा में किया जाए। 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन के उद्घाटन-सत्र में स्वर्गीय सुषमा स्वराज जी ने वैश्विक हिंदी समुदाय से यह भी आग्रह किया था कि संयुक्त राष्ट्र संघ में हर शुक्रवार को यू.एन. में हिंदी में आने वाले रेडियो बुलेटिन "हिंदी विश्व समाचार" को अधिक-से-अधिक सुना जाए, ताकि उसे दैनिक बनाने की राह आसान हो सके।

13-15 जुलाई 2007 को जब संयुक्त राष्ट्र संघ के मुख्यालय में आठवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन हुआ था तब यह आशा प्रबल हो गयी थी कि हिंदी संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में आगे बढ़ेगी। परन्तु, शीघ्र ही यह अनुभूति हुई कि इस स्वप्न को साकार करना इतना सहज नहीं है। 24 अक्तूबर 1945 को शांति, सुरक्षा, विकास और मानवाधिकार से जुड़े विषयों पर विचार-विमर्श करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई थी। इसके एक साल बाद 1946 में संयुक्त राष्ट्र की महासभा में यह स्पष्ट किया गया था कि यू.एन. के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु बहुभाषिकता की महता और भूमिका निर्विवाद है और जिस प्रकार बहुभाषिकता से किसी देश की शक्ति और सौन्दर्य बढ़ता है, वैसे ही संयुक्त राष्ट्र की भी शक्ति और सुन्दरता बढ़ेगी। वास्तव में, बहुभाषिकता का महत्त्व आज विश्व के कोने-कोने में पहचाना जा रहा है। दुनिया का हर विकसित और विकासशील देश बहुभाषिकता को बढ़ावा देने में तत्पर है। कई देशों में तीन भाषाएँ अर्थात् एक मातृभाषा, एक द्वितीय भाषा और एक विदेशी भाषा का पठन-पाठन अनिवार्य रूप से किया जा रहा है। दुर्भाग्यवश, पिछले वर्षों में यह देखा गया कि संयुक्त राष्ट्र संघ की 6 आधिकारिक भाषाओं (अराबिक, चीनी, अंग्रेज़ी, फ्रेंच, रूसी और

स्पेनिश) में से कामकाज की भाषा के रूप में अंग्रेज़ी और फ्रेंच भाषा का प्रयोग हो रहा है और अन्य आधिकारिक भाषाओं के साथ सौतेला व्यवहार किया जा रहा है। इस संदर्भ में एंडोरा और कोलंबिया की ओर से प्रस्ताव रखा गया कि 'बहुभाषिकता' को सही ढंग से अपनाया जाए और 6 आधिकारिक भाषाओं का समान रूप से प्रयोग किया जाए। 10 जून को संयुक्त राष्ट्र की महासभा में यह प्रस्ताव स्वीकारा गया। साथ ही, यह निर्णय भी लिया गया कि 6 आधिकारिक भाषाओं के अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर और संसाधनों की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए अन्य 6 भाषाओं - पुर्तगाली, हिंदी, स्वाहिली, पर्सियन, बांग्ला और उर्दू का भी प्रयोग किया जाएगा। इस बहुभाषावाद को बढ़ावा देने के उद्देश्य से भारत सहित 80 देशों ने आर्थिक सहायता देना स्वीकार किया।

संयुक्त राष्ट्र संघ का उपर्युक्त निर्णय हिंदी को आगे विकसित करने का प्रोत्साहन देता है। यह नींव का वह पत्थर है, जिसपर हिंदी का भविष्य खड़ा है। संयुक्त राष्ट्र संघ का कार्य जैसे-जैसे हिंदी में संपन्न होगा, वैसे-वैसे हिंदी में कार्य करने वाले कर्मचारियों की आवश्यकता बढ़ेगी और हिंदी रोज़गारोन्मुख बनेगी । हिंदी सीखने और बोलने वालों की संख्या बढ़ेगी। भाषाओं के बीच आपसी लेन-देन में वृद्धि होगी, व्यापार और विज्ञान के क्षेत्र में हिंदी का उपयोग बढ़ेगा, हिंदी में अन्तर्राष्ट्रीय संपर्क विकसित होगा और हिंदी के समर्थकों में वृद्धि होगी। साथ ही, दुनिया में हिंदी भाषा में कोर्स देने वाले विश्वविद्यालयों की सूची बढ़ेगी। इस दिशा में हर संभव सुविधा प्रदान करने की आवश्यकता है ।

अब भारत का दायित्व बढ़ा है। संयुक्त राष्ट्र संघ के नियम के अनुसार 193 देशों में से दो-तिहाई देश अर्थात् 129 देश अपना समर्थन देंगे, तभी हिंदी यू.एन. की आधिकारिक भाषा बनेगी। 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन में स्वर्गीय सुषमा स्वराज जी ने यह उम्मीद जताई थी -

"जब योग दिवस के लिए भारत एक सौ सत्तर देशों का समर्थन हासिल कर सकता है तब संयुक्त राष्ट्र के लिए एक सौ उन्नतीस देशों का समर्थन भी वह हासिल कर लेगा।"

15-16 नवंबर 2022 को भारत ने "वसुधैव कुटुम्बकम्" – "एक पृथ्वी, एक कुटुंब, एक भविष्य" विषय पर आधारित G20 की अध्यक्षता संभाली। परिणामस्वरूप, विश्व में भारत देश, भारत की भाषा हिंदी और प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति मान-सम्मान बढ़ा। इसी के साथ यह आशा जगती है कि भारत का समर्थन करने वाले देशों की संख्या बढ़ेगी। वर्तमान में संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् में मात्र 5 देश (इंग्लैंड, अमेरिका, फ़्रांस, रूस और चीन) स्थायी सदस्य हैं। यह आशा की जा रही है कि भारत भी शीघ्र ही संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य बन जाए, जिससे कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र तक पहुँचने की संभावना में वृद्धि होगी।

हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाने के लिए बहुआयामी प्रयासों की आवश्यकता है। सन् 2007 में विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना इसी उद्देश्य से हुई थी कि अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी का प्रचार किया जाए और हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता दिलाने के लिए मंच तैयार किया जाए। विश्व हिंदी सचिवालय भारत और मॉरीशस की द्विपक्षीय संस्था है। दोनों देशों की सरकारें हिंदी का वैश्विक प्रसार करने और संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को मान्यता दिलाने के अपने दायित्व के प्रति सचेत हैं। यदि भविष्य में विश्व हिंदी सचिवालय द्विपक्षीय संस्था से बहुपक्षीय संस्था बन जाए और अलग-अलग देशों में विश्व हिंदी सचिवालय की शाखाएँ खुल जाएँ, तो हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ तक पहुँचाने में विभिन्न देशों की सरकारें अपना दायित्व मानने लगेंगी और इस दायित्व की पूर्ति हेतु अधिक लोग जुट जाएँगे।

अब विश्व में हिंदी का प्रचार करने वाली हर संस्था का भी दायित्व बढ़ा है। यदि हर देश की हिंदी प्रचारिणी संस्थाएँ हिंदी की गतिविधियों का नित्य आयोजन करेंगी, इन कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए में बच्चों, किशोरों और युवाओं को प्रोत्साहित करेंगी, विभिन्न मंचों पर हिंदी को उपस्थित करेंगी और हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देगी, तो निश्चय ही हिंदी की शक्ति बढ़ेगी और हिंदी के वैश्विक प्रसार के नए द्वार खुलेंगे।

भारत से बाहर हिंदी से प्रेम करने वालों का एक विशाल समूह है। कई अहिंदी भाषी भी हिंदी के प्रति आकर्षित हो रहे हैं। हिंदी के प्रति प्रेम-भाव को आगे बढ़ाने के दायित्व का हमें निर्वहण करना होगा। दूसरे देशों में बसे हुए भारतीय वंशज भले ही अंग्रेज़ी, फ्रेंच या किसी अन्य भाषा को आजीविका का साधन बनाएँ, पर उनके भीतर हिंदी का दीप जलाए रखना होगा। हर हिंदी प्रेमी को अपने घर में बच्चों के साथ हिंदी में व्यवहार करना होगा, क्योंकि हिंदी की जीवन-शक्ति घर और परिवार में है। सबको यह विश्वास दिलाना है कि हिंदी बोलना और सीखना भविष्य के लिए बहुत बड़ी शक्ति होगी। यदि हम इस कार्य में सफल हो जाएँगे, तो कल यह नहीं कहेंगे कि हिंदी विश्व की तीन प्रमुख भाषाओं में से एक है, अपितु यह कहेंगे कि हिंदी विश्व की सर्वप्रमुख भाषा है।

डॉ. माधुरी रामधारी
उपमहासचिव

अनुक्रम

हिंदी : भाषा, लिपि, साहित्य एवं अनुवाद

1.	हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान	- श्री रमेश चन्द्र	2
2.	हिंदी-बंगला कारक एवं 'को' परसर्ग	- डॉ. अनीता गांगुली	7
3.	अनुस्वर की स्थापना	- डॉ. रमेश मोहन शर्मा 'आत्मविश्वास'	15
4.	हिंदी नवजागरण : विचार और विस्तार	- डॉ. भुवाल सिंह ठाकुर	20
5.	राष्ट्रभाषा हिंदी की संकल्पना एवं महात्मा गांधी का योगदान	- डॉ. भरत देवड़ा	28
6.	आज़ादी के 75 वर्ष और राजभाषा हिंदी का उत्कर्ष	- श्रीमती भावना सक्सेना	33
7.	हिंदी बाल साहित्य तथा इक्कीसवीं सदी में उसकी आवयश्कता	- डॉ. सोमदत्त काशीनाथ	37
8.	साहित्यिक अनुवाद और भारतीय संस्कृति का वैश्विक विस्तार	- डॉ. रवि शर्मा 'मधुप'	42

हिंदी का ई-संसार और जन-माध्यम

9.	ई-संसार में विस्तृत होता हिंदी साम्राज्य	- श्रीमती मंजुला वाधवा	48
10.	हिंदी का ई-संसार	- डॉ. रविन्द्र सिंह एवं श्रीमती अरुण कमल	53
11.	हिंदी के विकास में दूरदर्शन का विश्वव्यापी योगदान	- डॉ. नीलम शर्मा	61
12.	तकनीकी से संवरता हिंदी का ई-संसार	- श्री संजय चौधरी	65
13.	जन-संचार और हिंदी	- श्री अमर कुमार चौधरी	70
14.	प्रवासी भारतीय समस्या और 19वीं सदी की हिंदी पत्रकारिता	- डॉ. राकेश कुमार दूबे	74
15.	नए संचार माध्यम और हिंदी के बढ़ते कदम	- डॉ. कमलेश गोगिया	80

हिंदी-शिक्षण

16.	भारत में हिंदी-शिक्षण: दशा एवं दिशा	- श्री विशाल कुमार शर्मा	85
17.	राष्ट्रीय शिक्षा-नीति - 2022 के आलोक में हिंदी	- डॉ. धर्मेंद्र प्रताप सिंह	89
18.	भाषा-शिक्षण-प्रौद्योगिकी का वर्तमान परिदृश्य: मुद्दे, चुनौतियाँ और समाधान की दिशाएँ	- श्री अनुपम श्रीवास्तव	93
19.	फ़िजी में हिंदी-शिक्षण एवं हिंदी टीचर्स एसोसिएशन ऑफ़ फ़िजी	- श्रीमती श्रद्धा दास	98
20.	हिंदी-शिक्षण की चुनौतियाँ	- डॉ. साएमा बानो	103
21.	हिंदी सीखने-सिखाने के नए तरीके	- डॉ. संध्या सिंह	109

हिंदी : विविध आयाम, व्यक्ति एवं संस्था और आज के प्रश्न

22. भारत की प्रमुख हिंदी सेवी संस्थाएँ - डॉ. दीपक कुमार पाण्डेय 114
23. मॉरीशस में विश्व हिंदी सम्मेलन की यात्रा के तीन अहम् पड़ाव - डॉ. बीर पाल सिंह यादव 119
24. समावेशी भाषा हिंदी मुद्दे, चुनौतियाँ और समाधान की दिशाएँ - डॉ. ज्योति यादव 125
25. गिरमिटिया देशों में हिंदी को लेकर होती तनातनी: ये तेरी हिंदी ये मेरी हिंदी - श्रीमती अरुणा घवाना 129
26. स्वातंत्र्योत्तर अमृतकालीन हिंदी - डॉ. रश्मि वार्ष्णेय 135
27. हिंदी का विश्व : आज और कल - डॉ. सविता डहेरिया 139

विश्व में हिंदी

28. वैश्विक मंच पर हिंदी का लहराता परचम - डॉ. शिप्रा श्रीवास्तव 144
29. विश्व में हिंदी को आगे बढ़ाने के प्रयास एवं संभावनाएँ - डॉ. सुप्रिया प्रभाकर जोशी 149
30. बर्मा में हिंदी की उपस्थिति तथा उसकी विकास-यात्रा मुद्दे, चुनौतियाँ और समाधान की दिशाएँ - डॉ. कामता कमलेश 156
31. हिंदी की उदारता तथा व्यापकता - डॉ. प्रभाकर कुमार पाण्डेय 162
32. हिंदी देश से विदेश तक : एक परिप्रेक्ष्य - डॉ. पन्नाकर पांडुरंग घोरपड़े 166
33. हिंदी के प्रसार के लिए आवश्यक है हिंदी की माँग - डॉ. मोतीलाल गुप्ता 'आदित्य' 174
34. नेपाल में हिंदी - डॉ. कविश्री जायसवाल 182

हिंदी : भाषा, लिपि, साहित्य एवं अनुवाद

1.	हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान	- श्री रमेश चन्द्र
2.	हिंदी-बंगला कारक एवं 'को' परसर्ग	- डॉ. अनीता गांगुली
3.	अनुस्वर की स्थापना	- डॉ. रमेश मोहन शर्मा 'आत्मविश्वास'
4.	हिंदी नवजागरण : विचार और विस्तार	- डॉ. भुवाल सिंह ठाकुर
5.	राष्ट्रभाषा हिंदी की संकल्पना एवं महात्मा गांधी का योगदान	- डॉ. भरत देवड़ा
6.	आज़ादी के 75 वर्ष और राजभाषा हिंदी का उत्कर्ष	- श्रीमती भावना सक्सेना
7.	हिंदी बाल साहित्य तथा इक्कीसवीं सदी में उसकी आवश्यकता	- डॉ. सोमदत्त काशीनाथ
8.	साहित्यिक अनुवाद और भारतीय संस्कृति का वैश्विक विस्तार	- डॉ. रवि शर्मा 'मधुप'

हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान

श्री रमेश चन्द्र
हरियाणा, भारत

भाषा के सामान्य मानदंड के रूप से हटकर भाषा का जो च्युत रूप बना, वह 'अपभ्रंश' कहलाया। अपभ्रंश पहले शब्द तथा शब्द-रूपों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ। पतंजलि के अनुसार एक साधु शब्द, जैसे - 'गौ' के कई रूप मिलते हैं, जैसे - 'गानी', 'गौणी', 'गोता', 'गोपोतलिका' आदि। यही अपभ्रंश है।

साहित्यिक प्राकृतों और भ्रष्ट शब्दों से युक्त बोलचाल की भाषा में परस्पर अंतर जब बहुत स्पष्ट हो गया, तब उसी विकसित बोलचाल की भाषा में ही साहित्य-सृजन होने लगा। साहित्य की यह नई भाषा अपभ्रंश कहलाई। स्वाभाविक तौर पर प्राकृत के कई अपभ्रंश रूप विकसित हुए।

अपभ्रंश भारतीय आर्य भाषाओं के विकास-क्रम में वह अवस्था है, जो संस्कृत, पालि और प्राकृत के बाद आई। यह मध्ययुगीन भारतीय आर्य भाषाओं की अंतिम अवस्था है और इसी अपभ्रंश से उभरीं प्राकृत भाषाओं से आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास हुआ। इस प्रकार अपभ्रंश संक्रमण-कालीन भाषा है, जो एक ओर प्राकृत से होकर आ रही भाषा तथा साहित्यिक परंपराओं के विकास की कड़ी है तथा दूसरी ओर आधुनिक आर्य भाषाओं को अंकुरित करने की नूतन शक्ति से समन्वित है।

अपभ्रंश मिश्रित भाषा है। इसमें प्राकृत के समान संस्कृत के प्रत्येक शब्द को जान-बूझकर बिगाड़ा जाता था, अर्थात् तत्सम शब्दों का बहिष्कार किया जाता था। इस प्रकार एक ओर तो अपभ्रंश प्राकृत की रूढ़ियों से बंधी हुई थी, जिसने अपने शब्दकोश का अधिकांश भाग साहित्यिक प्राकृतों से ग्रहण किया था। दूसरी ओर उसके व्याकरण के नियम संस्कृत से कुछ-कुछ भिन्न हो गए थे। व्याकरणिक गठन के लिए इसने जनसामान्य की भाषाओं का अनुकरण किया। इसी कथन का स्पष्टीकरण करते हुए डॉ. नामवर सिंह ने कहा है - *"अपभ्रंश के शब्द-समूह में प्राचीनता थी, लेकिन उसके व्याकरण में नवीनता के अंकुर थे, जो प्राकृत प्रभाव से मुक्त होकर लोक बोलियों के सहारे भारतीय आर्य भाषाओं की नूतन संभावनाएँ प्रकट कर रहे थे। इसी कारण अपभ्रंश ने अपने गर्भ से अनेक क्षेत्रीय भाषाओं को जन्म दिया।"*

अपभ्रंश और अवहट्ठ

अवहट्ठ एक प्रकार की अपभ्रंश भाषा ही थी, जो अपभ्रंश भाषा के विकास की अंतिम अवस्था थी। इस संबंध में डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी का मत है -*"आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के पूर्णतया विकसित हो जाने के बाद भी अपभ्रंश परंपरा चलती रही। इसका स्वरूप या तो विशुद्ध रहा या देशी भाषाओं की लेखन-पद्धति, शब्दावली तथा मुहावरों के रूप में अपभ्रंश वातावरण की एक छाप बनी रही। इस तरह एक प्रकार की अर्द्ध-अपभ्रंश, अर्द्ध-नव्य आधुनिक भारतीय आर्य-भाषा एवं साहित्यिक भाषा के रूप में प्रचलित हो गई। अपभ्रंश का नव्य-भारतीय आर्य-भाषा से मिश्रित या प्रभावित एक पश्च रूप 1400 ई. के लगभग पूर्वी भारत में प्रचलित था, जो अवहट्ठ कहलाता था।"*

प्राचीन हिंदी

प्राचीन हिंदी का उदय मध्य देश में हुआ। यह प्राचीन हिंदी शौरसेनी अपभ्रंश तथा वर्तमान हिंदी के बीच की अवस्था है। इसे 'अवहट्ठ' अथवा 'पिंगल' भी कहा गया।

अपभ्रंश और हिंदी में यह अंतर है कि हिंदी व्याकरण के नियमों की दृष्टि से तो संस्कृत से सर्वथा भिन्न हो गई, परंतु अपभ्रंश के समान इसमें संस्कृत के शब्दों का तिरस्कार नहीं हुआ। हिंदी में शब्द अपभ्रष्ट रूपों को छोड़कर अपने वास्तविक तत्सम रूपों में फिर से प्रयुक्त होने लगे। इसका कारण यह था कि अपभ्रंश और हिंदी का संबंध माँ और पुत्री का है। हिंदी का जन्म अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से माना जाता है। हिंदी को अपभ्रंश से जो प्राप्त हुआ, उससे हिंदी का काम एक शती तक भी न चला। शीघ्र ही, हिंदी को संस्कृत का सहारा लेना पड़ा और भक्तिकालीन साहित्य में संस्कृत के शब्दों की भरमार हो गई। इस प्रकार हिंदी और अपभ्रंश का संबंध केवल ऐतिहासिक महत्ता रखता है। इसका एक कारण यह

भी था कि भाषा के इतिहास में अपभ्रंश काल ह्रास का युग था। व्याकरण और उच्चारण की दृष्टि से अपभ्रंश में जिस सरलीकरण का आरंभ हुआ था, हिंदी ने उस कार्य को आगे बढ़ाया तथा हिंदी के आधुनिक रूप की प्रतिष्ठा होते-होते उसके ध्वनि-समूह तथा पद-रूपों में काफ़ी सरलता आ गई।

अपभ्रंश की विशेषताएँ

ध्वनि-विज्ञान की दृष्टि से अपभ्रंश तथा प्राकृत में प्राय: साम्य है, किंतु शब्दों और धातुओं के रूपों में अपभ्रंश का पृथक अस्तित्व स्पष्ट लक्षित होता है। अपभ्रंश में विभक्तियों की संख्या कम हो गई तथा विभक्ति रहित शब्दों और परसर्गों के न्यूनीकरण और सरलीकरण की प्रवृत्ति आरंभ हो गई। अपभ्रंश की विशेषताओं का वर्णन निम्न रूप में किया जा सकता है :

1. व्याकरणिक विशेषताएँ

(i) संस्कृत में एक शब्द के 24 रूप बनते थे, प्राकृत में 12, परंतु अपभ्रंश में 6 रूप तथा दो वचन ही रह गए। कर्ता, कर्म एक हो गए। करण अधिकरण में तथा अपादान और संप्रदान संबंध में मिल गए। इस प्रकार 3 कारक (विभक्ति) शेष रह गए, जो दो वचनों के साथ मिलकर 6 रूप बनाने लगे।

(ii) अपभ्रंश में काल और विभक्तियाँ, क्षीण हो जाने से, अर्थ के स्पष्ट बोध के लिए सहायक क्रियाओं तथा परसर्गों की आवश्यकता बढ़ गई (अर्थात् भाषा में वियोगात्मक प्रवृत्ति और अधिक प्रबल हो गई)। इनमें सर्वाधिक प्रयोग 'करे' परसर्ग और उसके विभिन्न विकारों 'केरउ', 'केरा', 'केराई' का हुआ। हिंदी में यही 'का', 'के', 'की' के रूप में सामने आया।

(iii) संस्कृत के 25 सर्वनाम अपभ्रंश में 'हउं', 'तुहुं', 'सो', 'आय', 'एह', 'ओइ', 'जो', 'कवण', 'कांई' के रूप में 9 ही रह गए।

(iv) अपभ्रंश क्रिया की मूल धातुओं में ध्वन्यात्मक परिवर्तन भी हुए और अर्थात्मक भी। धातु रूपों में जटिलता तथा बहुलता कम हुई तथा उनका सरलीकरण और एकीकरण किया गया। आत्मनेपद और परस्मैपद का भेद लुप्त हो गया। गणभेदों की जटिलता भी कम हुई। देशी धातुओं तथा अनुकरणात्मक धातुओं, जैसे - 'रुणरुणइ', 'गुलगुलई', 'महमहई' आदि का प्रयोग बढ़ा।

(v) काल-रचना में भी जटिलता कम हुई और तिडंत रूपों के स्थान पर कृदंत रूपों का व्यवहार बढ़ने लगा।

(vi) धीरे-धीरे विशेषणों के प्रयोग में भी लिंग-भेद समाप्त हो गया।

(vii) कोमलता, लघुता, दीनता आदि दिखाने के लिए प्रत्यय का प्रयोग होने लगा। गोरडी, अंतडी तथा स्वार्थिक 'ड' प्रत्यय का प्रयोग बढ़ गया।

(viii) वाक्य में शब्दों के स्थान निश्चित हो गए।

2. शाब्दिक विशेषताएँ

(i) सरलीकरण और न्यूनीकरण की प्रवृत्ति का परिचय प्रातिपदिक शब्दों (संस्कृत व्याकरण में वह अर्थवान् शब्द, जो धातु न हो और जिसकी सिद्धि विभक्ति लगने से न हुई हो) से भी मिला। अपभ्रंश में प्राकृत की भाँति प्रातिपदिक की स्वरांत स्थिति बनी रही, परंतु ह्रस्वीकरण की प्रवृत्ति के कारण 'अ', 'आ', 'इ', 'ई', 'उ' तथा ऊकारांत शब्दों की जगह केवल 'अ', 'इ' तथा उकारांत शब्द ही रह गए और उनमें भी रूपों की दृष्टि से अकारांत की ही प्रधानता रही।

(ii) प्राकृत में नपुंसकलिंग (शब्द) अधिकांशत: पुल्लिंगवत् हो गए थे। अपभ्रंश में नपुंसकलिंग का प्रयोग प्राय: समाप्त ही हो गया। प्रातिपदिक में अकारांत की प्रधानता के कारण पुल्लिंग रूपों की ही प्रधानता हो गई।

(iii) शब्द-समूह की दृष्टि से अपभ्रंश काल में भाषा का विकास ही हुआ है। तद्भव तथा देशज शब्दों का अनुपात बढ़ गया। विदेशी शब्द भी पहले से अधिक प्रयुक्त होने लगे। अनुकरणात्मक शब्दों का व्यवहार भी बढ़ा। अर्थ-परिवर्तन और अर्थ-प्रसारण आदि से भी शब्द-समूह में वृद्धि हुई। किंतु अपभ्रंश भाषा में शब्दों की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता उसमें प्रयुक्त देशी शब्द हैं, जो अपभ्रंश की अपनी संपत्ति हैं। इसे ही देखते हुए आचार्य हेमचंद्र ने 'देशी नाममाला ग्रंथ' की रचना की थी, जिसमें लगभग 4,000 शब्द हैं। इन्हीं देशी शब्दों की चर्चा करते हुए तर्कवागीश ने कहा था कि *"मध्य देश की भाषा की विशेषता ही देशी पदों का आधिक्य है।"*

(iv) अपभ्रंश में संस्कृत के तत्सम-तद्भव तथा देशी शब्द भी पर्याप्त मात्रा में होते थे।

3. ध्वनि-विकास संबंधी विशेषताएँ

अपभ्रंश काल में प्राकृत काल के ध्वनि-विकास की विविध प्रवृत्तियाँ अधिक स्पष्ट हो गईं। अपभ्रंश में संस्कृत तथा प्राकृत की तरह भाषा के रूपों के सरलीकरण की प्रक्रियाएँ - लोप, आगम, आदेश, समीकरण, विपर्यय, अल्पप्राणीकरण तथा महाप्राणीकरण - अधिक प्रबलता से कार्य करने लगीं। इस दृष्टि से अपभ्रंश में ध्वनि-विकास संबंधी निम्नलिखित विशेषताएँ होती थीं –

4. स्वर-विकास संबंधी विशेषताएँ

(i) अपभ्रंश में संस्कृत और प्राकृत के अन्य स्वरों के साथ 'ए' और 'ओ' का भी प्रचलन हुआ। इस प्रकार अपभ्रंश में मान्य स्वर हैं – 'अ', 'आ', 'इ', 'ई', 'उ', 'ऊ' (ह्रस्व), 'एं', 'ए', 'ओं', 'ओ' और 'ऋ'। इन स्वरों के अनुनासिक और निरानुनासिक दोनों रूप मिलते हैं।

(ii) अपभ्रंश में स्वरों और उनकी मात्राओं तथा गुणों में परिवर्तन की विविधता तथा बहुलता है।

(iii) अपभ्रंश में 'ऋ' का अभाव है और प्राय: तत्सम अथवा कुछ तद्भव शब्दों में ही इसका प्रयोग होता है। प्राकृत आदि की भाँति 'ऋ' का 'इ', 'उ', 'रि' आदि में विकार हो गया।

(iv) अपभ्रंश के स्वरों में सबसे बड़ी विशेषता ह्रस्वीकरण की है; विशेषकर अंत्य स्वरों की।

(v) अपभ्रंश उकारबहुला भाषा है। उसमें 'उ' की प्रधानता आरंभ से ही द्रष्टव्य है।

(vi) पश्चिमी और उत्तरी क्षेत्रों की अपभ्रंशों में 'अइ', 'अउ' का क्रमश: 'ऐ' और 'औ' हो गया, जबकि पूर्वी क्षेत्रों में 'अई', 'अऊ' भी साथ-साथ चलता रहा।

(vii) अपभ्रंश में स्वर-संयोग बहुत मिलता है। दो या अधिक स्वर इस प्रकार समीप स्थित मिलते हैं कि संधि-कार्य के बिना ये दोनों स्वर अलग उच्चरित होते हैं, जैसे – प्रयाण > पआन (अआ)।

(viii) अपभ्रंश भाषा 'य' श्रुतिप्रधान है। इसका पश्चिमी तथा उत्तरी अपभ्रंश में अधिक और पूर्वी अपभ्रंश में कम प्रयोग हुआ है। यह श्रुति प्राय: सभी स्वरों के संयोग में ध्वनित होती है, जैसे - कलकल > कलयल, तेज > तेय, अनुराग > अणुराय।

(ix) अपभ्रंश में पूर्ववर्ती स्वर बहुधा अनुनासिक होते दिखाई देते हैं और वर्ग के सभी अंतिम वर्णों को अनुस्वार में डालने की प्रवृत्ति मिलती है। इसके साथ ही अपभ्रंश में कुछ उदाहरण ऐसे भी हैं, जिनमें अनुनासिक का लोप हुआ है, जैसे - विंशांति > वीसा, सिंह > सीह। यह प्रवृत्ति पूर्वी अपभ्रंश में अधिक है।

(x) स्वराघातों की प्रधानता थी।

(xi) आद्यक्षर का स्वर स्वराघात के कारण सुरक्षित रहा है।

5. व्यंजन-विकास संबंधी विशेषताएँ

(i) अपभ्रंश में 28 व्यंजन हैं। 'श', 'ष', 'ङ', 'ञ' का प्रयोग नहीं मिलता। 'श' और 'ष' की जगह 'स' का प्रचलन था।

(ii) 'न' का उच्चारण 'ण' में करने की प्रवृत्ति मिलती है। परंतु अपभ्रंश में उत्तरवर्ती काल में अर्द्ध-मागधी और संस्कृत के प्रभाव से 'न' का प्रयोग होने लगा था। अनुस्वार की गणना स्वरों में होने लगी थी। विसर्ग आदि का अभाव था।

(iii) व्यंजनों में मध्यवर्ती अल्पप्राण निरानुनासिक स्पर्श वर्णों का लोप था।

(iv) महाप्राण ध्वनियाँ 'ख' और 'घ', 'ह' में परिवर्तित हो गई थीं।

(v) अपभ्रंश में व्यंजनों के घोषीकरण की प्रवृत्ति थी, जैसे - आकार > आगार , जीवित > जीविद।

(vi) 'क्ष' के 'ख' और 'छ' रूप मिलते हैं। 'क्ष' से 'ख' का विकार प्रधान रूप में और 'छ' का गौण रूप में मिलता है।

(vii) पश्चिमी अपभ्रंश में 'व' और पूर्वी अपभ्रंश में 'ब' के उच्चारण की प्रवृत्ति अधिक है।

(viii) अनादि असंयुक्त मकार अनुनासिक एवं निरानुनासिक 'व' तथा कहीं-कहीं 'उ' बनकर ध्वनित होता है, जैसे – कमलु > कंवलु, नाम > नाव, दमन > डवण, जमुना > जउणा।

(ix) अपभ्रंश में 'ह' प्राणध्वनि की विशेष महत्ता है। प्रथम तो स्पर्श महाप्राण ध्वनियाँ 'ख', 'घ' आदि 'ह' में परिवर्तित हो गई थीं, दूसरे अपभ्रंश के शब्द-रूपों और धातु-रूपों में 'ह', 'हं', 'हि', 'हिं', 'हु', 'हुं', 'हे', 'हो' प्रत्ययों का आधिक्य है।

(x) प्राकृत में पाए जाने वाले समीकरण, अंतिम व्यंजन का लोप, संयुक्त व्यंजन, व्यंजनागम, अनुनासिक ध्वनियों आदि संबंधी नियमों की स्थिति यथावत् बनी रही।

साहित्य

भामह और दंडी ने अपभ्रंश साहित्य के अस्तित्व को स्वीकार किया है। वल्लभी के राजा सेन (छठी शताब्दी) द्वारा अपने पिता के संबंध में स्थापित शिला-लेख से भी सिद्ध होता है कि अपभ्रंश में साहित्य-रचना छठी शताब्दी से प्रारंभ हो चुकी थी। तब से लेकर इसका प्रचार 11वीं शताब्दी तक (500 वर्षों तक) रहा। वैसे एकाध रचनाएँ 15वीं शताब्दी तक भी होती रहीं। विद्यापति (15वीं शताब्दी) ने अपनी रचना 'कीर्तिपताका' की भाषा को अवहट्ठ (अपभ्रंश) कहा है।

'पृथ्वीराज रासो' को प्राचीन हिंदी का प्रथम महाकाव्य स्वीकार किया जाता है। चंदबरदाई से हेमचंद्र ने अपनी 'व्याकरण सिद्ध हेमचंद्र शब्दानुशासन' में पश्चिमी अपभ्रंश के अनेक उदाहरण दिए हैं, यथा -

भल्ला हुआ जु मारिआ, वहिणी म्हारा कंतु।
लज्जेज्जम् तु अवंस्सियहु, जई भग्गा घर अंतु।।
अम्हे धो रिउ बहुआ, काअर एवं भणांति।
मुद्धि निहालहि गअणअलु, कई जण जीण्ह करंति।।

इन अवतरणों से ज्ञात होता है कि पिछले काल की अपभ्रंश भाषा प्राचीन हिंदी के कितनी समीप आ गई थी। इनमें 'भल्ला हुआ', 'मारिआ', 'भग्गा' आदि शब्द तो खड़ी बोली के आकारांत रूपों की स्पष्ट छाया लगते हैं। हेमचंद्र की भाषा उस समय की बोलचाल की भाषा नहीं, साहित्यिक अपभ्रंश है। बोलचाल की भाषा में तो प्राचीन हिंदी का स्वरूप उस समय तक इससे कहीं अधिक सरल हो चुका होगा।

बोलचाल की भाषा के इस सरल स्वरूप से ही कालांतर में आजकल की पश्चिमी हिंदी का विकास हुआ। इस पश्चिमी हिंदी की दो शाखाएँ हैं - पहली शाखा में ब्रजभाषा वर्ग है और दूसरी में बांगरू तथा खड़ी बोली शामिल हैं। बांगरू बोली हरियाणा के रोहतक, सोनीपत, झज्जर ज़िलों में बोली जाती है। अपने जन्म से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक खड़ी बोली साहित्य का माध्यम न बन सकी, जबकि इस दौरान ब्रजभाषा में विपुल साहित्य लिखा गया। परंतु उन्नीसवीं शताब्दी के बाद साहित्यिक ब्रजभाषा का ह्रास हुआ और खड़ी बोली का उदय और विकास हुआ।

खड़ी बोली का विकास शौरसेनी अपभ्रंश अथवा उसके बोलचाल के व्यवहृत स्वरूप से हुआ। महमूद गजनवी (1025 ई.) और मुहम्मद गौरी (1192-94 ई) के आक्रमणों तक पंजाब की भाषा प्रांतीय विशेषताओं के साथ पश्चिमी अपभ्रंश का ही किंचित विकसित रूप थी। मुस्लिम राज्यसत्ता के दिल्ली में केंद्रित हो जाने पर पंजाब के मुसलमान अपनी पंजाबी-प्रभावित भाषा सहित दिल्ली आ बसे। पंजाबी-प्रभावित दिल्ली तथा उसके आसपास के सर्वसाधारण की भाषा विकसित होकर आगे हिंदी अथवा हिंदुस्तानी कहलाई। इसका आधार उत्तर प्रदेश की बोलचाल की भाषा थी, साहित्यिक भाषा नहीं, जो उस समय तक अपभ्रंश के रूप में ही चली आ रही थी। यह हिंदी भाषा चिरकाल तक लोक-व्यवहार तक ही सीमित रही। साहित्यिक उद्देश्यों के लिए इसका प्रयोग आगे चलकर उन्नीसवीं शताब्दी में खड़ी बोली के रूप में हुआ। चौदहवीं शताब्दी में, मुसलमान आक्रमणकारियों के साथ यह देहलवी भाषा दक्खिण पहुँची, जहाँ इसे दक्खिणी हिंदी कहा गया। हिंदी साहित्यिक भाषा न बन सकी थी, परंतु यह लोकभाषा अवश्य बनी रही। यह बिल्कुल समाप्त नहीं हुई। समय-समय पर इसकी सरलता को देखकर कबीर, नानक, नामदेव, रैदास, दादू आदि की वाणी में समसामयिक बोलियों के साथ-साथ खड़ी बोली की छाया भी दिखती है, यथा -

माई न होती, बाप न होते, कर्म न होता काया।
हम नाहिं होते, तुम नाहिं होते, कौन कहाँ ते आया।।

इन संत कवियों के बाद रीतिकाल में भी आलम, ताज, नागरीदास, भूषण, सूदन, तोष, कुलपति मिश्र, पद्माकर, ग्वाल, आनंदघन, सीतल, ब्रजनिधि आदि न मालूम कितने मुस्लिम और हिंदू कवियों की वाणी में खड़ी बोली के असंदिग्ध अस्तित्व के साक्ष्य मिलते हैं। भारतेंदु युग से काव्य में खड़ी बोली की प्रगति तेज़ हो गई और द्विवेदी युग से उसका व्यापक एवं व्यवस्थित रूप में विकास होना आरंभ हो गया।

अपभ्रंश और हिंदी

(i) हिंदी में अपभ्रंश के प्राय: सभी स्वर और व्यंजन पाए जाते हैं। इस प्रकार हिंदी का ध्वन्यात्मक विकास संस्कृत और तदानुसार अपभ्रंश भाषा की ध्वनि-व्यवस्था पर आधारित है। 'स' का प्रयोग अपभ्रंश और हिंदी दोनों में है।

(ii) अपभ्रंश के अनुकरण पर हिंदी में भी नपुंसकलिंग समाप्त हो जाने से दो ही लिंग रह गए।

(iii) अपभ्रंश में काल और विभक्तियाँ क्षीण हो जाने के कारण अर्थ के स्पष्ट बोध के लिए सहायक क्रियाओं तथा परसर्गों की आवश्यकता और बढ़ गई। इनमें सर्वाधिक प्रयोग 'करे' परसर्ग और उसके विभिन्न विकारों 'केरउ', 'केरा', 'केराई' का हुआ था। हिंदी में वे 'का', 'के', 'की' के रूप में सामने आए।

(iv) हिंदी में अपभ्रंश की भाँति काल-रचना में जटिलता कम हो गई। अपभ्रंश में तद्भव तथा देशज शब्दों की संख्या बढ़ गई थी तथा विदेशी शब्द भी पहले से अधिक प्रयोग में आने लगे थे। यही क्रम हिंदी में भी चलता रहा। यद्यपि प्राचीन हिंदी में तत्सम शब्द अधिक थे।

(v) अपभ्रंश भाषा में शब्दों की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता देशी शब्दों की है। यही विशेषता हिंदी में भी विद्यमान है।

(vi) अपभ्रंश वाक्यों में शब्दों के स्थान निश्चित हो गए थे। हिंदी ने भी इस परंपरा को अपना लिया।

(vii) अपभ्रंश की सरलीकरण और न्यूनीकरण की परंपरा हिंदी ने विरासत के रूप में अपना ली, अत: अपभ्रंश की भाँति हिंदी में भी शब्दों के रूप, वचन, काल, सर्वनाम, धातुरूपों की संख्या में कमी हुई।

इस प्रकार हिंदी के विकास में अपभ्रंश का ध्वनिक, व्याकरणिक तथा शाब्दिक हर प्रकार का महान् योगदान है। अपभ्रंश ने हिंदी के लिए एक आधारशिला का काम किया। हिंदी का उद्भव और विकास अपभ्रंश के गर्भ से ही हुआ।

संदर्भ :

1. विश्व के मानचित्र पर हिंदी (1983), संपादक प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद तथा अन्य, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
2. हिंदी भाषा का इतिहास (1967), डॉ. देशराज सिंह भाटी एवं प्रो. भूषण स्वामी।
3. हिंदी भाषा का विकास, प्रो. ओम प्रकाश तरुण।
3. हिंदी भाषा, भोलानाथ तिवारी।
5. हिंदी और उसकी विविध बोलियाँ (1972), प्रो. देवेंद्र जैन एवं डॉ. कैलाश तिवारी।
6. हिंदी भाषा का उद्भव और विकास (1971), सदाविजय आर्य एवं रमेश मिश्र।
7. भाषा विज्ञान की भूमिका (1966), देवेंद्र नाथ शर्मा।
8. हिंदी भाषा का स्वरूप-विकास, डॉ. अवधेश्वर अरुण।
9. हिंदी - उद्भव, विकास और रूप, डॉ. हरदेव बाहरी।
10. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. सरनदास भनोट।
11. हमारा हिंदी साहित्य और भाषा परिवार (सम्वत् 2008), पं. भवानीशंकर शर्मा त्रिवेदी।
12. भाषा-नियोजन और हिंदी का मानकीकरण, प्रो. सूरजभान सिंह।
13. हिंदी : मत-अभिमत, डॉ. विमलेश कांति वर्मा।
14. हिंदी : राष्ट्रभाषा से राजभाषा तक, डॉ. विमलेश कांति वर्मा।

sambherwal@yahoo.co.in

हिंदी-बंगला कारक एवं 'को' परसर्ग

डॉ. अनीता गांगुली
तेलंगाना, भारत

क्रिया के साथ जो संज्ञा या सर्वनाम का संबंध दर्शाता है, उसे कारक कहते हैं। कारक चिह्नों से युक्त संज्ञा या सर्वनाम शब्द ही वाक्य में अन्य शब्दों से संबंध प्रकट करते हैं। इन चिह्नों से ही कारक का बोध होता है। कारकों का एक उदाहरण इस प्रकार है – 'अरे! राम ने रास्ते में लाठी से साँप के बच्चे को 'मारा', इस वाक्य में 'राम ने', 'रास्ते में', 'लाठी से', 'साँप के बच्चे को' संज्ञाओं के रूपांतर हैं। इन सब रूपांतरित संज्ञाओं का संबंध 'मारा' क्रिया से स्पष्ट होता है, वही कारक है। हिंदी में आठ कारक हैं -

कारक	**कारक चिह्न**
कर्ता	ने
कर्म	को
करण	से, के द्वारा
संप्रदान	को, के लिए
अपदान	से (पृथक होना)
संबंध	का, के, की, रा, रे, री, ना, ने, नी
अधिकरण	में, पर
संबोधन	ए, हे, हो, अहो, अरे

हिंदी में कारक का ज्ञान कराने के लिए संज्ञा या सर्वनाम के साथ जो प्रत्यय लगाये जाते हैं, उन्हें हिंदी व्याकरण में कारक चिह्न या विभक्ति कहते हैं। ये कारक चिह्न पद से अलग प्रयुक्त होते हैं, इसलिए इन्हें परसर्ग भी कहा जाता है। परसर्ग का शाब्दिक अर्थ है - 'पीछे जुड़ना'। हिंदी संज्ञा में इन परसर्गों के लगने से उनके तिर्यक रूप बनते हैं, जैसे –

पुल्लिंग संज्ञा -

	वर्ग - 1			**वर्ग - 2**	
	एकवचन	**बहुवचन**		**एकवचन**	**बहुवचन**
कारक चिह्न	घोड़ा	घोड़े		बालक	बालक
रहित (मूल)					
कारक चिह्न	घोड़े	घोड़ों		बालक	बालकों
सहित (तिर्यक)					
संबोधन पद के साथ	घोड़े	घोड़ो		बालक	बालको

जो पुल्लिंग शब्द आकारांत होते हैं, वे बहुवचन में एकारांत हो जाते हैं। तिर्यक रूपों में एकारांत और ओकारांत हो जाते हैं। आकारांत से इतर संज्ञा शब्दों में एकवचन, बहुवचन तथा तिर्यक एकवचन समान रहते हैं। तिर्यक बहुवचन ओकारांत होते हैं।

स्त्रीलिंग संज्ञा -

वर्ग - 3	**एकवचन**	**बहुवचन**	**वर्ग - 4**	**एकवचन**	**बहुवचन**
कारक चिह्न रहित (मूल)	लड़की	लड़कियाँ		बालिका	बालिकाएँ
कारक चिह्न सहित (तिर्यक)	लड़की	लड़कियों		बालिका	बालिकाओं
संबोधन पद के साथ जो स्त्रीलिंग	लड़की	लड़कियो		बालिका	बालिकाओ

जो स्त्रीलिंग संज्ञाएँ इ/ईकारांत होती हैं, उनके बहुवचन में "इयाँ" हो जाता है। तिर्यक बहुवचन में ओंकारांत हो जाता है। इ/ईकारांत से इतर शब्दों के बहुवचन में 'एँ', 'ए' या 'याँ' तथा तिर्यक बहुवचन ओकारांत होता है। संज्ञा शब्दों के सरल रूप को मूल रूप कहते हैं। सरल और संबोधन रूपों के साथ परसर्ग का प्रयोग नहीं होता।

कारक चिह्नों के लगने से सर्वनाम रूपों में भी परिवर्तन होता है। उसमें भी मूल एवं तिर्यक रूप मिलते हैं। सर्वनामों में संबोधन कारक नहीं होता। उसमें इस प्रकार से परिवर्तन होता है -

(i) 'मैं', 'हम', 'तू', 'तुम', 'आप' की रूपावली में 'ने' के साथ कोई विकार नहीं होता। अर्थात् 'ने' परसर्ग का प्रयोग इनके मूल रूपों के साथ ही होता है। अन्य परसर्गों के साथ 'मैं' का 'मुझ', 'तू' का 'तुझ' बनता है। फिर संबंधवाची प्रत्यय के साथ 'रा', 'रे', 'री' लगकर 'मेरा', 'मेरे', 'मेरी', 'तेरा', 'तेरे', 'तेरी', 'हमारा', 'हमारे', 'हमारी', 'तुम्हारा', 'तुम्हारे, 'तुम्हारी' रूप बनते हैं। इनसे संप्रदान में भी 'मेरे लिए', 'तेरे लिए', 'हमारे लिए' तथा 'तुम्हारे लिए' रूप बनते हैं।

(ii) 'यह', 'ये', 'वह', 'वे', 'कौन', 'क्या', 'जो', 'सो' के तिर्यक रूप 'इस', 'इन', 'उस', 'उन', 'किस', 'किन', 'जिस', 'जिन', 'तिस', 'तिन' बनते हैं। बहुवचन में 'ने' परसर्ग का प्रयोग 'इन्हों', 'उन्हों', 'किन्हों', 'जिन्हों', 'तिन्हों' रूपों के साथ ही होता है। 'इनने', 'उनने', 'किनने', 'जिनने', 'तिनने' प्रयुक्त नहीं होते हैं। 'कोई' सर्वनाम के 'किसी' और 'किन्ही' रूप बनते हैं। 'कुछ' सर्वनाम तो मूल एवं तिर्यक में समान ही रहते हैं।

एक मुख्य बात यह है कि कर्मकारक में इन सर्वनामों के दो-दो रूप मान्य हैं -

मझे - मुझको	इन्हें - इनको	जिसे - जिसको
हमें - हमको	उसे - उसको	जिन्हें - जिनको
तुझे - तुझको	उन्हें - उनको	तिसे - तिसको
तुम्हें - तुमको	किसे - किसको	तिन्हें - तिनको (यह रूप अब प्रचलन में नहीं है)
इसे - इसको	किन्हें - किनको	

कामता प्रसाद गुरु के अनुसार - "इन कारकों (सर्वनामों) के दो-दो रूप होने से यह लाभ है कि दो 'को' इकट्ठे होकर उच्चारण को नहीं बिगाड़ते हैं। जैसे - मैं इसे तुमको दूँगा। इस वाक्य में 'इसे' के बदले 'इसको' कहना अशुद्ध है।"

निजवाचक 'अपना' कहीं-कहीं बहुवचन में 'अपनों' हो जाता है। जैसे - 'अपने को', 'अपनों को' इसे यौगिक परसर्ग भी कह सकते हैं, क्योंकि इससे 'के' और 'को' जुड़ा है। अब मैं यहाँ बंगला के कारकों पर दृष्टि डालना चाहूँगी।

कर्ता	
कर्म	के
करण	-ए, य, द्वारा, दिये, कृतक
संप्रदान	- के , जॉन्याँ
अपादान	- हॉइते, थेके, चेये
संबंध	- एर
अधिकरण	- ए, ते, माँध्ये
संबोधन	- हे , ओ, हो

कभी-कभी कारक की सूचना कारक चिह्नों से नहीं, भाव से मिलती है। अर्थात्, एक ही कारक चिह्न कई कारकों में काम आता है। जैसे - ए (यू) कारक चिह्न से कर्ता, कर्म, अपादान और अधिकरण का अर्थ भी निकलता है, जैसे -

(i) सर्वपाप हरिल गंगाय (कर्ताकारक)

(ii) भक्तिभोरे पूजिनू गंगाय (कर्मकारक)

(iii) वर्षाय जेलेरा गंगाय इलिश धरे (अपादान)

(iv) गंगाय माझे माझे कूमिर देखा जाए (अधिकरण)

बंगला के संज्ञापदों में प्राकृतिक लिंग भेद है। व्याकरणिक लिंग नहीं है। संज्ञाओं के वचन से क्रिया प्रभावित नहीं होती। कर्ताकारक में 'रा' तथा 'एरा' के अलावा बहुवचन के लिए दूसरा

प्रत्यय नहीं है, इसलिए बहुवचन बनाने के लिए 'देर', 'गण', 'दिग', 'गुलो', 'गुलिन', 'वृंद' आदि प्रत्यय लगाकर उसमें कारक चिह्न लगाये हो जाते हैं। परसर्ग के कारण संज्ञाओं में कोई विकार नहीं होता।

संज्ञा के साथ कारक चिह्न –

कारक	**एकवचन**	**बहुवचन**
कर्ता	बालक	बालकेरा, बालकदेर, बालकगण
कर्म	बालक के	बालकदेर के/ बालकगण के
करण	बालक द्वारा / दिये	बालकदेर द्वारा/बालकदेर दिये
संप्रदान	बालक के/ बालकेर जॉन्या	बालकदेर के/बालकदेर जॉन्यॉ
अपादान	बालक थेके/ बालकेर चेये	बालकदेर थेके/बालकदेर चेये
संबंध	बालकेर	बालकदेर/ बालकगणेर
अधिकरण	बालक/बालकेते/बालकेरे मॉध्ये	बालकदेरे मॉध्ये/ बालकगणेर मॉध्ये
संबोधन	बालक, बालकेरा, बालकगण	बालकेरा, बालकगण

वास्तव में, आठ कारकों में से छ: कारकों के साथ ही क्रिया का संबंध होता है। संबंध कारक में दो पदों का संबंध होता है, इसलिए बंगला में उसे संबंध पद कहा जाता है। संबंध पद के साथ दूसरे परसर्ग लगते हैं। संबोधन कारक का संबंध उस पद से ही होता है। संस्कृत में भी षष्ठी विभक्ति को कारक नहीं मानते, क्योंकि उसका संबंध क्रिया से नहीं है।

सर्वनाम 'आमि' (मैं) के साथ कारक चिह्न -

	एकवचन	**बहुवचन**
कर्ता	आमि	आमरा
कर्म	आमाके	आमादेरके/ आमादिग के
करण	आमार द्वारा	आमादेर द्वारा
संप्रदान	आमार जॉन्यॉ	आमादेर जॉन्यॉ
अपादान	आमार हॉइते/ थेके	आमादेर हॉइते/ थेके
संबंध	आमार	आमादेर
अधिकरण	आमाते, आमार मॉध्ये	आमादेर मॉध्ये/ आमादिगते

बंगला में परसर्ग के कारण रूपांतरण होता है। 'आमि' का तिर्यक रूप 'आमा', मध्य पुरुष 'तुई' (तू) का 'तो', तुमि का 'तोमा' तथा आदरसूचक आपनि (आप) का 'आपना' है। सर्वनामों में कर्ताकारक 'रा' प्रत्यय जोड़कर बहुवचन बनाया जाता है, जैसे -

आमि (मैं) - आमरा (हम) उ
तुई (ते) - तोरा (तुच्छार्थक का बहुवचन) हिंदी में इसके लिए शब्द नहीं है
तुमि (तुम) - तोमरा (तुम लोग)
आपनि (आप) - आपनारा (आपलोग)
से (वह) - ताहारा

इनि (ये) तिनि (वे) जिनि (प्रथम पुरुष आदरार्थक)/तॉरा/तारा जारा, निजे (निजवाचक)-निजेरा

हिंदी में कभी-कभी 'अपना' के स्थान पर 'निज' का प्रयोग होता है, जैसे -

निज का काम है

निज भाषा उन्नति अहे

एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हिंदी के सर्वनामों में संबंधकारक के बाद परसर्ग आते हैं। जैसे - 'मेरे लिए', 'मेरे द्वारा' आदि। वैसे ही बंगला के संज्ञा एवं सर्वनाम के रूपों में संबंधकारक के बाद परसर्ग आते हैं। जैसे - बालकेर जॉन्यॉ / आमार जॉन्यॉ / थेके (द्वारा) / मॉध्ये आदि। यदा-कदा दो या तीन परसर्ग क्रम से आ सकते हैं, जैसे -

हिंदी - बच्चों में से किसी को बुलाओ

बंगला - बालॉकदेर मॉध्ये थेके केउके डाको

हिंदी - हममें से कोई चला जाए

बंगला - निजेदेर मॉध्ये थेके केउ जाते हॉबे ।

1. वह छत पर से गिरा। 2. अपने को इतना बहुत है। (इन दोनों वाक्यों की समानता बंगला में नहीं है।)

'को' परसर्ग

कारकों की बड़ी सुनिश्चित व्यवस्था संस्कृत में है। प्रथमा से सप्तमी तक प्रत्येक संज्ञा एवं सर्वनाम का 'ए', 'व', 'द्व', 'व', 'ब', 'व' और कारक चिह्न सुनिश्चित है, जिसके कारण किसी भी पद का कारक चिह्न देखकर पद का कारक और वचन ज्ञात होता है। हिंदी एवं बंगला में वैसी व्यवस्था नहीं है। यहाँ पर हिंदी एवं बंगला 'को' परसर्ग की समानता एवं असमानता पर विचार करना उचित होगा।

कर्म कारक - कर्ता जिसका आश्रय लेकर क्रिया संपादन करे, वही कर्म कारक है। कर्म का अवलंबन करके ही क्रिया पूर्णता प्राप्त करती है।

दोनों भाषाओं के कुछ समान तत्व :

(1) हिंदी में कर्मकारक 'को' है। कर्म के साथ 'को' आने पर कर्म के लिंग या वचन का प्रभाव क्रिया पर नहीं पड़ता। कर्ता के साथ 'को' हो, तो कर्म के लिंग और वचन के अनुसार क्रिया बदलती है। संज्ञा शब्दों के साथ यह अलग से आता है तथा सर्वनाम के साथ जुड़कर आता है।

बंगला में कर्मकारक चिह्न 'के' है, जो कि संज्ञा एवं सर्वनाम के साथ जुड़कर आता है। बंगला में संज्ञा के लिंग से क्रिया प्रभावित नहीं होती है। हाँ, सर्वनाम के वचन से क्रिया प्रभावित होती है।

(2) दोनों भाषाओं में संज्ञा एवं सर्वनाम कर्ता के साथ भी आता है, जैसे –

हिंदी - पिताजी को जल्दी बुलाओ।

बंगला - बाबाके ताड़ाताड़ि कॉरे डाको।

हिंदी - मुझको तुमसे काम है।

बंगला - आमाके तोमार 'चेये' काज आछे।

(3) दोनों भाषाओं में 'को' एवं 'के' क्रमशः संप्रदान कारक को द्योतित करते हैं। इसके अलावा दोनों भाषाओं में शून्य विभक्ति भी 'को' परसर्ग की सूचना देती है।

हिंदी - उसने मेरा हाथ पकड़ा।

बंगला - से आमार हाथ धॉरिछे।

(4) द्विकर्मक क्रिया में, दोनों भाषाओं में, प्राणिवाचक कर्म, गौण कर्म और वस्तुवाचक कर्म को मुख्य कर्म कहते हैं। प्राणिवाचक कर्म के साथ 'को' का प्रयोग होता है।

हिंदी - माँ बच्चे को खाना खिलाती है।

बंगला - माँ बच्चाके खाबार खावाच्छे।

हिंदी - शिक्षक छात्रों को पढ़ाते हैं।

बंगला - शिक्षकगण छात्रोदेरके पॉड़ातेछेन।

प्रेरणार्थक क्रियाओं के साथ भी हिंदी एवं बंगला में कर्मकारक का व्यवहार होता है।

(5) साहित्यकृति (रचना) बताने के लिए साहित्यकार के नाम में शून्य विभक्ति का प्रयोग होता है, जैसे -

हिंदी - मैं दो महीने से शेक्सपियर पढ़ता हूँ।

बंगला - आमि दूई मास थेके शेक्सपियार पॉड़तेछि।

(6) दोनों भाषाओं में समधातुज कर्म एवं क्रिया प्रयुक्त होते हैं -

हिंदी- उसने कैसा खेल खेला।

उसने कैसा नृत्य किया।

बंगला- से केमॉन खेला खेलेछे।

से केमॉन नाचन नायलो / से केमॉन नृत्यॉ कॉरछे।

(7) कभी-कभी किसी बात पर बल देने के लिए निपात के बाद 'को' का प्रयोग किया जाता है, जैसे -

हिंदी - भ्रष्ट अधिकारियों ने भिखारियों तक को नहीं छोड़ा।

बंगला - भ्रॉष्ट अधिकारीरा भिखारीदेर के पर्यन्तॉ छाड़े नाई।

नोट - बंगला में यह निपात 'को' के बाद है, पर निपात है।

(8) एक ही जाति के एकाधिक कर्म होने पर परसर्ग अंत में जुड़ता है, जैसे -

हिंदी - सीता, गीता, नरेश, राम और मोहन को बुलाओ!

बंगला - सूरने, जितेन, जीवोन आर हारान के डाको!

(9) दोनों भाषाओं में कर्मवाच्य रूप में आता है, जैसे -

हिंदी - दिल्ली से मामा को फ़ोन किया गया।

बंगला - दिल्ली थेके मामाके फ़ोन कॉरे गेलो।

(10) दोनों भाषाओं में क्रिया कर्म रूप में आती है, जैसे -

हिंदी - सैनिक लड़ाई में मारा गया।

बंगला - सैनिक युद्धे मारा गेलो।

(11) दोनों भाषाओं में वाक्यांश भी कर्म रूप में हो सकता है, जैसे -

हिंदी - गोल मोल बात करना मुझे पसंद नहीं।

बंगला - आमता आमता कॉरे कथा बॉला आमि पोछोन्दॉ कॉरिना।

(12) दोनों भाषाओं में कर्म की पुनरावृत्ति मिलती है -

हिंदी - क्या-क्या चाहिए?

बंगला - की की चाउ?

हिंदी - जो-जो कहा, वही किया?

बंगला - जा जा बॉलेछिलाम, कॉरेछो?

सर्वनामों की पुनरुक्ति इस प्रकार भी हो सकती है। जैसे -

हिंदी - किसी भी व्यक्ति को बुलाओ।

बंगला - जाके ताके डेको ना।

(13) हिंदी में भी बंगला के समान बहुत्व का बोध कराने के लिए 'लोग' या 'लोगों' पद लगाते हैं। जैसे - ये लोग, उन लोगों को, किन लोगों ने, लड़के लोग, आदमी लोग

(14) दोनों भाषाओं में 'चाहिए' के साथ अनिवार्य रूप से 'को' का प्रयोग होता है, जैसे -

हिंदी - मुझको अन्न चाहिए।

बंगला - आमके अन्न चाई।

हिंदी - मुझको कपड़ा चाहिए।

बंगला - आमके कापॉड़ चाई।

यहाँ 'चाहिए' आवश्यकता का बोधक है। क्रिया संज्ञा रूप में आने पर 'चाहिए', 'होना' एवं 'पड़ना' कर्तव्य, बाध्यता एवं अनिवार्यता को दर्शाती है, जैसे -

मुझको जाना चाहिए (आमाके जेते हॉबे)

शीला को जाना होगा (शिलाके जेते हॉबे)

पिताजी को काम करना पड़ेगा। (बाबाके काज कॉरते हॉबे)

(15) दोनों भाषाओं में विशेषण भी कर्म रूप में आता है, जैसे -

हिंदी - गरीबों को कष्ट नहीं देना चाहिए।
मैंने अच्छे अच्छों को बदलते देखा है।

बंगला - गोरीबदेरके कॉष्टॉ देउया उचित नाई।
आमि भालोदेरके बॉदलाते देखेछि।

नोट - बंगला में पहले वाक्य में क्रिया इस अर्थ में आती है - 'गरीबों' को कष्ट देना उचित नहीं। दूसरा वाक्य पूरी तरह हिंदी के समान है।

(16) 'करना', 'समझना' और 'मानना', क्रिया के साथ दोनों भाषाओं में 'को' आता है, जैसे -

हिंदी	बंगला
ईश्वर छोटे को बड़ा करते हैं।	- ईश्वॉर छॉटॉके बॉड़ो कॉरेछे।
हम उसको अच्छा समझते हैं।	- आमरा ओके भालॉ बुझितेछेन।
हम उनको बहुत मानते हैं।	- आमरा उनाके ऑनेक मान्यॉ कॉरि

ऐसे ही प्रशंसा एवं निंदा के अर्थ में 'को' का प्रयोग होता है, जैसे -

आपको धन्यवाद/बधाई - आपनाके धॉन्यॉवाद / अभिनॉन्दॉन।

आपको चेतावनी दी जाती है - आपनाके सचेतन करा जाच्छे।

असमानताएँ :

(1) हिंदी के संज्ञा एवं सर्वनाम में तिर्यक रूपों की संख्या बंगला से अधिक है, जैसे – लड़के को बुख़ार है, उसको पुरस्कार मिला।

(2) बंगला के वैयाकरण हिंदी के परसर्ग के लिए अनुसर्ग का प्रयोग करते हैं।

(3) हिंदी में 'को' परसर्ग के सर्वनामों के दो-दो रूप बनते हैं।

(4) हिंदी में बहुत से स्थानों में 'को' लुप्त रहता है। जैसे - 'हम घर गए।' इसके अलावा हिंदी में लिखा जाता है - 'मैं राम के घर

जाता हूँ।' बंगला में इस वाक्य में अधिकरण कारक आता है। जैसे - आमि घॉरे जाच्छि - [मैं घर (को) जाता हूँ।]

(5) हिंदी में क्रियार्थक संज्ञा के साथ 'को' अवश्य आता है, जो बाध्यता एवं आवश्यकता सूचित करता है। जैसे हमको जाना है। या फिर दूसरा वाक्य देखिए - गाड़ी जाने को है। इस वाक्य में को 'वाला' के अर्थ को द्योतित करता है। समाचार-पत्र में लिखा एक नमूना – "काला धन आने को है।" बंगला में ऐसे प्रयोग नहीं होते हैं।

एक और उदाहरण प्रयोजन के अर्थ में -

मैं ऑफ़िस जाने को तैयार हूँ।

वह फ़िल्मसीटी जाने को उत्सुक है।

(6) बंगला में ऐसे वाक्यों में 'के लिए' हेतु 'जॉन्य' का प्रयोग होता है।

बंगला में, प्राणिवाचक संज्ञा में कारक योग से और कारक लोप से, अर्थ में अंतर दिखता है -

कुली डाको। (अपरिचित) - कुली बुलाओ।

कुली के डाको। (निर्दिष्ट) - कुली को बुलाओ।

डाक्तार डाकते जाच्छि। (किसी भी डाक्टर को) - डॉक्टर बुलाने जा रहा हूँ।

डाक्तार बाबूके डाकते जाच्छि। (परिचित) - डॉक्टर को बुलाने जा रहा हूँ।

हिंदी में भी ऐसे प्रयोग निश्चित काल वाचक संज्ञाओं में आते हैं, जैसे -

रात पानी पड़ा।

रात को पानी पड़ा।

कभी-कभी विकल्प के रूप में भी 'को' आता है।

लड़कियाँ अच्छी साड़ी पसंद करती हैं।

लड़कियाँ अच्छी साड़ी को पसंद करती हैं।

बंगला में ऐसे प्रयोग अधिक हैं।

(7) हिंदी में 'भय' के अर्थ में 'से' का प्रयोग होता है, जैसे –

बहू ससुर से लजाती है।

वह चूहे से डरता है।

बंगला में लज्जा कॉरा/ लज्जा पाउया, भय कॉरा/ भय पाउया में प्रयुक्त क्रियाएँ सकर्मक क्रियाएँ हैं तथा अपने साथ 'को' लेती है, जैसे -

सॉसुरके पुत्रबॉधूरा स्वभावतई लज्जा कॉरे/ पाय।

ससुर को (से) पुत्रवधू स्वाभाविक रूप से लजाती है।

कुकुरके सबाइ भॉय कोरे/पाय।

कुत्ते को (से) कब डरते हैं।

(8) हिंदी में कै, दस्त, उलटी, पेशाब आदि स्वाभाविक एवं मानसिक आवेगों या सुख, दुख, खेद, विश्वास आदि मनोभावों को व्यक्त करने के लिए, संज्ञा या सर्वनाम के साथ 'को' का प्रयोग होता है -

उसको उलटी हो रही है।

तुमको खुशी मिल रही है।

राम को ईर्ष्या हो रही है ।

मुझको दुख है/कष्ट है ।

बंगला में ऐसे प्रयोग नहीं मिलते हैं।

(9) खाँसी, बुखार, ज़ुकाम आदि शारीरिक व्याधियों से पूर्व भी 'को' आता है - उसको खाँसी है/ मुझको ज़ुकाम है/ राज को बुखार है।

बंगला में ऐसे प्रयोग नहीं हैं। बंगला में इसको इस प्रकार कहते हैं –

1. 'ओर काश होयेछे।'

2. 'आमार सॉर्दी हॉयेछे'

3. 'रामेर ज्वॉर हॉयेछे।'

यहाँ पर कर्ता के साथ संबंध वाचक आता है, जिसका अनुवाद हिंदी में इस प्रकार होगा - 'उसका खाँसी हुई है। और मेरा सर्दी हुई है।'

(10) मिलना, सूझना, अखरना, खलना आदि के साथ कर्ता 'को' परसर्ग लगाते हैं, जैसे -

शीला को साड़ी मिल गयी। ('प्राप्त' होने के अर्थ में)

मोहन को पुरस्कार मिला

मुझको कुछ नहीं सूझता

बंगला में ऐसे वाक्यों में शून्य विभक्ति आती है, जैसे -

शीला सारी पेयेछे।

मोहन पुरस्कार पेयेछे।

आमि किछु बूझि ना।

परंतु मुझको यह बहुत खलता है।

अखरता है - ऐसे प्रयोग बंगला में नहीं हैं।

(11) हिंदी में दिशावाचक संज्ञा के साथ 'को' निश्चयार्थ में आता है, जैसे -

यह रास्ता सब्ज़ी-मंडी को जाता है। यह वाक्य 'की ओर' का भी संकेत करता है। बंगला में ऐसे 'को' युक्त वाक्य नहीं है।

(12) हिंदी में लगना क्रिया के साथ 'को' कर्ता के साथ आता है, जैसे -

मुझे भूख लग रही है।

मुझे सरदी लग रही है।

आपको कैसा लग रहा है?

आपको बोर लगा होगा! (बोलचाल में)

'लगना' क्रिया के साथ 'को' कर्म के अर्थ में -

शीला मुझे कमज़ोर लगती है

वह मुझे चोर लगता है।

(13) हिंदी में 'आना' क्रिया से पूर्व संज्ञा या सर्वनाम के साथ 'को' आता है, जो 'जानने' के अर्थ में प्रयुक्त होता है, जैसे -

राम को तेलुगु आती है।

मुझको हिंदी आती है।

बंगला में 'आती है' के स्थान पर 'जानना' क्रिया का प्रयोग होता है।

(14) हिंदी में 'मन' या 'जी' मनोभावों के साथ 'को' का प्रयोग होता है, जैसे -

गोभी खाने को मन करता है।

घूमने को जी चाहता है।

(15) हिंदी में अधिकरण के स्थान पर 'को' का प्रयोग होता है, जैसे - शाम को, रात को, दोपहर को, सोमवार को आदि समयसूचक शब्दों में 'को' आता है। बंगला में इन शब्दों में 'ए' परसर्ग अर्थात् 'में' आता है। जैसे - शॉकाले, विकाले, रात्रे, दुपुरे, सोमवारे (सुबह में, शाम में, रात में, दोपहर में, सोमवार में)

इसके अलावा, दिनांक के साथ भी हिंदी में 'को' का प्रयोग होता है। जैसे - दो तारीख को, दो फ़रवरी को आदि, बंगला में यहाँ भी अधिकरण 'में' का ही प्रयोग होता है। यदि उक्त शब्दों के साथ बेला (समय) का प्रयोग होता, तो बंगला में परसर्ग नहीं आएगा, जैसे –

से विकालबेला आसबे

रात्रिरवेला आसबे

से सॉकालबेला आसबे

से दुपुरवेला आसबे

(16) हिंदी में दीर्घ समयावधि के वाचक वर्ष, माह, पखवाड़ा, सप्ताह के बाद 'को' का प्रयोग नहीं होता, परंतु अल्प समयावधि के वाचक दिन, रात, शाम, दोपहर आदि के साथ 'को' आता है, जैसे -

हिंदी - वह अगले वर्ष आयेगा। - से आगामी बॉछॉरे आसबे।

मैं इस माह लंदन जाऊँगा। - आमि एई मासे लॉन्डोन जाबॉ।।

पिछले सप्ताह संक्रांति थी। - गॉतॉ सॉप्ताहे संक्रांति छिलॉ।

बंगला में वर्ष, माह और सप्ताह के साथ अधिकरण कारक 'में' का प्रयोग होता है।

(17) हिंदी में नामिक क्रियाओं में 'आना', 'रहना', 'पड़ना' और 'देना' के साथ कर्ता 'को' परसर्ग का प्रयोग होता है, जैसे -

हिंदी		**बंगला**
मुझको याद आती है।	-	आमार मॉने पॉड़े।
बच्चे को हँसी आती है।	-	बाच्चार हासी पाय।
उसको याद रहेगा।	-	तार मॉने थाकबे।
तुमको एक आवाज़ सुनायी पड़ी।	-	तुमि एकटा आवाज़ सुनते पेले।
उसको एक गाय दिखायी दी।	-	से एकटा गोरू देखते पेलॉ।

बंगला में उक्त स्थानों में 'को' का प्रयोग नहीं होता । प्रथम तीन वाक्यों में संबंधवाचक का प्रयोग होता है। जैसे – 'आमार', 'बाच्चार', 'तार' तथा चौथे और पाँचवे वाक्यों में कर्ता बिना परसर्ग के प्रयुक्त होता है।

अत: संस्कृत की व्याकरणिक व्यवस्था को हिंदी या आधुनिक भाषाओं पर आरोपित नहीं किया जा सकता। कोई भाषा-संरचना एवं भाव के आधार पर दूसरी भाषा की नकल नहीं करती।

संदर्भ :

1. प्रो. मिश्र, प्रो. शर्मा एवं डॉ. पॉडे, 1986 हिंदी : स्वरूप और प्रयोग, भोपाल, प्रकाशन म. प्रदेश ग्रंथ अकादमी
2. गुरु कामता प्रसाद, 2014, हिंदी व्याकरण, दिल्ली, पराग प्रकाशन
3. केंद्रीय हिंदी संस्थान, 2011, व्यावहारिक हिंदी संरचना एवं अभ्यास, आगरा, संस्थान प्रकाशन
4. विधु भूषण दास गुप्त, 1990, लर्न बांगला योरसेल्फ़, कलकत्ता, दासगुप्त प्रकाशन
5. श्री रवीन्द्रनाथ पालधि एवं सहलेखक, 2011, आधुनिक बांगला व्याकरण और रचना, कलकत्ता, प्रकाशन, प्रेसिडेंसी लाइब्रेरी
6. E Dimok. S. Bhatttacharji Chatterjee, 1991, Introduction to Bengali, Part-1, New Delhi, Manohar Publication

anitaganguly1954@gmail.com

अनुस्वर की स्थापना

डॉ. रमेश मोहन शर्मा 'आत्मविश्वास'
बिहार, भारत

ध्वनि-विज्ञान के क्षेत्र में, 'अनुस्वर की स्थापना' ध्वनि-विषयक शोध में, भारतीय आर्यभाषा की ध्वनियों के प्राचीन अनुक्त स्वर 'अनुस्वार' की नवीन स्थापना की गई है। 'अनुस्वर' वैदिककाल से लेकर 20वीं शताब्दी के अंतिम दशक तक लगभग साढ़े तीन हज़ार वर्षों तक आचार्यों की दृष्टि से ओझल रहा। इस दृष्टि से आर्यभाषा की ध्वनियों के स्वरूप-विवेचन के क्षेत्र में अनुस्वर पर शोध 'न भूतो' शोध है।

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा की ध्वनियाँ मौखिक परम्परा में उच्चरित होती चली आ रही थीं। जब इन ध्वनियों के उच्चरित स्वरूपों में अंतर आने लगा, तब आचार्यों को भारी चिंता हुई। फलस्वरूप, उन्होंने उन ध्वनियों के स्वरूपों का लिखित विवेचन करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार विवेचन का यह कार्य विभिन्न शाखाओं के आचार्यों द्वारा संपन्न हुआ। इसी क्रम में प्राचीन आर्यभाषा की कतिपय ध्वनियों का सच्चा स्वरूप आचार्यों की दृष्टि से ओझल हो गया, जिनमें हल्-स्वर, दीर्घ-अ, दीर्घ-आ दीर्घ-ए, दीर्घ-ऐ, दीर्घ-ओ, दीर्घ-औ, अनुस्वर इत्यादि प्रमुख हैं। ध्वनियों के स्वरूप-विवेचन के इतिहास में स्वर का एक महत्त्वपूर्ण स्वरूप 'अनुस्वार' गौण हो गया, किंतु अनुस्वर की मात्रा 'अनुस्वार' प्रयोग में चलता ही रहा। कालांतर में, जब अनुस्वर के स्वरूप-निरूपण की आवश्यकता हुई, तब आचार्यों ने सिर्फ़ 'अनुस्वार' को ध्वनियों का मूल स्वरूप समझकर उसका स्वरूप-विवेचन करना प्रारम्भ कर दिया। फलस्वरूप अनुस्वर का सच्चा स्वरूप विवेचित नहीं हो जाए, इसलिए उन्होंने 'अनुस्वारो व्यंजनं वा स्वरो वा' (ऋग्वेद प्रातिशाख्यम् १.५) की घोषणा कर अनुस्वर ध्वनियों को 'अयोगवाह' बना दिया। यद्यपि अनुस्वार में आचार्यों को स्वर का स्वरूप स्पष्टतः दिखता था, तथापि उक्त 'अनुस्वार' के आधार पर अनुक्त 'अनुस्वर' का स्वरूप वे ढूँढ नहीं पाए और अंग-विधान के द्वारा अनेक अटकलों का सृजन किया। इस प्रकार अनुस्वर के स्वरूप-निरूपण की दृष्टि से वैदिककाल को, आचार्यों के दृष्टिकोण से, पलायन का काल माना जा सकता है।

स्वर कोई ध्वनि नहीं है, बल्कि ध्वनियों का स्वरूप-मात्र 'अ', 'आ' आदि ध्वनियाँ हैं। इस प्रकार की ध्वनियों के उच्चारण में नाद से आने वाली प्राणवायु के निकास-मार्ग में कहीं अवरोध नहीं होता है। इसी दृष्टि से आचार्यों ने भी मौखिक ध्वनियों के उच्चरित स्वरूपों को स्वर-संज्ञा से अभिहित किया है - स्वयं राजन्ते इति स्वरा: (पा०१.२.२९, महाभाष्य)।

प्राणवायु के निकास के दो मार्ग हैं - मुख-विवर और नासिका-विवर। इन्हीं दोनों निकास-मार्गों के आधार पर अस्पृष्ट ध्वनियों के दो उच्चारण-स्वरूप बनते हैं, जिन्हें ध्वनियों का क्रमशः मौखिक और नासिक्य स्वरूप कह सकते हैं। जब ध्वन्योच्चारण की अवस्था में मुख-विवर में प्राणवायु के निकास में किसी प्रकार का अवरोध नहीं होता है, तब ऐसी स्थिति में उत्पन्न ध्वनियों के स्वरूप को स्वर कहते हैं। ठीक इसी प्रकार नासिक्य अस्पृष्ट ध्वनियों की उत्पत्ति की अवस्था में नासिका-विवर में प्राणवायु के निकास में किसी प्रकार का अवरोध नहीं होता है, तो ऐसी स्थिति में उत्पन्न अस्पृष्ट नासिक्य ध्वनियों को 'अनुस्वर' अवश्य कह सकते हैं। आदि वर्णस्रष्टा देवाधिदेव श्रीगणेश जी ने प्राणवायु के निकास-मार्ग के आधार पर ही मौखिक और नासिक्य अस्पृष्ट ध्वनियों को क्रमशः स्वर और अनुस्वर - संज्ञा से अभिहित किया होगा। अवरोध की दृष्टि से मौखिक अस्पृष्ट ध्वनि 'अ' यदि स्वर ध्वनि है, तो निश्चित रूप से नासिक्य अस्पृष्ट ध्वनि 'अं' का उच्चारण-स्वरूप अनुस्वर ही है। कतिपय प्राचीन ग्रन्थों में मौखिक स्वर-ध्वनियों के लिखित रूप को 'समानाक्षर' संज्ञा से भी अभिहित किया गया है। मौखिक अस्पृष्ट ध्वनियों और नासिक्य अस्पृष्ट ध्वनियों के उच्चारण की अवस्था में उच्चारणावयवों की स्थिति एक समान रहने के कारण ही आचार्यों ने इन मौखिक ध्वनियों के प्रतीक-चिह्न 'अक्षर' को समानाक्षर कहा

है। मौखिक ध्वनि 'अ' का ही परिवर्तित स्वरूप 'अं' है। अब यदि नासिक्य अस्पृष्ट ध्वनि 'अं' मौखिक अस्पृष्ट ध्वनि 'अ' का समानाक्षर है, तो अवरोध की दृष्टि से नासिक्य अस्पृष्ट ध्वनियों का स्वरूप 'अनुस्वर' अवश्य है, किन्तु ध्वनियों के स्वरूप-विवेचन में प्राचीन आचार्यों का दृष्टिकोण एकांगी था। उन्होंने केवल मौखिक दृष्टि से ध्वनियों के स्वरूपों को विवेचित किया था। इतना ही नहीं, उन्होंने मौखिक ध्वनियों के अंतर्गत ही अनुनासिकता को भी स्वीकारा था। यही कारण था कि वे 'स्वरानुस्वारोष्मणामस्पृष्टं स्थितम्' (ऋग्वेद प्रातिशाख्यम् १३.११) की स्थिति तक पहुँचकर भी स्वर और अनुस्वार के भ्रमजाल में उलझे रहे, मानो सत्य की गहराई तक पहुँचकर भी वे सत्य के धरातल को छू नहीं सके। इस प्रकार अंग-विधान के द्वारा वे अपने शास्त्रों में अनुस्वर 'अं' में ही स्वर और व्यंजन ढूँढते नज़र आते हैं -"अं इत्यनुस्वारो वर्ण-समाम्नाये पठ्यते। स कांश्चिद् स्वर धर्मान् गृहणाति स कांश्चिद् व्यंजन धर्मान्।" (उवट, ऋग्वेद प्रातिशाख्यम् १५, भाष्य)।

सत्य यह है कि स्वर मूल है, अक्षर मूल नहीं है। अक्षर तो स्वर की पहचान मात्रा है। यही कारण है कि हम अक्षर के स्वरूप को देखकर उसमें निहित स्वर का उच्चारण कर लेते हैं। अतः अक्षर स्वरोत्पत्ति की अवस्था में उच्चारणावयवों की स्थिति की समान आकृति का प्रतीक-चिह्न है। इस तथ्य को प्रायः सभी प्राचीन आचार्यों ने स्वीकारा है -

'अक्षराश्रया' (ऋग्वेद प्रातिशाख्यम् ३.२)

'स्वरो-क्षरम्' (अथर्ववेद प्रातिशाख्यम् १.९३)

'स्वरो-क्षरम्' (वाजसनेयि प्रातिशाख्यम् १.९९)

'अं' का 'अनुस्वार' यदि नासिका-विवर का प्रतीक है तथा इसके उच्चारण में उच्चारणावयवों की अन्य स्थितियाँ यदि 'अ' के समान ही रहती हैं, तो प्राणवायु के निकास-मार्ग की दृष्टि से 'अं' का उच्चारणस्वरूप नासिक्य होने के कारण समानस्वर अथवा अनुस्वर अवश्य है। इस दृष्टि से 'अं' एक अक्षर है और इसे देखकर अनुस्वर 'अं' का उच्चारण हो जाता है, क्योंकि इस अक्षर में अनुस्वर निहित है। जिस प्रकार स्वर 'अ' की मात्रा अकार और 'आ' की मात्रा आकार है, उसी प्रकार अनुस्वर 'अं' की मात्रा अनुस्वार है। नासिका-विवर का स्थान मुख-विवर से ऊपर है, इसलिए मौखिक स्वर-ध्वनियों के ऊपर नासिका-विवर के प्रतीक-चिह्न 'बिन्दु' का प्रयोग किया गया है, जो मौखिक ध्वनियों के परिवर्तित स्वरूप का संकेत अवश्य है। एक शास्त्रीय प्रमाण यह भी है कि 'अ' को छोड़कर शेष सभी स्वरों की मात्राएँ चिह्नित रहती हैं। अतः प्राणवायु के निकास-मार्ग की दृष्टि से 'अं' एक अनुस्वर-ध्वनि है, जिसकी चिह्नित मात्रा 'अनुस्वार' है। 'मात्रा' ध्वनियों के लिखित रूप का संक्षिप्त संकेत है, जिसे हम देखकर उससे सम्बन्धित ध्वनि का उच्चारण कर लेते हैं।

अनुस्वार अथवा अनुस्वर 'अं' आदि के उच्चारण के सम्बन्ध में कतिपय आचार्यों का आक्षेप है कि अनुस्वार के उच्चारण की अवस्था में कोमल तालु और कौवा नीचे की ओर झुककर मुख-विवर को बन्द कर देते हैं। ऐसी स्थिति में उच्चरित ध्वनि 'अं' स्वर-श्रेणी की ध्वनि नहीं है, किन्तु यह तर्क वैज्ञानिक नहीं जान पड़ता है। कारण यह है कि मौखिक स्वर-ध्वनियों की उत्पत्ति की अवस्था में भी कोमल तालु और कौवा ऊपर उठकर नासिका-विवर को बन्द कर देते हैं। ऐसी स्थिति में मौखिक स्वर-ध्वनि अस्पृष्ट ध्वनि क्यों मानी गयी, जबकि मुख-विवर और नासिका-विवर दोनों प्राणवायु के निकास-मार्ग हैं। अतः ध्वनियों के उच्चारण-स्वरूप की दृष्टि से प्राणवायु के निकास-मार्ग में से एक का खुलना और दूसरे का अंशतः या पूर्णतः बंद होना स्पृष्टता का सूचक नहीं है, क्योंकि प्राणवायु के निकास में कहीं अवरोध उत्पन्न नहीं होता है। अतः अवरोध की दृष्टि से नासिक ध्वनियों का स्वरूप अनुस्वर अवश्य है। प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रयुक्त 'अनुनासिक' शब्द भी अनुस्वर के अस्तित्व को स्वीकारता है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से अनुनासिक 'अनु' और 'नासिक' इन दो शब्दों के मेल से बना एक यौगिक शब्द है। यहाँ 'अनु' का अर्थ 'समान' और 'नासिक' का अर्थ 'नासिका से निकला हुआ' है। अब यदि हम 'अनु' अथवा 'समान' शब्द पर गंभीरतापूर्वक विचार करते हैं, तो यह अवश्य स्पष्ट होता है कि नासिक्य ध्वनियों के समान भी अन्य ध्वनियाँ थीं, जिनके उच्चारण की अवस्था में समान रूप से प्राणवायु का निकास मुख-विवर और नासिका-विवर से होता था। इस दृष्टि से नासिक्य और अनुनासिक

ध्वनियों की व्याख्या अवश्य होती है। इस तथ्य को प्रायः सभी वैदिक आचार्यों ने भी स्वीकारा है -

'मुखनासिका वचनो नुनासिकः' - पाणिनीय १.१८

'अनुनासिकानां मुखनासिकम्'- अथर्ववेद प्रातिशाख्यम् १.२९

जब हम 'अनुस्वर की व्युत्पत्ति पर विचार करते हैं, तब यह अवश्य स्पष्ट होता है कि अनुस्वर का तात्पर्य 'समानस्वर' है, जो अवरोध की दृष्टि से स्वर के समान अवश्य है। यदि मुख-विवर में अस्पृष्ट ध्वनियों की उत्पत्ति की अवस्था में प्राणवायु के निकास में किसी प्रकार का अवरोध नहीं होता है, तो नासिका-विवर में भी अस्पृष्ट ध्वनियों की उत्पत्ति की अवस्था में प्राणवायु के निकास में किसी प्रकार का अवरोध नहीं होता है। इस प्रकार प्राणवायु के निकास-मार्ग में अवरोध की दृष्टि से प्रत्येक अस्पृष्ट ध्वनि के दो स्वरूप बनते हैं - स्वर और अनुस्वर। अतः मुख की दृष्टि से अस्पृष्ट ध्वनियों का उच्चरित स्वरूप यदि स्वर है, तो नासिका की दृष्टि से अस्पृष्ट ध्वनियों का उच्चरित स्वरूप अवश्य ही अनुस्वर है। अब यदि हम 'ध्वनि एक और स्वरूप दो' का सिद्धांत मान लें, तो स्वर और अनुस्वर के मात्रा-भेद को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है-

स्वर (मौखिक अस्पृष्ट ध्वनि)			अनुस्वर (नासिक्य अस्पृष्ट ध्वनि)		
अस्पृष्ट ध्वनियाँ	स्वर ध्वनियों की मात्राएँ		अस्पृष्ट ध्वनियों	स्वर-ध्वनियों की मात्राएँ	
	उच्चरित रूप	लिखित रूप		उच्चरित रूप	लिखित रूप
अ	अकार	(अचिह्नित)	अं	अंकार	ं
आ	आकार	ा	आं	आंकार	ां
इ	इकार	ि	इं	इंकार	िं
उ	उकार	ु	उं	उंकार	ुं
इत्यादि	इत्यादि	इत्यादि	इत्यादि	इत्यादि	इत्यादि

उपर्युक्त तालिका के आधार पर तुलनात्मक दृष्टि से स्वर और अनुस्वर की मात्राओं में केवल 'बिन्दु' का अन्तर दिखता है, जो नासिका-विवर का प्रतीक है। इसे ही अनुस्वर की मात्रा या 'अनुस्वार' कहा गया है।

अब यदि हम 'अनुस्वार' को अनुस्वर की मात्रा मान लेते हैं, तो फिर यह प्रश्न अवश्य उठेगा कि क्या स्वर की तरह ही अनुस्वर के भी मात्राकृत भेद हैं ? यदि नहीं, तो अनुस्वर को स्वर-श्रेणी का ध्वनि स्वरूप कदापि नहीं माना जाएगा और न ही 'अनुस्वर' को उसकी मात्रा। कारण यह कि शास्त्रीय दृष्टि से प्रत्येक स्वर-ध्वनि के ह्रस्व-दीर्घ भेद होते हैं। इस संदर्भ में कतिपय प्राचीन आचार्यों के मतों का उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है। आचार्य पाणिनि ने अपने सूत्र 'आकृत्युपदेशात्सिद्धम् (१.१.६९) में ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, निरनुनासिक, अनुनासिक, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित भेद से, स्वर के अठारह भेदों (३x२x३=१८) का उल्लेख कर निरनुनासिक और अनुनासिक द्वारा क्रमशः स्वर और अनुस्वर भेदों की ओर संकेत अवश्य किया है। पाणिनि-शिक्षा की 'पञ्जिकावृति' में उद्धृत औदव्रजि का मत है कि ह्रस्व-दीर्घ भेद से दो अनुस्वार मानने से वर्णों की संख्या चौसठ हो जाती है -"अनुस्वारावं आं इत्यनुस्वारो ह्रस्वदीर्घोदीर्घाद्ध्रस्वो वर्णो इति। अतएव चतुः षष्ठीः।"

उपर्युक्त शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर अनुस्वारों के भी ह्रस्व-दीर्घ भेदों को स्पष्ट अवश्य किया जा सकता है। पूर्वोक्त है कि आदि वर्ण-स्रष्टा श्रीगणेश जी ने प्राणवायु के निकास-मार्ग की

दृष्टि से अस्पृष्ट ध्वनियों को मौखिक एवं नासिक्य ध्वनियों के रूप में विभाजित कर पुन: अवरोध की दृष्टि से मौखिक एवं नासिक्य ध्वनियों के रूप में विभाजित कर, क्रमशः स्वर और अनुस्वर-श्रेणी में विभाजित कर उनकी मात्राओं के भी प्रतीक-चिह्न गढ़े हैं। उच्चारण-अवधि की दृष्टि से जिस प्रकार स्वर-ध्वनियों के ह्रस्व-दीर्घ भेद होते हैं, उसी प्रकार अनुस्वर-ध्वनियों के भी ह्रस्व-दीर्घ भेद हैं, किन्तु वैदिक आचार्यों के भ्रमपूर्ण विवेचन के कारण ये अनुस्वर अनुक्त रहकर भी ह्रस्व-दीर्घ भेद से 'अर्द्धचन्द्रबिन्दु' और 'अनुस्वार' रूप में प्रयुक्त हो रहे हैं। उच्चारण-काल की दृष्टि से अनुस्वर के भी तीन भेद किए जा सकते हैं -

क. ह्रस्व अनुस्वर
ख. दीर्घ अनुस्वर
ग. प्लुत अनुस्वर

क. ह्रस्व अनुस्वर - इस प्रकार के स्वरों में नासिकत्व की मात्रा कम होती है। इसके उच्चारण की अवस्था में प्राणवायु का निकास मुख और नासिका दोनों से समान रूप में होता है। इसलिए ऐसे स्वरों के स्वरूप को अनुनासिक स्वर कहते हैं। उच्चारण-स्थान ही स्वरों की उत्पत्ति का आधार है। वैसे स्वर-वायु की अपनी ध्वनि नहीं होती, वह किसी पदार्थ या स्थान को स्पर्श (आघात) करके ही ध्वनि उत्पन्न करती है और वह ध्वनि उस स्थान या पदार्थ-विशेष के अनुरूप होती है। अतः ऐसी ध्वनियों में मौखिकता और अनुनासिकता समान रूप में मौजूद रहती हैं। यही कारण है कि इसकी मात्रा को 'अर्द्धचन्द्रबिन्दु' के रूप में दिखाया गया है। 'अर्द्धचन्द्र' मुखावयव (ओष्ठ्य) का और 'बिन्दु' नासिका-विवर का प्रतीक है, जो उत्पन्न ध्वनियों में मौखिकता और अनुनासिकता की समान 'मात्रा' का निर्देश करता है। प्राचीन आचार्यों ने इसी प्रकार के स्वरों को अनुनासिक माना है - 'अनुनासिकानां मुखनासिकम्' (अर्थर्ववेद प्रातिशाख्यम्-१.२९)। प्राचीन ग्रन्थों में भी कई स्थलों पर इन ह्रस्व अनुस्वरों की मात्रा (अर्द्धचन्द्रबिन्दु) का प्रयोग मिलता है, जैसे - 'पदादौ च पदादौ च संयोगावग्रहेषु च' - (यापिशलि शिक्षा १.५०)।

'हसीयाँस्तु' (वाजसनेयि प्रातिशाख्यम् १.७३) ।

'ह्रस्व स्वराणां यत्रोपसँहारस्तत्स्थानम्।' - (तौत्तिरीय प्रातिशाख्यम् २.३१)

मौखिक स्वरों की उत्पत्ति की अवस्था में प्राणवायु के समान रूप में नासिका-विवर से भी निकलने के कारण उत्पन्न स्वरों में समान नासिकत्व की मात्रा सुनाई पड़ने लगती है। अतः 'अर्द्धचन्द्रबिन्दु' ह्रस्व अनुस्वर की मात्रा ठहरती है।

ख. दीर्घ अनुस्वर - ऐसी ध्वनियों के उच्चारण की अवस्था में नाद से आने वाली प्राणवायु का निकास केवल नासिका-विवर से होने के कारण उत्पन्न ध्वनियों में अनुनासिकता की मात्रा अधिक रहती है। प्राचीन आचार्यों ने भ्रमवश इसी प्रकार के स्वरों के लिए 'अनुस्वार' संज्ञा का प्रयोग किया, किन्तु सच्चाई यह है कि 'अनुस्वार' अकेला अपने-आप में कोई वर्ण नहीं है। वह नासिका-विवर का प्रतीक-चिह्न होने के कारण उत्पन्न ध्वनियों में पूर्ण नासिकत्व का प्रतीक है। अतः अवरोध की दृष्टि से पूर्णानुनासिक ध्वनियों का स्वरूप दीर्घ अनुस्वर है और 'अनुस्वार' दीर्घ अनुस्वरों की मात्रा है। अनेक प्राचीन आचार्यों ने भी इस प्रकार की ध्वनियों के उच्चारण में केवल नासिका को उच्चारण स्थान बताया गया है -

'नासिक्या नासिकास्थान।' (तैत्तिरीय प्रातिशाख्यम् - २.४९)

'यमानुस्वार नासिक्यानां नासिके।' (वाजसनेयि प्रातिशाख्यम् - १.७४)

'नासिकानुस्वारस्य।' (सिद्धांत कौमुदी, पृष्ठ-१७)

ग. प्लुत अनुस्वर – इस प्रकार की ध्वनियों के उच्चारण में दीर्घ अनुस्वरों के उच्चारण की अपेक्षा एक मात्राकाल का अधिक समय लगता है। ऐसी ध्वनियों के उच्चारण में स्वराघात की मात्रा अधिक होती है। फलतः स्वर-तंत्रियों में कम्पन की आवृत्ति भी अधिक होती है। स्वर-तंत्रियों में कम्पन की आवृत्ति के प्रतीक-चिह्न को 'विकारी' संज्ञा से अभिहित किया गया है। इस दृष्टि से प्लुत अनुस्वरों के उच्चारण की अवस्था में दीर्घ अनुस्वरों के साथ विकारी का लिखित प्रयोग अपेक्षित है। जैसे - 'अं', 'आं', आदि। अब अनुस्वरों के मात्राकृत भेदों को इस प्रकार और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है –

अनुस्वरों की मात्राएँ	अनुस्वरों की मात्राएँ (उच्चरित रूप)	अनुस्वरों की मात्राएँ (लिखित रूप)	अनुस्वर-ध्वनियों का लिखित स्वरूप
ह्रस्व	अर्द्धचन्द्रबिन्दु	ँ	अँ, आँ आदि
		ं	अं, आं आदि
दीर्घ	अनुस्वार		अं, आं आदि
प्लुत	अनुस्वार-विकारी		

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि स्वर-विशेष का विशेष रीति से उच्चरित स्वरूप अनुस्वर है और उस विशेष रीति से सम्बन्धित उच्चारणावयवों का प्रतीक-चिह्न 'अनुस्वार' है, जो अनुस्वर की मात्रा कहलाती है। अतः अनुस्वार का स्वरूप-विवेचन 'अनुस्वर' के आधार पर ही होना चाहिए। इस प्रकार प्राणवायु के निकासमार्ग की दृष्टि से मौखिक स्वरों का नासिका द्वारा उच्चरित स्वरूप अनुस्वर है। चूँकि अनुस्वार नासिका-विवर का प्रतीक-चिह्न है, इसलिए इस दृष्टि से मौखिक स्वरों की मात्रा सहित अनुस्वार अनुस्वर की मात्रा है। मौखिक स्वर 'अ' और अनुस्वर 'अं' दोनों ध्वनि-स्वरूप हैं तथा उक्त दोनों ध्वनियों के उच्चारण का अंतर प्राणवायु के निकास-मार्ग में अंतर का परिणाम है।

संदर्भ ग्रन्थों की सूची :

1. अंगिका भाषा का ध्वनि वैज्ञानिक अध्ययन (शोध-ग्रन्थ) लेखक - डॉ. रमेश मोहन शर्मा 'आत्मविश्वास'
2. अंगिका भाषा का मानक व्याकरण लेखक - डॉ. रमेश मोहन शर्मा 'आत्मविश्वास'

dr.rameshmsatmavishwas1949@gmail.com

हिंदी नवजागरण : विचार और विस्तार

डॉ. भुवाल सिंह ठाकुर
छत्तीसगढ़, भारत

भारतीय नवजागरण की शुरुआत बंगाल से मानी जाती है। इसके बाद महाराष्ट्र में इस नई चेतना का प्रसार हुआ। भारतीय नवजागरण का व्यापक प्रभाव हिंदी क्षेत्र के जनजीवन पर भी पड़ा। 'हिंदी नवजागरण' पर सबसे विशद् और गंभीर अध्ययन डॉ. रामविलास शर्मा का है। वे 'हिंदी नवजागरण' का संबंध 1857 ई. के प्रथम स्वाधीनता संघर्ष से जोड़ते हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' (1977 ई.) में, 'हिंदी नवजागरण' के स्वरूप और विशेषताओं के संबंध में सप्रमाण अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक का प्रथम वाक्य है - "हिंदी प्रदेश में नवजागरण 1857 ई. के स्वाधीनता संग्राम से शुरू होता है।"[1]

डॉ. रामविलास शर्मा ने 1857 ई. की घटना की व्याख्या प्रथम स्वाधीनता संघर्ष के रूप में रखी है। उन्होंने अपनी इस पुस्तक में आगे लिखा है - "सन् 1857 का स्वाधीनता संग्राम हिंदी प्रदेश के नवजागरण की पहली मंज़िल है। दूसरी मंज़िल भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का युग है। तीसरी मंज़िल महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग है, तो चौथी मंज़िल छायावाद और निराला का साहित्य।"[2] आगे इस बात को अधिक स्पष्ट करते हुए रामविलास शर्मा का विचार है - "जो नवजागरण 1857 के स्वाधीनता संग्राम से आरंभ हुआ, वह भारतेन्दु युग में और व्यापक बना, उसकी साम्राज्य-विरोधी और सामंतवाद विरोधी प्रवृत्तियाँ द्विवेदी युग में अधिक पुष्ट हुईं। फिर निराला के साहित्य में ये प्रवृत्तियाँ क्रांतिकारी रूप में व्यक्त हुईं।"[3] 'हिंदी नवजागरण' को पूरे भारतीय जागरण की परंपरा से जोड़ते हुए उन्होंने कहा है – "भारतेन्दु युग उत्तर भारत में नवजागरण का पहला या प्रारंभिक दौर नहीं है, वह नवजागरण की परंपरा का एक खास दौर है। जनजागरण की शुरुआत तब होती है, जब यहाँ बोलचाल की भाषाओं में साहित्य रचा जाने लगता है, जब यहाँ के विभिन्न प्रदेशों में आधुनिक जातियों का गठन होता है। यह सामंत-विरोधी जागरण है। भारत में अंग्रेज़ी राज कायम करने के सिलसिले में पलासी की लड़ाई से 1857 के स्वाधीनता संग्राम तक जो युद्ध हुए, वे जनजागरण के दूसरे दौर के अन्तर्गत आते हैं। यह दौर पहले से भिन्न है, मुख्य लड़ाई विदेशी शत्रु से है। यह साम्राज्य-विरोधी जनजागरण है।"[4] वस्तुतः रामविलास शर्मा ने जातियों के गठन की जो चर्चा की है वह अखिल भारतीय भक्ति आंदोलन के दौर की बात है, जिसका मूलचरित्र सामंतवाद विरोधी चेतना में निहित है। इस दौर को डॉ. रामविलास शर्मा ने 'लोकजागरण' कहा है। ब्रिटिश सत्ता स्थापित होने के बाद उसके प्रतिरोध में भारतीय स्वाधीनता संघर्ष आगे बढ़ा। इस काल की मूल विशेषता थी साम्राज्यवाद विरोधी चेतना। इसी साम्राज्यवाद-विरोधी जनजागरण को उन्होंने 'नवजागरण' नाम दिया है।

डॉ. रामविलास शर्मा द्वारा 'हिंदी नवजागरण' नामकरण के विषय में डॉ. नामवर सिंह के विचार इस प्रकार हैं - "डॉ. रामविलास शर्मा ने पन्द्रहवीं शताब्दी के भक्ति आन्दोलन के लिए 'लोकजागरण' और उन्नीसवीं शताब्दी के सांस्कृतिक जागरण के लिए 'नवजागरण' शब्द का प्रयोग किया है। इन शब्दों के बदले और नये शब्द गढ़ने की अपेक्षा इन्हीं शब्दों को प्रचलित करना बेहतर है और सुविधाजनक भी। 'लोकजागरण' और 'नवजागरण' से पन्द्रहवीं शताब्दी और उन्नीसवीं शताब्दी की सांस्कृतिक प्रक्रियाओं के बीच परम्परा का सम्बन्ध भी बना रहता है और अन्तर भी स्पष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त यूरोपीय इतिहास के अनावश्यक अनुषंग से मुक्ति भी मिल जाती है। क्या अपने इतिहास की व्याख्या के लिए हम हमेशा अंग्रेज़ी प्रत्ययों का अनुवाद ही करते रहेंगे?"[5]

डॉ. रामविलास शर्मा अपने लेखन के दौरान लोकजागरण, जनजागरण, पुनर्जागरण, नवजागरण आदि संज्ञाओं का प्रयोग करते हैं। पर उन्होंने नवजागरण पद को केन्द्रीय महत्त्व दिया। प्रदीप सक्सेना के अनुसार - "मैंने पूछा था (रामविलास शर्मा जी से) आखिर आप नवजागरण का अंग्रेज़ी स्थानापन्न क्यों नहीं देते ? उन्होंने कहा – "यह किसी शब्द के समकक्ष नहीं है।"[6]

1857 ई. के प्रथम स्वाधीनता-संघर्ष और 'हिंदी नवजागरण' के संबंध में कई विचार सामने आए। डॉ. रामविलास शर्मा 1857

के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के बाद भारतेन्दु युग को नवजागरण की दूसरी मंज़िल बताते हैं। उन्होंने कहा – "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके समकालीन लेखकों को 1857 से जोड़ने वाली दो मुख्य चीज़ें हैं -

(1) राष्ट्रीय स्वाधीनता का उद्देश्य

(2) अंग्रेज़ी-राज के स्वरूप की पहचान।"[7]

साथ ही, उन्होंने 1857 ई. में प्रथम स्वाधीनता संग्राम की असांप्रदायिक छवि और जनता के हित में चलाई गई संघर्ष चेतना को उद्धृत किया है – "1857 के स्वाधीनता संग्राम का चरित्र असांप्रदायिक और राष्ट्रीय था और राजसत्ता की मूल समस्या जनता के हित में हल की गई थी।"[8]

इस महान् राष्ट्रीय संघर्ष पर समग्र पुस्तक लिखने वाले प्रथम भारतीय विनायक दामोदर सावरकर (1883-1966) थे। उन्होंने 1857 ई. की घटना को 'स्वधर्म और स्वराज्य' के लिए संघर्ष कहा। उन्होंने लिखा है - "वस्तुतः 1857 के इस स्वातंत्र्य संग्राम को प्रदीप्त करने वाले दिव्य तत्व थे - 'स्वधर्म और स्वराज्य'। स्वधर्म-प्रीति और स्वराज्य प्रीति के ये तत्व हिंदुस्तान के इतिहास में जितनी उदात्तता सहित अभिव्यक्त हुए हैं, उतने अधिक तो किसी अन्य देश के इतिहास में परिलक्षित नहीं होते। चाहे विदेशी और पक्षपात के चश्मे अपने नेत्रों पर चढ़ाकर लिखने वालों ने हमारी हिंदू भूमि के उज्ज्वल चित्र को कितने ही घिनौने रंगों में रंगने का प्रयास क्यों न किया हो...'स्वधर्म और स्वराज्य' के मूल सिद्धांत हिंदुस्तान की संतानों की अस्थियों और मज्जा में समाए ही रहेंगे।"[9]

स्पष्ट है सावरकर के विचार 1857 ई. की घटना के सैद्धान्तिक विवेचन के साथ उसके धार्मिक पक्ष पर आग्रह करते दिखाई देते हैं। इन कमियों के बावजूद उनके विवेचन का महत्त्व इस बात में है कि उन्होंने 1857 ई. की घटना को ऐतिहासिक संदर्भ दिया, सावरकर ऐसे पहले भारतीयों में से एक रहे हैं, जिन्होंने 1857 की घटना को बलवा या विद्रोह के सीमित अर्थ से ऊपर 'प्रथम स्वाधीनता संग्राम' की गौरवमयी संज्ञा प्रदान की। प्रसिद्ध इतिहासकार रमेशचन्द्र मजूमदार 1857 की घटना को मूलतः 'सिपाही विद्रोह' मानते हैं। लेकिन इससे अलग विचार शशिभूषण चौधरी का है – "1857 का महा-विद्रोह सिपाही विद्रोहभर नहीं था। इसके कई प्रेरणास्रोत थे, जिन्होंने इस क्रान्तिकारी उभार को हवा दी। धर्म के अलावा इसमें आर्थिक तथा राजनीतिक कारण सक्रिय थे। यद्यपि ऊपरी तौर पर धर्म तात्कालिक कारण के रूप में दिखाई पड़ता है।"[10] मार्क्सवादी इतिहासकार रजनी पामदत्त अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'आज का भारत' में लिखते हैं – "1857 ई. का विद्रोह बुनियादी तौर पर अपने पुराने अधिकारों और विशेष सुविधाओं की माँग के लिए किया गया विद्रोह था। विद्रोह के इस प्रतिक्रियावादी स्वरूप के कारण जनता के व्यापक समर्थन का अभाव रहा और उसे विफल हो जाना पड़ा।"[11] इन सबसे अलग कार्ल मार्क्स की स्थापना, 1857 ई. की घटना के विषय में, सबसे यथार्थवादी लगती है। मार्क्स इसे 'राष्ट्रीय विद्रोह' के नाम से संबोधित करते हैं। 1857 ई. की अनेक घटनाओं का कार्य-कारण संबंध स्थापित करते हुए और तथ्यों का सिलसिलेवार स्पष्टीकरण करते हुए मार्क्स कहते हैं - "क्रमशः और दूसरे तथ्य निकलकर सामने आएँगे, जिनसे भूल तक को विश्वास हो जायेगा कि जिसे वह सैनिक विद्रोह समझता था, वह वास्तव में, राष्ट्रीय विद्रोह था।"[12] इन सब विचारों से स्पष्ट हो जाता है कि 1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम एक अखिल भारतीय विद्रोह था और इसकी छवि असांप्रदायिक थी - "जिन हिंदू और मुसलमान सामंतों की जायदाद छीन ली गई थी, वे अंग्रेज़ो का विरोध कर रहे थे। यह बात विद्रोह के राष्ट्रीय स्वरूप को सिद्ध करने के लिए काफ़ी है।"[13] रामविलास शर्मा का स्पष्ट विचार है – "सन् 1857 का स्वाधीनता-संग्राम अंग्रेज़ों द्वारा प्रेरित सम्प्रदायवाद की सबसे बड़ी पराजय थी।"[14]

इस विचार के विपरीत कई विद्वानों ने 1857 ई. की घटना से 'हिंदी नवजागरण' के संबंध में अलग विचार दिये हैं। इस संबंध में वीरभारत तलवार की किताब 'रस्साकशी' विशेष चर्चित रही है। उन्होंने अपनी पुस्तक में लिखा है - " 'हिंदी नवजागरण' एक भ्रामक नाम है, क्योंकि यह अपनी ऐतिहासिक अंतर्वस्तु को प्रकट नहीं करता।"[15] उन्होंने आगे लिखा - 'हिंदी नवजागरण' का मुख्य आंदोलन किसी धार्मिक या सामाजिक सुधार के लिए नहीं था। 19वीं सदी के उत्तरार्ध में बनारस-इलाहाबाद को केन्द्र बनाकर जो तीन बड़े आंदोलन चले, वे नागरी लिपि, हिंदी भाषा, और गोरक्षा के सवाल पर थे।... मुख्य लड़ाई हिन्दू-मुस्लिम भद्रवर्ग के बीच विशेषाधिकारों पर कब्ज़ा करने और अपनी सांस्कृतिक श्रेष्ठता कायम करने की रही। 'हिंदी नवजागरण' के तहत हुए तीनों बड़े

आंदोलन इसी संघर्ष को प्रतिबिंबित करते हैं।"[16]

'हिंदी नवजागरण' सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक संदर्भों की व्यापक अभिव्यक्ति है। यह जागरण इलाहाबाद बनारस तक सीमित नहीं था। इसका प्रसार अखिल भारतीय था। नागरी लिपि, हिंदी भाषा, गो-रक्षा तक इसे सीमित रखना न्यायसंगत नहीं लगता। 'हिंदी नवजागरण' के दौर में हिंदू-मुस्लिम एक इकाई के रूप में सामने आते हैं। 'हिंदी नवजागरण' हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रतीक है। न कि हिंदू-मुस्लिम वर्गों के विशेषाधिकार एवं सांस्कृतिक श्रेष्ठता के भाव का। भारतेन्दु कहते हैं - 'इन मुसलमान हरिजन पै कोटिन हिन्द वारिये।' उन्होंने मुहम्मद साहब को 'महात्मा' कहा था। भारतेन्दु ने 'मुहम्मद साहब', 'बीवी फ़ातिमा', 'अली', 'इमाम हसन', और 'इमाम हुसैन' पाँचों महान् व्यक्तित्व को लेकर 'पंच पवित्रात्मा' नामक पुस्तक लिखी। 'कुरान शरीफ़' का हिंदी अनुवाद किया।

भारतेन्दु बंगाली, मराठी, पंजाबी, मद्रासी, वैदिक, जैन, मुसलमान, हिंदू सभी धर्मों एवं मतानुयायियों की एकता की बात कहते हैं। उन्होंने देशोन्नति के लिए सभी धर्मों की एकता एवं बन्धुत्व को केन्द्र में रखा। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार – "भारतेन्दु का हृदय केवल हिन्दुओं के दुख से दुखी न था, वह मुसलमानों के दुख से भी दुखी था।"[17] भारतेन्दु युग के प्रसिद्ध निबन्धकार एवं नाटककार प्रतापनारायण मिश्र 'हिंदू और मुसलमान को भारतमाता के दो हाथ मानते थे।' इस युग के सभी रचनाकारों ने हिंदू और मुस्लिम को एक यूनिट के रूप में देखा था। सभी धर्मों में एकता की भावना ने 1857 के प्रथम स्वाधीनता संघर्ष को धार दिया था। इस परंपरा ने 'हिंदी नवजागरण' को बल प्रदान किया। भारतेन्दु युग ने साम्प्रदायिक सौहार्द की भावना को आगे बढ़ाया। डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं – " 'हिंदी नवजागरण' मूलतः बुद्धिवादी तथा रहस्य-विरोधी है।"[18]

'हिंदी नवजागरण' के विश्लेषण के दौरान हम देखते हैं कि नवजागरण के दौर के सभी रचनाकार इतिहास को नये अर्थों में ग्रहण करते हैं। भारत में नवजागरण औपनिवेशिक दासता के दौर में आया। अपने 'स्वत्व' की पहचान के लिए इस युग के रचनाकार इतिहास (अतीत) का पुनर्सृजन करते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि यह पुनर्सृजन अतीत की वापसी के लिए नहीं किया गया, बल्कि वर्तमान की चुनौतियों का सामना करने के व्यापक संदर्भ में किया गया था। अंग्रेज़ों द्वारा भारतीयों के प्रति उपेक्षापूर्ण नज़रिया अपनाया गया। भारत को अंग्रेज़ों ने असभ्य, निरक्षर, शासित (अपना शासन स्वयं न चला पाने की योग्यता), मूर्खों एवं बंदरों का देश कहा। लार्ड मैकाले का कथन इस उपेक्षापूर्ण, साम्राज्यवादी दृष्टि का परिचायक है - "यूरोप के एक अच्छे पुस्तकालय की एक अलमारी का एक कक्ष भारत और अरब के समस्त साहित्य से अधिक मूल्यवान है।"[19]

इस प्रकार के औपनिवेशिक विचारों का प्रतिरोध 'हिंदी नवजागरण' ही नहीं, वरन् पूरे भारतीय नवजागरण में दिखाई देता है। डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं - "उपनिवेशवाद ने एक ओर तो भारत के प्राचीन इतिहास की सामग्री को खोज-खोजकर एकत्र किया और दूसरी ओर इसका उपयोग उपनिवेशवादी सत्ता के हक में किया। यह था उपकार के आवरण में अपकार का षड्यंत्र। भारतीय अस्मिता को एक बड़ा खतरा इस 'प्राच्य-विद्या' (ओरिएंट्लिज़्म) से था, जिसने पश्चिम से भिन्न एक ऐसे पूर्व का 'मिथक' गढ़ा, जो अनंतकाल तक गुलाम रहने का अभ्यस्त था। इस प्राच्य-विद्यावाद के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए भारतीय नवजागरण ने इतिहास के प्रति दृष्टि विकसित की।"[20] इसी परिप्रेक्ष्य में बंगाल नवजागरण के पुरोधा बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का कथन है - "कोई राष्ट्र अपने इतिहास में अस्तित्व ग्रहण करता है, इसलिए अपने इतिहास का ज्ञान ही किसी जाति का आत्मज्ञान है।"[21]

इस प्रकार भारतीय नवजागरण इतिहास की पुनर्व्याख्या करता है। 'हिंदी नवजागरण' के रचनाकारों ने स्वत्वबोध की भावना से लैस होकर इतिहास का पुनर्सृजन किया। भारतेन्दु के इतिहास एवं पुरातत्व संबंधी निबंध एवं उनके सहयोगियों का लेखन, द्विवेदी युगीन रचनाकर्म, छायावादी कवियों का राष्ट्रीय सांस्कृतिक जागरण का संदेश - नवजागरण की अभिव्यक्तियाँ हैं। छायावाद में, विशेषतः प्रसाद के नाटक प्राचीन भारतीय इतिहास को नवीन संदर्भों में व्याख्यायित करते हैं। ये सभी लेखन उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद के विरोध में हैं।

नवजागरण संबंधी व्याख्या के दौरान डॉ. रामविलास शर्मा ने 'हिंदी नवजागरण' की विशिष्टताओं की चर्चा की है। उन्होंने 'हिंदी नवजागरण' को एक निरन्तरता में देखा है। वे 13वीं शताब्दी के अखिल भारतीय 'भक्ति आन्दोलन' की सामंत-विरोधी चेतना को

रेखांकित करते हुए इसे 'लोकजागरण' की संज्ञा प्रदान करते हैं। उन्होंने 'हिंदी नवजागरण' की शुरुआत 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम से मानी है। 1857 के प्रथम स्वाधीनता संघर्ष की विशेषताओं में सामंतवाद-साम्राज्यवाद विरोधी चेतना को मुख्य बताते हैं। 'हिंदी नवजागरण' की परंपरा का अगला सोपान उन्होंने 19वीं शताब्दी के सांस्कृतिक जागरण को माना एवं इसके साम्राज्यवाद विरोधी चेतना पर विशेष बल दिया।

डॉ. रामविलास शर्मा ने 'हिंदी नवजागरण' का संबंध 'हिंदी जाति' से जोड़ा। उन्होंने 'हिंदी नवजागरण' की व्याख्या के दौरान 'रिनेसाँस' से इसकी विशिष्टता बताई है। वे प्राच्यविद्याविदों के प्रभाव से इतिहास के प्रति औपनिवेशिक दृष्टि की चर्चा करते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा इस बात पर विशेष ज़ोर देते हैं कि यह मानना कि अंग्रेज़ों के आगमन से नवजागरण आया, यह भ्रामक धारणा है। उन्होंने कहा कि आर्थिक शोषण के कारक अंग्रेज़ न आए होते, तो नवजागरण का विकास ज़्यादा बेहतर तरीके से होता। अपने पूरे विश्लेषण में उन्होंने साम्प्रदायिकता, पृथकतावाद, रूढ़िवाद, नस्लवाद, कलावाद, जातीयतावाद की अपेक्षा भारतीय राष्ट्रीयता एवं संस्कृति को महत्त्व दिया है। उनकी 'हिंदी जाति' की परिकल्पना में हिंदी और उर्दू दोनों के लिए स्पेस है।

डॉ. रामविलास शर्मा के द्वारा प्रस्तुत 'हिंदी नवजागरण' की अवधारणा के विषय में डॉ. मैनेजर पाण्डेय कहते हैं कि – "उनके 'हिंदी नवजागरण' संबंधी लेखन के फलस्वरूप 'हिंदी नवजागरण' को स्वतन्त्र विचारणीय विषय के रूप में मान्यता मिली है, अन्यथा कुछ समय पहले या तो भारतीय नवजागरण की बात होती थी या बंगाल के नवजागरण की। पहले 'हिंदी नवजागरण' के विचारकों और साहित्यकारों पर बंगाल के नवजागरण के प्रभाव की ही चर्चा अधिक होती थी। ऐसा लगता था कि हिंदी के साहित्यकार केवल प्रभाव ग्रहण करने के लिए ही बैठे हुए थे, उनका अपना कुछ था ही नहीं। उन्होंने 'हिंदी नवजागरण' के स्वरूप और उसकी विशेषताओं का विश्लेषण करके हिंदी वालों की आत्महीनता की भावना को दूर किया है और हिंदी भाषी जनता को ही न समझने वालों के स्फीत अहं की फुफकार को भी कम किया है।"[22]

'हिंदी नवजागरण' की विशेषताओं को रेखांकित करते हुए डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं – "हिंदी प्रदेश में नवजागरण की यह लहर उठी, किन्तु ज़रा देर से - उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम की पराजय के लगभग एक दशक बाद और उसका प्रसार भी बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दो दशकों तक बना रहा।...1857 के गदर का केन्द्र हिंदी प्रदेश ही था, इसलिए 'हिंदी नवजागरण' की प्रकृति पर गदर की स्मृति की छाया पड़ना स्वाभाविक ही था।...'हिंदी नवजागरण' के प्रथम मंत्र फूँकने वाले अग्रदूत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे, जिनकी मुख्य प्रतिज्ञा यह थी 'स्वत्व निज भारत गहै'।...भारतेन्दु के साथ उस दौर के सभी लेखकों के लिए अपनी पहचान की पहली शर्त थी अपनी भाषा 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।'...स्वभाषा के आग्रह की परिणति 'स्वदेशी' में हुई...'हिंदी नवजागरण' मुख्यतया सांस्कृतिक था।"[23] डॉ. नामवर सिंह हिंदी साहित्य में नवजागरण की शुरुआत की चर्चा करते हुए लिखते हैं - "हिंदी साहित्य के पुराने इतिहास ग्रन्थों को देखने से पता चलता है कि पादरी एफ़. ई. ने, 1920 ई. में ही, इस 'रिनेसाँस' की चर्चा की थी। अपनी छोटी-सी पुस्तक 'ए हिस्ट्री ऑफ़ हिंदी लिट्रेचर' के पहले अध्याय में ही एफ़. ई. ने लिखा है - "उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में यूरोप की संस्कृति के सम्पर्क के द्वारा हिंदी साहित्य में एक नया प्रभाव आया।... इसी समय के आसपास भारत में एक सशक्त साहित्यिक नवजागरण शुरू हुआ, जो अब तक प्रगति पर है।"[24]

भारतेंदु हरिश्चंद्र को 'हिंदी नवजागरण' का प्रवर्तक माना जाता है। 'हिंदी नवजागरण' की शुरुआत के साथ आधुनिकता का आरंभ होता है। नई चेतना और आधुनिकता से लैस, 'हिंदी नवजागरण' रीतिबद्धता से मुक्त है। 'हिंदी नवजागरण' को जन्म देने वाली स्थितियों की चर्चा करें, तो स्पष्ट होता है कि भारत में अंग्रेज़ों के बढ़ते वर्चस्व के परिणामस्वरूप देशी अर्थतन्त्र नष्ट होने लगा। ज़मीन पर स्वामित्व के बावजूद किसानों पर लगान का बोझ बढ़ा। सामाजिक और धार्मिक सुधार आन्दोलन की शुरुआत हुई। माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने एवं विद्रोहग्रस्त एवं अंशात क्षेत्रों में सैनिकों को तेज़ी से पहुँचाने के लिए रेल-व्यवस्था कायम की गई। अंग्रेज़ों को जहाँ विजय प्राप्त नहीं हुई, वहाँ उन्होंने देशी नरेशों से समझौता किया। यह देशी सामंतवाद से विदेशी साम्राज्यवाद का गठजोड़ था। इसका पुरज़ोर विरोध हिंदी नवजागरण की चेतना में विद्यमान है। अंग्रेज़ों द्वारा देश का आर्थिक शोषण किया गया और

देश के परंपरागत आर्थिक ढाँचे का विनाश किया गया।

भारतीय जनता दोहरी शोषण-व्यवस्था का शिकार हुई – एक तरफ़ था सामंती शोषण और दूसरी तरफ़ विदेशी साम्राज्यवादी शोषण। लुटेरी व्यापार नीति के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास अवरुद्ध हो गया। इन सबका परिणाम था 1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम।

'हिंदी नवजागरण' के सभी रचनाकारों की मानसिक बुनावट पर 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम का प्रभाव है। अंग्रेज़ों की दमनकारी नीति के कारण रचनाकारों ने इस घटना की अभिव्यक्ति प्रतिछाया रूप में की है। स्पष्ट अभिव्यक्ति लोकसाहित्य में मिली है। डॉ. मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं – "जो 1857 के संग्राम की 'हिंदी नवजागरण' की पहली मंज़िल होने पर संदेह करते हैं, उन्हें भगतसिंह के साथी भगवानदास माहौर के शोध प्रबन्ध के स्वाधीनता संग्राम का हिंदी साहित्य पर प्रभाव (1976) को पढ़ना चाहिए।... जो लोग भारतेन्दु युग से छायावाद तक के हिंदी साहित्य में 1857 के महाविद्रोह का मनचाहा उल्लेख न पाकर उस काल के लेखकों की निंदा करते हैं, वे या तो नहीं जानते या जान-बूझकर भूल जाते हैं कि 1857 के संग्राम के बाद अंग्रेज़ी राज के प्रेस और प्रकाशन संबंधी दमनकारी कानूनों के कारण 1857 के विद्रोह के पक्ष में कुछ भी लिखना और छापना असंभव हो गया, जिससे सरकार सहमत न हो।"[25]

1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम अफ़सरों का विद्रोह नहीं था और न ही सामंतों का था। इसमें किसानों ने भागीदारी निभायी थी, अधिकांश वर्दीधारी सैनिक वर्दी के वेश में किसान थे। गैर सैनिक किसानों ने भी लड़ाई में हिस्सा लिया। इसका रूप असाम्प्रदायिक था। हिंदू और मुस्लिम दोनों कौमों ने एक 'यूनिट' के रूप में यह लड़ाई लड़ी थी। 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के क्रान्तिकारियों ने अंग्रेज़ों की शोषण-नीति को अच्छी तरह समझा था। इसका प्रमाण सैनिकों द्वारा बहादुरशाह ज़फ़र के नाम से जारी इश्तहार में देखा जा सकता है। ज़मींदारों, व्यापारियों, सरकारी नौकरों, किसानों, कारीगरों सबकी अलग-अलग स्थिति का बयान इस इश्तहार में किया गया है। इश्तहार में अंग्रेज़ों द्वारा वसूले जाने वाले भारी टैक्स एवं इजारेदारी के विषय में कहा गया है। ब्रिटिश शासन की सभी अन्यायपूर्ण नीतियों एवं आर्थिक शोषण की आलोचना 'हिंदी नवजागरण' की विशेषता है। भारतेन्दु युग के लेखकों का रचनाकर्म इसका प्रमाण है।

'हिंदी नवजागरण' की चेतना, मध्यकालीन विषयवस्तु (नायिकाभेद, नखशिख वर्णन, अलंकार) से अलग, देश की दशा पर केन्द्रित है। 'हिंदी नवजागरण' ने साहित्य को एक नई विषयवस्तु प्रदान करके देशप्रेम से जोड़ा। यह स्वदेश-प्रेम यथार्थबोध पर आधारित है। इसमें एक साथ स्वभाषा, समाजसुधार, स्वदेशी, स्वत्व की भावना समाहित है। 'हिंदी नवजागरण' के लेखकों ने केन्द्रीय विषय के रूप में ब्रिटिश शासन द्वारा किये गये आर्थिक शोषण की निर्मम आलोचना की, सभी लेखकों की राय थी कि आर्थिक शोषण के कारण ही देश की दुर्दशा हुई है। इन लेखकों द्वारा आर्थिक शोषण के विरोध का स्वर 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के सैनिकों से मिलता-जुलता है।

'हिंदी नवजागरण' के रचनाकारों ने आर्थिक विषमता, राजनीतिक स्वाधीनता, नारी शिक्षा, सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियों की आलोचना, निज भाषा (हिंदी भाषा), स्वदेशी, स्वराज, स्वत्व जैसे विषयों पर यथार्थवादी रचना की।

'हिंदी नवजागरण' पर मुख्य रूप से अंग्रेज़ों के शोषण, 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम, राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रामकृष्ण परमंहस, स्वामी दयानन्द आदि का प्रभाव है।

'हिंदी नवजागरण' की चेतना निर्माण में आर्यसमाज का विशेष योगदान है। 'आर्यसमाज' की स्थापना स्वामी दयानन्द सरस्वती (1824-1883 ई.) ने 1875 ई. में बम्बई में की। स्वामीजी का स्पष्ट विचार था कि तमाम झूठी शिक्षाओं से भरे पुराणों की सहायता से तथाकथित पंडितों और पुरोहितों ने हिन्दू धर्म को भ्रष्ट कर दिया है। ईश्वर प्रदत्त होने के बावजूद वेदों की व्याख्या उन्होंने मानव बुद्धि के धरातल पर करने की बात कही। 'वेदों की ओर लौटो' का उनका नारा वेदों के वैज्ञानिक और बुद्धिसंगत व्याख्या की चेतना से लैस है। दयानन्द ने ईश्वरप्राप्ति के लिए किसी माध्यम को नहीं स्वीकारा। उन्होंने प्रत्येक मनुष्य को ईश्वर तक सीधे पहुँचने का अधिकारी बताया। वेदों को बौद्धिक चिंतनप्रणाली का मार्ग बताते हुए हिन्दू कट्टरपंथ की आलोचना की।

दयानन्द के विचारों में नवजागरण का प्रखर स्वर विद्यमान

है। उन्होंने मूर्तिपूजा, कर्मकांड, बहुदेववाद, पुरोहितवाद, जातिप्रथा, छुआछूत, बालविवाह, अनमेल विवाह और बहुविवाह का विरोध किया। साथ ही, उन्होंने स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित किया। जगत् की वास्तविकता स्वीकारते हुए इहलौकिकता के भाव को स्थापित किया। निराकार ईश्वर की उपासना पर ज़ोर दिया। परंपरागत विश्वासों से अलग मनुष्य जीवन की समस्याओं के प्रति ध्यान आकृष्ट किया।

वर्णव्यवस्था में विश्वास रखते हुए भी उन्होंने जाति-व्यवस्था के संबंध में व्यक्ति के गुणों को महत्त्व दिया – "कोई भी ऐसा व्यक्ति ब्राह्मण कहलाने योग्य है, जिसने सर्वोत्तम ज्ञान प्राप्त किया हो और जो उत्तम चरित्र का हो। और जो व्यक्ति ज्ञान और चरित्र के मामले में निकृष्ट हो, वह शूद्र है।"[26] शूद्रों और स्त्रियों को वेदाध्ययन एवं वेद सुनने की बात कहते हैं। ज्ञान और चरित्रबल को उन्होंने महत्त्व दिया। दयानन्द ने पूरे उत्तरभारत में नवजागरण का संदेश बुद्धिवादी नज़रिये से प्रसारित किया। दयानंद खुले विचारों के चिंतक थे। उनका संबंध बंगला और मराठी दोनों नवजागरण से समान रूप से जुड़ा था। अपने जीवनचरित में उन्होंने लिखा है - "संस्कारपंथी बंगाल की तरफ़ मेरा मानसिक आकर्षण स्वाभाविक ही था। राजा राममोहन रॉय का 'मूर्तिपूजा विरोधी आंदोलन' (1787), 'ईसाई धर्म विरोध आन्दोलन' (1820), 'सतीदाह निषेध आंदोलन' (1829) जनसाधारण के बीच आर्यधर्म प्रचार के लिए देवेन्द्रनाथ ठाकुर के 'तत्वबोधिनी सभा' का संस्थापन और स्त्री-शिक्षा के लिए विद्यालय स्थापनादि के कार्य उल्लेखनीय हैं। देवेन्द्रनाथ ठाकुर के द्वारा ऋग्वेद के बंगलानुवाद का प्रकाशन (1847) आदि-सर्वतोमुखी संस्कार के कारण बंगाल के प्रति मुझमें आकर्षण पैदा हो गया था।"[27]

साथ ही, उन्होंने केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, जस्टिस रानाडे, गोपाल हरि देशमुख तथा दूसरे अन्य समाज-सुधारवादी आन्दोलनकारियों से वाद-विवाद किये थे। दयानंद बौद्धिक चिंतन, तर्क, विवेक के सहारे निष्कर्ष पर पहुँचते थे। आर्यसमाज की इतवारी सभाओं की चर्चा सजग संयत बौद्धिक चर्चा का स्थल होता था। इन सभाओं की विचारधारा ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज की विचार-परंपरा से साम्य रखती थी।

मूर्तिपूजा के विषय में दयानन्द के विचार लौकिक जीवनमूल्यों से सन्दर्भित है – "पाषाणादि मूर्तिपूजा को सर्वथा छोड़ने और मातादि मूर्तिमानों की सेवा करने में ही कल्याण है। बड़े अनर्थ की बात है कि साक्षात् माता आदि प्रत्यक्ष सुखदायक देवों को छोड़कर अदेव पाषाणादि में सिर मारना बूढ़ों ने इसलिए स्वीकार किया है कि जो माता-पितादि के सामने नैवेद्य और भेंट-पूजा लेंगे, तो हमारे मुख और हाथ में कुछ न पड़ेगा।"[28] उन्होंने अवतारवाद, पितृतर्पण, ज्योतिष - जैसी नवजागृति-विरोधी बातों का विरोध किया। दयानन्द के इन नवजागरण संबंधी विचारों का प्रभाव हिंदी भाषा और साहित्य पर देखा जा सकता है। लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के अनुसार – "आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850-1885 ई.) के जीवनकाल में ही आर्यसमाज का प्रचार हो गया था और भारतवासियों की एक बड़ी संख्या ने उसे अपनाया। ब्रह्मसमाज से कहीं अधिक प्रचार आर्यसमाज का हुआ। उसने शिक्षितों को ही नहीं, वरन् अशिक्षित और अर्ध शिक्षित जनता को भी प्रभावित किया। रूढ़िग्रस्त, परम्परागत धर्म से असंतुष्ट शिक्षित लोगों को पश्चिमी प्रभावों से मुक्त सुधारों से सन्तोष प्राप्त हुआ। देश के धार्मिक, सामाजिक, शिक्षा-संबंधी और साहित्यिक क्षेत्र में आर्यसमाज की सेवाएँ चिरस्मरणीय रहेंगी। सुधारवादी सनातनधर्मियों के हाथ में बागडोर होते हुए भी हिंदी साहित्य उससे प्रभावित हुए बिना न रह सका।"[29]

स्वामी दयानन्द के स्वदेश, स्वराज, स्वदेशी और स्वभाषा संबंधी विचारों ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में नई शक्ति पैदा की। 'स्वराज' को उन्होंने किसी भी राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक उन्नति के लिए अनिवार्य शर्त घोषित किया। स्वामी जी के विचार इस प्रकार हैं – "कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है।"[30] स्वामी दयानन्द को स्वदेशनिर्मित वस्तुओं से कितना गहरा प्रेम था यह उनके इस कथन से पता चलता है – "हम और आपको उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, जिससे अब भी पालन होता है, आगे भी होगा, उसकी उन्नति से तन, मन, धन से सब मिलकर प्रीति से करें।"[31] स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग को लेकर स्वामीजी ने आंदोलन भी चलाया था।

मातृभाषा गुजराती और संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित स्वामी दयानन्द सरस्वती ने नवजागरण के संदेश (व्याख्यान) जनभाषा

हिंदी में दिये। हिंदी के विकास में दयानन्द के योगदान के विषय में लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय लिखते हैं - "उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लोग, उर्दू को, राज्याश्रय-प्राप्त हो जाने के कारण, हिंदी भाषा और नागरी लिपि को भूलते जा रहे थे। हिंदी की शोचनीय अवस्था हो गयी थी। ...स्वामी दयानन्द ने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया था और उन्होंने देश के एक कोने से दूसरे कोने तक इसी भाषा का प्रयोग किया, जहाँ पहले उर्दू का बोल-बाला था। उन्होंने स्वयं 'सत्यार्थप्रकाश' (1874 ई.) 'व्यवहारभानु', 'गोकरणनिधि' आदि ग्रन्थों की रचना हिंदी में की।"[32] परिणामस्वरूप खड़ी बोली ने गद्य का रूप-आकार लिया। स्वामी दयानन्द के राष्ट्रीय चरित्र के कारण एनी बेसेंट लिखती हैं – "स्वामी दयानन्द पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने घोषणा की कि भारत सिर्फ़ भारतवासियों का है।"[33] नवजागरण के प्रेरणापुंज स्वामी जी के व्यक्तित्व के विषय में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के प्रमुखस्तंभ लाला लाजपतराय का कथन है- "स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं। संसार में मैंने सिर्फ़ उन्हें अपना गुरु माना है।...मेरे गुरु एक महान् स्वतन्त्र मनुष्य थे, इसका मुझे अभिमान है। उन्होंने मुझे स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करना सिखाया है। यह मेरा निश्चित मत है कि महात्मा गांधी के असहयोग कार्यक्रम में एक भी विचार ऐसा नहीं है, जो स्वामी दयानन्द महाराज की शिक्षा में न मिलता हो।"[34] इस प्रकार स्वामी दयानन्द राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष के प्रेरणास्रोत रहे।

'हिंदी नवजागरण' पर, दयानन्द के प्रभाव की चर्चा करते हुए, डॉ. भगवतीप्रसाद शर्मा कहते हैं - "हिंदी नवजागरण' के साथ दयानन्द का संबंध कम नहीं है। हिंदी के विकास में उनका योगदान बहुत अधिक है। समाज सुधार और अंधविश्वासों, रूढ़ियों का असर निश्चित रूप से 'हिंदी नवजागरण' पर पड़ा। 'हिंदी नवजागरण' में स्वदेशीयता की भावना, धार्मिक अंधविश्वासों का विरोध, समाज-सुधार आदि सभी बातें जहाँ मिलती हैं, वहीं मूर्तिपूजा और वेदों के विषय में इनसे भिन्न राय है। देश की एकता, प्रेम, आपसी संबंध बने रहे, इसलिए किसी भी प्रकार के मत-मतान्तर के पचड़े में न पड़कर वे मूर्तिपूजा का विरोध नहीं करते। उन्होंने धर्मनिरपेक्षता का समर्थन किया है, जिसमें वे धर्म को व्यक्तिगत मामला मानते हैं। 'हिंदी नवजागरण' में किसी भी लेखक ने वेदों को अपौरुषेय नहीं माना है। ...भारतेन्दु ने 'दूषण-मालिका' नामक पुस्तक में 'स्वर्ग में विचारसभा' में दयानन्द का स्मरण किया है।"[35]

सम्पूर्ण भारत के चिंतन को केन्द्र में रखकर चलने वाले 'हिंदी नवजागरण' के अग्रदूत भारतेन्दु हैं। इस जागरण का नेतृत्व समाज सुधारकों के बजाय साहित्यकारों ने किया। भारत की औपनिवेशिक दासता के छौर पर विकसित 'हिंदी नवजागरण' ने राष्ट्रीयता, आत्मावलोकन, जनतांत्रिक चेतना, प्राचीन परंपराओं का पुनर्मूल्यांकन, सामंतवाद-साम्राज्यवाद-रूढ़िवाद विरोध, स्त्रियों की शोचनीय दशा, स्वराज, स्वदेशी, स्वभाषा, स्वत्वबोध आदि भावों को नया रूप दिया, जिसके परिणामस्वरूप साहित्य में रूढ़िवाद का खण्डन कर यथार्थवादी-वस्तुवादी चिंतन का विकास संभव हुआ। 'हिंदी नवजागरण' के चेतना निर्माण में 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम, सामाजिक, धार्मिक सुधार आंदोलन एवं बंगला, मराठी नवजागरण का प्रभाव है।

आधुनिकता के परिणामस्वरूप हिंदी साहित्य में गद्य का उदय हुआ, जिससे खड़ी बोली का प्रयोग प्रारंभ हुआ एवं निबंध, नाटक, उपन्यास, कहानी, जीवनी आदि विविध गद्य विधाओं का प्रारंभिक रूप इस युग में दिखाई दिया। 'हिंदी नवजागरण' के अधिकांश लेखक पत्रकार थे। इस काल की विभिन्न पत्र-पत्रिकाएँ नवजागरण के वाहक बनीं।

'हिंदी नवजागरण' के सभी रचनाकारों ने आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक विषमताओं एवं विद्रूपताओं का यथार्थवादी चित्रण किया है।

उपर्युक्त विशेषताओं को सार रूप में डॉ. रामविलास शर्मा के नवजागरण संबंधी बहुआयामी विवेचन में देखा जा सकता है। डॉ. मैनेजर पाण्डेय का कथन है - "सामंतवाद विरोधी और साम्राज्यवाद विरोधी चेतना, इतिहास और परम्परा का नया मूल्यांकन, रूढ़िवाद का विरोध, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष, खड़ी बोली हिंदी का जातीय भाषा के रूप में विकास, आधुनिक बुद्धिवादी दृष्टिकोण का विकास, वैज्ञानिक चेतना का प्रसार, साहित्य में रीतिवाद का विरोध, वस्तुवादी चिंतन का विकास। स्वच्छन्दतावादी और यथार्थवादी रचना-प्रवृत्तियों का विकास।"[36]

इस प्रकार 'हिंदी नवजागरण' का स्वरूप एवं विशेषताएँ व्यापक हैं।

संदर्भ :

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण
2. भारतेन्द हरिश्चन्द्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएँ
5. आलोचना अक्टू-दिस, 1986 नामवर सिंह का लेख - हिंदी नवजागरण की समस्याएँ
6. प्रदीप सक्सेना-मार्क्सवादी आलोचना और रामविलास शर्मा के मूल्यांकन की समस्याएँ, सहस्त्राब्दी अंक-5, अप्रैल-जून 2001
9. 1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर (यह पुस्तक पहली बार अंग्रेज़ी में 1907 में लंदन से प्रकाशित हुई थी। अंग्रेज़ी सरकार ने भारत में इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया था।)
10. सिविल रिबेलियन इन दि इंडियन म्यूटिनीज़
11. आज का भारत
12. द फ़ार्स्ट इंडियन वार ऑफ़ इंडिपेंडेस
13. भारत में अंग्रेज़ी राज और मार्क्सवाद - रामविलास शर्मा
14. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण
15. रस्साकशी- वीरभारत तलवार
19. आधुनिक भारत का इतिहास : एक नवीन मूल्यांकन, बी.एन. ग्रोवर, अलका मेहता, यशपाल
20. आलोचना, अक्टूबर-दिसम्बर 1986, सातवाँ संस्करण - 2003 सम्पादकीय
22. साहित्य और इतिहास - दृष्टि, डॉ. मैनेजर पाण्डेय
23. हिंदी का गद्य पूर्व-संपादक - आशीष त्रिपाठी
25. समकालीन भारतीय साहित्य - अंक 167, मई-जून 2003
26. भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष - बिपन चन्द्र
27. अपना जीवनचरित- स्वामी दयानंद सरस्वती
28. आर्य समाज का इतिहास - सं. डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार
29. हिंदी साहित्य कोश (भाग-एक) सं. धीरेन्द्र वर्मा
30. श्रद्धाराम ग्रन्थावली
33. स्वामी दयानन्द सरस्वती व्यक्ति और विचार - विश्वमोहन गुप्त
34. भारतीय स्वाधीनता आंदोलन बदलते परिप्रेक्ष्य - डॉ. रामविलास शर्मा
35. नवजागरण और प्रतापनारायण मिश्र - भगवती प्रसाद शर्मा
36. साहित्य और इतिहास दृष्टि - मैनेजर पाण्डेय, पृ. 191

bhuwal.singhthakur@gmail.com

राष्ट्रभाषा हिंदी की संकल्पना एवं महात्मा गांधी का योगदान

डॉ. भरत देवड़ा
जोधपुर, भारत

राष्ट्रभाषा किसी राष्ट्र की वह भाषा होती है, जिसके माध्यम से सम्पूर्ण राष्ट्र में विचार-विनिमय एवं सम्पर्क किया जा सके। जब किसी देश में कोई भाषा अपने क्षेत्र की सीमा को लाँघकर अन्य भाषा के क्षेत्रों में प्रवेश करके, वहाँ के जन-मानस के भावों और विचारों का माध्यम बन जाती है, तब वह राष्ट्रभाषा के रूप में स्थान प्राप्त करती है। वही भाषा सच्ची राष्ट्रभाषा हो सकती है, जिसकी प्रवृत्ति सारे राष्ट्र की प्रवृत्ति हो, जिस पर समस्त राष्ट्र का प्रेम हो, राष्ट्रभाषा में समस्त राष्ट्र को एकसूत्र में बाँधने, राष्ट्रीय भावना को जागृत करने तथा राष्ट्रीय गौरव की भावना का संवहन करने की शक्ति होती है। राष्ट्रभाषा में समस्त राष्ट्र के जन-जीवन की आशाओं, आकांक्षाओं, भावनाओं एवं आदर्शों को चित्रित करने की अद्‌भुत शक्ति होती है। एक देश में कई भाषाएँ बोली जाती हैं, परन्तु उनमें से किसी एक भाषा को ही राष्ट्रभाषा का स्थान दिया जाता है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि हिंदी ग्यारहवीं शताब्दी से ही प्रायः अक्षुण्ण रूप से राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित रही है। भक्तिकाल से हिंदी जन-जन की भाषा बन गई थी। भारतीय इतिहास के विभिन्न काल-खण्डों में चाहे राजकीय स्तर पर कभी संस्कृत, कभी फ़ारसी और बाद में अंग्रेज़ी को मान्यता प्राप्त हुई, किन्तु समूचे राष्ट्र के जन-समुदाय के आपसी सम्पर्क, संवाद-संचार, विचार-विमर्श, सांस्कृतिक ऐक्य और जीवन-व्यवहार के माध्यम की भाषा हिंदी ही रही।

आधुनिक काल में हिंदी भारत की राष्ट्रीय अस्मिता का प्रतीक बन गई। वर्षों पहले अंग्रेज़ों द्वारा फैलाया गया भाषाई कूटनीति का जाल हमारी भाषा के लिए रक्षा-कवच बन गया। विदेशी शासकों को समूचे भारत में जिस भाषा का सर्वाधिक प्रयोग, प्रसार और प्रभाव दिखाई दिया, वह हिंदी थी, जिसे उस समय वे लोग हिन्दुस्तानी कहते थे। चाहे पत्रकारिता का क्षेत्र हो, चाहे स्वाधीनता संग्राम का, हर जगह हिंदी ही जनता के भाव-विनिमय का माध्यम बनी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान जनता से सम्बन्ध जोड़ने के लिए हिंदी को अंगीकार किया एवं उसे राष्ट्रभाषा की गरिमा प्रदान की। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, स्वामी दयानन्द सरस्वती, महात्मा गांधी, जैसे अनेक राष्ट्र-पुरुषों ने भी राष्ट्रभाषा हिंदी के ही ज़रिए समूचे राष्ट्र से सम्पर्क किया और वे राष्ट्र के बहुसंख्यक लोगों को स्वतंत्रता-संग्राम से जोड़ने में सफल रहे।

महात्मा गांधी भाषा के प्रश्न को राष्ट्रीय स्वतंत्रता-संग्राम के प्रश्नों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मानते थे। उन्होंने प्रारंभ से हिंदी को स्वतंत्रता-संग्राम की भाषा बनाने के लिए अथक परिश्रम किया। उनका अनुभव था - "पराधीनता चाहे राजनीतिक क्षेत्र की हो अथवा भाषाई क्षेत्र की, दोनों ही एक-दूसरे की पूरक और पीढ़ी-दर-पीढ़ी सदा परमुखापेक्षी बनाये रखने वाली है।" महात्मा गांधी पहले ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने राष्ट्रहित के लिए हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की संकल्पना प्रस्तुत की थी। 1921 में 'यंग इण्डिया' में प्रकाशित अपने एक लेख के माध्यम से गांधी जी ने इस बात को स्पष्ट किया था कि भारत में हिंदी का अपना भावनात्मक एवं राष्ट्रीय महत्त्व है और भारत की स्वतंत्रता के लिए समस्त राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं को हिंदी सीखना आवश्यक होगा, जिससे राष्ट्र की सभी कार्यवाहियाँ हिंदी में ही की जा सकें। उन्होंने इसके लिए पूरे देश में हिंदी का राष्ट्रभाषा के रूप में, ज़ोरदार ढंग से प्रचार-प्रसार करते हुए, हिंदी को राष्ट्रीय एकता, अखण्डता और स्वाभिमान के रूप में प्रतिष्ठित किया। राष्ट्रभाषा प्रचार अभियान के दौरान एक बार गांधीजी ने कहा था कि राष्ट्रभाषा के बिना कोई भी राष्ट्र गूंगा हो जाता है। अतः भारत की भी एक राष्ट्रभाषा होनी अनिवार्य है, ताकि भारत अपनी बात बोल सके। इसके लिए उन्होंने हिंदी को सर्वश्रेष्ठ माना, क्योंकि पूरे भारत में मात्र हिंदी ही आपसी सहयोग, साहचर्य एवं प्रेम की भाषा है। महात्मा गांधी की मातृभाषा गुजराती थी और उन्हें अंग्रेज़ी भाषा का उच्चकोटि का ज्ञान था और सभी भारतीय भाषाओं के प्रति उनके मन में विशिष्ट सम्मान की भावना भी थी। परन्तु इन सबके बावजूद अनेक सामाजिक व राजनीतिक कारकों के अलावा गांधी जी ने हिंदी में छिपी भारतीय मूल्यों और परंपराओं के संवर्द्धन तथा आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विकसित करने की क्षमता को

परखते हुए, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में इसके उपयोग को भी ढाल बनाया। गांधी जी का विश्वास था कि सभी भारतीयों में देशप्रेम की भावना जागृत करने एवं देश को एकता के सूत्र में बाँधने की क्षमता मात्र हिंदी में ही है।

गांधी जी के अनन्य हिंदी प्रेम के कारण ही, उनके सम्पर्क में आने वाले हर व्यक्ति तथा संस्था ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। सन् 1917 में, गुजरात शिक्षा परिषद् के अधिवेशन में गांधी जी ने हिंदी की महत्ता का प्रतिपादन किया। सन् 1918 में इंदौर के हिंदी साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन में हिंदी के प्रति देशवासियों को उनके कर्तव्य से परिचित कराया। गांधी जी ने कहा - "आप हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का गौरव प्रदान करें। हिंदी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए।" गांधी जी ने सन् 1935 में इंदौर में ही संपन्न हिंदी साहित्य सम्मेलन के 24वें अधिवेशन में अपने अभिभाषण में राष्ट्रीय एवं व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से हिंदी के महत्त्व को रेखांकित किया। इस दौरान गांधी जी ने यह भी कहा कि हमें किसी भी प्रान्तीय भाषा को मिटाना नहीं है। हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि विभिन्न प्रान्तों के साथ अपने पारस्परिक सम्बन्धों के लिए तथा आदान-प्रदान के लिए हिंदी का ही प्रयोग करें। अन्य प्रान्तों को यह बात स्वीकारनी पड़ेगी। महात्मा गांधी सन् 1915 में अफ़्रीका से भारत आए। यहाँ आते ही उन्होंने सामाजिक काम करना प्रारम्भ किया। "महात्मा गांधी ने अपने विचारों को मूर्त रूप देने के लिए अनेक संस्थाओं की स्थापना की थी, जैसे 'गांधी सेवा संघ', 'चरखा संघ', 'हरिजन सेवक संघ' तथा 'तालिमी संघ' आदि। ये संस्थाएँ अपना कार्य हिंदी में करती थीं। इससे हिंदी को देशव्यापी भाषा बनने का सौभाग्य मिला। राष्ट्रीयता की दृष्टि से हिंदी साध्य और साधन दोनों ही थी। गांधी जी ने स्वभाषा से ही देशप्रेम की प्रेरणा पूरे देश को दी। गांधी जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन अपनी चरम सीमा पर पहुँचा। उनका विश्वास था कि हिंदी भाषा के माध्यम से ही जनता को संगठित किया जा सकता है और उनमें आत्मविश्वास पैदा किया जा सकता है। लोगों की प्राण-शक्ति उनकी भाषा में ही होती है।

गांधी जी की दृष्टि में पूरे भारत वर्ष के लिए सम्पर्क भाषा की शक्ति मात्र हिंदी में ही निहित थी। उन्होंने अपने भाषणों, पत्र-पत्रिकाओं, छोटी-बड़ी संस्थाओं, सभा-सम्मेलनों के माध्यम से आजीवन हिंदी और देश की सेवा की। देश को स्वभाषा से प्रेम करने की प्रेरणा दी। उनका हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने का सुझाव, राष्ट्र के लिए, उपकारक साबित हुआ। वे हिंदी को राष्ट्रीय एकता तथा स्वाधीनता के लिए परम आवश्यक साधन मानते थे।

अंग्रेज़ी का विरोध

करोड़ों लोगों को अंग्रेज़ी की शिक्षा देना, उन्हें गुलामी में डालने जैसा है। मैकाले ने शिक्षा की जो बुनियाद डाली, वह सचमुच गुलामी की बुनियाद थी। (हिन्द स्वराज्य, 1909)। 'अंग्रेज़ी भाषा हमारे राष्ट्र के पाँव में बेड़ी बनकर पड़ी हुई है। भारतीय विद्यार्थी को अंग्रेज़ी के माध्यम से ज्ञान अर्जित करने में कम-से-कम 6 वर्ष अधिक बर्बाद करने पड़ते हैं। यदि हमें एक विदेशी भाषा पर अधिकार पाने के लिए जीवन के अमूल्य वर्ष लगा देने पड़े, तो फिर और क्या हो सकता है? (हिन्द स्वराज्य, 1914) "हिंदी ही हिन्दुस्तान के शिक्षित समुदाय की सामान्य भाषा हो सकती है - यह बात निर्विवाद सिद्ध है। जिस स्थान को अंग्रेज़ी भाषा आजकल लेने का प्रयत्न कर रही है और जिसे लेना उसके लिए असंभव है, वही स्थान हिंदी को मिलना चाहिए, क्योंकि हिंदी का उसपर पूर्ण अधिकार है। यह स्थान अंग्रेज़ी को नहीं मिल सकता, क्योंकि वह विदेशी भाषा है और हमारे लिए बड़ी कठिन है।" (हिन्द स्वराज्य, 1917)

राष्ट्रभाषा

भारत लौटने के कुछ ही वक्त बाद 1918 में महात्मा गांधी ने इंदौर के हिंदी साहित्य सम्मेलन में कहा था - "जैसे ब्रिटिश अंग्रेज़ी में बोलते हैं और सारे कामों में अंग्रेज़ी का ही प्रयोग करते हैं, वैसे ही मैं सभी से प्रार्थना करता हूँ कि हिंदी को राष्ट्रीय भाषा बनाकर सम्मान करें, इसे राष्ट्रीय भाषा बनाकर हमें अपने कर्तव्य को निभाना चाहिए।" हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को इस बात का अत्यधिक अफ़सोस था कि भारत जैसे बड़े और महान् राष्ट्र की कोई राष्ट्रभाषा नहीं है। अतः राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने विखंडित पड़े संपूर्ण भारत को एकसूत्र में बाँधने के लिए, उसे संगठित करने के लिए एक राष्ट्रभाषा की आवश्यकता महसूस करते हुए कहा था कि राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी विखंडित भारत राष्ट्र को अखंड बनाने के लिए राष्ट्रभाषा के सच्चे एवं प्रबल समर्थक तो थे, लेकिन पराधीनता के समय में, अंग्रेज़ी के प्रचार-प्रसार के युग में उनके दिमाग में राष्ट्रभाषा की संकल्पना निश्चित थी। अपने इस दर्शन के कारण राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने गुजरात शिक्षा सम्मेलन के अध्यक्षीय पद से राष्ट्रभाषा के प्रसंग में, प्रवचन देते हुए राष्ट्रभाषा की परिभाषा स्पष्ट की थी। राष्ट्रपिता गांधी जी के अनुसार 'राष्ट्रभाषा वही हो सकती है, जो सरकारी कर्मचारियों के लिए सहज और सुगम हो। जो धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में माध्यम-भाषा बनने की शक्ति रखती हो। जिसको बोलने वाला बहुसंख्यक समाज हो, जो पूरे देश के लिए सहज रूप से उपलब्ध हो। अंग्रेज़ी किसी तरह से इस कसौटी पर खरी नहीं उतर पाती।

इस प्रकार राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने तत्कालीन अंग्रेज़ी शासनकाल की अंग्रेज़ी भाषा की तुलना में, एकमात्र हिंदी भाषा में ही राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा एवं राजभाषा होने के सामर्थ्य का अनुभव किया था। महात्मा गांधी ने बहुजन समाज की 'जनभाषा' होने के कारण ही दक्षिण अफ़्रीका के प्रवास के दौरान हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने पर व्यवस्थित रूप से सोच लिया था और उन्होंने घोषणा भी कर दी थी। स्वराज करोड़ों भूखे मरने वालों का, करोड़ों निरक्षरों का, निरक्षर बहनों और दलितों तथा अंत्यजों का हो और उनके लिए तो हिंदी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।

गांधी जी राष्ट्रभाषा को स्वतंत्रता प्राप्ति का माध्यम समझते थे। गांधी जी के अनुसार राष्ट्रभाषा राष्ट्र की अखंडता की नींव है। वे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के साथ भी जुड़े हुए थे। इस समिति के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद थे और सदस्यों में महात्मा गांधी तथा अन्य विद्वान थे। "एक हृदय हो भारत जननी" समिति का घोषवाक्य था। एक राष्ट्रभाषा हिंदी हो, एक हृदय हो भारत जननी का आग्रह महात्मा गांधी जी का था। इस समिति के माध्यम से तथा गांधी जी के मार्गदर्शन में राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार एवं प्रसार कर राष्ट्रीय भावनाओं को जागृत करने का प्रयास किया गया।

गांधी जी का विचार था कि राष्ट्र की उन्नति राष्ट्रभाषा के बिना संभव नहीं है। राष्ट्रीय शिक्षण, स्वराज्य की प्राप्ति, स्वदेशी का व्रत, इन सारी संकल्पनाओं को साकार करना हो, तो सबसे पहले ज़रूरी है - एक राष्ट्रभाषा को स्वीकार करना। इन सारी संकल्पनाओं को साकार करने के लिए पूरे देश की जनता को एक साथ जागृत करना ज़रूरी था। एक साथ भिन्न भाषी प्रदेशों की जनता के साथ सम्पर्क करने की क्षमता मात्र हिंदी में थी। इन सारी बातों को ध्यान में रखकर गांधी जी ने, विभिन्न प्रसंगो पर राष्ट्रीय भावना जागृत करने के लिए हिंदी में व्याख्यान देकर, लोगों के साथ हिंदी में बातचीत कर, हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपनी उल्लेखनीय भूमिका निभाई। हिंदी को अखिल भारतीय और अंतर्प्रांतीय व्यवहार की भाषा के रूप में स्थापित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य गांधी जी ने ही किया।

स्वराज

अंग्रेज़ों की दासता से पिंड छुड़ाना स्वराज्य का एक अनिवार्य अंग था। गांधी जी हिंदी के प्रश्न को स्वराज्य का प्रश्न मानते थे। उन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में सामने रखकर भाषा समस्या पर गम्भीरता-पूर्वक विचार किया। उनकी भाषा नीति की मुख्य शैली थी :

1) भाषा समस्या का समाधान जनता के हित को ध्यान में रखकर किया जाए।
2) राष्ट्रभाषा आत्मसम्मान की अभिव्यक्ति का माध्यम है, अतः राष्ट्रीय आत्मसम्मान की रक्षा के लिए अंग्रेज़ी का प्रभुत्व खत्म किया जाना चाहिए।
3) भारतीय जनता की असली राष्ट्रभाषा हिंदी ही हो सकती है।

गांधी जी का विचार था - "यदि मैं तानाशाह होता (मेरा बस चलता) तो आज ही विदेशी भाषा में शिक्षा देना बंद करा देता, सारे अध्यापकों को स्वदेशी भाषाएँ अपनाने के लिए मजबूर कर देता। जो आनाकानी करते, उन्हें बर्खास्त कर देता। मैं पाठ्य-पुस्तकों की तैयारी का इंतज़ार नहीं करूँगा, वे तो परिवर्तन के पीछे-पीछे अपने-आप चली आएँगी। यह एक ऐसी बुराई है, जिसका तुरंत इलाज होना चाहिए।"

बापू के स्वदेशी आन्दोलन ने राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की स्वीकृति एवं प्रयोग को सार्वजनिक बनाया। अंग्रेज़ी शासन के विरोध के क्रम में ही विदेशी वस्तुओं एवं विदेशी भाषा अंग्रेज़ी का विरोध मुखर हुआ। अंग्रेज़ी के विकल्प के रूप में हिंदी सामने आयी। बापू ने प्रयास-पूर्वक पहले हिंदी सीखी एवं इसे उन्होंने सिद्धान्त व प्रयोग

दोनों स्तरों पर अपनाया। 1927 में, उन्होंने लिखा - "वास्तव में, वे अंग्रेज़ी बोलने वाले नेता हैं, जो आम जनता में हमें काम जल्दी आगे नहीं बढ़ने देते, वे हिंदी सीखने से इन्कार करते हैं, जबकि हिंदी द्रविड़ प्रदेश में भी तीन महीने के अन्दर सीखी जा सकती है।" गांधी जी जनता की बात जनता की भाषा में करना चाहते थे। उनके प्रयास से ही कानपुर अधिवेशन में, 1925 में, कांग्रेस ने यह प्रस्ताव पारित किया था कि अखिल भारतीय स्तर पर जहाँ तक संभव हो सके कांग्रेस की कार्यवाही हिंदी में चलायी जाए। अपने सभी कार्यों में प्रादेशिक कांग्रेस कमेटियाँ प्रादेशिक भाषाओं अथवा हिंदुस्तानी का प्रयोग करें। गांधी जी ने अंग्रेज़ी के व्यवहार को राजनीतिक-सांस्कृतिक गुलामी का परिणाम माना। हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में सुदृढ़ करने के लिए उन्होंने वर्धा एवं चेन्नई में राष्ट्रभाषा प्रचार सभाएँ स्थापित कीं। उन्हीं की प्रेरणा से विद्यापीठों एवं हिंदी साहित्य-सम्मेलनों की ओर से हिंदी में परीक्षाएँ आयोजित की गयीं। गांधी जी ने हिंदी को अपनाने का मन बना लिया था।

हिंदुस्तानी

"हिंदी भाषा वह भाषा है, जिसका प्रयोग भारत के उत्तर प्रांत में हिन्दू और मुसलमान करते हैं और जो नागरी और फ़ारसी लिपि में लिखी जाती है। यह हिंदी एकदम संस्कृतमयी नहीं है और न ही यह एकदम फ़ारसी शब्दों से लदी है। 'हिंदी और उर्दू नदियाँ हैं और हिन्दुस्तानी सागर। हिंदी और उर्दू दोनों को आपस में झगड़ा नहीं करना चाहिए। दोनों का मुकाबला तो अंग्रेज़ी से है।" (हिंदी स्वराज्य, 1918)

गांधीजी का मानना था - "मेरी मातृभाषा में कितनी ही खामियाँ क्यों न हों, मैं उससे उसी तरह चिपटा रहूँगा, जिस तरह अपनी माँ की छाती से। वही मुझे जीवनदायी दूध दे सकती है। लेकिन अगर अंग्रेज़ी उस जगह को हड़पना चाहती है, जिसकी वह हकदार नहीं है, तो मैं उससे सख्त नफ़रत करूँगा। ... वह कुछ लोगों के सीखने की वस्तु हो सकती है, लाखों-करोड़ों की नहीं। लिपियों में सबसे अव्वल दर्जे की लिपि नागरी है। मैं मानता हूँ कि नागरी और उर्दू लिपि के बीच, अंत में जीत नागरी लिपि की ही होगी।"

गांधी जी ने पराधीन भारत में हिन्दू-मुस्लिम में भाषा-भेद (हिंदी-उर्दू) मिटाकर ऐक्य स्थापित करने के लिए 'राष्ट्रभाषा' के लिए 'हिन्दुस्तानी' शब्द का प्रयोग किया था। उनका 'हिन्दुस्तानी' शब्द-प्रयोग से अभिप्राय हिन्दुस्तान के जन-जन को जोड़ने वाली भाषा' से ही था। इस 'हिन्दुस्तानी' के द्वारा ही उन्होंने जातिगत समन्वय का, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का ज़बरदस्त प्रयत्न किया था। इस प्रकार राष्ट्रभाषा के प्रचार-प्रसार में, राष्ट्रभाषा की राष्ट्रीय समस्या के समाधान में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का अपूर्व योगदान रहा है। वे हमेशा राष्ट्रभाषा को राष्ट्रीय गौरव, सांस्कृतिक समन्वय और राष्ट्रीय अखंडता की परिचायक मानते थे।

हिंदी का प्रचार-प्रसार

मैकाले ने ही अंग्रेज़ी-शिक्षा के प्रचार के द्वारा भारतीयों को मानसिक स्तर पर परतंत्र बनाने का काम किया था। भारतीयों को इस वैचारिक परतंत्रता से बाहर निकालने के लिए हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने, सन् 1918 ई. में, हिंदी साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष बनकर ही अहिंदी भाषी प्रदेशों में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार का एक विस्तृत आयोजन किया। जिसके कार्यान्वयन की शुरुआत उन्होंने, अपने घर से करते हुए अपने बेटे देवदास को सन् 1918 ई. में शिक्षकों के एक दल के साथ दक्षिण भारत भेजा था। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने, स्वयं दक्षिण-भारत का प्रवास करके, वहाँ के लोगों में राष्ट्रभाषा के प्रति जागृति लाने के अनेक प्रयत्न किये थे। दूसरे शब्दों में कहें, तो संपूर्ण दक्षिण-भारत प्रदेश में राष्ट्रभाषा आंदोलन चलाया गया था। इस राष्ट्रभाषा आंदोलन में सफलता की कम संभावना देखते हुए, उन्होंने खुद अपने प्रचारक का ढाढ़स बँधाते हुए एक पत्र में लिखा था – "जब तक तमिल प्रदेश के प्रतिनिधि सचमुच हिंदी के बारे में सख़्त नहीं बनेंगे, तब तक महासभा में से अंग्रेज़ी का बहिष्कार नहीं होगा। मैं देखता हूँ कि हिंदी के बारे में, करीब-करीब खादी के जैसा ही हो रहा है। वहाँ जितना संभव हो, आंदोलन किया करो। आखिर में तो हम लोगों की तपस्या और भगवान की जैसी मर्ज़ी होगी वैसा ही होगा।"

हिंदी भाषा-भाषी प्रदेशों में हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करना कोई कठिन काम नहीं था। दक्षिण में यह कार्य बहुत ही कठिन था। दक्षिण भारत में हिंदी का अस्तित्व नहीं के बराबर था। इसलिए गांधी जी ने दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार पर

अधिक बल दिया। दक्षिण भारत में 'हिंदी प्रचार सभा' की स्थापना कर हिंदी प्रचार का प्रारंभ किया गया। इस सभा ने दक्षिण भारत में विशेषकर तमिल, तेलुगू , कन्नड और मलयालम भाषी प्रदेशों में सफलता के साथ हिंदी का प्रचार किया। इतना ही नहीं अपने पुत्र देवदास गांधी तथा अन्य अनुयायिओं की सहायता से हिंदी के प्रचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। सन् 1918 के 'इंदौर साहित्य सम्मेलन' के अधिवेशन में पारित प्रस्ताव के अनुसार महात्मा गांधी जी ने दक्षिण के कुछ प्रमुख व्यक्तियों के साथ सम्पर्क स्थापित किया। उनके साथ पत्र-व्यवहार किया। समाचार-पत्रों के माध्यम से भी अपने विचार प्रकट किए। गांधी जी के इस कार्य का श्री राजगोपालाचारी ने पूरा समर्थन किया। गांधी जी के विचारों से प्रेरित होकर दक्षिण के कई युवकों ने उनके सामने हिंदी पढ़ने की इच्छा व्यक्त की। आगे चलकर गांधी जी ने सन् 1926 में, 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' नामक संस्था की स्थापना की और वे सभा के अध्यक्ष के रूप में आजीवन उसकी सेवा करते रहे। महात्मा गांधी जी के विचारों से प्रेरित होकर हिंदी पढ़ने वाले युवाओं की संख्या बढ़ रही थी। गांधी जी के पुत्र देवदास जी तथा स्वामी सत्यदेव आदि ने दक्षिण भारत में कई हिंदी अध्यापक तैयार किए। इन्हीं कार्यकर्ताओं ने गांधी जी के रचनात्मक कार्य से प्रेरणा लेकर स्वयं हिंदी का प्रचार प्रारंभ किया। सेठ जमनालाल बजाज जैसे हिंदी प्रेमियों ने धन की कमी को पूरा किया। लेकिन आगे चलकर गांधी जी ने सुझाव दिया कि दक्षिण भारत में हिंदी का प्रचार करने के लिए धन यही से लगना ज़रूरी है। उनके इस सुझाव पर, वहीं से, हिंदी प्रचार के लिए धन मिलने लगा।

गांधी जी का मानना था कि देश की एकता के लिए एक भाषा का होना जितना आवश्यक है, उससे अधिक आवश्यक है कि वह भाषा पूरे देश के लोगों में अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम जगाए। यह क्षमता मात्र हिंदी में ही है। उसमें जो सरलता और व्यापकता है, वह अन्य किसी भाषा में नहीं है। गांधी जी के इन्हीं प्रयासों के कारण तथा उनके जन-मानस पर व्यापक प्रभाव के कारण कांग्रेस ने भी हिंदी को देश की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया और इसे राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठापित करने की भूमिका तैयार की।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. यंग इंडिया, 10 नवंबर 1921
2. हिंद स्वराज, 1909, पृ. 142
3. काशिनाथ त्रिवेदी (अनुवादक), मोहनदास करमचंद गांधी कृत राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1947, पृ.10
4. सुरेश माहेश्वरी, हिंदी राष्ट्रभाषा से विश्वभाषा की और,1998, पृ.69
5. महात्मा गांधी, हिन्द स्वराज्य, नवजीवन प्रकाश मंदिर, अहमदाबाद,1949, पृ. 71-77
6. प्रताप, दिनांक 28.05.1917 एवम् 03.07.1917
7. काशिनाथ त्रिवेदी (अनुवादक), पूर्वोक्त, पृ.8-14
8. उदय नारायण दुबे, राजभाषा के संदर्भ में हिंदी आंदोलन का इतिहास, 1979, पृ. 151-55
9. यंग इंडिया, 01.09. 1921 एवम् हिन्दी नवजीवन, 02.09.1921
10. काशिनाथ त्रिवेदी (अनुवादक), पूर्वोक्त, पृ.24
11. वही, पृ.11
12. पी. के. केशवन नायर, दक्षिण भारत के हिंदी प्रचार आंदोलन का समीक्षात्मक इतिहास, हिंदी साहित्य भंडार अमीनाबाद लखनऊ, 1963, पृ.38-45
13. वही
14. वही, पृ. 61-77

deora.bharat85@gmail.com

आज़ादी के 75 वर्ष और राजभाषा हिंदी का उत्कर्ष

श्रीमती भावना सक्सेना
हरियाणा, भारत

भारत आज अपनी आज़ादी का अमृत महोत्सव मना रहा है। स्वतंत्रता के इस अमृत महोत्सव के समय सबसे बड़ा दायित्व है भारत और भारतीयता को जानना व समझना। हमारे शीर्ष नेतृत्व का संकल्प है कि जब हम आज़ादी की शताब्दी मनाएँ, तब भारत और भारतीयता संपूर्ण विश्व का मार्गदर्शन करने के लिए सिंहासनारूढ़ हो चुकी हो। यह तभी संभव है, जब युगों-युगों से इसकी यात्रा में अभिव्यक्ति का माध्यम रही इसकी भाषा सदा की तरह इसके साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलती रहे। इसके रंग-बिरंगे भाषाई हार को एकसूत्र में पिरोकर एक साथ रखने वाली भाषा है - हिंदी!

हिंदी आज संवैधानिक रूप से भारत की राजभाषा, भारत की सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा और विश्व की सात हज़ार से अधिक भाषाओं में से तीसरी सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है। अनुमान यह है कि यदि इसके विभिन्न रूपों और शैलियों को सम्मिलित कर आंका जाए, तो सम्भवतः यह विश्व की सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा मानी जाएगी।

एक हज़ार वर्ष का इतिहास लिये हिंदी जिसे आज संयुक्त राष्ट्र ने मान्यता दे दी है, वह वैश्विक बाज़ार की भाषा है। हिंदी ने विश्व की शीर्षतम सॉफ़्टवेयर कंपनी माइक्रोसॉफ़्ट को बाध्य कर दिया कि वह अपने उत्पादों को हिंदी में लाए। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जब राष्ट्रभाषा का प्रश्न उठा, तब विद्वानों के गहन विचार-विमर्श में पिछली सहस्त्राब्दी के इतिहास की अमिट मोहर लिए हिंदी भाषा ही एकमात्र विकल्प थी।

गुजरात की धरती पर स्वामी दयानन्द सरस्वती पहले ही उद्घोष कर चुके थे कि *"हिंदी के द्वारा ही भारत को एकसूत्र में पिरोया जा सकता है।"* सरदार वल्लभभाई पटेल ने भी दृढ़तापूर्वक कहा था कि *"स्वतन्त्र भारत के नेता ना तो विदेशी भाषा का प्रयोग करेंगे और ना ही दूरस्थ स्थान से शासन करेंगे।"*

संविधान सभा में हिंदी के पक्ष में दी गई दलीलों में महात्मा गांधी का मत था कि *"राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी को काम में लाना देश की शीघ्र उन्नति के लिए आवश्यक है। स्वदेश अभिमान को स्थिर रखने के लिए हिंदी सीखना आवश्यक है।"*

मदन मोहन मालवीय ने पूछा था *"वह कौन-सी भाषा है, जो वृंदावन, बद्री नारायण, द्वारका, जगन्नाथपुरी चारों धामों तक एक समान धार्मिक यात्रियों को सहायता देती है? वह एकमात्र हिंदी भाषा है। हिंदी लिंगुआ फ्रैंका नहीं लिंगुआ इंडिका है। गुरु नानक लंका, तिब्बत, मक्का-मदीना, चीन इत्यादि सब देशों में गए, वहाँ उन्होंने किस भाषा में उपदेश दिया था? वह यही हिंदी भाषा थी। इससे जान पड़ता है कि उस समय भी हिंदी भाषा राष्ट्रभाषा थी और उसका सम्यक प्रचार हो रहा था।"*

हिंदी के समर्थन में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी का कहना था - *"राजनीतिक, सामाजिक तथा व्यावसायिक, सभी दृष्टियों से हिंदी दक्षिण भारत के विद्यालयों के पाठ्यक्रम का एक आवश्यक अंग होनी चाहिए। दक्षिण भारत के लिए संभव नहीं कि आने वाले स्वराज में मताधिकार से वंचित रहे, सभी दक्षिण भारतीयों को हिंदी सीखनी ही चाहिए, क्योंकि अगर भारत में किसी भी प्रकार की जनतांत्रिक सरकार बनेगी, तो केवल हिंदी ही राजभाषा हो सकेगी।"*

यही कारण था कि 14 सितंबर 1949 को 'हिंदी' को संविधान सभा में एकमत से राजभाषा का दर्जा दिया गया था।। एकमत पर पहुँचने और हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिलाने में कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी और श्री एन. गोपाल अयंगर के 'मुंशी - अयंगर' फ़ार्मूले का योगदान उल्लेखनीय रहा। संविधान समिति की बहस में हिंदी के पक्ष में मत रखने वाले अधिकांश सदस्य अहिंदी भाषी थे - सर्वश्री गोपाल स्वामी अयंगर, टी. टी. कृष्णमाचारी, ए. के. अयंगर, कन्हैयालाल मणिकलाल मुंशी, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, सआदुल्ला, एल. एम. राव, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, पं. गोविंदवल्लभ पंत, राजर्षि पुरुषोत्तम टंडन, बालकृष्ण शर्मा नवीन, डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी और श्री के. संथानम। इन सभी के समर्थन से हिंदी को राजभाषा का दर्जा मिला। 14 सितंबर की शाम को संविधान सभा में हुई बहस के समापन के बाद डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने अपने वक्तव्य के उपसंहार में कहा - *"हम केन्द्र में जिस भाषा*

का प्रयोग करेंगे, उससे हम एक-दूसरे के निकटतर आते जाएँगे। अब अंग्रेज़ी के स्थान पर हमने एक भारतीय भाषा को अपनाया है। इससे अवश्यमेव हमारे संबंध और घनिष्ठ होंगे।"

26 जनवरी 1950 को संविधान लागू हुआ। हिंदी भारतीय संघ की संविधान स्वीकृत राजभाषा हुई और राजभाषा हिंदी का प्रचार-प्रसार भारत सरकार का संवैधानिक दायित्व बना। राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए प्रशासन, शिक्षा और विधि के क्षेत्र निर्धारित किए गए। प्रशासन के क्षेत्र में हिंदी का प्रयोग अधिक-से-अधिक हो सके और इन सेवाओं में कार्यरत पदाधिकारी अपने दिन-प्रतिदिन के कामकाज में हिंदी का प्रयोग कर सकें, इसका दायित्व गृह मंत्रालय को सौंपा गया। न्याय और न्यायालय में हिंदी का प्रयोग अधिक हो सके, इसका दायित्व विधि मंत्रालय को दिया गया तथा शिक्षा के माध्यम के रूप में राजभाषा हिंदी का प्रयोग बढ़े, इसकी व्यवस्था का दायित्व शिक्षा मंत्रालय को दिया गया।

प्रशासनिक क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग को बढ़ाना एक चुनौती था। इसके समाधान के लिए शिक्षा मंत्रालय ने शब्दावली निर्माण के लिए 1950 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी बोर्ड की स्थापना की, जिसके मार्गदर्शन में शिक्षा मंत्रालय के हिंदी विभाग ने तकनीकी शब्दावली के निर्माण का कार्य आरंभ किया। केंद्र सरकार के कर्मियों को सेवाकालीन प्रशिक्षण देने के लिए वर्ष 1955 में हिंदी शिक्षण योजना आरंभ की गई। इसी वर्ष राजभाषा आयोग का भी गठन हुआ। इस आयोग ने सरकारी कामकाज और अन्य क्षेत्रों में हिंदी भाषा के अधिक-से-अधिक प्रयोग के लिए सिफ़ारिशें कीं। खेर आयोग की रिपोर्ट पर विचार करने के लिए तत्कालीन गृह मंत्री श्री गोविंदवल्लभ पंत की अध्यक्षता में संसदीय समिति का गठन हुआ और 1959 में इस समिति की रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। इस रिपोर्ट का संज्ञान लेते हुए राष्ट्रपति ने हिंदी शब्दावली के निर्माण, संहिताओं व कार्यविधिक साहित्य के अनुवाद तथा कर्मचारियों को हिंदी प्रशिक्षण देने के लिए, हिंदी प्रचार के संबंध में, आदेश जारी किए।

इन निर्देशों का अनुपालन करते हुए केंद्रीय हिंदी निदेशालय की स्थापना हुई। 1961 में राष्ट्रपति के आदेश से वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की गई। निदेशालय तथा आयोग ने अब तक विज्ञान, मानविकी, आयुर्विज्ञान, इंजीनियरी, कृषि तथा प्रशासन आदि के 4 लाख अंग्रेज़ी के तकनीकी शब्दों के हिंदी पर्याय प्रकाशित किये हैं। इसी प्रकार राजभाषा (विधायी) आयोग तथा राजभाषा खंड ने विधि शब्दावली का निर्माण किया, जिसमें पचास हज़ार विधिक शब्दों के हिंदी पर्याय दिए गए हैं।

1963 में राजभाषा अधिनियम पास होने के बाद यह अनुभव किया गया कि हिंदी के माध्यम से प्रशासन का कार्य चलाने के लिए कुछ और कार्यों की आवश्यकता पड़ेगी, जैसे -

* प्रशासनिक, वैज्ञानिक, तकनीकी और विधिक शब्दावली का निर्माण
* प्रशासनिक और विधिक साहित्य का हिंदी में अनुवाद
* हिंदीतर भाषी सरकारी कर्मचारियों का हिंदी प्रशिक्षण
* हिंदी टाइपराइटरों और अन्य यांत्रिक साधनों की व्यवस्था आदि

सरकारी कार्यालयों में हिंदी भाषा के प्रयोग को गति देने के लिए एक सर्वोच्च स्तर की समिति की आवश्यकता महसूस की गई और फलस्वरूप 1967 में प्रधानमंत्री जी की अध्यक्षता में केंद्रीय हिंदी समिति का गठन किया गया। राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग के लिए अनुवाद की आवश्यकता महसूस हुई, जिसे पूरा करने का कार्य पहले शिक्षा मंत्रालय के केंद्रीय हिंदी निदेशालय को दिया गया, लेकिन मार्च 1971 में इसके लिए गृह मंत्रालय के अधीन केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो की स्थापना की गई। अनुवाद में सरलता, सहजता और शब्दावली की एकरूपता सुनिश्चित करने तथा अनुवाद-कौशल विकसित करने के लिए वर्ष 1973 से अनुवाद प्रशिक्षण का कार्य भी केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो कर रहा है।

प्रशासनिक क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग के संबंध में एक चुनौती यह भी थी कि भारतीय प्रशासनिक सेवा में चयनित व्यक्ति देश के विभिन्न भाषा-भाषी क्षेत्रों से आते थे, इसलिए राजभाषा संबंधी व्यवस्थाओं के अनुपालन के लिए सरकारी कामकाज में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए गृह मंत्रालय द्वारा 25 जून 1975 को राजभाषा विभाग की स्थापना की गई। राजभाषा विभाग को, राजभाषा के रूप में हिंदी के प्रगामी प्रयोग से संबंधित सभी मामलों का समन्वयन करने का कार्य सौंपा गया और तब से आज तक राजभाषा विभाग अपने दायित्वों का निर्वहण कर रहा है और संघ के सरकारी कामकाज में हिंदी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ाते हुए

उसका प्रसार कर रहा है।

अपनी स्थापना के तत्काल बाद राजभाषा विभाग ने सरकारी कार्यालयों में हिंदी में काम करने के लिए 1976 में राजभाषा संबंधी नियम बनाए। इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए वर्ष 1976 में संसदीय राजभाषा समिति का भी गठन किया गया। इस समिति का मुख्य उद्देश्य, सरकार के कामकाज में, राजभाषा हिंदी के प्रयोग की प्रगति की समीक्षा करना है।

राजभाषा विभाग के गठन के बाद, राजभाषा नीति के कार्यान्वयन की प्रक्रिया में तेज़ी आई और गतिविधियों में गुणात्मक विकास हुआ। राजभाषा संबंधी नियमों के कार्यान्वयन के लिए इस विभाग ने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं। राजभाषा हिंदी के लिए, बने इन नियमों का कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के लिए, विभाग ने कुछ और समितियों का भी गठन किया, जिनका योगदान महत्त्वपूर्ण है। यथा - हिंदी सलाहकार समितियाँ, केंद्रीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ और विभागीय राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ। ये समितियाँ राजभाषा नीति के कार्यान्वयन और हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए कार्य करती हैं। आवधिक बैठकों का आयोजन किया जाता है। पुस्तकालयों में हिंदी पुस्तकों की खरीद, हिंदी शिक्षण योजना, कर्मचारियों के प्रशिक्षण आदि पर विशेष बल दिया जाता है।

अब तक पूरे देश में 527 नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियों का गठन किया जा चुका है। इन 'नराकासों' ने संपूर्ण भारत को आपस में जोड़ने का कार्य किया है और हिंदी के प्रचार-प्रसार को नई ऊर्जा प्रदान की है। हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने की दृष्टि से राजभाषा विभाग ने विदेशों में भी 5 नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियों का गठन किया है।

विभाग हिंदी को सूचना प्रौद्योगिकी से जोड़ने के लिए निरंतर प्रयासरत है। आज राजभाषा हिंदी तकनीकी के साथ कदम-से-कदम मिलाकर आगे बढ़ रही है, इस क्रम में लीला सॉफ़्टवेयर और मोबाइल एप्प का निर्माण, मशीनी अनुवाद के लिए मंत्रा राजभाषा टूल का विकास, श्रुतलेखन, ई-महाशब्दकोश का निर्माण, अनुवाद का ई-लर्निंग प्लैटफ़ॉर्म कदम बढ़ा रहे हैं। हाल ही में, न्यूरल मशीनी अनुवाद को सम्मिलित कराते हुए कंठस्थ के नए संस्करण – 'कंठस्थ-2' का विकास किया गया, जिसका लोकार्पण हिंदी दिवस 2022 के अवसर पर केंद्रीय गृह मंत्री द्वारा किया गया।

राजभाषा विभाग ने 'ई-सरल हिंदी वाक्यकोश' भी उपलब्ध कराया है, जिसमें अब तक विभिन्न मंत्रालयों और विभागों से संबंधित 11 हज़ार से ज़्यादा वाक्य अपलोड किए गए हैं। भाषा को सरलीकृत करने व अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों को सम्मिलित कर, हिंदी के साथ अन्य भारतीय भाषाओं के सह-अस्तित्व को सुरक्षित करने की दृष्टि से, राजभाषा विभाग द्वारा, शिक्षा मंत्रालय के सहयोग से तैयार किए जा रहे 'बृहत हिंदी शब्दकोश शब्दसिंधु' का लोकार्पण 14 सितंबर 2022 को हुआ। इस कोश में 22 भारतीय भाषाओं का शब्दभंडार जोड़ने का प्रयास किया गया है। यह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 में उल्लिखित भारत की सामासिक संस्कृति के अनुरूप, सब भाषाओं से शब्द और अभिव्यक्तियाँ लेते हुए, हिंदी की प्रकृति को सुरक्षित रखने का प्रयास है। निश्चित रूप से इससे हिंदी के प्रसार को संबल मिलेगा। विभाग की वेबसाइट पर ई-पत्रिका पुस्तकालय भी जोड़ा गया है, जिससे हिंदी की पत्रिकाएँ कहीं भी, कभी भी उपलब्ध हो सकें। यहाँ लगभग 800 पत्रिकाएँ उपलब्ध हैं।

तकनीकी से जुड़ने की एक और उपलब्धि रही है – कोविड-काल में ऑनलाइन प्रशिक्षण। केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो ने भी अनुवाद प्रशिक्षण की ऑनलाइन कक्षाएँ आरंभ कर इस दिशा में नई पहल की और अनेक ऑनलाइन प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए। विभिन्न सरकारी कार्यालयों को राजभाषा नीति के कार्यान्वयन को प्रोत्साहित करने के लिए देश के विभिन्न क्षेत्रों में राजभाषा विभाग के अधीन 8 क्षेत्रीय कार्यान्वयन कार्यालय कार्यरत हैं, जो हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए कार्य कर रहे हैं और जिनके सहयोग से क्षेत्रीय सम्मेलन आयोजित किए जाते हैं।

वर्ष 2019 में, माननीय गृह एवं सहकारिता मंत्री जी ने संकल्पना की थी कि दशकों से विज्ञान भवन में आयोजित किए जा रहे हिंदी दिवस समारोह का आयोजन भविष्य में विज्ञान भवन से बाहर हिंदी-प्रेमियों व आम जनसमूह के बीच किया जाए। यही कारण था कि हिंदी के प्रयोग में नवीन ऊर्जा के संचार के लिए गत वर्ष, 13-14 नवंबर 2021 को, राजभाषा विभाग ने उत्तर प्रदेश के वाराणसी शहर में दो दिवसीय अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन का सफल आयोजन किया। इसी क्रम में, राजभाषा विभाग ने

राजभाषा संवर्ग के अधिकारियों व कर्मचारियों के लिए 18 मई 2022 को एक पूर्णदिवसीय तकनीकी संगोष्ठी का आयोजन किया, जिससे राजभाषा संवर्ग में नव उत्साह का संचार हुआ।

दूसरे अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन का सम्मिलित आयोजन, 14-15 सितंबर 2022 को, सूरत में किया गया। अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलनों का उद्देश्य न सिर्फ़ हिंदी कर्मियों को प्रेरित व प्रोत्साहित करना है, अपितु देश की युवा पीढ़ी को हिंदी से जोड़ना, राजभाषा से जुड़े रोज़गार व संभावनाओं से परिचित कराना और स्वभाषा का प्रयोग करते हुए काम करने के लिए प्रेरित करना है।

सतही तौर पर ऐसा लग सकता है कि राजभाषा के रूप में, हिंदी की जैसी प्रगति होनी चाहिए थी, वैसी नहीं हुई है। इसका कारण सिर्फ़ यह है कि हिंदी की प्रकृति सबको साथ लेकर चलने की है और सरकार की नीति भी सर्वसमावेशिता की है। संघ सरकार की राजभाषा नीति प्रेरणा, प्रोत्साहन और सद्भावना की है। भारत सरकार द्वारा, विकास योजनाएँ तथा नागरिक सेवाएँ प्रदान करने में, हिंदी के प्रयोग को निरंतर बढ़ावा दिया जा रहा है। सरकार की सभी योजनाओं का नामकरण अधिकाधिक हिंदी में किया जा रहा है, जैसे 'आयुष्मान भारत', 'उज्ज्वला', 'जन-धन', 'सूर्य-मित्र', 'निष्ठा', 'वय वंदना', 'सुकन्या समृद्धि', 'देखो अपना देश', 'निर्विक', 'मनोदर्पण', 'उड़ान', 'मिशन इंद्रधनुष', 'ग्राम अध्येता योजना' आदि। सरकार की इन्हीं नीतियों के कारण आज भारत एक नव संसाधन संपन्न शक्तिशाली महादेश के रूप में उभर रहा है और अपने सभी गुणों के कारण हिंदी, इस नव शक्ति-संपन्न देश की समृद्ध भाषा बन, विश्व भर के लोगों को बाँधती जा रही है।

विश्व के लोगों को बाँधने की दिशा में, भारत के यशस्वी नेतृत्व का अतुल्य योगदान है। भारत से बाहर हिंदी की गूंज फैलाने में श्रद्धेय अटल बिहारी वाजपेयी जी अग्रणी रहे। उस परम्परा का निर्वहण करते हुए वर्तमान यशस्वी प्रधानमंत्री प्रवासी भारतीयों में उत्साह का संचार कर रहे हैं। गृह मंत्री श्री अमित शाह जी का कथन है कि *"राजभाषा हिंदी किसी भी भारतीय भाषा की प्रतिस्पर्धी नहीं, बल्कि उनकी सखी है और हमारी सभी भाषाओं का विकास एक-दूसरे के परस्पर सहयोग से ही सम्भव है।"*

नेतृत्व की यही सोच 'आज़ादी का अमृत महोत्सव' नारे में भी परिलक्षित है। अमृत-महोत्सव जैसे तत्सम शब्द-युग्म को आज़ादी जैसे अरबी-फ़ारसी मूल के शब्द के साथ जोड़ना यह विशेष संदेश देता है कि सभी भाषाएँ परस्पर ग्राह्य हों, एक-दूसरे के साथ मिलकर चलें। स्थानीय भाषाओं का योगदान संस्कृति को आगे बढ़ाने में अतुलनीय है। इन्हीं भाषाओं ने हिंदी को समृद्ध किया है। निःसंदेह वह दिन दूर नहीं जब इस देश की मिट्टी से उपजी, यहाँ पुष्पित-पल्लवित हुई, यहाँ की शब्द-संपदा, भाव-संपदा, रूप, शैली और अपने पदों से समृद्ध हिंदी विश्वभाषा कहलाएगी।

आइए ! सब मिलकर आज यह प्रतिज्ञा लें कि हिंदी की उन्नति व प्रगति की यात्रा यूँ ही जारी रहेगी। हम सब मिलकर राजभाषा हिंदी के माध्यम से नए आत्मनिर्भर भारत का निर्माण करेंगे। हमारे सामूहिक और सार्थक प्रयासों से ही अखण्ड भारत का स्वप्न साकार होगा कि हिंदी ही तो हमें जोड़ने वाला सेतु है। जैसा गिरिजा कुमार माथुर ने लिखा है -

"सागर में मिलती धाराएँ
हिंदी सबकी संगम है,
शब्द, नाद, लिपि से भी आगे
एक भरोसा अनुपम है,
गंगा कावेरी की धारा
साथ मिलाती हिंदी है"
पूरब-पश्चिम/ कमल-पंखुड़ी
सेतु बनाती हिंदी है।"

संदर्भ :

1. भारत का संविधान
2. विमलेश कान्ति वर्मा, हिंदी - राष्ट्रभाषा से राजभाषा तक, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 2021
3. विमलेश कान्ति वर्मा, हिंदी - स्वदेश और विदेश में, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 2018
4. कैलाशचंद्र भाटिया, राजभाषा हिंदी, वाणी प्रकाशन, 1994

bhawnasaxena@hotmail.com

हिंदी बाल साहित्य तथा इक्कीसवीं सदी में उसकी आवश्यकता

डॉ. सोमदत्त काशीनाथ
वाक्रा, मॉरीशस

विश्व में बाल-साहित्य का प्रादुर्भाव कब हुआ? इसका सटीक निश्चय कर पाना कठिन ही होगा, क्योंकि उसके आगमन के कारणों की एवं उसके आरम्भिक रूपों की केवल कल्पना की जा सकती है। उसके साक्ष्य और प्रमाण ढूँढना लोहे के चने चबाने के बराबर ही होगा। किन्तु ऐसा मानने में किसी प्रकार की अतिशयोक्ति नहीं होगी कि संसार में बच्चों के लिए साहित्य का आगमन बड़ों के लिए लिखे गए साहित्य के आने से पूर्व ही आया होगा। ऐसा इसलिए कि बच्चों का मनोरंजन करने की तथा सुलाते समय उन्हें बहलाने-फुसलाने की आवश्यकता अधिक रहती है। अतः यह परिकल्पना करना कि बाल साहित्य प्रौढ़ साहित्य का समकालीन रहा होगा या उससे भी पहले आया होगा - सभी प्रकार से संभव ही है। कुछ मार्मिक तथा सहज-हृदय वाले साहित्यकारों ने बड़ों की शिक्षा तथा उनका मनोरंजन करने से पहले बच्चों के ज्ञानार्जन तथा मनोरंजन की चिन्ता की होगी। इस दृढ़ विश्वास के पीछे *'पंचतन्त्र'* की कहानियों की परिकल्पना है। भारतीय वाङ्मय में, इस बात की चर्चा की गई है कि पंडित विष्णु शर्मा द्वारा रचित *'पंचतन्त्र'* बाल-साहित्य का प्रथम सुव्यवस्थित रूप है। इसकी कहानियों का गठन राजा के बिगड़े राजकुमारों को जीवनादर्शों, जीवन-मूल्यों तथा राजनीतिक प्रपंचों के विषय में बताकर उनमें बौद्धिक प्रौढ़ता लाने हेतु किया गया था। इस दिशा में पंडित विष्णु शर्मा की सफलता ने देश-विदेश के बाल-साहित्य को प्रेरित किया। डॉ. हर्टेल ने इस बात की पुष्टि की है कि *'पंचतन्त्र'* का अनुवाद लगभग सभी भारतीय भाषाओं के साथ-साथ संसार की पचास से अधिक अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं में हुआ है। डॉ. हर्टेल ने यह भी संकेत दिया है कि दो सौ से अधिक शीर्षकों से इस पुस्तक का प्रकाशन मिलता है।

जहाँ यूनान के एक गुलाम ईसप की कहानियों को *'पंचतन्त्र'* से प्रेरित रचनाएँ मानने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है। इसी प्रकार फ्रेंच रचनाकार ला फ़ोंटेंन की कुछ कहानियों में *'पंचतन्त्र'* की रचनाओं के ढाँचों के पुट दिख ही जाते हैं। जहाँ तक ईसप की कहानियों का प्रश्न है, कुछ विद्वानों ने माना है कि *'पंचतन्त्र'* की कथाओं में तथा ईसप की कहानियों में अधिकांश तत्त्व मिलते-जुलते हैं। इनमें कथानक, पात्र, उद्देश्य आदि सभी स्तरों पर समानताएँ दिखाई देती हैं। दोनों की कहानियों में जीव-जन्तुओं की कथाएँ हैं और दोनों में नीति तत्त्व की प्रधानता है। इसीलिए डॉ. उषा सिंहल ने अपनी *'हिंदी बाल-साहित्य-परम्परा और प्रयोग : संस्कृत की अनुपम देन : पंचतन्त्र'* शीर्षक से प्रकाशित आलोचनात्मक पुस्तक में यह दावा किया है कि अधिकतर विद्वान *'पंचतन्त्र'* को ही ईसप की कहानियों का मूल स्रोत मानते हैं।

भारती, जयप्रकाश (1998) ने अपनी *'बाल साहित्य इक्कीसवीं सदी'* नामक पुस्तक में, विश्व बाल-साहित्य की भूमिका पर विचार करते हुए कहा है कि सन् 550 ई. में, एक ईरानी सम्राट् खुसरो के विद्वान मंत्री बुर्जुए भारत में संजीवनी बूटी की खोज में आए थे। इस संजीवनी की खोज में वे बहुत दिनों तक भटकते रहे और एक दिन उनकी भेंट एक भारतीय विद्वान से हुई। उन्होंने जब अपने भारत आने के उद्देश्य पर प्रकाश डाला तब उस सुलझे हुए भारतीय विद्वान ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया - *"विद्वान व्यक्ति ही वह पर्वत है, जहाँ ज्ञान की बूटी होती है। उसके सेवन से मूर्ख-रूपी मृत व्यक्ति में नवजीवन का संचार हो जाता है। इस प्रकार का अमृत हमारे पंचतन्त्र नामक ग्रन्थ में है।"*

'पंचतन्त्र' की अनेक कथाओं ने कविताओं, नाटकों तथा अनन्य साहित्यिक विधाओं का रूप धारण किया है। इन कहानियों ने न केवल विश्व के बाल-साहित्य का दिशा-निर्देश किया है, बल्कि ये निरन्तर विश्व के लोक-साहित्य को भी गति देती रही हैं। नैतिकता तथा मानव में अपेक्षित भावनाओं का प्रचार करने वाली कथाएँ हमें वेदों-पुराणों, सिंहासन द्वात्रिंशिका, बौद्ध एवं जैन जातक कथाओं आदि में मिल जाती हैं। किन्तु पैशाची भाषा में लिखी गई *'बड्डकहा'* (बृहत्कथा) पुस्तक में विशेष रूप से लोक-प्रचलित कथाओं का समावेश मिलता है। संस्कृत भाषा से उपलब्ध बाल-साहित्य के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि इसमें नीति के साथ-साथ वे तत्त्व हैं, जिन्हें अपनाकर, निश्चय ही, बालक एक श्रेष्ठ नागरिक बन सकता

है। आज विश्व बाल-साहित्य आशा, उत्साह, विश्वास और प्राणी-मात्र के प्रति प्रेम की भावनाओं से छलक रहा है। पशु-पक्षी और पेड़-पौधे भी बालकों के मित्र होते हैं। इस प्रकार से पर्यावरण की चिन्ता और उसके संरक्षण के विचार भारतीय परम्परा से निकलकर पूरे विश्व में पहुँचे हैं। भारतीय बाल-साहित्य में भारतीय दर्शन के सहजग्राह्य रूप मिलते हैं। इसमें *'वसुधैव कुटुम्बकम्'* की भावना है और शत्रुओं से सावधान रहने की भी चेतावनी है।

उपर्युक्त विचारों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि भारतवर्ष बाल-साहित्य का जन्मदाता है। भारत के बाल-साहित्य ने देश की भौगोलिक सीमाओं को पार करते हुए काल के बन्धनों से मुक्ति प्राप्त की है, जिससे कि यह आज विश्व की सभी भाषाओं में उपलब्ध हो पाया है तथा यह नये लेखकों को समय-समय पर प्रेरित करता रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि *'पंचतन्त्र'* का वैश्वीकरण भारतीय वाङ्मय तथा उसकी परम्पराओं की श्रेष्ठता तथा उसकी उदारता की ओर संकेत करता है। यह वही श्रेष्ठता है, जिसे सदियों से विदेशी विद्वान स्वीकारते आ रहे हैं।

हिंदी बाल-साहित्य यात्रा - एक संक्षिप्त परिचय

आरम्भ में बाल-साहित्य मौखिक रूप में विद्यमान रहा होगा और अनेक शताब्दियों तक मौखिक रूप से विचरण करने के बाद इसे लिपिबद्ध करने की कोशिश की गई होगी। उदाहरण के लिए हम दादा-दादी अथवा नाना-नानी की कहानियों को ले सकते हैं, जो आज हमें पुस्तकों में उपलब्ध हो रही हैं। मानव-मस्तिष्क में कल्पना और स्वाभाविकता के बीच उड़ान भरती हुईं, ये कहानियाँ मौखिक रूप से ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक निःसृत होती रहीं और आज के युग तक आते-आते इन कहानियों में कितना परिवर्तन हुआ होगा अथवा समय की अंधियारी गलियारों में, उनमें से कितनी कहानियाँ खो गई होंगी, यह सोचने का विषय है। जहाँ तक हिंदी भाषा में लिखी बाल-रचना का सवाल है, वह 1623 ई. में, जटमल द्वारा लिखित 'गोरा बादल की राम कथा' है। इस पुस्तक की भाषा खड़ी बोली है। इसमें मेवाड़ की महारानी पद्मावती की रक्षा के लिए गोरे बादल से याचना की गई है। आधुनिक प्रसिद्ध हिंदी बाल-साहित्यकारों में विष्णु प्रभाकर, जयप्रकाश भारती, राष्ट्रबन्धु, हरिकृष्ण देवसरे, क्षमा शर्मा, यादवेन्द्र चन्द्र शर्मा, चक्रधर नलीन, दिविक रमेश, उषा यादव, देवेन्द्र कुमार जैसे हस्ताक्षरों ने, विश्वपटल पर स्वर्ण अक्षरों में, अपने नाम अंकित किए हैं। इनके अतिरिक्त श्रीधर पाठक, विधाभूषण 'विभू', स्वर्ण सहोदर, द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी, सोहनलाल द्विवेदी जैसे रचनाकारों की कृतियाँ अमर हैं।

आधुनिक जीवन-शैली तथा बाल-विकास

आज बच्चों का जीवन भी यान्त्रिक बनता जा रहा है। यन्त्रवत् ढंग से जीने की इस प्रवृत्ति के पीछे अधिक-से-अधिक सुख-सुविधाओं का भोग करने की इच्छा तथा दूसरों से निरन्तर आगे निकलने की चाह है। सभ्य समाज ने वयस्कों के साथ-साथ अबोध बालकों को भी इस कृत्रिम होड़ का शिकार बना रखा है। इसीलिए कीमती खिलौनों के आगे बच्चों की स्वाभाविक हँसी और उनकी प्राकृतिक मुस्कानों का कोई मोल नहीं रहा है। प्रसिद्ध चलचित्र 'दीवार' से निकलकर हमारे जीवन में एक प्रश्न ने इस प्रकार घर कर लिया, मानो वही जीवन का मूल मंत्र हो - "तुम्हारे पास क्या है?" आज लोगों ने यह चिन्ता करना बन्द कर दिया है कि वे कितने खुश हैं और जिस खुशी के स्रोत को उन्होंने अपने जीवन से जोड़ा है, वह कितना स्थायी या अस्थायी है। एक दूसरी विडम्बना यह है कि आज आधुनिक माता-पिता के पास अपने बच्चों को देने के लिए सब कुछ तो हैं, किन्तु समय ही नहीं है। अपने बच्चों के पास बैठकर उनकी योजनाओं को समझने तथा उनकी सृजनात्मक कुशलताओं को पहचानकर उन्हें दिशा देने के लिए फ़ुर्सत ही नहीं है। इस सम्बन्ध में भारती, जयप्रकाश ने (1998) लिखा है-

"बच्चों को ज़रूरत है एक बाप की, जो उनके लिए बाप हो, न कि घोड़ा। मैंने ऐसे कई बाप देखे हैं - वे अपनी सारी शक्ति खपा देते हैं और किसी दिन फ़र्श पर मुर्दा पड़े मिलते हैं। बच्चे यतीम हो जाते हैं और अगर वे अनाथ नहीं, तो महामूर्ख बन जाते हैं। परिवार में उल्लास होना ही चाहिए, दुख-शोक नहीं होना चाहिए। और लोग ढींगे हाँकते हैं - 'मैंने बच्चों की खातिर सब कुछ छोड़ दिया है।' मैं सिर्फ़ यही कह सकता हूँ - 'अच्छा, अगर आपने ऐसा किया है, तो आप मूर्ख हैं - आपने सब कुछ छोड़ दिया और बच्चों को धेला भी नहीं मिला।"

हरिभा, उपाध्याय (1967) ने बाल-साहित्य की आवश्यकता

पर आधारित एक लेख में लिखा है कि, *"आज के बच्चे कल के नागरिक होंगे और उनमें से कई विभिन्न क्षेत्रों में प्रमुख और बड़े नेता भी हो सकते हैं। उनकी शिक्षा-दीक्षा और लालन-पालन का सम्बन्ध आज से उतना सम्बन्धित नहीं, जितना कि कल से हैं। अतः बाल-साहित्य की रचना के लिए आवश्यक है कि हम आने वाले कल के समाज का चित्र अपने सामने रखें।"*

हिंदी बाल-साहित्य के समक्ष चुनौतियाँ

माता-पिता अपने बच्चों का विकास करने के साथ-साथ हमारे देश के भावी इतिहास को तथा विश्व के इतिहास को नया रूप देते हैं। इस विषय पर, टिप्पणी करते हुए भारती, जयप्रकाश ने (1998) स्पष्ट किया है कि *"इक्कीसवीं सदी बालक की सदी है तथा यह बालक के बारे में चिन्तन-मनन और शोध की सदी है। आज सभी घरों की यही कहानी है कि माता-पिता केवल धन जुटाने में अपना जीवन बिता रहे हैं।"*

भारती, जयप्रकाश ने (1998) भारत में हिंदी बाल-साहित्य की वर्तमान स्थिति पर विचार करते हुए इस ओर संकेत किया है - *"देश जब आज़ाद हुआ, उस समय हमारे पास श्रेष्ठ बाल-साहित्य नहीं था। चूहा-बिल्ली, त्योहार या देश-भक्ति की कविताएँ थीं। कुछ कहानियाँ थीं या अंग्रेज़ी से अनूदित कथाएँ थीं।"* भारत की स्वतन्त्रता के लगभग बीस-पच्चीस साल बाद ही बालकों के लिए साहित्य की रचना आरम्भ हुई। इस दौर में, नई पुस्तकों और नई पत्रिकाओं का उदय हुआ। हिंदी बाल-साहित्य को एक निश्चित दिशा मिली। कालान्तर में, कुछ दशकों से हिंदी बाल-साहित्य का कायाकल्प ही हो गया। जहाँ प्रायः नए लेखकों ने अपनी रचनाओं के लिए नए विषय चुने, वहीं उन्होंने नई तथा मौलिक शैलियों को भी अपनाया। उनके साहित्य में, नए प्रयोगों में, किसी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं दिखती है।

बाल-साहित्य के प्रति उदासीनता के कुछ कारण

पिछले दशकों में, एक ओर जहाँ शिक्षा और समाज अंग्रेज़ी भाषा की ओर झुकते चले गए, वहीं बच्चों की हिंदी कहानियों और कविताओं में रुचि कम होने लगी। सभ्य समाज का एक बड़ा भाग हिंदी को हेय दृष्टि से देखने लगा। जिन घरों में 'बाल भारती', 'चाचा चौधरी' और 'चन्दा मामा' पत्रिकाएँ आती थीं, वहाँ अंग्रेज़ी 'रीडर्ज़ डाइजेस्ट' ने अपना आधिपत्य इस प्रकार जमाया कि हिंदी बाल-पत्रिकाओं का अस्तित्व ही मिट गया। परिणाम यह हुआ कि श्रेष्ठ हिंदी बाल-साहित्य की ओर जाने वालों में कमी आने लगी और अच्छे लेखकों में हिंदी बाल साहित्य के प्रति उदासीनता भी बढ़ती चली गई। बच्चों की दुनिया में डिजिटल उपकरणों के आने से पुस्तकों की गुणवत्ता की उपेक्षा होने लगी है। 'पुस्तक चयन समिति' में या फिर पाठ्य-पुस्तक लेखन मंडलों में अच्छी पुस्तकों तथा बच्चों के लिए उपयुक्त पाठ्य-सामग्रियों की समझ रखने वालों की उपेक्षा से क्षति भाषा के प्रचार के साथ-साथ बाल-साहित्य को भी पहुँचती रही। जहाँ ग्राहक या पाठक कम होंगे, वहाँ रचनाकार भी कम होंगे। इस बात की पुष्टि करते हुए भारती, जयप्रकाश ने (1998) कहा है - *"हमारे देश में बहुत हुआ, तो किसी प्राध्यापक को 'पुस्तक चयन समिति' में रख लेते हैं। स्कूल स्तर की पाठ्य-पुस्तकों या सहायक पाठ्य-सामग्री का चयन करने में विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक और विभाग के अध्यक्ष बढ़-चढ़कर भाग लेते हैं। राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् हो या केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उनमें कर्त्ता-धर्ता कठपुतलियों के धागे प्राध्यापकों की ऊँगलियों पर होते हैं। स्कूल के लिए फ़िल्में बनेंगी, तो विश्वविद्यालय के स्तर पर पढ़ाए जाने वाले लेखकों पर ही।"*

बच्चों के लिए पाठ्य-सामग्री अध्ययनार्थ हो या फिर मनोरंजनार्थ - दोनों रूपों में रुचिकर एवं आकर्षक होनी चाहिए। एक रूसी विद्वान वसीली, सुखेम्लीन्स्की ने कहा है कि बच्चों को जो बातें याद करानी होती है, उसे सर्वप्रथम दिलचस्प होनी चाहिए। उन्होंने माना है कि पढ़ने-लिखने-सिखाने के काम को चित्रकारी के साथ जुड़ा होना चाहिए। इससे रुचि के साथ-साथ सृजनात्मकता का भी विकास होता है। वस्तुस्थिति यह है कि हमें हमेशा इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि जो भी बाल-साहित्य हम रच रहे हैं, उनमें बच्चों में सृजनात्मकता तथा कला के प्रति झुकाव प्रेरित करने की क्षमता हो। इस तरह बच्चे अपने अनुकूल बौधिक जलवायु पाकर स्वाभाविक रूप से अपना व्यक्तित्व निर्मित कर सकेंगे। इससे वे अपनी जन्मजात प्रवृत्तियों और प्रतिभाओं का विकास कर सकेंगे। आगरिपुडि ने (1967) इस बात का समर्थन करते हुए कहा है - *"इससे जीवन में स्वस्थ आत्मसंतोष आएगा और संतुष्ट व्यक्ति*

के सहयोग से एक सन्तुलित प्रगतिशील समाज की सृष्टि होगी।"

बाल-साहित्य को उचित मान्यता देने की आवश्यकता

भारत के पूर्व-राष्ट्रपति वेंकटरमन, आर. ने 'बाल साहित्यकारों को संबोधन' विषयक लेख में कहा है कि विज्ञान और सृजनात्मकता आज परस्पर विरोधी बन गए हैं। विज्ञान की छाप ने बाल-साहित्य को कितनी क्षति पहुँचायी है, उसका प्रमाण हमें आज के बच्चों की सोच तथा उनके व्यवहार से मिल जाता है -*"किन्तु विज्ञान के प्रति जो चौंधियाने वाला आकर्षण फैल रहा है, वह साहित्य की विविध विधाओं की उपेक्षा करने के कारण बनता है। बच्चे, बड़े सब विज्ञान को ही सर्वश्रेष्ठ मान लेते हैं। विज्ञान के सस्ते और अधूरे अनुकरणों के लिए अब बाल-साहित्य पुरस्कार मिल जाते हैं, जबकि सृजनशील साहित्यकार उससे वंचित रह जाते हैं। बाल-साहित्य बच्चों को सुसंस्कृत बनाने वाला होना चाहिए।"*

वेंकटरमन, आर. ने बाल-साहित्य के गुणों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि विवेक को जगाने वाला, भेद, द्वेष, डाह आदि अवगुणों से बचाने वाला, कल्पना-शक्ति को सही रास्ते पर बढ़ाने वाला, आत्मविश्वास को जागृत करने वाला, रोचक, ज्ञानवर्द्धक बाल-साहित्य ही आज की स्थिति में भारतीय बच्चों के लिए अत्यन्त आवश्यक है। वस्तुस्थिति यह है कि बाल-साहित्य में नैतिकता की शिक्षा देने की क्षमता होनी चाहिए। उसमें यह चेतना फैलाने का सामर्थ्य भी होना चाहिए कि दूसरों से घृणा करके मनुष्य खुद अपनी सोच में तथा अपने चरित्र में विकार लाता है। दूसरों का अपमान करने से खुद के ईमान पर दाग लगता है। दूसरों को दास बनाकर मनुष्य स्वयं भी स्वतन्त्र नहीं रह सकता है। पुस्तकें हमें बहुत कुछ सिखाती हैं। हमें अपने बच्चों को यह बताना आवश्यक है कि पुस्तकें बड़े ध्यान से चुनी गईं अमूल्य निधियों की भाँति होती हैं। वे मानव-मात्र के लिए खज़ाने के समान होती हैं। उनमें मानव-ज्ञान का भंडार होता है। बाल-साहित्य उस भंडार तक पहुँचने के लिए एक बहुमूल्य कुंजी है।

बाल-साहित्य में बालक-सम्बन्धित समस्याएँ दूर करने की क्षमता

आज का युग जहाँ विज्ञान का युग है, वहीं मनोविज्ञान का भी युग है। बाल-साहित्य उसी मनोविज्ञान को सहायक बनाकर बच्चों के मनोविकार को सुधारने का प्रयास करता है। समाज में जितनी भी समस्याएँ होती हैं, वे एक-दूसरे से जुड़ी होती हैं। कभी कोई एक समस्या किसी अन्य समस्या का स्रोत होती है, तो कभी वह किसी पूर्व की समस्या का परिणाम भी हो सकती है। सुलैमान, मोहम्मद एवं कुमार, दिनेश (2015) ने इस योग को सामाजिक समस्याओं के बीच अंतर्सम्बन्ध कहा है - *"सामान्यतः सामाजिक समस्याएँ अन्तर्सम्बन्धित होती हैं। जनसंख्या विस्फ़ोट, गरीबी, निरक्षरता आदि समस्याओं के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।"*

सामाजिक समस्याएँ समाज को अन्दर-ही-अन्दर खोखला कर देती हैं। प्रायः सामाजिक समस्याएँ उचित शिक्षा की कमी अथवा अनुचित शिक्षा के प्रचार से ही फैलती हैं। उनका किसी-न-किसी रूप में, बालकों पर प्रभाव पड़ता ही है। जहाँ मानव मूल्यों से सम्बन्धित शिक्षा के अभाव में नवजवान असहिष्णु, संवेदनारहित तथा निर्दयी बनते जाते हैं, वहीं दूसरी ओर संकीर्ण दृष्टिकोण का विकास करने वाली शिक्षा के मिलने से कुछ बच्चे दिग्भ्रान्त भी हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में, स्पष्ट शब्दों में अपना आक्रोश प्रकट करते हुए, भारती, जयप्रकाश (1998) ने लिखा है -

"आतंकवाद, उग्रवाद तथा अराष्ट्रवाद हमारे द्वार पर दस्तक दे रहे हैं। इन सब समस्याओं का हल बालक के पास है। स्वाधीन भारत में जो बच्चे जन्में, वे माता-पिता बन चुके, कुछ दादा-दादी, नाना-नानी भी बन गए। पर स्वाधीन देश के नागरिकों जैसी आदतें उनकी नहीं हैं। हमारे बालक और किशोर कुंठाओं में जी रहे हैं। दूरदर्शन उनमें नयी-नयी झूठी आकांक्षाएँ जगा रहा है।"

वस्तुस्थिति यह है कि हिंदी बाल-साहित्य बच्चों के विशृंखलित हो रहे संसार को पुनः संजोने की क्षमता रखता है। बालकों में उचित एवं अपेक्षित भावनाओं का विकास करके हिंदी बाल-साहित्य बालोपयोगी होने के साथ-साथ समाज के लिए नितान्त उपयोगी होता है। हमारी शिक्षा-प्रणाली में हिंदी बाल-साहित्य को स्थान देने से न केवल बच्चों की भलाई होगी, बल्कि भविष्य के लिए देश में मानसिक रूप से स्वस्थ तथा सृजनात्मक कौशलों से युक्त नागरिक उत्पन्न होंगे। एक स्वस्थ समाज की स्थापना होगी। बाल-साहित्य नई पीढ़ी की उदासीनता को दूर कर पाने के साथ-साथ देश के लिए मानसिक रूप से स्वस्थ, संवेदनशील नागरिक तैयार कर पाएगा।

संदर्भ :

1. भारती, जयप्रकाश (1998)- बाल-साहित्य इक्कीसवीं सदी में, शाहदरा, दिल्ली 110032, अभिरुचि प्रकाशन
2. मधुमति (1967)- भारतीय बाल-साहित्य विशेषांक
3. सुलैमान, मोहम्मद एवं कुमार, दिनेश (2015)- मनोविज्ञान और सामाजिक समस्याएँ, पटना, मोलीलाल बनारसीदास

mskashinath@gmail.com

साहित्यिक अनुवाद और भारतीय संस्कृति का वैश्विक विस्तार

डॉ. रवि शर्मा 'मधुप'
दिल्ली, भारत

साहित्यिक अनुवाद, अनुवाद का एक विशेष रूप होता है। इसमें किसी साहित्यिक रचना को एक भाषा से दूसरी भाषा में अनूदित किया जाता है। अनुवाद, वास्तव में, एक अत्यंत जटिल, किंतु महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है और अनुवाद का सबसे जटिल रूप है - साहित्यिक अनुवाद। अनुवाद संस्कृत मूल का एक तत्सम शब्द है, जो 'वद' धातु से पहले 'अनु' उपसर्ग जुड़ने से बना है। इसका शाब्दिक अर्थ है – 'किसी कही हुई बात के बाद कहना' या 'किसी कथन के बाद किया गया भाषांतरण', भाषांतर, उल्था, तर्जुमा, फिर कहना।[1]

अनुवाद का स्वरूप

प्रोफ़ेसर पूरन चंद टंडन का मानना है कि भारतीय संस्कृत साहित्य में अनुवाद शब्द के संबंध में स्पष्ट उल्लेख तो नहीं मिलते, किंतु वैयाकरणों और काव्यशास्त्र चिंतकों द्वारा काव्य के स्वरूप, काव्य के प्रयोजन, काव्य आदि के संबंध में जो विस्तृत विश्लेषण-विवेचन किया गया है, उसी में, प्रकारांतर से, अनुवाद का भी संबंध दिखाई देता है। पाश्चात्य जगत् में प्राचीन काल में अनुवाद को बहुत ही हेय दृष्टि से देखा गया।।[2]

शैवरमैन के अनुसार, "अनुवाद एक पाप कर्म है।" अनुवादक को धोखेबाज़ (प्रवंचक - ट्रेटर) कहा गया। इसके तीन कारण भी बताए गए - पहला कारण तो यह कहा गया कि अनुवादक इसलिए धोखेबाज़ या प्रवंचक है, क्योंकि वह मूल लेखक की बात को ज्यों-का-त्यों दूसरी भाषा में प्रस्तुत नहीं करता। इसलिए वह लेखक के साथ धोखा करता है। अनुवादक दूसरा धोखा पाठक के साथ करता है, क्योंकि पाठक मूल लेखक की बात को ज्यों-का-त्यों ग्रहण करना चाहता है और जब पाठक को वह मूल संदेश नहीं प्राप्त होता, तब वह स्वयं को ठगा हुआ महसूस करता है। तीसरा धोखा, अनुवादक अनुवाद के मूल सिद्धांत के साथ करता है, जिसके अनुसार अनुवादक से यह अपेक्षा होती है कि वह मूल में न कुछ जोड़े और न कुछ छोड़े।

यह सैद्धांतिक अपेक्षा व्यावहारिक धरातल पर कभी भी संभव नहीं है, क्योंकि अनुवाद एक शीशी की गंध को दूसरी शीशी में डालने जैसा दुष्कर कार्य है। चाहे कितनी भी सावधानी रखी जाए, कितना भी ईमानदारी से प्रयास किया जाए, एक शीशी की गंध को पूरा का पूरा दूसरी शीशी में उड़ेलना संभव ही नहीं है। बिल्कुल इसी प्रकार, एक भाषा (स्रोत भाषा या मूल भाषा) में कही गई बात को दूसरी भाषा (लक्ष्य भाषा) में ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत कर देना व्यावहारिक रूप से किसी के लिए भी सरल कार्य नहीं है।

अनुवाद की परिभाषा में कुछ विद्वानों द्वारा कहा गया है कि अच्छा अनुवाद वह है, जो अनुवाद न लगे। इस परिभाषा में ही, अपने आप में, एक विरोधाभास विद्यमान है। साहित्य की किसी अन्य विधा के संबंध में हम ऐसी अपेक्षा नहीं रखते। हम कभी यह नहीं कहते कि कहानी ऐसी हो, जो कहानी न लगे या कविता ऐसी हो, जो कविता न लगे। ऐसे में अनुवाद से इस प्रकार की अपेक्षा करना आकाश से चाँद-तारे तोड़ लाने के समान ही कहा जा सकता है।

अनुवाद को यदि सांस्कृतिक सेतु कहा जाए, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। वास्तव में, अनुवाद एक बहुआयामी और बहुदिशागामी सेतु है। अनुवाद पूरी दुनिया में निर्बाध आवागमन सुलभ कराने वाला माध्यम है। अनुवाद दो देशों, दो समाजों और दो संस्कृतियों को एक-दूसरे से परिचित कराने, उनके बीच सामंजस्य स्थापित करने और उनमें आपसी सद्भाव पैदा करने का एक सशक्त माध्यम है।

अनुवाद कला है, विज्ञान है और शिल्प भी है। अनुवाद का मर्म वही जानता है, जिसने स्वयं अनुवाद किया हो। सत्य तो यह है कि अनुवाद करना मूल सृजन से भी कठिन कार्य होता है, क्योंकि इसमें अनुवादक को दोहरी यात्रा करनी पड़ती है। पहले तो वह मूल में प्रवेश करके उसे आत्मसात करता है, फिर उसे लक्ष्य-भाषा में पुन: सृजित करता है, जोकि सामान्य मौलिक सृजन से अधिक कठिन होता है। अनुवाद तो आग का एक दरिया है, जिसे बिना कष्ट

के पार करना संभव नहीं है।

एक अच्छा अनुवादक अच्छे तबलावादक की तरह होता है, जो संगीतकार के साथ संगत करता है। अनुवादक भी यही संगत मूल लेखक के स्वर से तथा मूल कृति की ध्वनियों से करता है। अनुवादक मूल लेखक की कृति में अपने संपूर्ण अस्तित्व और व्यक्तित्व को डुबो देता है। अच्छा अनुवादक भारतीय परंपरा की आदर्श पत्नी की भाँति होता है। अनुवाद के संदर्भ में मूल लेखक को पति तथा अनुवादक को पत्नी की भाँति माना गया है।

अनुवादक के लिए संकट यह है कि यदि उसके द्वारा किया गया अनुवाद मूल से बेहतर हो जाएगा, तो उसे अनुवाद न कहकर अनुसृजन कहा जाता है और यदि वह मूल को, ठीक से, लक्ष्य भाषा में अनूदित नहीं कर पाया या उसमें अनुवाद की झलक बनी रह गई, तब भी उसे अनुवाद नहीं कहा जाता।

भारत में अनुवाद कार्य को साधन नहीं, अपितु साध्य माना गया, जिसे साधने के लिए साधना की आवश्यकता होती है। आज के दौर में विभिन्न मशीनें अनुवाद करने लगी हैं, किंतु ध्यान देना होगा कि मशीन हमारी सहायता के लिए है, एक साधन मात्र है। मशीन द्वारा किया गया अनुवाद साध्य नहीं हो सकता। मशीन कभी मानव का स्थान नहीं ले सकती। अनेक शब्द ऐसे होते हैं, जिनके एक से अधिक अर्थ उस भाषा में होते हैं और वहाँ उपयुक्त शब्द का चयन करना मानव मस्तिष्क का ही कमाल होता है; वहाँ मशीन प्राय: असफल हो जाती है। इसका परिणाम होता है - भ्रष्ट, अशुद्ध और हास्यास्पद अनुवाद।

मात्र तथ्य या शब्दों का अनुवाद वास्तविक अनुवाद नहीं है, अपितु शब्दों में निहित अर्थ-छटाओं का अनुवाद, सांस्कृतिक प्रतीकों, मिथकों, बिंबों और अलंकारों का अनुवाद, मुहावरे-लोकोक्तियों और शब्द-शक्तियों का अनुवाद सर्वाधिक चुनौतीपूर्ण होता है। अनुवाद डूबकर पार उतरने की कला है। इसमें जो पूर्णत: डूब जाते हैं, वे ही पार जा पाते हैं।[3]

अनुवाद के प्रकार एवं साहित्यिक अनुवाद का महत्त्व

अनुवाद अनेक प्रकार के होते हैं। जैसे शब्दानुवाद, जिसमें शब्द के स्थान पर दूसरी भाषा के शब्द को रख दिया जाता है। इसे संस्कृत में 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' यानी - 'मक्खी के स्थान पर मक्खी रखना' कहते हैं। इस अनुवाद का महत्त्व विशेष रूप से उन स्थानों पर होता है; जहाँ शब्द पर आधारित रचना होती है। दूसरा अनुवाद भावानुवाद होता है; जिसमें पूरे वाक्य के भाव को समझकर लक्ष्य भाषा में उसी भाव को व्यक्त करने का प्रयास किया जाता है। यह अनुवाद प्राय: साहित्यिक रचनाओं के लिए अनिवार्य होता है। साहित्यिक अनुवाद, विशेष रूप से चुनौतीपूर्ण होता है, क्योंकि साहित्य में केवल शब्द और वाक्य ही नहीं होते, अपितु उसमें उस समाज की सोच, जीवन-मूल्य और सांस्कृतिक चिंतन अभिव्यक्ति पाता है।

साहित्यिक अनुवाद का स्वरूप एवं महत्त्व बताते हुए अपने लेख –'साहित्यिक अनुवाद : चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ' में प्रो. अरुण होता लिखते हैं - *"किसी भी भाषा के साहित्य की विविध विधाओं की अन्य भाषा में अनूदित रचना को साहित्यिक अनुवाद कहा जाना चाहिए। काव्यानुवाद, कथानुवाद, नाट्यानुवाद आदि साहित्यिक अनुवाद की विविध कोटियाँ हैं। साहित्यिक अनुवाद भाषिक प्रक्रिया मात्र नहीं है, ना ही यह स्रोत-भाषा के शब्दों को लक्ष्य-भाषा के शब्दों में तब्दील कर देना है। साहित्य का मूलाधार संवेदना है। अनुवादक को उस संवेदना को परत-दर-परत खोलना पड़ता है। साहित्यिक अनुवाद कलात्मक तो है ही, वह सांस्कृतिक झरोखा भी है। संदर्भ-ज्ञान की क्षमता भी है।"*[4]

साहित्यिक अनुवाद में भी कविता का अनुवाद और भी दुष्कर कहा जा सकता है, क्योंकि उसमें अर्थग्रहण से काम नहीं चलता, बिंब ग्रहण आवश्यक होता है, जैसा कि शुक्ल जी ने कविता की परिभाषा में लिखा है। इस अर्थग्रहण के साथ-साथ कविता में प्रयुक्त प्रतीक, मिथक, पुराख्यान, पौराणिक प्रसंग, मुहावरे और लोकोक्तियाँ आदि कविता के अनुवाद को और भी जटिल बना देती हैं।

इस विचार से सहमति व्यक्त करते हुए प्रो. अरुण होता लिखते हैं, *"उपन्यास, कहानी आदि के अनुवाद की तुलना में काव्यानुवाद कठिन होता है। काव्य के अनुवाद के संबंध में सहृदय अथवा कवि-हृदय-संपन्न व्यक्ति ही कविता से तादात्म्य स्थापित करवा सकता है। अर्थात् काव्य-रसिक, काव्य की समझ रखने वाला व्यक्ति ही काव्यानुवाद में सफल होता है।"*[5]

मेरे विचार में सांस्कृतिक सेतु का कार्य वस्तुतः साहित्यिक

अनुवाद ही करता है। इसका कारण भी स्पष्ट है। जैसा कि सभी जानते हैं कि साहित्य को समाज का दर्पण इसी अर्थ में कहा जाता है कि वह लेखक के समसामयिक सामाजिक परिवेश को अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

साहित्य कोरा इतिहास नहीं होता, वह तो आदर्शोन्मुख यथार्थवाद होता है। इस प्रकार का साहित्य अपने भीतर संपूर्ण सांस्कृतिक संदर्भों का संकलन रखता है। ऐसा साहित्य ही अपने समाज की समकालीन समस्याओं, चिंताओं, संभावनाओं, आकांक्षाओं, अपेक्षाओं और छटपटाहट को अभिव्यक्ति प्रदान करने के कारण कालजयी रचना में रूपांतरित हो जाता है। ऐसे साहित्य का अनुवाद ही साहित्यिक अनुवाद के मूल उद्देश्य को पूरा करके, विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच सांस्कृतिक सेतु का कार्य करता है।

जहाँ अनुवाद के अनेक सकारात्मक पक्ष हैं, वहीं इसका एक नकारात्मक पक्ष भी है। असावधानी, लापरवाही या षड्यंत्र के अंतर्गत किया गया अनुवाद न केवल उस रचना और रचनाकार के साथ अन्याय करता है और उसकी गलत छवि प्रस्तुत करता है, अपितु देश और उस संस्कृति को भी हानि पहुँचाता है, जिससे उस रचना का, उस भाषा का संबंध होता है।

साहित्य में आलंकारिक सौंदर्य का अनुवाद, प्रतीक, मिथक, बिंब, मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों आदि के अनुवाद में अतिरिक्त सतर्क रहने की आवश्यकता है। अन्यथा अर्थ का अनर्थ होते देर नहीं लगती और ऐसे में सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण हो जाना भी स्वाभाविक होता है। साहित्य और संस्कृति का अनुवाद वस्तुत: भावानुवाद ही होता है, क्योंकि इस प्रकार की रचनाएँ भाव-प्रधान या संवेदनामूलक होती हैं और बिना भाव को ठीक-ठीक समझे, अनुवाद नहीं किया जा सकता।

भारतीय संस्कृति का वैश्विक विस्तार

संस्कृति, अर्थात् सम्यक रूप से रची गई कृति। भारतीय संस्कृति का उल्लेख करते ही हमारे सम्मुख संस्कृत का विश्वस्तरीय साहित्य साक्षात हो जाता है। वैदिक और लौकिक संस्कृत में रचे गए विपुल साहित्य को ही भारतीय संस्कृति का मूलाधार माना जाता है। भारतीय संस्कृति 'सत्यमेव जयते', 'वसुधैव कुटुंबकम', 'मातृ देवो भव', 'पितृ देवो भव', 'आचार्य देवो भव', 'अतिथि देवो भव', 'परोपकाराय पुण्याय', 'पापाय परपीडनम्', 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा', 'सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामया', 'असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मा अमृतंगमय', 'जननी जन्मभूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी' जैसे जीवन-मूल्यों का दूसरा नाम है।

तीसरा बिंदु है - वैश्विक विस्तार। 'विश्व' शब्द में 'इक' प्रत्यय लगाने से 'वैश्विक' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है – 'पूरे विश्व का', और 'विस्तार' का अर्थ है - फैलाव। इसी 'विश्व' शब्द में 'करण' लगाने से 'वैश्वीकरण' शब्द भी बनता है, जिसके समानांतर 'भूमंडलीकरण' शब्द भी कुछ समय तक प्रचलित हुआ। ये दोनों शब्द अंग्रेज़ी के 'ग्लोबलाइज़ेशन' के समानांतर गढ़े गए। अब इनमें से 'वैश्वीकरण' शब्द ही अधिक प्रचलित एवं स्वीकार्य हो गया है। भारतीय जीवन दृष्टि, जीवन दर्शन, जीवन मूल्य अर्थात् भारतीय संस्कृति के विश्व भर में प्रचार-प्रसार का आधार साहित्यिक अनुवाद ही है।

साहित्यिक अनुवाद द्वारा भारतीय संस्कृति का वैश्विक विस्तार

संस्कृत और हिंदी साहित्य ने सदा ही विदेशी विद्वानों को बहुत आकृष्ट किया है। इसी कारण बड़ी संख्या में संस्कृत और हिंदी की श्रेष्ठ रचनाओं का अनेक विदेशी भाषाओं में अनुवाद हुआ और यह कार्य निरंतर चल रहा है।

संस्कृत के वेदों, पुराणों और उपनिषदों के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य का विविध भाषाओं में साहित्यिक अनुवाद होता रहा है, जिनमें से कुछ चर्चित अनुवाद इस प्रकार हैं - आदि कवि वाल्मीकि द्वारा रचित 'वाल्मीकि रामायण' का प्रोफ़ेसर चिनतिंग हॉन ने चीनी भाषा में अनुवाद किया। 'मनुस्मृति', वात्स्यायन रचित 'कामसूत्र' और 'मृच्छकटिकम्' जैसी संस्कृत की महत्त्वपूर्ण कृतियों का प्रोफ़ेसर क्रिस्टोफ़र ब्रिस्की ने पोलिश भाषा में अनुवाद किया। संस्कृत के दूसरे महाकाव्य 'महाभारत' के कुछ अंश तथा 'बेताल पचीसी' का पोलिश भाषा में अनुवाद हेलेना बिलमानोवा ने किया।

भारतीय संस्कृति को वैश्विक स्वरूप प्रदान करने में जिस रचना की सर्वाधिक भूमिका रही है, वह है - महाकवि तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस'। इसका अंग्रेज़ी में अनुवाद फ्रेडरिक सैमुअल ग्राउज ने किया, तो चीनी में अनुवाद प्रोफ़ेसर चिनतिंग हॉन ने किया।

हिंदी के 'उपन्यास सम्राट' या 'कलम के सिपाही' जैसे अलंकरणों से विभूषित मुंशी प्रेमचंद की अनेक कहानियों और उपन्यासों का विभिन्न विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। यह इस बात का प्रमाण है कि प्रेमचंद का लेखन अपने समय के सामाजिक-सांस्कृतिक प्रश्नों से निरंतर जूझता रहा है। प्रेमचंद के साहित्य को तत्कालीन भारतीय समाज का दर्पण कहा जाए, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। उनके द्वारा लिखे 12 उपन्यासों में सर्वाधिक चर्चित एवं प्रसिद्ध उपन्यास है – 'गोदान'। 'गोदान' को भारतीय किसान और खेती की महागाथा भी कहा जाता है। इसमें ग्रामीण और शहरी भारतीय जीवन के विविध रंग दिखाई देते हैं। प्रेमचंद के कालजयी महाकाव्यात्मक उपन्यास 'गोदान' का विश्व की 20 से अधिक भाषाओं में अनुवाद होना स्वयं इसकी महत्ता का परिचायक है।

'गोदान' का इतालवी भाषा में मरियोला अरादी, पोलिश भाषा में यूल्यूष पारनोवस्की, बल्गारियन भाषा में कॉलचो कोवाचेव, चेक भाषा में डॉक्टर ओदोलन स्मेकल, फ़िनिश भाषा में प्रोफ़ेसर बातिन तिक्के, जापानी भाषा में प्रोफ़ेसर क्योयो दोई और चीनी भाषा में प्रोफ़ेसर चिनतिंग हॉन ने अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त रोमानियन, फ़्रांसीसी, हंगेरियन आदि कई भाषाओं में 'गोदान' का अनुवाद किया गया है। प्रेमचंद की कहानियाँ 'शतरंज के खिलाड़ी', 'सती', 'रानी सारंधा' का पोलिश भाषा में अनुवाद डॉक्टर तात्याना रूत्कोवस्का ने किया।

हिंदी के सुप्रसिद्ध आंचलिक कथाकार फणीश्वरनाथ 'रेणु' के सर्वाधिक चर्चित उपन्यास 'मैला आँचल' का इतालवी भाषा में डॉक्टर चिपीलिया और पोलिश भाषा में यूल्यूष पारनोवस्की ने अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त रोमानियन, चीनी और फ़्रांसीसी भाषा में भी 'मैला आँचल' का अनुवाद हो चुका है। यशपाल द्वारा रचित 'झूठा सच' तथा हिमांशु जोशी द्वारा रचित 'कगार की आग' का चीनी भाषा में अनुवाद प्रोफ़ेसर चिनतिंग हॉन ने किया। जयशंकर प्रसाद की कहानियों और कृष्णचंद्र की 'दादर पुल के बच्चे' का बल्गारियन भाषा में अनुवाद कॉलचो कोवाचेव ने किया। प्रसिद्ध रूसी विद्वान पी. ए. वारान्निकोव ने उपेंद्रनाथ अश्क के उपन्यास 'गिरती दीवारें', विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित 'हिमालय की बेटी' तथा हिंदी के प्रख्यात व्याकरण आचार्य कामता प्रसाद गुरु द्वारा रचित 'हिंदी व्याकरण' का रूसी में अनुवाद किया। मोहन राकेश के चर्चित नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' का पोलिश भाषा में अनुवाद यूल्यूष पारनोवस्की ने किया। प्रोफ़ेसर क्रिस्टोफ़र ब्रिस्की ने सर्वेश्वरदयाल सक्सेना द्वारा रचित 'बकरी' और लक्ष्मी नारायण लाल द्वारा रचित 'तोता मैना' के अतिरिक्त प्रेमचंद की कहानी 'गरीब की हाय' का हिंदी से पोलिश भाषा में अनुवाद किया।

डॉक्टर एवा अरादी ने धर्मवीर भारती, कमलेश्वर, जैनेंद्र कुमार, मन्नू भंडारी तथा राजेंद्र यादव की कुछ कहानियों, कबीरदास, तुलसीदास, हरिवंशराय बच्चन, मैथिलीशरण गुप्त और वीरेंद्र मिश्र की कुछ कविताओं और राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' के महाकाव्य 'उर्वशी' के कुछ भागों का अनुवाद हंगेरियन भाषा में किया है। कविवर जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित महाकाव्य 'कामायनी' का फ़्रांसीसी और चीनी भाषाओं में अनुवाद किया जा चुका है।

आधुनिक काल के चर्चित कवि कुंवर नारायण की रचना 'आत्मजयी' का इतालवी भाषा में अनुवाद मरियोला अरादी ने किया है। 200 से अधिक हिंदी की साहित्यिक रचनाओं का अनुवाद बल्गारियन भाषा में किया जा चुका है, जिनमें उदय प्रकाश, निर्मल वर्मा, कुँवर नारायण, डॉ. अजय नावरिया आदि प्रमुख हैं।[6] इसके अतिरिक्त राहुल सांकृत्यायन, वृंदावनलाल वर्मा, जैनेंद्र कुमार, उपेंद्रनाथ अश्क, सुदर्शन, शिवदान सिंह चौहान, रामविलास शर्मा, प्रकाश चंद्र गुप्त आदि अनेक हिंदी साहित्यकारों की रचनाएँ अनुवाद के माध्यम से संपूर्ण विश्व में भारतीय समाज और संस्कृति का प्रचार-प्रसार करने में सफल हुई हैं।

भारतीय संस्कृति, भारतीय दर्शन, भारतीय चिंतन हमारे वेदों, पुराणों, उपनिषदों, पुराकथाओं, पुराख्यानों में भरा पड़ा है। आज सारा विश्व वर्तमान में व्याप्त कोरोना जैसी विकट समस्याओं के निदान पाने के लिए पुन: भारत की ओर देख रहा है। ऐसे में, हमारे साहित्यिक ग्रंथों का अनुवाद भारतीय संस्कृति को वैश्विक स्वरूप प्रदान करने में अत्यधिक सहायक सिद्ध हो सकता है।

भारतीय संस्कृति ने जिस अनेकता में एकता को समाहित किया हुआ है, विश्व को उसका परिचय हम अनुवाद के माध्यम से ही दे सकते हैं। इसी प्रकार विश्व में जो भी श्रेष्ठ चिंतन हुआ है, जो भी महत्त्वपूर्ण साहित्य सृजन हुआ है, जो भी वैज्ञानिक-तकनीकी उन्नति

हुई है, उसे हम हिंदी में अनुवाद के माध्यम से अपने देश के लिए उपयोगी बना सकते हैं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने जिस 'निज भाषा की उन्नति' की बात की थी, वह भी अनुवाद के माध्यम से ही संभव हुई है। इसीलिए भारतेंदु और द्विवेदी युग के अनेक साहित्यकारों ने श्रेष्ठ विदेशी साहित्य और विविध विषयों के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों को हिंदी में अनूदित किया, जिससे हिंदी समृद्ध हुई। इसी प्रकार वेदव्यास, वाल्मीकि, पंडित विष्णु शर्मा, कालिदास, तुलसीदास, कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर, प्रेमचंद, फ़णीश्वरनाथ 'रेणु', मोहन राकेश आदि संस्कृत और हिंदी के साहित्यकारों को विश्व में अनुवाद के माध्यम से जाना, पहचाना और सराहा भी गया। रवींद्रनाथ ठाकुर की प्रसिद्ध रचना 'गीतांजलि' का यदि अंग्रेज़ी में अनुवाद न हुआ होता, तो शायद उन्हें साहित्य का नोबेल पुरस्कार भी न प्राप्त हुआ होता। इन सब से यह सिद्ध होता है कि साहित्यिक अनुवाद भारतीय संस्कृति के वैश्विक विस्तार में सहायक है।

अत: भारतीय संस्कृति के वैश्विक विस्तार में साहित्यिक अनुवाद की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

संदर्भ :

1. रामचंद्र वर्मा, संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर
2. राजभाषा भारती, अंक 129 अप्रैल-जून 2010

sdrrvshrma@gmail.com

हिंदी का ई-संसार और जन-माध्यम

1. ई-संसार में विस्तृत होता हिंदी साम्राज्य - श्रीमती मंजुला वाधवा

2. हिंदी का ई-संसार - डॉ. रविन्द्र सिंह एवं श्रीमती अरुण कमल

3. हिंदी के विकास में दूरदर्शन का विश्वव्यापी योगदान - डॉ. नीलम शर्मा

4. तकनीकी से संवरता हिंदी का ई-संसार - श्री संजय चौधरी

5. जन-संचार और हिंदी - श्री अमर कुमार चौधरी

6. प्रवासी भारतीय समस्या और 19वीं सदी की हिंदी पत्रकारिता - डॉ. राकेश कुमार दूबे

7. नए संचार माध्यम और हिंदी के बढ़ते कदम - डॉ. कमलेश गोगिया

ई-संसार में विस्तृत होता हिंदी साम्राज्य

श्रीमती मंजुला वाधवा
लखनऊ, भारत

21वीं सदी की सुबह इंटरनेट, सूचना विज्ञान एवं तकनीकी के नाम लिखी गई। अनुमान है कि आज से 5 वर्ष बाद सूचना-संसार हर 10 घंटे में दुगुना होगा और मनुष्य एक प्रकार के इंफ़ो-हाउस और इंफ़ो-सोसायटी का अंग होगा, अपने जागृत समय का अधिकतर भाग ऐसे ही इंफ़ो-हाउस में व्यतीत करेगा और उसका हर कार्य सूचना के दायरे में रहेगा।

सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में कंप्यूटर का महत्त्व कल्पवृक्ष से कम नहीं है, जिससे व्यवसाय, वाणिज्य, जन-संचार, शिक्षा, चिकित्सा, राजनीति आदि सभी क्षेत्र लाभान्वित हुए हैं। कंप्यूटर व आई.टी. के क्षेत्र में जो विकास हुआ है, वह भाषा के क्षेत्र में भी मौन क्रांति का वाहक बनकर आया है। अभी तक भाषा जो केवल मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा कर रही थी, उसे मशीन व कंप्यूटर की नित नई भाषायी माँगों को पूरा करना पड़ रहा है। सभी कार्यालयों में अधिकांश काम कंप्यूटरों पर ही किए जाते हैं। यूनिकोड के अस्तित्व में आने के बाद, अब हर कंप्यूटर और लैपटॉप यहाँ तक कि स्मार्ट फ़ोन पर भी हिंदी में काम करना व करवाना बड़ा मुद्दा नहीं रह गया है। अंतर्राष्ट्रीय मानक यूनिकोड में हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं सहित विश्व की लगभग 200 भाषाओं के लिए कोड निर्धारित किए गये हैं। जैसे अंग्रेज़ी भाषा अथवा रोमन लिपि के लिए एरियल फ़ॉण्ट की एनकोडिंग की गयी है, उसी तरह हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के लिए निर्मित आधुनिक यूनिकोड फ़ॉण्टों की भी एनकोडिंग की गयी है, जिसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एप्पल, आई.बी.एम, माइक्रोसॉफ़्ट, सैप, साइबेस, यूनिसिस जैसी प्रमुख आई.टी. कंपनियों ने अपनाया है। यूनिकोड 16 बिट की एक एनकोडिंग व्यवस्था है, जो कि पालि और प्राकृत जैसी प्राचीन भाषाओं से भी परिचित है। एक कम्प्यूटर के पाठ को दुनिया के किसी भी अन्य यूनिकोड आधारित कम्प्यूटर पर खोला व पढ़ा जा सकता है। यूनिकोड आधारित कम्प्यूटरों पर, कोई भी कार्य भारत की किसी भी भाषा में किया जा सकता है, बशर्ते 'ऑपरेटिंग सिस्टम' में संस्थापित सॉफ़्टवेयर में यूनिकोड की व्यवस्था हो। आज बाज़ार में आने वाला हर नया कंप्यूटर व अन्य गैजेट न सिर्फ़ हिंदी में, बल्कि दुनिया की अधिकतर भाषाओं में कार्य करने में सक्षम है, क्योंकि ये सभी लिपियाँ यूनिकोड मानक में शामिल हैं।

वर्तमान समय में हिंदी 'ग्लोबल हिंदी' में परिवर्तित हो गयी है। आज तकनीकी विकास के युग में दूसरे देशों के लोग भी हिंदी भाषा सीख रहे हैं। भारत व चीन के व्यावसायिक संबंधों को बढ़ाने की संभावनाओं की तलाश के लिए लगभग दस हज़ार लोग बीजिंग में हिंदी सीख रहे हैं। आज मोबाइल ने लैंडलाइन का स्थान ले लिया है। कई मोबाइल कंपनियाँ - सोनी, नोकिया, सैमसंग आदि हिंदी टंकण, हिंदी वॉइस सर्च व हिंदी भाषा में इंटरफ़ेस की सुविधा प्रदान कर रही हैं, आईपैड में भी हिंदी लिखने की सुविधा उपलब्ध है। अंग्रेज़ी के साथ-साथ आज हिंदी का नेटवर्क पूरे विश्व में फैलता जा रहा है। 'जागरण', 'वेब दुनिया', 'नवभारत टाइम्स', 'विकिपीडिया हिंदी', 'भारत कोश', 'कविता कोश', 'गद्य कोश', 'हिंदी नेक्स्ट डॉट कॉम', 'हिंदी समय डॉट कॉम' आदि इंटरनेट साइटों पर हिंदी सामग्री देखी जा सकती है। आज एस.एम.एस. से खाता-शेष तक की जानकारियाँ हिंदी तथा क्षेत्रीय भाषाओं में प्राप्त की जा सकती हैं। भारत सरकार के गृह मंत्रालय के तत्वावधान में कार्यरत सी-डैक (पुणे) बाईस भाषाओं में अपने विभिन्न तकनीकी आयामों से वेबसाइटों, सॉफ़्टवेयरों, रिपोर्टों, वेबसाइट-निर्माण, रिज़र्व बैंक के राजभाषा रिपोर्ट जेनेरेशन सॉफ़्टवेयर (आर.आर.जी.एस.) निर्माण आदि के कार्य कर भाषायी एकता के क्रम में योगदान दे रहा है।

सोशल नेटवर्किंग साइटें इस पहल में सबसे आगे हैं। फ़ेसबुक, ट्विटर, गूगल प्लस आदि साइटें अब हिंदी में उपलब्ध हैं और हिंदी में इनका उपयोग खूब हो रहा है। आज ओटीटी में हिंदी है, ट्विटर के हैशटैग हिंदी में हैं और लोगों के दिलों तक पहुँचने की भाषा भी हिंदी है। फ़ेसबुक पर गालिब के लिप्यंतरित शेर वह मज़ा नहीं देते, जो हिंदी में लिखे शेर देते हैं। लोग हिंदी में पोस्ट लिख रहे हैं, ट्वीट कर रहे हैं, हिंदी में पढ़ रहे हैं और हिंदी में टिप्पणियाँ भी कर रहे हैं। गूगल की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में 60

प्रतिशत लोग वॉइस-असिस्टेंट का प्रयोग हिंदी में करते हैं। यूट्यूब पर देखे जाने वाले हर वीडियो में से 90 प्रतिशत भारतीय भाषाओं में होते हैं। पिछले वर्षों के मुकाबले गूगल ट्रांसलेट का इस्तेमाल 17 प्रतिशत से ज़्यादा बढ़ा है। विदेशी कंपनियाँ समझ गई हैं कि अगर उन्हें भारतीय बाज़ार में टिकना है, तो हिंदी में कंटेंट देना होगा। हिंदी ब्लॉगर के ज़रिए ब्लॉगरों ने धूम मचा रखी है। हिंदी माध्यम से भारत में जितनी ब्लॉगिंग हो रही है, उतनी संभवतः अंग्रेज़ी सहित किसी अन्य भाषा में नहीं हो रही है। विश्व के किसी भी कोने से कभी भी और कोई भी खबर फ़िल्म का रूप धारण कर लेती है। यह बात आश्चर्यजनक होने के बावजूद वास्तविक है।

स्मार्टफ़ोन अब भारतीय बाज़ार में उतरने की बुनियादी ज़रूरत बन चुकी है। लगभग सभी मोबाइल-निर्माता हिंदी इंटरफ़ेस और लेखन को अनिवार्य सुविधा के रूप में पेश कर रहे हैं। ओप्पो जैसी चीनी कंपनियाँ भी पहले अपने फ़ोन में हिंदी इंटरफ़ेस ला रही हैं, फिर भारतीय बाज़ार में प्रवेश कर रही हैं। कुछ समय पहले तक स्मार्टफ़ोन को केवल अभिजात्य वर्ग का फ़ोन माना जाता था, जो अंग्रेज़ी बोलता-समझता है। एंड्रॉयड वन जैसे सस्ते स्मार्टफ़ोन से यह धारणा भी टूटी है और अब स्मार्टफ़ोन हर आयु वर्ग की पहुँच में आ चुका है। अब हिंदी भाषा का इंटरफ़ेस देना अनिवार्य है, जो आसानी से उपलब्ध होने लगा है। विंडोज़-फ़ोन, एंड्रॉयड आदि सभी फ़ोन हिंदी बोलने-लिखने में सक्षम हैं। खबर यह भी है कि एप्पल का आई-फ़ोन भी हिंदी इंटरफ़ेस के साथ बाज़ार में आ चुका है, तभी तो बर्मिंघम में एक भाषण में बिल गेट्स का पुत्र यह कहने के लिए मजबूर हो गया कि अंग्रेज़ी को थोड़ा हिंदी-चीनी-स्पेनिश से सजग रहने की आवश्यकता है।

यह एक अहम सवाल है कि सूचना प्रौद्योगिकी में किस भाषा का प्रयोग हो? उत्तर स्पष्ट है - जो भाषा अधिकाधिक लोगों की समझ में आए, जिसका प्रयोग अधिक–से-अधिक लोग करते हों, आई.टी. की भाषा वही होगी। भारत के लगभग 54 करोड़ लोग हिंदी जानते हैं, दुनिया के 4-5 देशों को छोड़कर अन्य सभी देशों में भारतीय मूल के लोग रहते हैं। तभी तो आज से 10 साल पहले 2009 में ही गूगल इस नतीजे पर पहुँच गया था कि हर पाँच वर्षों में हिंदी की सामग्री में 94% की बढ़ोतरी होगी।

1983 में, डॉस आधारित हिंदी शब्द संसाधक, अक्षर, शब्दरत्न का पदार्पण हुआ, तो इसी वर्ष सी-डैक ने जिस्ट (ग्राफ़िक्स एंड इंटैलिजैंस बेज़्ड स्क्रिप्ट टेक्नोलॉजी) का विकास किया। 1986 में, भारतीय भाषाओं के लिए इन्स्क्रिप्ट कुंजीपटल मानक रूप में स्वीकृत हुआ। अक्तूबर 1991 में, यूनिकोड का पहला संस्करण आया। फिर आए आई.एस.एम. और 'लीप ऑफ़िस 2000'। 14 सितम्बर 1996 को पीसी डॉस के हिंदी संस्करण का विमोचन किया गया। लगातार कदम आगे बढ़ाते हुए, 2000 में, सी-डैक के हिंदी ऑपरेटिंग सिस्टम - इंडिक की शुरुआत हुई। 2002 में लिनक्स ऑपरेटिंग सिस्टम और अन्य प्रोग्रामों के हिंदीकरण का आगाज़ हुआ। जुलाई 2003 में हिंदी विकीपीडिया आया, तो 2006 में माइक्रोसॉफ़्ट, एमएसएन और याहू हिंदी में जारी हुए। जनवरी 2007 में आया पहला विंडोज़ संस्करण - विंडोज़ विस्टा, जिसमें हिंदी समर्थित एवं अंतर्निर्मित था, अलग से कोई सेटिंग नहीं करनी पड़ती थी। बस टाइपिंग के लिए कीबोर्ड जोड़ना पड़ता था। मार्च 2007 में गूगल हिंदी समाचार सेवा शुरू हुई और जून 2009 में आई.ओ.ए.एस. संस्करण-3 में आंशिक हिंदी प्रदर्शन समर्थन आया। 3 मई 2010 का दिन तो ऐतिहासिक रहा जब टचस्क्रीन डिवाइसों पर हिंदी टंकण हेतु 'टचनागरी' नामक ऑनलाइन हिंदी कीबोर्ड जारी हुआ। 21 जून 2010 को आईओएएस संस्करण-4 में पूर्ण हिंदी प्रदर्शन समर्थन आया। इस प्रकार इंटरनेट पर चीनी और अंग्रेज़ी के बाद हिंदी सर्वाधिक लोकप्रिय तथा प्रयोग की जाने वाली भाषा बन गई। हिंदी के बड़े बाज़ार की नब्ज़ टटोलते हुए माइक्रोसॉफ़्ट ने अपने सॉफ़्टवेयर उत्पादों से संबंधित सहायक साहित्य तथा मार्गदर्शक सूत्रों को हिंदी में उपलब्ध कराने के प्रयत्न शुरू कर दिए हैं। बहुप्रचलित विंडोज़-विस्टा व विंडोज़ के नवीनतम ऑपरेटिंग-सिस्टम के साथ एम.एस. वर्ड, पावर-प्वाइंट, एक्सेल, नोटपैड, इंटरनेट एक्सप्लोरर जैसे प्रमुख सॉफ़्टवेयर उत्पाद अब हिंदी में कार्य करने की सुविधा प्रदान करते हैं। माइक्रोसॉफ़्ट का लैंग्वेज इंटरफ़ेस पैकेज स्थानीयकरण का बेहतरीन उदाहरण है।

आज से.बी., बी.एस.ई, एन.एस.ई., एल.आई.सी., वाणिज्य बैंक, विकास वित्तीय संस्थाएँ, रिज़र्व बैंक, इसरो आदि सभी की वेबसाइटें हिंदी में उपलब्ध हैं। हिंदी के खेल, पहेलियाँ, रोज़गार के लिए आयोजित प्रतियोगिताएँ, मनोरंजन, सामान्य विज्ञान, बेसिक स्वास्थ्य शिक्षा, ई-बुक, ज्ञानकोश, बी-टू-बी पोर्टल,

सरकारी सूचनाएँ, कॉमिक, कला-शिक्षा, कृषि-शिक्षा आज हिंदी में क्या-क्या उपलब्ध नहीं है? तकनीकी विषयों में जैसे - विज्ञान, स्वास्थ्य, अभियांत्रिकी, फ़ाइनेंस, मैनेजमेंट आदि, हिंदी लेखकों की आवश्यकता तेज़ी से बढ़ रही है, जिससे इस क्षेत्र में सुनहरा कैरियर उभर रहा है। हिमालय से सागर पर्यंत प्रसृत भारतीय संस्कृति (आध्यात्मिकता, नैतिकता, सार्वभौम दर्शन और ज्ञान-विज्ञान) हिंदी के माध्यम से विश्व में प्रकाशित-प्रसारित हो रही है। हिंदी साहित्य में लेखन की विभिन्न विधाओं में, आज नए-नए लेखक मंच स्थापित हो चुके हैं, जो डिजिटल माध्यमों पर अपनी रचनाओं को प्रकाशित कर रहे हैं। इसे हम साहित्य का नया लोकतंत्र कह सकते हैं। हिंदी को अंग्रेज़ी की तरह तकनीकी क्षमता विरासत में नहीं मिली, लेकिन हिंदी कंटेंट की बढ़ती गुणवत्ता ने उसे डिजिटल माध्यमों पर अलग पहचान दिलाई है।

गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग ने अपनी वेबसाइट पर राजभाषा हिंदी में कार्य करने को आसान बनाने के उद्देश्य से कई सॉफ़्टवेयर उपलब्ध कराये हैं। जैसे 'LILA' (Learn Indian Languages with Artificial Intelligence), सीडैक तथा राजभाषा विभाग द्वारा विकसित मशीन-साधित अनुवाद टूल (Machine Assisted Translation Tool) जो राजभाषा के प्रशासनिक, वित्तीय, कृषि, लघु उद्योग, सूचना प्रौद्योगिकी, स्वास्थ्य रक्षा, शिक्षा एवं बैंकिंग क्षेत्रों के दस्तावेज़ों का अंग्रेज़ी से हिंदी में अनुवाद करता है। श्रुतलेखन एक सतत् स्पीकर-इंडीपेंडेंट हिंदी स्पीच रेकग्निशन सिस्टम, जो स्पीच-टू-टेक्सट टूल है, जिसमें प्रयोक्ता माइक्रोफ़ोन में बोलता है तथा कंप्यूटर में मौजूद स्पीच-टू-टेक्स्ट प्रोग्राम उसे प्रोसेस कर टेक्स्ट में बदल कर लिखता है। वाचांतर ध्वनि से पाठ में अनुवाद की एक प्रणाली है, जो अंग्रेज़ी स्पीच से हिंदी अर्थ व अनुवाद करता है । ई-महाशब्दकोश द्विभाषी-द्विआयामी उच्चारण शब्दकोश है, जिसके द्वारा हिंदी या अंग्रेज़ी अक्षरों के माध्यम से शब्दों की सीधी खोज की जा सकती है। पुराने फ़ॉण्टों में किया काम यूनिकोड में बदलने के लिए 'परिवर्तक' है, तो लिपियों को बदलने का सॉफ़्टवेयर 'गिरगिट' उपलब्ध है। भारतीय भाषाओं के बीच अनुवाद करने हेतु 'अनुसारक' नामक सॉफ़्टवेयर भी है। हिंदी ऑप्टिकल कैरेक्टर के माध्यम से ओ.सी.आर. इनपुट – ओ.सी.आर. आउटपुट में 15-16 वर्ष के पहले की सामग्री को भी परिवर्तित किया जा सकता है। गूगल के टूलों में वाचक, प्रवाचक, गूगल टेक्स्ट-टू-स्पीच, गूगल वॉइस टाइपिंग आदि हैं। दिव्यांगों के लिए यह सुविधा वरदान साबित हुई है। दिसंबर 2009 में लॉन्च किया गया 'माइक्रोसॉफ़्ट इंडिक लैंग्वेज इनपुट टूल' भारतीय भाषाओं के लिए सरल टाइपिंग टूल है। यह वर्चुअल कीबोर्ड द्वारा बिना कॉपी-पेस्ट के झंझट के, विंडोज़ में किसी भी एप्लीकेशन में सीधे हिंदी में लिखने की सुविधा प्रदान करता है। यह टूल शब्दकोश आधारित ध्वन्यात्मक लिप्यंतरण विधि का प्रयोग करता है। प्रयोक्ता को लिप्यंतरण स्कीम को याद रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती है और यह पहली बार हिंदी टाइप करने वालों के लिए काफ़ी सुविधाजनक रहता है।

आज का युग डिजिटल हिंदी का युग है, भाषाई समर्थन ने तकनीकी विभाजन की दूरी पाटने में अहम भूमिका निभाई है। अब कंप्यूटर पर भारतीय भाषाएँ केवल टंकण तक सीमित न रहकर सॉर्टिंग, इंडेक्सिंग, सर्च, मेल-मर्ज, हैडर-फ़ुटर, फ़ुटनोट, टिप्पणियाँ आदि सभी कंप्यूटरी कार्यों में सक्षम हो गई हैं। इससे सुखद अनुभूति कोई नहीं कि आई.टी. में मनचाही जानकारी और उत्पाद हिंदी में आसानी से उपलब्ध हो रहे हैं। विकासशील समाज अध्ययनपीठ (Csdm) ने कहा है - *"आज हिंदी भारतीय भाषाओं के बीच बौद्धिक संपर्क सूत्र के रूप में अंग्रेज़ी की जगह ले रही है। प्रकाशन, अनुवाद, हिंदी अखबारों और टीवी चैनलों ने बाज़ार में धूम मचा रखी है।"* नेशनल रीडरशिप सर्वे 2006 के बारे में 'द हिंदू' की 30 अगस्त 2006 की रिपोर्ट के अनुसार - *"20वीं सदी के आखिरी सालों में आए हिंदी-बूम की जड़ में हिंदी की व्यावसायिक ताकत बढ़ी है, हिंदी प्रकाशनों ने प्रसार-संख्या में अंग्रेज़ी प्रकाशनों को बहुत पीछे छोड़ दिया है, पर ध्यान में रखना होगा कि जिस हिंदी की हम बात कर रहे हैं, उसने अपना रंग-रूप बदल दिया है।"*

जुलाई 2015 में भारत सरकार ने 'डिजिटल इंडिया' अभियान की शुरुआत की, जिसके दो बड़े मकसद थे -

1. दूरदराज़ के इलाकों में इंटरनेट पहुँचाना।
2. हिंदी तथा स्थानीय भारतीय भाषाओं के माध्यम से देश-दुनिया की जानकारी आम जन तक पहुँचाते हुए उन्हें सशक्त बनाना।

इंटरनेट एण्ड मोबाइल एसोसियेशन ऑफ़ इंडिया ने इस

हकीकत को समझते हुए कि भारत जैसे देश में हिंदी के माध्यम से इंटरनेट तक पहुँच बेहद ज़रूरी है, इस दिशा में अनेक प्रयास करने शुरू किए। कुछ उम्दा कोशिशें हैं - शब्दकोशों के डिजिटलीकरण हेतु भारत के सबसे बड़े ऑनलाइन पोर्टल 'भारतवाणी' का श्रीगणेश, फ़रवरी 2016 में, 100 से भी अधिक संस्थाओं की पुस्तकें-पत्रिकाएँ डिजिटल रूप में उपलब्ध कराने के लिए राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय की स्थापना, भारत के अनेक राज्यों में भूमि रिकॉर्डों तथा कार्यवाहियों का डिजिटलीकरण, रेलवे की इस दिशा में तरक्की हिंदी के माध्यम से कंप्यूटरीकृत भारत की शानदार तस्वीर पेश करती है। कोरोना काल में तो हिंदी साहित्य का ई-संप्रेषण बेतहाशा बढ़ा। हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में पुराने-नए कवि-कथाकार सोशल मीडिया के ज़रिए डायरी, निबंध, लघुकथा, व्याख्यान और कविता द्वारा खुद को अभिव्यक्त कर रहे हैं।

बेशक हिंदी के माध्यम से कंप्यूटरीकरण और डिजिटलीकरण के क्षेत्र में हम अनेक मंज़िलें तय कर चुके हैं, परंतु राह में चुनौतियाँ अभी बहुत हैं। ए.डो.बी. पेजमेकर के लिए फ़ॉण्ट कन्वर्टर भले ही विकसित कर लिए गए हों, पर आज भी उनमें आपसी कम्पैटिबिलिटी की समस्या फ़ॉण्ट परिवर्तित टेक्स्ट के बीच-बीच में जंक के रूप में नज़र आती है। चीन और जापान जैसे देश माइक्रोसॉफ़्ट को अपनी भाषा में ब्राऊज़र और आपॅरेटिंग सिस्टम बनाने के लिए बाध्य करने में कामयाब हुए, परंतु इसके लिए जिस इच्छाशक्ति की ज़रूरत है, वह हमारे देश में भी कम नहीं है।

दूसरी समस्या है - (हिंदी के भाषाई मानकीकरण और सरलीकरण के लिए चलने वाली प्रक्रियाओं का हिंदी के तकनीकी विकास के साथ तालमेल न होना)। जहाँ मानव संसाधन मंत्रालय के स्तर पर भाषाई परिमार्जन और परिवर्धन के प्रयास चलाए जाते हैं, वहीं तकनीकी विकास से जुड़े हुए मामलों को सूचना प्रौद्योगिकी विभाग देखता है। इसी तरह निजी, अकादमिक और शैक्षणिक क्षेत्रों में होने वाले शोध, मीमांसा, मूल्यांकन, समीक्षा तथा अन्य भाषाई घटनाक्रम का तकनीकी क्षेत्र के साथ सीधा संबंध नहीं होता। ज़रूरत है, भाषाविद् तकनीक की सीमाओं तथा विशेषताओं से परिचित हों, ताकि तकनीकी विशेषज्ञ और विकासकर्ता भाषा की ज़रूरतों और बदलावों को समझ सकें।

आज भी अधिकतर भारतीयों को ऑपरेटिंग सिस्टम चलाना नहीं आता। यूनिकोड और इसके फ़ायदों के बारे में जानकारी नहीं है। कार्यालयों में, अक्सर पुराने हार्डवेयर युक्त कंप्यूटर होते हैं। यहाँ काम करने वाले लोग नए ऑपरेटिंग सिस्टम को चलाने में सक्षम नहीं होते हैं। 2017 तक भारत के गाँवों में मात्र 37% परिवारों को ही कंप्यूटर और इंटरनेट सुविधा मुहैया हो पाई थी। हिंदी टाइपिंग की इन्स्क्रिप्ट और फ़ोनेटिंग प्रणालियों के बारे में आज भी ज़्यादातर लोगों को ज्ञान नहीं है। बेशक इंटरनेट पर हिंदी प्रकाशनों का विस्तार तेज़ी से हो रहा है, किंतु कई बार प्रकाशनों का स्तर और उनकी भाषा निराश कर देती है। अधिकतर वेब मीडिया की भाषा अनौपचारिक है, लेकिन स्तर तो बनाए रखा जा सकता है। हिंदी प्रकाशनों में से 93.42% निजी प्रकाशन हैं, जबकि अंग्रेज़ी में 56.38%, जिससे सहज निष्कर्ष निकलता है कि हिंदी के प्रकाशन अधिकतर निजी हैं, जिस कारण उन्हें ठोस धरातल नहीं मिलता। अगली बात, अधिकतर सोशल नेटवर्किंग साइटें 'कथ्य' उपलब्ध कराती हैं 'तथ्य' नहीं। तथ्य सरल सुलभ न होकर खोजने पड़ते हैं। भाषा उपयोग में विश्व पटल पर अपना स्थान न बना पाने का एक अन्य कारण है – वेबसाइट विकास में सही भाषा मेटा-टैग और विषयवस्तु भाषा-टैग का इस्तेमाल न किया जाना। दैनिक समाचार-पत्रों और ब्लॉगों के वेब-पृष्ठ स्रोत देखें, तो पाएँगे कि वेबसाइटें तो हिंदी में हैं, लेकिन उसका भाषा मेटा-टैग अंग्रेज़ी में दिए जाने के कारण सर्च इंजन उसे अंग्रेज़ी का ही समझते हैं। जब तक दैनिक पत्रों के पास वेब संपादक न होंगे, जो वेब की समझ रखते हों, तब तक हिंदी में वेब-पत्रकारिता का सुचारु विकास हो पाना संभव नहीं है। पिछले कुछ अरसों से हिंदी में ओ.सी.आर. (ऑप्टिकल कैरेक्टर रिकॉग्निशन) को जो मुद्रित हिंदी सामग्री के डिजिटलीकरण के लिए ज़रूरी औज़ार है, तैयार करने के प्रयास हो रहे हैं, परंतु अभी तक वांछित परिणाम नहीं आ पाए हैं।

निष्कर्षत: आज ज़रूरत इस बात की है कि हिंदी के भविष्य की वर्तमान उजली तस्वीर के बीच हम हिंदी को प्रौद्योगिकी के अनुरूप ढालने की कोशिश करें। कंप्यूटर पर केवल यूनिकोड को अपनाकर हम अर्ध-मानकीकरण तक ही पहुँच पाएँगे। ज़रूरत है, यूनिकोड के साथ इन्स्क्रिप्ट कीबोर्ड ले-आउट को अपनाने की,

ताकि पूर्ण मानकीकरण सुनिश्चित किया जा सके। हिंदी साहित्य या समाचार आधारित वेबसाइटों के अलावा तकनीकी, विज्ञान, वाणिज्य आदि विषयों पर वेबसाइट तैयार करने और उपयोगी अंग्रेज़ी साइट को हिंदी में तैयार करने की भी ज़रूरत है। इन सबके बीच अपनी भाषा की प्रकृति को बरकरार रखते हुए इसमें लचीलापन लाना होगा। यदि हम चाहते हैं कि आई.टी. के आधुनिक युग में, हिंदी विश्व फलक पर, सचमुच सार्थक स्थान बनाए, तो हमें वेब पर उसकी उपस्थिति मात्र से ही संतुष्ट होकर बैठना नहीं चाहिए, बल्कि उसका विकास सही तरीके से करते हुए, विकास के व्यापक प्रभावों और परिणामों पर हमें विचार करना होगा और उन्हें गुणवत्ता प्रदान करनी होगी। जितनी तेज़ी से प्रौद्योगिकी में हिंदी बढ़ रही है, उतनी ही तेज़ी से साइबर अपराध भी बढ़ रहे हैं। दुनिया में, प्रतिदिन लगभग 32 हज़ार वेबसाइटें हैक होती हैं। इन सब पर नियंत्रण निकट भविष्य की माँग है। अगर हम भारतीय भाषाओं के संख्या-बल को, सेवा-प्राप्तकर्ता से सेवा-प्रदाता में बदल दें, तो भारत जितनी बड़ी तकनीकी शक्ति आज है, उसकी शक्ति बढ़ जाएगी।

संदर्भ सूची :

1. www.bbc.com>hindi
2. palpalhindi.com
3. www.thehindu.com
4. www.google.com
5. www.rajbhasha.gov.in
6. विकासशील समाज अध्ययनपीठ CSDM
7. दॅ हिंदू की 30 अगस्त 2006 की रिपोर्ट
8. www.statista.com
9. www.zippia.c om

manjula.jaipur@gmail.com

हिंदी का ई-संसार

डॉ. रविन्द्र सिंह एवं श्रीमती अरुण कमल
नई दिल्ली, भारत

विश्व की सबसे ज़्यादा बोली जाने वाली भाषा अंग्रेज़ी है। ताजा सर्वेक्षणों के अनुसार 24 करोड़ लोगों की मातृभाषा हिंदी है और 42 करोड़ लोगों की तीसरी भाषा हिंदी है और पूरे विश्व में लगभग 1 अरब 30 करोड़ लोग हिंदी बोलने और समझने में सक्षम हैं। इसके प्रमुख कारण हैं - डिजिटल हिंदी का बढ़ता प्रसार और द्रुत गति से बढ़ता 'हिंदी का ई-संसार'। हिंदी बहुत तीव्र गति से व्यापक और लोकप्रिय होती जा रही है। यह भारत में आई.टी. के बढ़ते प्रसार का परिणाम है कि आज ई-हिंदी जन-जन तक पहुँच गई है। भारत में आई.टी. के प्रसार पर बात करते हुए, क्यों न आज इस चर्चा की शुरुआत हिंदी और भारतीय भाषाओं के लिए समर्पित एक व्यक्तित्व श्री बालेन्दु शर्मा दाधीच के हाल ही में प्रकाशित एक लेख के कुछ संदर्भों के साथ करें।

श्री बालेन्दु लिखते हैं -*"भारत सूचना प्रौद्योगिकी में विश्व के अग्रणी देशों में बना हुआ है। इन क्षेत्रों में बढ़त बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि नीतिगत समर्थन सहित ज़रूरी पारिस्थिति मौजूद हों और विकास का स्वस्थ सिलसिला चले।"* आज का भारत ऐसा ही है। पिछले 75 वर्षों में सूचना-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में की गई प्रगति को बरकरार रखने और आगे बढ़ाने के लिए अधिकांश ज़रूरी साधन देश में मौजूद हैं। इसे सरकारी सेवाओं के आई.टी. आधारित प्रसार, कृत्रिम बुद्धिमत्ता पर हमारे बढ़ते फ़ोकस, सेमीकंडक्टरों के क्षेत्र में हुईं नई पहलों, स्मार्टफ़ोन विनिर्माण में बदलती परिस्थितियों, आई.टी. स्टार्टअप्स की बढ़ती संख्या और तकनीकी शिक्षा को भारतीय भाषाओं तक पहुँचाने की मौजूदा पहल के रूप में देखा जा सकता है।

हमारे आई.टी. तंत्र से उपभोक्ता के रूप में जुड़े लोगों की संख्या भी बेहद बढ़ चुकी है, जो स्मार्टफ़ोन, इंटरनेट, सोशल मीडिया, मोबाइल-एप्स आदि के विकास में ईंधन का काम कर रही है। न सिर्फ़ भारतीय, बल्कि विदेशी कंपनियों के लिए भी भारत का बढ़ता आई.टी. संख्या-बल कितना कीमती है, इसकी झलक यूट्यूब, व्हाट्सएप्प, गूगल, फ़ेसबुक, ट्विटर आदि के प्रयोक्ताओं की तुलनात्मक संख्या से स्पष्ट होती है, जहाँ भारत शीर्ष तीन-चार उपभोक्ताओं में से एक है। कोई भी देशी-विदेशी कंपनी इस संख्या बल को खोने की कल्पना भी नहीं कर सकती।

भारत में आई.टी. का प्रसार यूँ ही नहीं हुआ। इस प्रसार में, भाषा ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह तब संभव हो पाया जब ये सुविधाएँ, भारत में जन-जन के पास, जन-जन की भाषा में पहुँचीं। इसलिए भारत के साथ-साथ इस विशाल संख्या-बल को देखते हुए, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भी हिंदी और अन्य प्रमुख भारतीय भाषाओं को छोड़कर नहीं चल सकीं, जिनमें दो सर्वप्रमुख हैं - एक गूगल और दूसरा माइक्रोसॉफ़्ट। दोनों ही कंपनियों ने लगातार ई-हिंदी को प्रयोक्ता-सुलभ बनाया है और वे बहुत तीव्र गति से अपनी सुविधाओं को लगातार बेहतर और विस्तृत बनाते चले जा रहे हैं।

यहाँ हम न हिंदी शब्द विकास की और ना ही भाषा के उद्भव या इतिहास की बात करेंगे। इन सब के अलावा भाषा का एक और पक्ष है - भाषा की सोच और उसकी गहराई। आज हिंदी भाषा की लिपि और व्याकरण की वैज्ञानिकता से सभी अचंभित हैं। सोचिए, हिंदी भाषा की प्राथमिक इकाई, जिसे हम अक्षर कहते हैं, अक्षर का अर्थ क्या है? - जिसका कभी क्षरण न हो या अविनाशी। ऐसे तीन अक्षरों - 'अ', 'उ' और 'म' को मिलाकर बना है 'ॐ'। माना जाता है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से सदा 'ॐ' की ध्वनि निकलती रहती है। हमारी हर श्वास से 'ॐ' की ही ध्वनि निकलती है और 'ॐ' में इतनी शक्ति होती है कि यदि इसे किसी भी मंत्र से पहले जोड़ दिया जाए, तो वह मंत्र अत्यंत शक्ति-सम्पन्न हो जाता है। ऐसे अक्षरों का जनक राष्ट्र भारत है, जिसमें सैकड़ों भाषाएँ बोली जाती हैं, लेकिन उन सभी भाषाओं में सिर्फ़ 121 ऐसी भाषाएँ हैं, जिन्हें बोलने वालों की संख्या 10,000 से अधिक है, और इन 121 भाषाओं के बीच सिर्फ़ 22 भाषाएँ ऐसी हैं, जिन्हें संविधान द्वारा मान्यता दी गई है। भारत के 90 प्रतिशत लोग इन्हीं भाषाओं का प्रयोग करते हैं। इन 22 भाषाओं में से हिंदी एक ऐसी भाषा है, जिसे बोलने और समझने वालों की संख्या, भारत की कुल जनसंख्या का 40 प्रतिशत है।

वर्तमान स्थिति के अनुसार हिंदी तीसरे स्थान पर है। विकिपीडिया पर उपलब्ध जानकारी के अनुसार दस सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं का क्रम निम्नलिखित है –

क्रम	भाषा	वक्ता (मिलियन में)
1	अंग्रेज़ी	1,132
2	मन्दारिन चीनी	1,117
3	हिंदी	615
4	स्पेनी	534
5	फ़्रांसीसी	280
6	अरबी	274
7	बांग्ला	265
8	रूसी	258
9	पुर्तगाली	234
10	इंडोनेशियाई	198

मुंबई विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय लिखते हैं - *"आज बोलने वालों की संख्या के आधार पर चीनी के बाद विश्व की दूसरी सबसे बड़ी भाषा हिंदी बन गई है। इस बात को सर्वप्रथम सन् 1999 में 'मशीन ट्रांसलेशन समिट' अर्थात् यांत्रिक अनुवाद नामक संगोष्ठी में टोकियो विश्वविद्यालय के प्रो. होजुमि तनाका ने भाषाई आँकड़े पेश करके सिद्ध किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत आँकड़ों के अनुसार विश्वभर में चीनी भाषा बोलने वालों का स्थान प्रथम और हिंदी का द्वितीय है।"*

लेकिन अधिकांश सर्वेक्षणों के आधार पर अंग्रेज़ी और मंदारिन के बीच प्रथम स्थान के लिए अभी संघर्ष की स्थिति बनी हुई है, किसी सर्वेक्षण में मंदारिन को पहले स्थान पर दिखाया जाता है और किसी सर्वेक्षण में अंग्रेज़ी को प्रथम स्थान पर। लेकिन हर दावे में हिंदी को तीसरे स्थान पर दिखाया जा रहा है। स्पेनिश मौजूदा स्थिति के अनुसार चौथे स्थान पर है। लेकिन पूरे विश्व में सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषाओं में अगर शुरू की पंद्रह भाषाओं पर नज़र डालें, तो हम पाएँगे कि इनमें से चार भाषाएँ भारत से हैं और दस भाषाओं में दो भारतीय भाषाएँ हैं - हिंदी और बांग्ला। हिंदी इन सभी में सबसे आगे है।

डॉ. हरीश कुमार सेठी अपने आलेख हिंदी का अंतरराष्ट्रीय संदर्भ : विविध आयाम में लिखते हैं : *"किसी भाषा के राष्ट्रीय होने के दो प्रमुख आधार माने जाते हैं। इसमें पहला प्रयोक्ता की संख्या से संबंधित है, तो दूसरा भाषा की अंतर्शक्ति है।"* वैश्विक संदर्भ में प्रयोक्ताओं की संख्या की दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि हिंदी प्रयोक्ताओं की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। हिंदी विश्व की सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है, कतिपय विद्वानों ने इसे विश्व की प्रथम भाषा भी सिद्ध किया है।

हिंदी में आज वह सभी सुविधाएँ उपलब्ध हैं, जो उसके आगे बढ़ने के लिए ज़रूरी हैं। इंटरनेट पर हिंदी की मौजूदगी लगातार बढ़ रही है। इंटरनेट पर हिंदी पढ़ने वालों की संख्या हर वर्ष 94 प्रतिशत बढ़ रही है। जबकि अंग्रेज़ी के बढ़ने की गति 17 प्रतिशत है। 2016 तक इंटरनेट पर 2.2 करोड़ डिजिटल पेमेंट के लिए हिंदी का प्रयोग हो रहा था, अब 2020 तक अंक 8.1 करोड़ तक पहुँच गया है। आज इंटरनेट पर हिंदी का प्रयोग करने वाले लोगों की संख्या करीब 20 करोड़ है। 2016 तक डिजिटल माध्यम से हिंदी में समाचार प्राप्त करने वाले लोग 5.5 करोड़ थे, जो 2021 में 14.4 करोड़ तक पहुँच गए हैं।

यूनिकोड के आने से पहले कंप्यूटर की दुनिया में सिर्फ़ कुछ ही भाषाएँ थीं, जिनमें अंग्रेज़ी सर्वप्रमुख थी, लेकिन यूनिकोड के आने के बाद से विश्व भर की करीब 150 भाषाओं में कंप्यूटर पर काम शुरू हो चुका है और इन डेढ़ सौ भाषाओं में सिर्फ़ हिंदी ही नहीं, बल्कि भारतीय मूल की कई भाषाएँ भी हैं। यूनिकोड के आने से टाइपिंग की समस्या का समाधान हो गया। फ़ाइल ट्रांस्फ़र करने या कहीं और जाकर प्रस्तुति देने की समस्या का समाधान हो गया। यूनिकोड के आने के साथ हिंदी के डिजिटल सफ़र की शुरुआत हुई, जिसने हिंदी के सामने अनेकानेक पथ खोल कर रख दिए, जिनमें से कुछ यहाँ बिंदुवार प्रस्तुत हैं :

हिंदी के विकास में इंटरनेट की भूमिका

कम्प्यूटर और इंटरनेट के आने के बाद संचार के क्षेत्र में काफ़ी परिवर्तन देखने को मिले हैं। राजनीति से लेकर संस्कृति तक, सब क्षेत्रों में बदलाव आए हैं। विकसित देशों में भी हिंदी

अध्ययन की चाह बढ़ रही है। कारण यह है कि किसी भी बहुराष्ट्रीय कंपनी या देश को अपना उत्पाद बेचने के लिए आम आदमी तक पहुँचना आवश्यक है और इसके लिए जनभाषा ही सबसे सशक्त माध्यम है। यही कारक हिंदी के प्रचार-प्रसार में सहायक सिद्ध हो रहा है। इंटरनेट के प्रसार से किसी को अगर सबसे ज़्यादा लाभ हुआ है, तो वह हिंदी भाषा ही है। गूगल और माइक्रोसॉफ़्ट जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अब हिंदी को प्राथमिकता दे रही हैं। कितने ही ई-कॉमर्स साइटों ने अपने हिंदी 'एप्प' लॉन्च किए हैं। यदि हम गूगल-के.पी.एम.जी. रिसर्च, सेंसस इंडिया और आई.आर.एस. की सर्वे रिपोर्ट को मानें, तो साल 2023 तक हिंदी में इंटरनेट उपयोग करने वाले अंग्रेज़ी में इंटरनेट इस्तेमाल करने वालों से अधिक हो जाने की संभावना है। एक अनुमान के मुताबिक वर्ष 2023 तक 20.1 करोड़ लोग हिंदी का उपयोग कर रहे होंगे।

आज पचास से अधिक देशों के पाँच सौ से अधिक केंद्रों में हिंदी पढ़ाई जाती है। कई केंद्रों में स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी के अध्ययन-अध्यापन के साथ ही पी.एच.डी. करने की सुविधा भी उपलब्ध है। विश्व के लगभग एक सौ चालीस देशों तक हिंदी किसी-न-किसी रूप में पहुँच चुकी है। आज हिंदी के माध्यम से संपूर्ण विश्व भारतीय संस्कृति को आत्मसात कर रहा है। इन सभी में ई-हिंदी की भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता है। विमलेश कांति वर्मा ने अमेरिका के डॉक्टर शोमर को उद्धृत करते हुए लिखा है कि "यहाँ के 113 विश्वविद्यालयों और कॉलिजों में हिंदी-शिक्षण की व्यवस्था है, जिनमें से 13 शोध स्तर के केंद्र हैं।" प्रदीप चावला 2018 में प्रकाशित अपने लेख में कहते हैं : "मौजूदा समय में हिंदी 'ग्लोबल हिंदी' में परिवर्तित हो गयी है, आज तकनीकी विकास के युग में दूसरे देशों के लोग भी, भले ही विपणन के लिए ही सही, हिंदी भाषा सीख रहे हैं। आज स्थिति यह है कि भारत व चीन के व्यावसायिक संबंधों को बढ़ाने की संभावनाओं को तलाशने के लिए लगभग दस हज़ार लोग बीजिंग में हिंदी सीख रहे हैं।"

विश्व की कुल जनसंख्या 7 अरब है और अंग्रेज़ी बोलने वालों की संख्या 36 करोड़, जिनकी प्रथम भाषा अंग्रेज़ी है, यानी सिर्फ़ 5.5 प्रतिशत। लेकिन इंटरनेट पर उपलब्ध सामग्री का 60 प्रतिशत अंग्रेज़ी में है और शेष 40 प्रतिशत में दूसरी सभी भाषाएँ। दूसरी ओर, चीन में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की सबसे बड़ी संख्या है, पर मात्र एक करोड़ वेबसाइटों में सिर्फ़ 1.4 प्रतिशत में चीनी भाषा का प्रयोग किया गया है। दुनिया में तीसरी सबसे बड़ी भाषा हिंदी में सिर्फ़ 0.1 प्रतिशत है। इंटरनेट पर हिंदी ब्लागरों की संख्या एक लाख से भी ऊपर पहुँच गई है। भारत के लगभग सभी सरकारी संगठनों की वेबसाइटें हिंदी यूनिकोड में उपलब्ध हैं। भारत के लगभग सभी हिंदी दैनिक समाचार-पत्र और पत्रिकाएँ हिंदी यूनिकोड में उपलब्ध हैं। सबसे उत्साहजनक बात है, सोशल मीडिया - फ़ेसबुक, व्हाट्सएप्प, ट्विटर आदि ने भी हिंदी भाषा को हाथों-हाथ अपना लिया है। बहुराष्ट्रीय कंपनी गूगल के कार्यकारी निदेशक सुंदर पिचाई का अनुमान है कि अगले 3 वर्षों के भीतर हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं की इंटरनेट पर उपस्थिति 40% हो जाएगी।

इंटरनेट पर हिंदी साहित्य

आज हम न सिर्फ़ लोकप्रिय एवं स्थापित साहित्यकारों की कृतियों को, बल्कि अपने आस-पड़ोस, अपने शहर और अपने राज्य के भी अच्छे रचनाकारों की कृतियों को इंटरनेट पर उपलब्ध करके, उसे सर्वसुलभ बना सकते हैं। इंटरनेट पर उपलब्ध हिंदी साहित्य के अनुपात में वृद्धि ला सकते हैं और बहुत सारे स्वयं सेवी संस्थाएँ इसमें लगी भी हुई हैं, जैसे - 'कविता कोश', 'गद्य कोश', 'हिंदी से प्यार है' आदि।

इंटरनेट पर हिंदी साहित्य अब सतत् प्रगति के पथ पर है। रॉबिन मैनसेल, जो लंदन स्कूल ऑफ़ इकोनॉमिक्स एंड पॉलिटिकल साइंसज़ के मीडिया और संचार विभाग में न्यू मीडिया और इंटरनेट की प्रोफ़ेसर एमेरिट्स ने लिखा है - *"इंटरनेट पर हिंदी साहित्य का संसार भी काफ़ी व्यापक हो गया है। एक आकलन के अनुसार साहित्यिक हिंदी वेबपन्नों की संख्या करोड़ का आँकड़ा छू रही है। अभी भी यह एक यक्ष प्रश्न है कि हिंदी के मुख्यधारा के लेखक क्या अपनी अभिव्यक्ति को दुनिया तक पहुँचाने के लिए इंटरनेट को प्रमुख माध्यम बना पाए हैं? 'हंस' के संपादक और प्रख्यात साहित्यकार राजेंद्र यादव कहते थे - जो गंभीरता या एकाग्रता किताब पढ़ने में होती है, वह मुझे लगता है कि इंटरनेट पर नहीं होती, उस तरह की ग्रहणशीलता भी इंटरनेट पर नहीं बन पाती, वहाँ सूचनात्मकता ज़्यादा है!"*

साहित्य की मुख्यधारा में अपनी जगह बनाने वाले बहुत कम ही लेखक ऐसे हैं, जिन्होंने इंटरनेट को अपने रचनात्मक प्रसार का पहला माध्यम माना है। अब भी वे अपनी अप्रकाशित रचनाओं को प्रिंट मीडिया में ही देना चाहते हैं, भले ही प्रकाशित रचनाओं को सर्वसुलभ बनाने के लिए इंटरनेट पर डालते रहें। यानी बेहतर प्रसार का माध्यम इंटरनेट है, यह तो उनकी समझ में आ गया है। इंटरनेट पर साहित्य उन्मुखी समर्पित रचनाकार 25 से 40 वर्ष के युवा की श्रेणी में रखे जाएँगे। कोरोना के दौरान तो जीवन के हर क्षेत्र में चाहे वह शिक्षा हो, चाहे आजीविका या फिर मनोरंजन हो, प्रौद्योगिकी ने अपने पाँव बहुत ही द्रुतगति से सकारात्मक रूप से, सभी दिशाओं में पसारे। डॉ. धनेश द्विवेदी कहते हैं - *"भाषाओं पर भी इसका प्रभाव अछूता नहीं है। हिंदी भाषा स्वतंत्र दुनिया की शीर्ष भाषाओं में शामिल होने के लिए अग्रसर है। इस कोरोना काल में सोशल मीडिया पर पढ़ने वालों की बाढ़-सी आ गई है। जो हिंदी की पुस्तकें इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों पर कोरोना काल से पहले बहुत कम संख्या में उपलब्ध थीं, उनकी भी पी.डी.एफ़. सोशल मीडिया पर उपलब्ध होती जा रही है। एक दृष्टि से देखा जाए, तो भाषा का तकनीकीकरण करने में कोरोना वायरस की महत्त्वपूर्ण भूमिका नज़र आती है।"*

वर्तमान में, पढ़ने की प्रवृत्तियों में भी अब काफ़ी परिवर्तन देखा जा रहा है। इंटरनेट क्रांति में वेबसाइटों, ई-पुस्तकों, ई-पत्रिकाओं, ई-पेपर, ई-मेल, इंस्टेंट मैसेजिंग, ब्लॉग, विकी और अन्य सोशल मीडिया मंच अब पढ़ने में कम रुचि रखने वालों के मस्तिष्क पर भी पूर्ण प्रभुत्व जमा चुके हैं। तेज़ी से बढ़ते हुए नेटवर्क वातावरण में नई पीढ़ी के पाठकों ने अपनी पढ़ाई की शैली को धीरे-धीरे बिल्कुल बदल लिया है। जब सन् 2000 में हिंदी का पहला वेबपोर्टल अस्तित्त्व में आया, तभी से इंटरनेट पर हिंदी ने अपना प्रभाव दिखाना शुरू कर दिया था। नई पीढ़ी के साथ-साथ पुरानी पीढ़ी ने भी इंटरनेट की उपयोगिता समझ ली है। मुक्तिबोध, त्रिलोचन जैसे हिंदी के महत्त्वपूर्ण कवि, प्रकाशकों द्वारा उपेक्षित रहे। इंटरनेट ने हिंदी के साहित्यकारों को प्रकाशकों और आलोचकों से मुक्त कराने का भी बड़ा कार्य किया है। अब साहित्यकार प्रकाशकों के भरोसे नहीं रहे।

आज इंटरनेट पर हिंदी साहित्य से संबंधित लगभग सत्तर से अधिक ई-पत्रिकाएँ देवनागरी लिपि में उपलब्ध हैं। संयुक्त अरब अमीरात में रहने वाली प्रवासी भारतीय साहित्य प्रेमी पूर्णिमा वर्मन 'अभिव्यक्ति' और 'अनुभूति' नामक ई-पत्रिका का संपादन करती है और 1996 से 'प्रतिबिंब' नामक नाट्य संस्था चला रही है। 'अभिव्यक्ति' हिंदी की पहली ई-पत्रिका है, जिसके आज तीस हज़ार से भी अधिक पाठक हैं। 'अभिव्यक्ति' के बाद 'अनुभूति', 'रचनाकार', 'हिंदी नेस्ट', 'संवाद' आदि कई ई-पत्रिकाएँ इंटरनेट पर सफलतापूर्वक अपना मुकाम हासिल कर रही हैं और इनके पाठकों की संख्या लगातार बढ़ रही है। भारत से बाहर हिंदी में प्रकाशित पत्रिकाओं में कुछ प्रमुख लोकप्रिय पत्रिकाएँ हैं : 'विश्वा' (अमेरिका), 'अनहद कृति' (अमेरिका-भारत), 'हिंदी चेतना' (कनाडा), 'पुरवाई' (यूके), 'अभिव्यक्ति-अनुभूति' (शारजाह), 'साहित्य कुंज' (कनाडा), 'अनन्य' (अमेरिका)। श्री अमृत मेहता 'सार-संसार' नामक ई-पत्रिका द्वारा विश्व की विभिन्न भाषाओं के साहित्य का हिंदी में अनुवाद प्रकाशित कर हिंदी को समृद्ध कर रहे हैं। इंटरनेट की बढ़ती पहुँच से प्रभावित होकर हिंदी के अनेक प्रतिष्ठित प्रकाशकों-संपादकों ने अपनी पत्रिकाओं का ई-संस्करण भी जारी करना शुरू किया और आज 'हंस', 'कथादेश', 'तद्भव', 'आजकल', 'नया ज्ञानोदय', 'पहल' जैसी न जाने कितनी महत्त्वपूर्ण पत्रिकाएँ इंटरनेट पर उपलब्ध हैं। आज जितने भी प्रतिष्ठित अखबार हैं, सभी के ई-संस्करण मौजूद हैं। हम दुनिया के किसी भी कोने में रहकर क्षेत्रीय संस्करण के अखबारों को पढ़कर अपने क्षेत्र विशेष की जानकारी हिंदी में भी ले सकते हैं।

देश ही नहीं विदेशों में भी हिंदी की कई पत्रिकाएँ प्रकाशित की जा रही हैं। जुलाई 2022 से अमेरिका में हिंदी की एक वैश्विक पत्रिका 'अनन्य' की शुरुआत हुई है। अगस्त 2022 से 'अनन्य' के पाँच अन्य देशों से स्थानीय संस्करणों की शुरुआत भी हो गई और कुछ महीनों में इसे और पाँच देशों से जोड़ने की योजना है। यानी भारत ही नहीं, पूरे विश्व में कुछ हिंदी प्रेमी हैं, जो लगातार हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु सक्रिय हैं। इंटरनेट पर हिंदी बहुत द्रुत गति से अपना प्रसार कर रही है। प्रकाशकों ने अपनी-अपनी वेबसाइटें बना रखी हैं, जिनपर अनेक रचनाकारों की महत्त्वपूर्ण पुस्तकें पाठकों को, घर बैठे मिल जाती हैं। हिंदी पुस्तकों के ई-संस्करण से पाठकों को यह सुविधा उपलब्ध है कि वे अपने काम और रुचि के

अनुसार पुस्तकों का चुनाव कर सकते हैं।

इस संबंध में अभी तक सबसे सराहनीय प्रयास महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय (वर्धा) ने किया है। इसकी वेबसाइट www.hindisamay.com पर हिंदी के लगभग एक हज़ार रचनाकारों की रचनाओं का अध्ययन किया जा सकता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, श्यामसुंदर दास आदि की ग्रंथावलियों के साथ-साथ समकालीन रचनाकारों की रचनाओं को भी इसमें स्थान दिया गया है। वर्धा विश्वविद्यालय ने हिंदी प्रेमियों, शिक्षकों, शोधार्थियों को एक बेहतरीन पुस्तकालय उपलब्ध कराया है। भारत के अनेक विश्वविद्यालय भी इस क्षेत्र में अपने प्रयासों को लगातार बढ़ा रहे हैं। इस संदर्भ में 'कविता कोश', 'गद्य कोश' और 'हिंदी से प्यार है' को भूलाया नहीं जा सकता। आज सभी आवश्यक वेबसाइटों के हिंदी संस्करण मौजूद हैं। पूंजी-बाज़ार-नियामक से.बी., बी.एस.ई., एन.एस.ई, भारतीय जीवन बीमा निगम, भारतीय स्टेट बैंक, रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया, यूनाइटेड बैंक ऑफ़ इंडिया, पंजाब नेशनल बैंक और भारतीय लघु विकास उद्योग बैंक की वेबसाइटें हिंदी में भी उपलब्ध हैं। रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डी.आर.डी.ओ.) और भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) की वेबसाइटें भी हिंदी में हैं।

सर्च इंजन

देवनागरी लिपि के यूनिकोड मानक से पूर्व हिंदी भाषा में किसी भी सर्च इंजन में किसी भी सूचना सामग्री को ढूँढ़ पाना असंभव था। यूनिकोड से पूर्व ट्रू-टाइप-फ़ॉण्ट ही होते थे और जब तक सूचना सामग्री का फ़ॉण्ट और सर्चकर्ता का फ़ॉण्ट मेल नहीं खाता, सर्च संभव ही नहीं हो पाता था। कंप्यूटर कोई विशेष मानवी भाषा नहीं समझता, वह केवल गणित की भाषा समझता है, लेकिन यूनिकोड के आने के बाद यह समस्या सुलझ गई।

मोबाइल में उपलब्ध सुविधाएँ

मोबाइल में हिंदी की सुविधाएँ कंप्यूटर को लाँघ चुकी हैं। मोबाइल में काफ़ी ऐसी सुविधाएँ उपलब्ध हैं, जो अभी कंप्यूटर में नहीं आई हैं। इस संदर्भ में एक बहुत ही बेहतरीन उदाहरण गूगल लेंस है, जिसके मोबाइल संस्करण में उपलब्ध सुविधाएँ, जो न सिर्फ़ हिंदी की इमेज को टेक्स्ट में बदल देता है, बल्कि अंग्रेज़ी के इमेज को टेक्स्ट में बदलकर सेकेंड में उसको हिंदी में अनूदित भी कर देने की सुविधा प्रदान करता है। मोबाइल की सुविधाओं के प्रयोक्ता और भी ज़्यादा हैं। मोबाइल तक हिंदी की पहुँच ने देश में देवनागरी लिपि के समक्ष खड़ी चुनौती को काफ़ी हद तक मिटा दिया है। मोबाइल के माध्यम से देश का हर व्यक्ति हिंदी और तकनीक से जुड़ गया है। आज से पंद्रह साल पहले जब हम हिंदी के भविष्य पर विचार करते थे, तब अनेक लोग कहते थे कि हिंदी का भविष्य तो उज्ज्वल है, लेकिन हमारी लिपि पर बड़ा संकट मंडरा रहा है - चूँकि मोबाइल प्रयोक्ता अपने संदेश भेजने के लिए रोमन लिपि पर निर्भर रहते थे। आज यह समस्या हल हो चुकी है। अगर आपके भीतर थोड़ी इच्छाशक्ति है और अपनी मातृभाषा के लिए सम्मान भी है, तो आप अपनी भावना हिंदी में व्यक्त कर सकते हैं। चाहे वह कंप्यूटर पर हो या मोबाइल पर।

सोशल मीडिया में हिंदी

आज फ़ेसबुक, ट्विटर, ब्लॉग और व्हाट्सएप्प, ये सभी सेवाएँ हिंदी में उपलब्ध हैं। हिंदी में ये सुविधाएँ जब आईं तब हमारा सोशल मीडिया हर हाथ तक पहुँच गया और इसके प्रयोक्ताओं की संख्या की बाढ़ आ गई। ट्विटर पर भी सभी प्रयोक्ताओं द्वारा हिंदी का जमकर इस्तेमाल हो रहा है। नेता, अभिनेता, लेखक, पत्रकार, खिलाड़ी आदि सभी ट्विटर का प्रयोग कर रहे हैं और लाखों की संख्या में इनके फ़ॉलोवर्स बन जाते हैं। ये स्थितियाँ हिंदी की मज़बूत स्थिति के परिचायक हैं। स्वतंत्र अभिव्यक्ति के लिए ब्लॉग एक महत्त्वपूर्ण साधन बन चुका है। आलोक कुमार हिंदी के पहले ब्लॉगर हैं, जिन्होंने ब्लॉग 'नौ-दो-ग्यारह' बनाया। आज हिंदी में ब्लॉगों की संख्या एक लाख से ऊपर पहुँच चुकी है। इनमें से लगभग दस हज़ार अति सक्रिय और बीस हज़ार सक्रिय की श्रेणी में आते हैं। आलोक कुमार ने ही इंटरनेट पर पहली बार ब्लॉग के लिए 'चिट्ठा' शब्द का इस्तेमाल किया, जो अब ख्याति प्राप्त कर चुका है। हिंदी में लगभग बारह हज़ार से अधिक सक्रिय-निष्क्रय हिंदी ब्लॉग हैं। करीबन 1500 ब्लॉगों को नियमित तौर पर पढ़ा जाता है, करीबन तीन हज़ार से अधिक लोग ब्लॉग पर अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। ब्लॉग-वाणी, ब्लॉगर्स के सबसे पसंदीदा

साईट में से एक है। हिंदी विचारों को विश्व पटल पर प्रसारित करने में कई वेबसाइटें हिंदी के विकास के लिए दिन-रात काम कर रही हैं। इसके बावजूद हिंदी विश्व की उन दस भाषाओं में अभी शामिल नहीं हो सकी है, जो इंटरनेट पर सबसे अधिक प्रयोग में लाई जाती हैं।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में हिंदी

मीडिया में हिंदी का भरपूर इस्तेमाल हो रहा है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने हिंदी को चरम शिखर पर पहुँचाया हुआ है। आज हर सफल चैनल हिंदी में बातचीत और बहस कर रहा है। उस बहस में हिस्सा लेने के लिए और अपनी बात रखने के लिए हर नेता, हर कलाकार, हर खिलाड़ी अपनी हिंदी को बेहतर बनाने की कोशिश में लगा है। पहले हम विकिपीडिया पर कोई भी सामग्री हिंदी में देवनागरी लिपि में पाने की सोच भी नहीं सकते थे। लेकिन आज हर दिन हिंदी में हमारी सूचना सामग्री का भंडार लगातार बढ़ रहा है, जिसमें लोग स्वेच्छा से भी सहयोग कर रहे हैं। अगर आँकड़ों को देखा जाए, तो अब भी इंटरनेट पर उपलब्ध सूचना सामग्री का 95 प्रतिशत आज अंग्रेज़ी में है और शेष 5 प्रतिशत अन्य सभी भाषाओं में, लेकिन कोई भी कार्य एक दिन में पूरा नहीं होता। हमें प्रयास जारी रखना चाहिए। अगर 'विकिपीडिया' है, तो हमारा अपना भारतीय 'भारतकोश' भी है, जिसपर लगभग 58 हज़ार लेख पोस्ट किए गए हैं। श्री आदित्य चौधरी इसकी रचना करा रहे हैं। आज श्री ललित कुमार के नेतृत्व में भारत की संस्कृति, भाषा की उन्नति और साहित्य के प्रसार के लिए तैयार किया गया अभूतपूर्व 'कविता कोश' है, जिसमें हिंदी-उर्दू सहित भोजपुरी, राजस्थानी, अंगिका, अवधी, नेपाली, हरियाणवी के अतिरिक्त अन्य भाषाएँ समाई जा रही हैं और काव्य का विशाल रंगमंच बनता जा रहा है। इसी तरह 'हिंदी गद्य-कोश' भी निरंतर बढ़ता जा रहा है। अब संसार में, कोई भी, कहीं से भी हिंदी साहित्य का आनंद ले सकता है।

डी.टी.एच.

हाल ही में हिंदी के इस्तेमाल के दो और नए स्थान देखने को मिले हैं, जिनपर आज से पाँच साल पहले सोचा भी नहीं जा सकता था। डी.टी.एच. और क्रिकेट के स्कोर बोर्ड हमारे सामने हिंदी को नए रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। डी.टी.एच. ने किसी भी चैनल के हिंदी में अनुवाद की सुविधा दे रखी है। हम जानते हैं कि भारत की अधिकतर आबादी हिंदी में ही अपने विचारों का आदान-प्रदान करती है। हिंदी या स्थानीय भाषाओं को हम जिस सहज भाव से आत्मसात करते हैं, उस भाव से अंग्रेज़ी को ग्रहण करना संभव नहीं, चूँकि हिंदी या हमारी प्रादेशिक भाषाएँ हमारे अंत:करण में विद्यमान हैं। पहले क्रिकेट की हिंदी में कमेंट्री निश्चित समय तक ही होती थी, लेकिन अब पूरे खेल का ब्योरा हम हिंदी में सुन सकते हैं। इसके साथ ही डिस्कवरी, नेशनल ज्योग्राफ़िक और एनीमल-प्लैनेट, जैसे चैनल हिंदी के दर्शकों का ज्ञानवर्द्धन कर रहे हैं।

देवनागरी लिपि में ईमेल आई.डी. और वेबसाइट

अब देवनागरी लिपि में, ईमेल आई.डी. और वेबसाइट्स बनाने की भी सुविधा उपलब्ध है। जयपुर के श्री अजय डाटा और उनकी टीम के अथक प्रयासों से यह सुविधा उपलब्ध हुई है, जिसे डाटामेल का नाम दिया गया है। इस ईमेल में वे सभी खूबियाँ मौजूद हैं, जो हम जीमेल या रेडिफ़ मेल में पाते हैं और सभी मेल सेवाएँ इसे सपोर्ट भी करती हैं। बस आवश्यकता होगी कि एक बार आप अपने पुराने ईमेल से सभी एड्रेस को इस मेल पर सेव कर लें। इसी तरह हिंदी में वेबसाइट बनाने की सुविधा भी उपलब्ध है, जिसके लिए भी बहुत ही कम सेवा शुल्क रखा गया है। लेकिन अभी भी हिंदी में वेबसाइटें बस कुछ उन्ही जगहों पर बनाई जाती हैं, जहाँ किसी कारणवश सरकार द्वारा इसे अनिवार्य बना दिया गया है, या फिर कोई हिंदी प्रेमी हो, जो हिंदी को आगे बढ़ाने के हर प्रयास में अपना सार्थक सहयोग देना चाहता हो।

अनुवाद टूल

अंग्रेज़ी या अन्य भाषाओं से हिंदी में अनुवाद पर भी न केवल सरकार के द्वारा, बल्कि विभिन्न बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के द्वारा भी लगातार काम हो रहा है। ऑनलाइन तो आज बहुत से टूल्स मौजूद हैं, जिनमें गूगल और माइक्रोसॉफ़्ट ट्रांसलेटर सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। इनके अलावा भी और कई हैं, जैसे - lingvanex, SDL Trados, Babyloan, Quick translator आदि। आजकल मोबाइल में ऐप्स के रूप में हिंदी में रूपांतरित करनेवाले कई

ऐसे सॉफ़्टवेयर आ गए हैं, जो इमेज में अंकित अंग्रेज़ी को भी बहुत आसानी से सेकेंड में अनूदित कर देते हैं। सरकार ने भी इस दिशा में अपना सतत् प्रयास जारी रखा है और सीडैक की मदद से उसने दो ट्रांसलेशन टूल बनाए हैं - 'कंठस्थ' और 'मंत्रा'। आवृत्ति सामग्रियों के लिए 'कंठस्थ' टूल को बहुत सराहना भी मिल रही है। किसी भी कार्यक्रम की कोई भी भाषा हो, उसे रियल टाइम में आप अपनी भाषा में सुन सकते हैं।

हिंदी को इंटरनेट पर लाने का लाभ केवल हिंदी साहित्य को नहीं हुआ है। विज्ञान और चिकित्सा के क्षेत्र में अभी और अधिक कार्य करने की आवश्यकता है, जिससे इसका पूर्ण लाभ आम आदमी को मिल सके। हिंदी का एक मज़बूत पक्ष यह भी है कि यह बाज़ार की भाषा बन चुकी है, जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इसकी उपयोगिता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। हिंदी संयुक्त राष्ट्र की भाषा बनने के लिए अपने कदम बढ़ा चुकी है, बस आवश्यकता है, मज़बूत इच्छा-शक्ति की। क्यों नहीं हम इस प्रौद्योगिकीय विकास को अपनी भाषा, सिर्फ़ हिंदी ही नहीं, क्षेत्रीय भाषाओं को और परिपूर्ण करने में शक्ति लगाएँ। क्यों नहीं हम अनुवाद टूल की मदद से आधुनिकतम तकनीकी अध्ययन सामग्रियों को अनूदित कर ऐसी भाषा में उपलब्ध कराएँ, जिनसे भारत का बच्चा-बच्चा लाभान्वित हो, उसके सामने किसी विदेशी भाषा को सीखने की मजबूरी न हो और तभी हमारे देश की इस विशाल जनसंख्या के सच्चे सामर्थ्य का लाभ मिल सकेगा।

इस वर्ष की शुरुआत में सरकार ने भाषाओं के लिए एक डिजिटल सार्वजनिक मंच 'भाषिनी' की शुरुआत की है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए.आई.) और संबद्ध तकनीकों पर आधारित पहल यह सुनिश्चित करेगी कि नागरिक अपनी भाषा में इंटरनेट और डिजिटल सरकारी सेवाओं का उपभोग करें। BHASHINI का मतलब भारत के लिए भाषा इंटरफ़ेस है, जो इलेक्ट्रॉनिक्स और आई.टी. मंत्रालय के डिजिटल इंडिया मिशन का एक हिस्सा है। "भाषिनी प्लेटफ़ॉर्म इंटरऑपरेबल है और पूरे डिजिटल इकोसिस्टम को उत्प्रेरित करेगा। यह भाषा के डिजिटल लक्ष्य को साकार करने की दिशा में सरकार का एक बड़ा कदम है। यह प्लेटफ़ॉर्म आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस (ए.आई.) और नेचुरल लैंग्वेज प्रोसेसिंग (एन.एल.पी) संसाधनों को एम.एस.एम.ई., स्टार्ट-अप्स और व्यक्तिगत इनोवेटर्स को सार्वजनिक डोमेन में उपलब्ध कराएगा।"

भाषाएँ उस प्रदेश के निवासियों से विकसित होती हैं। उनके द्वारा बोली जाती हैं, उनके ही द्वारा लिखी जाती हैं, उनके काम-काज का माध्यम होती हैं। यह हम पर ही निर्भर करता है कि हम उसे आगे कितना बढ़ाते हैं और हमें यह मान लेना चाहिए कि हमारी भाषाएँ प्रौद्योगिकी सक्षम हैं। अगर हमें इसकी जानकारी नहीं है, तो हम में कमी है, हमारी भाषाओं में नहीं। क्यों ना हम सोच लें, प्रयास करें और औरों के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत करें। स्वतंत्रता की 75वीं वर्षगाँठ के अवसर पर सरकार की अनूठी पहल 'आज़ादी के अमृत महोत्सव' के माध्यम से हम अपनी भाषा को नया रंग दें, नई ऊँचाई दें, नई पहचान दें, जहाँ अच्छी हिंदी बोलनेवाला विशिष्ट नज़र आए और उसे विशिष्ट मानकर हम अपने देश और अपनी भाषा को यथोचित स्थान दें। डी.आर.डी.ओ. जैसे संगठन में काम करनेवालों के लिए तो यह सुनहरा अवसर है, विज्ञान को अगर वे हिंदी से जोड़ लें, तो वे एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत कर सकते हैं, जिसके पीछे हर भारतवासी होगा, तब हिंदी में कुछ भी असंभव नहीं होगा।

बालेंदु शर्मा दाधीच लिखते हैं -

"पिछले एक दशक में भाषाई तकनीकों का लगभग कायाकल्प हो चुका है, मोबाइल क्लाउड पर्सनल कंप्यूटर और इंटेलिजेंट उपकरणों तक ऐसा कोई क्षेत्र नहीं दिखता, जिसमें हिंदी की उपस्थिति न हो। डेटा विश्लेषण, बिगडाटा, आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस आदि तमाम आधुनिकतम क्षेत्रों में हिंदी का प्रयोग हो रहा है। ध्वनि मशीन अनुवाद जैसे क्षेत्रों में भी हिंदी मौजूद है, लेकिन अगर कमी है, तो आम यूज़र तक इनके बारे में जानकारी के पहुँचने की।"

वे अपने लेख की समाप्ति अशोक चक्रधर जी के द्वारा राजभाषा भारती के अंक में प्रकाशित एक लेख की निम्नलिखित टिप्पणी के साथ करते हैं :

"भारतेंदु हरिश्चंद्र ने एक आह्वान किया था,
'रोअहू सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।' "

रुदन करना हमारे स्वभाव का अंग बन गया है। जो नहीं है, उसकी परेशानी ज़्यादा है और जो है, उसकी जानकारी अल्प से

भी किंचित न्यून है। अत्यंत संक्षेप में अपना पक्ष रखूँ, तो कहा जा सकता है कि भाषा-प्रौद्योगिकी का क्षेत्र ऐसा है, जहाँ हर प्रश्न का उत्तर लगभग संभव है। भाषा, शब्द की दृष्टि से, शैली की दृष्टि से और तकनीकी दृष्टि से मज़बूत होगी, तभी तो घर से बाहर भाषा की प्रभावी सार्थकता सिद्ध की जा सकती है। इसके लिए स्वयं के स्वाभिमान को आवाज़ देने का कार्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि एक बार स्वाभिमान जाग गया, तो दुनिया हिंदी का इंतज़ार करेगी।"

संदर्भ :

1. राजभाषा भारती
2. ऐथेनोलॉग सर्वेक्षण
3. वीकिपीडिया
4. Amarujala.com
5. Sarita.in वर्ष 2020
6. jansatta.com
7. Jagran.com वर्ष 2013

director-dpa.hqr@gov.in

arunkamal40@gmail.com

हिंदी के विकास में दूरदर्शन का विश्वव्यापी योगदान

डॉ. नीलम शर्मा
लखनऊ, भारत

दूरदर्शन जन-साधारण के सामाजिक कल्याण और उसमें विश्वास उत्पन्न करने हेतु 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' के अपने ध्येय वाक्य पर खरा उतरता हुआ, राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रसार में बेहद जनोपयोगी सिद्ध हो रहा है। दूरदर्शन ने हिंदी में साहित्यिक कार्यक्रमों के माध्यम से सामाजिक चेतना का विकास किया है। 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' की लोक अवधारणा से जुड़े दूरदर्शन को हिंदी भाषा और साहित्य का एक बेहतरीन मंच कहा जाए, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। भाषा या साहित्य सामाजिक चेतना से परिपूर्ण होता है। प्रत्येक भाषा श्रवण और पठन-पाठन से अपना प्रभाव छोड़ पाती है। भाषा का निरंतर प्रयोग उसकी सफलता का गहरा राज़ होता है। नए-नए शब्दों की रचना भी भाषा के प्रयोग से होती है। भाषा को देखना-सुनना-समझना ही उसके विकास का बोध कराता है। भाषा का कार्यक्रम हो, तब वह दृश्य और श्रव्य माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है, तब उसकी व्याप्ति असीम और अद्वितीय हो जाती है। दूरदर्शन राष्ट्रभाषा के विकास में बस यही अभिव्यक्ति पेश करता है। 'दूरदर्शन' ने अपने-आपको हिंदी भाषा के खिचड़ी रूप से बचाए रखा है, इसीलिए 'दूरदर्शन' राष्ट्रभाषा हिंदी के विकास में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। ग्रीक शब्द 'टेली', जिसका शाब्दिक अर्थ 'दूरी' है तथा लैटिन भाषा के विज़न, जिसका शाब्दिक अर्थ 'देखना' होता है, इन दोनों शब्दों को मिलाने से 'टेलीविजन' शब्द बना, जिसका शाब्दिक अर्थ 'दूरदर्शन' अर्थात् 'जो दूरदराज का राजनैतिक, सामाजिक, भौगोलिक, आर्थिक, सम-सामयिक या अन्य घटनाक्रमों, विवरणों, स्थलों आदि के दर्शन-दृश्य व श्रव्य के माध्यम से कराए।' भारत में टेलीविजन का आगमन सन् 1959 में हुआ और सन् 1973 में, 'दूरदर्शन' की शुरुआत मुंबई तथा पूणे में हुई। सन् 1975 में, मद्रास और लखनऊ केंद्रों के बाद भारत में क्रमशः टेलीविजन केंद्रों की स्थापना होती गई। टेलीविजन से विभिन्न कार्यक्रमों के साथ हिंदी, अंग्रेज़ी तथा क्षेत्रीय भाषाओं से समाचार प्रसारित होने लगे। 'चाणक्य', 'रामायण', 'महाभारत' जैसे धारावाहिक अत्यंत लोकप्रिय हुए, जिनमें प्रयुक्त हिंदी विशुद्ध व संस्कृतनिष्ठ थी, जो हमारी संस्कृति के साथ-साथ राष्ट्रभाषा हिंदी की समृद्धि व व्यापकता का परिचायक है।

'दूरदर्शन' लोकसेवा प्रसारक होने के नाते राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार एवं प्रसार जमकर कर रहा है। दूरदर्शन का ध्येय वाक्य है - 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्'।

राष्ट्रभाषा हिंदी को आम जनों तक पहुँचाने में, टेलीविजन ने अपने विभिन्न कार्यक्रमों, धारावाहिकों एवं विज्ञापनों द्वारा घर-घर में प्रवेश कर लिया है। स्वतंत्रता के बाद जब टेलीविजन भारत में आया, तब संपूर्ण भारत में इसकी स्थापना नहीं हुई थी। महँगा होने के कारण टेलीविजन प्रत्येक घर में उपलब्ध नहीं था, जिसके कारण प्रसारित हिंदी चैनल संपूर्ण भारत तक पहुँच नहीं पाते थे। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कंपनियों के बीच प्रतिस्पर्धा ने टेलीविजन को अत्यंत सस्ता कर दिया है, जिससे प्रत्येक घर में यह आज सहज उपलब्ध है। दूरदर्शन तथा सूचना प्रौद्योगिकी के उपकरणों के माध्यम से विश्वस्तरीय प्रचार-प्रसार होने से हिंदी कार्यक्रम अत्यंत विख्यात हो रहे हैं। दूरदर्शन पर प्रसारित समाचारों, मनोरंजन के विभिन्न कार्यक्रमों, धारावाहिकों, विज्ञापनों आदि में प्रयुक्त भाषाओं के बीच हिंदी का वर्चस्व स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

टेलीविजन द्वारा प्रसारित विज्ञापनों की भाषा हिंदी होने से अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भी अपने उत्पादों को राष्ट्रभाषा हिंदी के माध्यम से उपभोक्ताओं तक पहुँचा रही हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ न केवल विज्ञापन, बल्कि अपने उत्पादों की लोकप्रियता, उत्पादों के पक्ष व विपक्ष के विचारों को जानने तथा अन्य उत्पादों से अपने उत्पादों की होड़ के लिए सर्वेक्षण आदि विभिन्न कार्य हिंदी में करवा रही है, क्योंकि उन्हें लगता है कि अपने उत्पादों को घर-घर पहुँचाने में हिंदी सबसे अच्छा माध्यम है तथा सबसे बड़े उपभोक्ता समूह को हिंदी भाषा से अपनी ओर लाकर, अपने उत्पादों को बेचा जा सकता है। अतः ये अपने कर्मचारियों को समय-समय पर हिंदी भाषा का प्रशिक्षण भी देती हैं। इस तरह टेलीविजन द्वारा राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार-प्रसार होता है।

1925 ई. में तस्वीरों को प्रभावशाली ढंग से प्रसारित करने वाला पहला उपकरण जे.एल. बेयर्ड ने बनाया था। इसके दो वर्ष बाद बैल टेलीफ़ोन कंपनी में काम करने वाले एक इंजीनियर सी.एफ़. जेकिंस ने पहली बार अमेरिका में 'प्रसारित' तस्वीर दिखाई। आवाज़ वाले टी.वी. का पहला सार्वजनिक प्रसारण ब्रिटेन में 1930 ई. में हुआ। धीरे-धीरे टेलीविजन सारी दुनिया में तेज़ी से फैलने लगा। 15 सितंबर, 1959 को भारत के प्रथम राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र प्रसाद द्वारा दिल्ली में प्रायोगिक टेलीविजन के प्रसारण का उद्घाटन किया गया, जिसे 'दूरदर्शन' नाम दिया गया। 15 अगस्त, 1965 को भारतवर्ष में दूरदर्शन से प्रथम समाचार बुलेटिन का प्रसारण हुआ। 18 अप्रैल, 1966 को आकाशवाणी और दूरदर्शन के क्रिया-कलापों को गति देने के लिए चंदा समिति का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया। 31 दिसंबर, 1967 तक भारत में लाइसेंस के आधार पर लगभग छह हज़ार दो सौ टेलीविजन सेटों पर कार्यक्रम देखे जा रहे थे। 31 दिसंबर, 1975 तक देशभर में लगभग चार लाख पचपन हज़ार चार सौ तीस सेटों पर दूरदर्शन के कार्यक्रम देखे जाने लगे थे। 1 अप्रैल, 1976 को आकाशवाणी से पृथक होकर दूरदर्शन को स्वतंत्र प्रसारण के रूप में गति मिली एवं उसका विकास हुआ। इसी समय दूरदर्शन महानिदेशालय बना।

श्रीमती इंदिरा गांधी ने दूरदर्शन के बारे में कहा - "हम दूरदर्शन का विस्तार न केवल मनोरंजन के साधन के रूप में, वरन् विकास के लिए शिक्षा के साधन के रूप में करना चाहते हैं। ...यह पद्धति लोकतंत्र के लिए सहायक सिद्ध होगी। ग्रामों के आधुनिकीकरण में उसका योग निर्णायक हो सकता है।"

साहित्यकार कमलेश्वर दूरदर्शन के विषय में कहते हैं – "दूरदर्शन सिनेमा नहीं है। दूरदर्शन अखबार भी नहीं है। यह रंगमंच या लोक-कलाओं का प्रदर्शन मंच भी नहीं है। यह एक कल्चरल फ़ैक्टरी है। जनसंचार का यह सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यम है।"

प्रो. चंद्रकांत सरदाना एवं प्रो. मेहता ने माना है कि दूरदर्शन जन-संचार का एक सशक्त माध्यम है। इस माध्यम में दृश्य-श्रव्य दोनों का समावेश होता है। अतएव अन्य माध्यमों की अपेक्षा इसका अपना महत्त्व है।

15 अगस्त, 1982 का दिन दूरदर्शन के इतिहास का स्वर्णिम दिन बन गया। इसी दिन से भारत के श्याम-श्वेत दूरदर्शन को रंगीन रूप मिला। दूरदर्शन ने सन् 2010 में भारत की राजधानी दिल्ली में हुए राष्ट्रमंडल खेलों की कवरेज हाई डेफ़िनिशन में की तथा अपने नए डीडी-एचडी चैनल की शुरुआत भी की।

'डीडी स्पोर्ट्स' चैनल की शुरुआत 18 मार्च, 1998 को हुई। यह चैनल दूरदर्शन का एक दुनियाभर के खेलों यानी स्पोर्ट्स को समर्पित महत्त्वपूर्ण चैनल है। यहाँ खेल समाचार के साथ-साथ एक विशेष कार्यक्रम 'हौसलों की उड़ान' तथा अनेक खेलों के टूर्नामेंट और चैंपियनशिप संबंधित तमाम सारे सजीव कार्यक्रम प्रसारित किए जाने लगे। डीडी उर्दू चैनल को 15 अगस्त, 2006 को प्रारंभ किया गया और 14 नवबंर, 2007 से इसके प्रसारण को 24 घंटों के लिए कर दिया गया। वर्तमान में यहाँ खबरें और खबरनामा के साथ-साथ नियमित टीवी रिपोर्ट और अन्य विशेष कार्यक्रम जैसे 'रूह-ए-तसव्वुफ़', 'महफ़िल-ए-निशात', 'जुनून-ए-गज़ल', 'मुसव्विरी के रंग', 'अंदाज़-ए-शायराना', 'आईना-ए-माज़ी', आदि कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। डीडी उर्दू चैनल पर एक विशेष कार्यक्रम 'ओम शांति' भी प्रसारित किया जाता है, जो जन-समाज को शांति का संदेश देता है।

डीडी किसान चैनल की शुरुआत 26 मई, 2015 को हुई। भारतीय किसान वर्ग के उत्थान के लिए पूर्णरूप से भारतीय किसानों को समर्पित, उनका स्वतंत्र चैनल चालू किया है। इस चैनल के प्रमुख उद्देश्य हैं - देश की खेती-बाड़ी और ग्रामीण वर्गों की सेवा करना, सूचनाएँ प्रदान करना, देश के दूरवर्ती भागों में रहने वाले ग्रामीण वर्गों को शिक्षित करना और पर्यावरण को बिना हानि पहुँचाए, समावेशी विकास के लिए एक स्वस्थ वातावरण बनाना।

15 जनवरी, 2019 को प्रसार भारती के द्वारा देश के दो फ़्री-टू-एअर दूरदर्शन साइंस और इंडिया साइंस चैनलों की शुरुआत हुई। संचार माध्यमों के अंतर्गत आज दूरदर्शन ही एकमात्र चैनल है, जो कि भारत की कला और संस्कृति को आगे बढ़ाने के लिए कटिबद्ध है। भारत में टेलीविजन के विकास का पहला चरण 1959 से 1972 तक, दूसरा चरण 1973 से 1982 तक, तीसरा चरण 1983 से 1992 तक, चौथा चरण 1993 से 2000 तक, पाँचवा चरण 2001 से 2010 तक तथा वर्तमान यानी छठा चरण 2011 से आज तक चल रहा है। भारत में, दूरदर्शन के सफ़र को, दिनांक 15 सितंबर 2019 को, पूरे साठ वर्ष हो गए।

वर्तमान में दूरदर्शन के 68 स्टूडियो एवं विविध क्षमता वाले 1,109 ट्रांसमीटरों का नेटवर्क है। देशभर के विभिन्न 68 प्रसारण-केंद्रों में दूरदर्शन के कार्यक्रमों का निर्माण किया जाता है। इनमें से 17 मुख्य स्टूडियो केंद्र विभिन्न राज्यों की राजधानियों में स्थित हैं। इनके अतिरिक्त दो क्षेत्रीय निर्माण केंद्र एवं 49 अन्य स्टूडियो केंद्र देश के अन्य स्थानों पर स्थित हैं। दूरदर्शन की निःशुल्क डी.टी.एच., यानी - 'डायरेक्ट टू होम' सेवा भी उपलब्ध है। दूरदर्शन के डिजिटलीकरण में रिकॉर्डिंग मीडिया फ़ॉर्मेट एम-पेक्स से बी.सी.एन., बी.सी.एन. से बीटाकैम, बीटाकैम से डीवीसी तथा डीवीसी से एचडी, यानी-हाई डेफ़िनिशन में परिवर्तित किया गया है। डी.वी.सी.-प्रो 50 फ़ॉर्मेट में तथा इसके बाद एल.टी.ओ., यानी-लिनीयर टेप ओपन फ़ॉर्मेट अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत फ़ॉर्मेट है।

दूरदर्शन एवं हिंदी कार्यक्रमों की भाषा-शैली

टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले विज्ञापनों की भाषा में काव्यात्मकता दिखाई देती है। विज्ञापन की भाषा व्यक्ति के मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रहार करती है और वह उसी पल बाज़ार की ओर चल पड़ता है, मानो वह विज्ञापन वाली वस्तु कल ही बाज़ार से गायब हो जाएगी। फिर उसे वह नहीं मिलेगी। वर्ष 1994 एवं 1995 में 'कैडबरी' कंपनी की चॉकलेट का एक विज्ञापन आया था – "कुछ बात है, ज़िंदगी में।" और वर्ष 2000 तक तो इस कंपनी का शेयर मार्केट सूचकांक बहुत ऊपर जा चुका था। सारी करामात थी दिलो-दिमाग पर कब्ज़ा करने वाले इस विज्ञापन की। इस विज्ञापन में प्रीती ज़िंटा को एक स्वछंद युवती के रूप में क्रिकेट के मैदान में दिखाया जाता है। जब खेल के मैदान में बल्लेबाज़ छक्का लगाता है, तब वह चॉकलेट को लेकर नाचने लगती है। इसी कंपनी का दूसरा विज्ञापन है - "पप्पू पास हो गया।" कैडबरी चॉकलेट के इस विज्ञापन ने भी बहुत धूम मचाई। इस विज्ञापन को देखकर घर-घर के बच्चे परीक्षा में पास होने पर अपने अभिभावकों और सगे-संबंधियों से मिठाई के बदले में केवल कैडबरी चॉकलेट का पैकट माँगने लगे थे।

दूरदर्शन ने सारी साहित्यिक कृतियों पर आधारित धारावाहिकों और टेलीफ़िल्मों का प्रसारण किया, जिससे समाज को एक नई दिशा मिली। हमारी साहित्यिक कृतियाँ ही समाज का दर्पण होती हैं। इस दर्पण के माध्यम से हम अपने समाज की सामाजिक चेतना की एक सच्ची तस्वीर देख सकते हैं। दूरदर्शन के 'रामायण' और 'महाभारत' जैसे धारावाहिकों की लोकप्रियता का कारण भी यही था। लोगों ने इसे दिल से आत्मसात किया था। फणीश्वरनाथ 'रेणु' का उपन्यास 'मैला आँचल' आंचलिक वातावरण को दर्शाता है। दूरदर्शन के इस धारावाहिक के माध्यम से लोकभाषा, ग्रामीण जीवन और ग्रामीण संस्कृति को करीब से देखा गया। जहाँ एक ओर इसमें गरीब की गरीबी दिखी, तो वहीं दूसरी ओर ज़मींदार की उद्दंडता। हिंदी वाक्यों का अनोखा प्रयोग भी खूब हुआ। दूसरा उदाहरण, प्रेमचंद का उपन्यास 'निर्मला' पर बना धारावाहिक है। इसमें बेमेल शादी, कमउम्र की लड़की की कल्पनाएँ और शोषण की मानसिकता पर कुठाराघात और जीवन संघर्षों के प्रस्तुतीकरण और भाषा-वाक्यांशों के ज़रिए दर्शकों की आँखों में आँसू छलका दिए थे। हिंदी भाषा-वाक्यांश ही इस धारावाहिक की सफलता का राज़ था।

निजी समाचार चैनलों की हिंदी

निजी टेलीविजन चैनलों की भाषा की बात की जाए, तो स्टार प्लस के मशहूर शो 'कौन बनेगा करोड़पति' को तो सभी जानते हैं। संभवतः सभी ने देखा भी होगा। के.बी.सी. में सदी के महानायक अमिताभ बच्चन द्वारा बोले गए शब्द और वाक्य - 'फ़िफ़्टी-फ़िफ़्टी', 'कंप्यूटर जी', 'लॉक कर दिया जाए', 'श्योर', 'कॉन्फ़िडेंट', 'फ़ोन ए फ्रेंड', 'लाइफ़ लाइन', 'लॉक कर दें' आदि भारतीयों के रोज़मर्रा के जीवन में घुल-मिल गए हैं। यानी कि भाषा, जो बोली जाती है, उसका हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक निजी टेलीविजन चैनल दर्शकों को, ज़िंदगी के भिन्न-भिन्न भाव अपने धारावाहिकों के माध्यम से दर्शाने का प्रयास करता है। लेकिन धाराप्रवाह संवाद में यदि वाक्यों का अर्थ ठीक न हो या फिर उच्चारण ही गलत हो, तो अर्थ का अनर्थ होते देर नहीं लगती। ऐसे में अर्थ का अनर्थ न हो, इसके लिए विवादास्पद विषयों, संवादों का मूल्यांकन और प्रसारण पूर्व कार्यक्रमों की जाँच बहुत ज़रूरी होती है, ताकि संवाद में गाली-गलौज व अन्य आपत्तिजनक शब्द या वाक्य प्रसारित न हों। भाषा की गरिमा बनी रहे। निजी टेलीविजन चैनलों का खबरिया चैनल बनकर बवंडर फैलाना और चिल्ला-चिल्लाकर ऊधम मचाते हुए

वार्ता कार्यक्रमों में प्रस्तुतकर्ता द्वारा तीव्र और क्रोधित शब्दों का प्रयोग करना, प्रसारण की नीतियों के विरुद्ध है। मगर अक्सर हम सभी लोग वहाँ ऐसा होते हुए देखते हैं। कुल मिलाकर मनमाने ढंग का प्रस्तुतीकरण निजी टेलीविजन चैनलों पर हो रहा है, जोकि भारतीय संस्कृति और भाषा को खतरे में डाल सकता है।

दूरदर्शन के विषय में गौरवशाली बात यह है कि इसने हिंदी की विश्वस्तरीय प्रसारण-यात्रा में अपनी अहम् भूमिका निभाई है। आज भारतीय दूरदर्शन विश्व के अग्रणी टेलीविजन संस्थानों में से एक है। दूरदर्शन ने नई-नई आधुनिक तकनीकों को अपनाकर तकनीकी गुणवत्ता से अपने आपको समृद्ध बनाया है। लोक-सेवा-प्रसारण की भूमिका में भारतीय दूरदर्शन ने, भारत देश की सांस्कृतिक एवं भाषाई विविधता के साथ-साथ, सूचना और मनोरंजन प्रदान करने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। संचार-क्रांति के इस युग में भारतीय दूरदर्शन उपग्रह और इंटरनेट की ज़बरदस्त मदद लेकर विश्वभर में अग्रणी है। कुल मिलाकर दूरदर्शन के इतिहास में यह एक बड़ी उपलब्धि कही जा सकती है। दूरदर्शन ने अपने कार्यक्रमों के प्रसारण के अंतर्गत राष्ट्रभाषा हिंदी का जो सम्मान किया वह उल्लेखनीय है। अब तक के अपने साठ वर्षों के कार्यकाल में दूरदर्शन ने हिंदी के विकास में अपना विशेष योगदान दिया है और भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी को विश्वव्यापी बनाया है।

संदर्भ :

1. टेलीविजन पत्रकारिता, ओमकार चौधरी, हरियाणा साहित्य अकादमी, हरियाणा, वर्ष 2002
2. वही
3. टेलीविजन लेखन, असगर वजाहत और प्रभात रंजन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, वर्ष 2001
4. हिंदी पत्रकारिता : दूरदर्शन और टेलीफ़िल्में, सविता चड्ढा, राजसूर्य प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष 2000
5. प्रौद्योगिकी और जन-माध्यम, हरिमोहन, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2002
6. पत्रकारिता के विभिन्न स्वरूप, ज्ञानेंद्र रावत, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष 2007
7. जनसंचार : कल, आज और कल, चंद्रकांत सरदाना एवं मेहता, ज्ञान गंगा प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष 2007
8. इलेक्ट्रॉनिक्स मीडिया के सिद्धांत, रूपचंद गौतम, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष 2005
9. दूरदर्शन वार्षिक रिपोर्ट 2017-18, प्रसार भारती, नई दिल्ली
10. भारत में जनसंचार और प्रसारण मीडिया, मधुकर लेले, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 7@31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, वर्ष : 2011
11. टेलीविजन : साहित्य और सामाजिक चेतना, डॉ. अमरनाथ 'अमर, आलेख प्रकाशन, वी-8, नवीन शहादरा, दिल्ली – 110032, वर्ष : 2008
12. गौरी शंकर रैणा, टेलीविजन : चुनौतियाँ और संभावनाएँ, वाणी प्रकाशन, 4695 21 एवं ए, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002, वर्ष : 2012

neelams348@gmail.com

तकनीकी से संवरता हिंदी का ई-संसार

श्री संजय चौधरी
नई दिल्ली, भारत

"वर्तमान समय में, रोज़गार दिलाने में कंप्यूटर और तकनीकी का योगदान बढ़ता जा रहा है। जो भाषा इन तकनीकों के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलेगी, उसमें रोज़गार की बृहत्तर संभावना बनेगी। हिंदी अब एक वैश्विक भाषा के विस्तार की ओर है और मैं साहित्य के बाहर इसकी उड़ान को देखकर खुश हूँ।"
(भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित कवि केदारनाथ सिंह)

तकनीकी हमेशा से सोच में बदलाव लाने का माध्यम रही है। डिजिटल तकनीक और सूचना प्रौद्योगिकी के आने से आज की दुनिया में क्रांतिकारी बदलाव हो रहा है। हर क्षेत्र और हर गतिविधि का 'ई' स्वरूप प्रचलित हो रहा है तथा दैनिक जीवन में डिजिटल माध्यम लगातार लोकप्रिय होते जा रहे हैं। ऐसे में हिंदी का ई-संसार भी निरंतर विस्तार पा रहा है। वर्तमान युग में डिजिटल माध्यमों से संपर्क और संवाद जितना त्वरित और सुगम हुआ है, उसके कारण हिंदी भाषा-भाषियों की बहुत बड़ी संख्या आज नई तकनीक सीख रही है और ई-संसार से जुड़ रही है।

हिंदी के ई-संसार के संदर्भ में सूचना प्रौद्योगिकी और डिजिटल तकनीक ने हिंदी पर अपना प्रभाव डाला है। आधुनिक प्रवृत्तियों के साथ हिंदी भाषा तेज़ी से नए स्वरूप में विकसित हो रही है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध आलेख में हिंदी के आधुनिक ई-संसार में उपलब्ध अवसरों, चुनौतियों और संभावनाओं का सम्यक विवेचन किया गया है।

तकनीक-सम्मत हिंदी का सशक्त ई-संसार

हिंदी भाषा के व्याकरण एवं देवनागरी लिपि का अपना वैज्ञानिक आधार है। देवनागरी लिपि कंप्यूटर तंत्र की प्रक्रिया के लिए पूर्ण रूप से अनुकूल है। इस लिपि को कंप्यूटेशनल भाषा में बदलने की संभावना ने हिंदी के ई-संसार के सृजन को सबके लिए सुगम बना दिया है। लगभग पंद्रह वर्ष पूर्व गूगल के तत्कालीन सी.ई.ओ. ने हिंदी भाषा के लिए भविष्यवाणी की थी कि इंटरनेट पर यह दुनिया की सबसे प्रभावशाली भाषाओं में शामिल होगी और ऐसा हुआ भी है।

कम खर्च और जानकारी की सहज उपलब्धता ने अपेक्षाकृत कम समय में ई-माध्यमों एवं ई-गतिविधियों को अधिक प्रचलित बना दिया है। आधुनिक जीवन-शैली में आए बदलाव तथा संचार के त्वरित साधनों के कारण, विभिन्न क्षेत्रों में, समस्त भाषायी कार्य-व्यवहार के लिए इलेक्ट्रॉनिक एवं डिजिटल माध्यमों को अधिक पसंद किया जाने लगा है। जिस सहजता के साथ हिंदी ने डिजिटल और नवीन विधियों एवं प्रविधियों को आत्मसात किया है, उसके कारण इसके प्रचार-प्रसार एवं विस्तार को नए आयाम मिले हैं, जिसमें ई-संसार भी शामिल है।

हिंदी के संदर्भ में सूचना-प्रौद्योगिकी के बढ़ते महत्त्व पर सबसे पहले विश्व हिंदी सम्मेलन में चर्चा की गई थी। सूरीनाम में वर्ष 2003 में आयोजित सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में 'हिंदी के प्रचार हेतु वेबसाइट की स्थापना और सूचना-प्रौद्योगिकी के प्रयोग पर मंतव्य पारित किया गया था। उसके बाद से सूचना-प्रौद्योगिकी एवं डिजिटल तकनीक के क्षेत्र में बहुत कुछ घटित हुआ है। यहाँ तक कि किसी भी नवाचार की तुलना में डिजिटल प्रौद्योगिकी बहुत अधिक तेज़ी से आगे बढ़ी है। केवल दो दशकों में इसने विकासशील दुनिया की आबादी के लगभग 50 प्रतिशत तक पहुँच बना ली है और समाज को बदल दिया है।

कुछ ऐसा ही बदलाव हिंदी भाषा में भी आया है, जिसने हर क्षेत्र में और हर मंच पर अपनी सशक्त डिजिटल उपस्थिति दर्ज कर ली है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान बहुत कम समय में, इस प्रक्रिया की गति और भाषायी प्रगति दोनों तीव्रतर हुई हैं। डिजिटल दुनिया के जानकार मानते हैं कि हिंदी सबसे तीव्र गति से अपना ई-संसार बढ़ा रही है। गूगल का एक सर्वेक्षण भी इस बात को सिद्ध करता है कि हिंदी में निर्मित हो रही ई-सामग्री पिछले 5 वर्षों में 94 प्रतिशत की दर से बढ़ी है, जबकि अंग्रेज़ी ने केवल 19 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की है।

हालाँकि अब भी इंटरनेट पर अंग्रेज़ी का प्रभुत्व है, लेकिन

हिंदी व अन्य भाषाओं की डिजिटल उपस्थिति ने वेब की हमारी दुनिया को भाषायी रूप से अधिक विविधतापूर्ण बना दिया है। हिंदी के कई वेब पोर्टलों का, तेज़ी से, विकास हो रहा है। इंटरनेट पर वेब पेज की रैंकिंग देने वाली साइट अलेक्सा की ताज़ा रिपोर्ट के अनुसार हिंदी की कई साइटों ने शीर्ष की 500 वेबसाइटों में अपनी जगह बना ली है। जिस गति से हिंदी के ई-संसार में शामिल होने वाले पाठकों की संख्या बढ़ रही है, उसी गति से हिंदी की वेबसाइटों और दैनिक उपयोग के एप्लीकेशनों की संख्या भी बढ़ रही है।

इंटरनेट पर साहित्यिक सीमाओं को लाँघकर हिंदी अपना प्रसार कर रही है। लेखन की विभिन्न विधाओं में आज नए लेखकीय मंच स्थापित हो रहे हैं। डिजिटल माध्यमों पर रचनाओं का प्रकाशन सामान्य बात हो गई है। इस प्रकार, हिंदी के ई-संसार को एक तरह से हिंदी भाषा और साहित्य का नया लोकतंत्र कहा जा सकता है। इस लोकतंत्र में उपभोक्ता यहाँ का राजा है। वह अपनी मर्ज़ी से अपने घर ही नहीं, बल्कि दुनिया के किसी भी कोने से, किसी भी समय, ऑनलाइन प्लेटफ़ार्म के माध्यम से ई-सामग्री को देख-पढ़ या सुन सकता है।

ई-संसार की विषयगत विविधता

सूचना-प्रौद्योगिकी के नवोन्मेषी तंत्र से युक्त होकर, वर्तमान समय में, हिंदी वैश्विक ज्ञान से निरंतर समृद्ध हो रही है। हिंदी का ई-संसार मात्र साहित्य तक सीमित नहीं रहा है। इसमें कई अधुनातन विषयों पर और विविध विधाओं में नित्य नई सामग्री आ रही है। ब्लॉग, वेबसाइट, वेबपेज, शिक्षाप्रद वीडियो, ई-पुस्तकालयों और ई-पत्रिकाओं के पोर्टल जैसे विविध माध्यमों पर हिंदी का ई-संसार फैला हुआ है। आज ओ.टी.टी. में हिंदी है, ट्विटर के हैशटैग भी हिंदी में हैं और माइक्रोसॉफ़्ट, गूगल जैसी कंपनियों की व्यापारिक रणनीतियों में भी हिंदी सर्वप्रमुख हो गई है।

हिंदी के ई-संसार को आकार देने वाली सामग्री में पठनीय विषयवस्तु से लेकर ऑडियो, वीडियो, ग्राफ़िक्स, एनीमेशन आदि संप्रेषण के सभी प्रकार इसमें समाहित हैं। यहाँ समाचार-पत्रों के ऑनलाइन संस्करण और स्वतंत्र समाचार पोर्टल हैं, तो दूसरी ओर सोशल मीडिया के विभिन्न प्लेटफ़ॉर्म, न्यूज़लेटर और वेब एप्लिकेशन लोगों को उनकी अपनी भाषा से जोड़ रहे हैं। इस दुनिया में, साहित्यिक अभिव्यक्ति, ई-मेल, ब्लॉग, वार्तालाप, ई-चौपाल, ई-पुस्तकों का पठन और श्रवण, आभासी मेल-जोल, ये सब संभव हो गया है।

कंप्यूटर, मोबाइल और दूसरे डिजिटल उपकरणों में, हिंदी की उपस्थिति हमें वेब जगत् में, हिंदी के उज्ज्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त करती है। हालाँकि, यह भी सच है कि बुद्धिमान मशीनों की खोज, वर्चुअल दुनिया के वर्चस्व और लगातार बदलती या अद्यतन होती प्रौद्योगिकी के परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा भी बदल रही है। उपयोगकर्ताओं की रुचि के अनुसार अंतर्जाल पर हिंदी सीखने, बोलकर टाइप करने, लिखा हुआ सुनने, अनुवाद करने, शब्दकोश, विश्वकोश, हिंदी के विविध सॉफ़्टवेयर आदि तमाम सुविधाओं से संबंधित एप्लिकेशनों की भरमार हो गई है।

विभिन्न यांत्रिक उपकरणों पर, आभासी सहायक या वर्चुअल असिस्टेंट की सहायता से काम करने की दृष्टि से भी, हिंदी के माध्यम का निरंतर विस्तार हो रहा है। अमाज़ॉन का 'अलेक्सा' हो या गूगल का 'गूगल असिस्टेंट', माइक्रोसॉफ़्ट की 'कोर्टाना' हो या फिर एप्पल की 'सीरी' - इन सभी आभासी सहायकों से, हिंदी भाषा में मार्गदर्शन एवं सहयोग लिया जा सकता है। इनमें से कुछ आभासी सहायक संदेश टाइप करने, इंटरनेट पर सवालों के जवाब ढूँढने और बोले गए शब्दों का अनुवाद करने में दक्षता हासिल कर चुके हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के क्षेत्र में तकनीक का अगला हर पड़ाव कहीं-न-कहीं हिंदी के ई-संसार को आगे ले जा रहा है।

निकट भविष्य में तकनीक हमें और अधिक सक्षम बनाने वाली है। अपने विचारों या मात्र आँखों के संकेतों से हम हिंदी के वर्चुअल और वास्तविक दुनिया में न केवल शामिल हो सकेंगे, बल्कि चंद मिनटों में बहुत सारे काम भी कर पाएँगे। इंटरनेट पर हिंदी साहित्य और इसके साहित्यकारों एवं विशेषज्ञों से संबंधित डेटाबेस की उपलब्धता के कारण हिंदी भाषा नित नए रिकॉर्ड बना रही है। वर्तमान युग में मोबाइल, आईपैड, स्मार्टफ़ोन आदि साधन सबको सुलभ हो गए हैं तथा दुनिया के अधिकांश हिस्सों में 4जी अथवा 5जी संचार सुविधा भी आ गई है। इसने लोगों के हाथों में हिंदी के बृहद ई-संसार को समेट लिया है।

इंटरनेट और उन्नत तकनीक ही वह कारण है, जिससे ई-संसार में सब कुछ द्रुत है, सुविधाजनक है और दूसरों पर निर्भरता

को कम कराने वाला है। व्यापार, वाणिज्य, खरीदारी, भुगतान जैसे आर्थिक जगत से जुड़े क्षेत्रों के लिए डिजिटल प्रौद्योगिकी के प्रयोग को वरदान से कम नहीं माना जा सकता। इसकी वजह से बहुत कम समय में ही हिंदी के ई-संसार में बैंकिंग, निवेश, ऑनलाइन विज्ञापन, समाधान केंद्र, विक्रय केंद्र जैसी सेवाओं एवं सुविधाओं का प्रवेश, प्रयोग एवं आम जनता में इनका प्रचलन संभव हो पाया है।

आभासी कार्यशालाओं, गोष्ठियों, प्रशिक्षण-सत्रों, ऑनलाइन कक्षाओं, कवि सम्मेलनों जैसी ई-गतिविधियों में देश-विदेश के किसी भी कोने से विशेषज्ञों और आम लोगों के जुड़ने तथा विचार-विनिमय करने की छूट मिल जाने के कारण हमारे कार्य-क्षेत्र, जीवन-शैली और संप्रेषण में बहुत बड़ा बदलाव आया है। यह स्वाभाविक है कि डिजिटल माध्यमों की इन सुविधाओं के कारण उपयोगकर्ताओं की सोच बदल रही है और लगातार विकसित हो रहीं प्रौद्योगिकी की नवीन प्रवृत्तियों से हिंदी के ई-संसार की पहुँच बढ़ रही है। यहाँ तक कि शिक्षण में मोबाइल एप्प के विकास एवं अन्य ऑनलाइन माध्यमों के कारण, दुनियाभर के लोग अपनी-अपनी भाषाओं के ज़रिए, आज बड़ी संख्या में हिंदी सीख रहे हैं।

वेब-जगत् में हिंदी की बढ़त के निहितार्थ

सूचना-प्रौद्योगिकी की आधुनिक प्रवृत्तियों ने 'विश्व ग्राम' की सोच को सच करना शुरू कर दिया है। हिंदी में लिखी गई पुस्तकों के अनुवाद पर जो अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार मिले हैं, उससे हिंदी भाषा के प्रति दुनिया की धारणा में बदलाव का संकेत मिल रहा है। बदलती वैश्विक व्यवस्था में हिंदी का ई-संसार भी अधिक समावेशी और परिवर्तनोन्मुखी होता जा रहा है। विश्व के अलग-अलग क्षेत्रों, देशों तथा विभिन्न वर्गों के लोग इसमें शामिल हो रहे हैं। आम व्यक्ति से लेकर, बौद्धिकता के धरातल पर विचरण करने वाले बुद्धिजीवी तथा सूचना-प्रौद्योगिकी के विशेषज्ञ, ये सभी एक साथ मिलकर हिंदी के ई-संसार का ताना-बाना बुन रहे हैं।

सबके समवेत प्रयासों से हिंदी का ई-संसार लोकप्रियता के नए आयाम स्थापित कर रहा है। विश्वस्तर पर इसने तकनीक-विशारद हिंदी प्रेमियों का मनोबल बढ़ाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। जिस गति से पिछले कुछ वर्षों के दौरान हिंदी भाषा को तकनीक-उन्मुख बनाने एवं हिंदी में डिजिटल भाषायी सुविधाओं का विकास करने का कार्य किया गया है, वह अभूतपूर्व है। डिजिटलीकरण के परिणामस्वरूप हिंदी में जो भाषायी प्रयोग हुए हैं, उनमें न केवल नवाचार और प्रौद्योगिकी है, वरन् सृजनशीलता भी है। भाषा में तकनीक के इस सृजनात्मक समावेश ने वेब-जगत् में हिंदी का एक नया अवतार प्रस्तुत किया है।

ऐसा माना जाता है कि साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध होता है। हिंदी के ई-संसार की व्यापक पहुँच ने आम हिंदी भाषी की सोच को प्रभावित किया है। इसके कारण समाज में सामान्य समझे जाने वाले आम लोगों का भी डिजिटल सशक्तिकरण संभव हुआ है। लेकिन आज के तकनीकी प्रधान युग में हम मशीनों की नई पीढ़ी का जो चमत्कार देख रहे हैं, वह हमें सबसे अधिक अभिभूत करता है। जिस प्रकार जीवन के तौर-तरीके और आजीविका के साधन बदल रहे हैं, उसने हिंदी के ई-संसार को भी बड़े पैमाने पर प्रभावित किया है। स्पष्ट है कि जो हमारे आसपास घट रहा होता है, वही ई-संसार में भी प्रकट होता है।

हिंदी भाषा के सामान्य जानकार एवं उपयोगकर्ता भी आज आधुनिक तकनीकी प्रवृत्तियों को समझ रहे हैं और उनके साथ चलने का प्रयास कर रहे हैं। सूचना-प्रौद्योगिकी के विकास से कई उभरती तकनीकों एवं नवीन संभावनापूर्ण क्षेत्रों का उदय हुआ है। हिंदी भाषी युवाओं में कम्प्यूटिंग विषयों के बारे में जानने, समझने और उन्हें अपनाने की ललक बढ़ रही है। हिंदी में इन विषयों पर कंटेंट भी आ रहा है, भले ही यह अनुवाद के माध्यम से हो। लेकिन लगातार बदलती तकनीक के इस दौर ने एक नई प्रवृत्ति को अवश्य जन्म दिया है और वह प्रवृत्ति है - होड़ में बने रहने का जुनून।

तकनीकी के प्रति नई पीढ़ी के रुझान ने समाज, हिंदी भाषा और साहित्य को बदलने का एक नया दौर शुरू कर दिया है। जब कोई समाज रूढ़िवादी विचारों और परंपराओं से बाहर निकलता है, तब उसपर व्यापक प्रभाव पड़ता है। वर्तमान युग में डिजिटलीकरण के विस्तार तथा सूचना प्रौद्योगिकी की नई तकनीकों के कारण जीवन की दशा और दिशा बदल रही है। उन्नत गैजेटों और ए.आई. आधारित साधनों का जिस गति से जीवन में समावेश हो रहा है, उसी गति से ई-गतिविधियों का दायरा भी बढ़ रहा है। हिंदी के संदर्भ में इस दायरे के बढ़ने और नए विचारों के आने के कारण

हमारी अभिव्यक्ति में खुलापन आया है।

हिंदी के ई-संसार में आज कई अनछुए और अनबूझे विषयों पर खुलकर चर्चा और संवाद हो रहे हैं और इन चर्चा-परिचर्चाओं में, तकनीकी भी धीरे-धीरे अपनी जगह बनाती जा रही है। इसके कारण हिंदी संसार में नवोन्मेष और प्रयोगधर्मिता की एक नई सोच उभर रही है। नवोन्मेष और प्रयोगधर्मिता की यही सोच किसी भाषा को साहित्य की सीमित परिधि से बाहर निकालकर तकनीक के आसमान में स्वच्छंद उड़ान के लिए प्रोत्साहित करती है। इस प्रकार, हिंदी के ई-संसार ने आम जन के मन में आधुनिक तकनीकी के क्षेत्र में अपना हाथ आज़माने तथा कुछ सीखने-सिखाने की रुचि ज़रूर जगा दी है।

हिंदी का ई-संसार : आगे की तकनीकी राह

वेब जगत् में हिंदी ने निश्चित रूप से सशक्त उपस्थिति दर्ज की है, लेकिन इस उपलब्धि को लक्ष्य मानकर किसी भी दृष्टि से रुक जाना उचित नहीं होगा। हिंदी भाषी युवाओं के लिए आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस, क्लाउड कम्प्यूटिंग, इंटरनेट ऑफ़ थिंग्स, क्वांटम तकनीक, सॉफ़्टवेयर का विकास जैसे विषयों को अपना कार्यक्षेत्र बनाने की आवश्यकता है। अभी तक कुछ जाने-पहचाने पारंपरिक क्षेत्रों में ही हिंदी की धमक अधिक मुखर रही है। बात तो तब है, जब अधिक प्रतिष्ठा वाली नौकरियों तथा रोज़गार की अधिक संभावना वाले क्षेत्रों में हम हिंदी भाषी अपना कौशल दिखाएँ और उन क्षेत्रों में भी हिंदी को बुलंदी तक पहुँचाएँ। कोई संदेह नहीं कि हिंदी भाषी जब अपारंपरिक मार्ग लेंगे, तभी हिंदी के ई-संसार को नई ऊंचाइयाँ हासिल होंगी।

भाषा की दृष्टि से देखें तो वेब 1.0 में पूरी तरह से अंग्रेज़ी का दबदबा रहा और वेब 2.0 के माध्यम से मंदारिन को आगे बढ़ाने में चीन को बहुत हद तक सफलता प्राप्त हुई। इस समय जब वेब 3.0 का दौर है, तब हिंदी भाषी वैश्विक समुदाय से यह अपेक्षित है कि वह हिंदी को माध्यम बनाकर, सूचना एवं डिजिटल प्रौद्योगिकी के यंत्र-तंत्र-मंत्र का एक नया साम्राज्य स्थापित करने का प्रयास करे। यदि इस समय हिंदी में तकनीकी के प्रादुर्भाव, इनके व्यापक अनुप्रयोग, अभिनव एप्प के निर्माण तथा डिजिटल अनुप्रयोगों के व्यावसायीकरण आदि के लिए प्रयास नहीं किया गया, तो हिंदी को वैश्विक पहचान दिलाने के अभियान में हम बहुत पीछे रह जाएँगे और शनै: शनै: हिंदी का ई-संसार भी अपनी आभा खोने लगेगा।

विश्व की अन्य शीर्षस्थ भाषाओं का वर्चस्व बनाए रखने के लिए आज दुनिया के अनेक देशों के द्वारा बहुत कुछ किया जा रहा है। यदि हम भाषा-विस्तार से संबंधित उनके बहुआयामी प्रयासों पर नज़र डालें, तो स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी भाषा, साहित्य और कुल मिलाकर, हिंदी के ई-संसार की चमक-दमक बनाए रखने के लिए कुछ बड़ा सोचने और करने की ज़रूरत है। आर्थिक आधार पर प्रायोजित योजनाओं के बजाय, यदि हम आई.टी. क्षेत्र में कार्यरत अपने विशेषज्ञों के सामर्थ्य के दम पर वेब 3.0 में हिंदी की उत्तरोत्तर प्रगति के लिए विशिष्ट रणनीतियों को अपनाकर प्रयास करते हैं, तो यह अधिक प्रभावोत्पादक होगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने की जो पहल अभी की जा रही है, इन प्रथाओं के परिणामस्वरूप यह पूर्णरूपेण संभव लगता है कि बहुत शीघ्र हिंदी को यू.एन. की आधिकारिक भाषा का दर्जा प्राप्त हो जाएगा। हिंदी के ई-स्वरूप और डिजिटल प्रस्तुतियों पर इसका बहुत व्यापक प्रभाव पड़ेगा। आई.टी. क्षेत्र में पहले से ही हिंदी के जानकार वर्ग का दबदबा है। इस क्षेत्र में कार्यरत इंजीनियरों एवं तकनीकीविदों में एक बहुत बड़ा वर्ग ऐसा है, जिनकी मातृभाषा हिंदी है अथवा दूसरी या तीसरी भाषा के रूप में जिन्होंने हिंदी का ज्ञान प्राप्त किया है। हिंदी के विकास व विस्तार की दृष्टि से भविष्य में इस प्रशिक्षित वर्ग की बड़ी भूमिका रहने वाली है।

वर्तमान वैश्विक व्यवस्था के संदर्भ में यह एक स्थापित तथ्य है कि जो भाषायी समाज ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देगा तथा इसके अनुकूल नीति और तकनीकी रीति को अपनाएगा, वही हर क्षेत्र में अग्रणी बन सकेगा। आवश्यकता इस बात की है कि आई.टी. के विशेषज्ञ पहल करें तथा दुनियाभर में प्रचलित हिंदी की बोलियों एवं उपभाषाओं को समझने में सक्षम नए एप्लिकेशन, सॉफ़्टवेयर और यूटिलिटी तैयार करें। उनके द्वारा तैयार किए गए डिजिटल साधन यदि हिंदी की तमाम बोलियों एवं उपभाषाओं आदि के माध्यम से गुणवत्तापूर्ण सेवा उपलब्ध कराते हैं तथा वे दैनिक जीवन में मददगार होते हैं, तो हिंदी की विश्वस्तरीय पहुँच को और अधिक विस्तार मिलेगा तथा इसका ई-संसार हर दृष्टि से

समुन्नत होगा।

अपनी भाषा से जो समाज और समुदाय जितना अधिक जुड़ा होता है, वह अपने आत्मसम्मान के प्रति भी उतना ही गंभीर रहता है। वास्तव में, भाषा, साहित्य, सामाजिक व्यवहार आदि ऐसे महत्त्वपूर्ण अवयव हैं, जो किसी समुदाय की उन्नति तथा भाषा की वैश्विक स्थिति का भविष्य निर्धारित करते हैं। आज हिंदी भाषा की प्रयुक्ति के साथ-साथ हमारी भावाभिव्यक्ति एक नए तकनीकी विकास एवं डिजिटल परिवर्तन की प्रक्रिया के दौर से गुज़र रही है। वर्तमान प्रवृत्तियों को आत्मसात करते हुए जब हम अपने आत्म-सम्मान के प्रतीक-हिंदी को आधुनिक बदलावों के साथ आगे बढ़ने के लिए सशक्त और समर्थ बनाएँगे, तभी परिवर्तनों की आंधी में भी यह प्रासंगिक बनी रहेगी। विभिन्न डिजिटल मंचों पर और विविध ई-गतिविधियों में जब मूल हिंदी में सृजन, उपभोग एवं जन-जन में इनकी व्याप्ति सुनिश्चित होगी, तब हिंदी का ई-संसार और अधिक निखरेगा। हिंदी के ई-संसार की वृद्धि एवं समृद्धि के परिप्रेक्ष्य में इसी वास्तविकता को समझने की आवश्यकता है।

संदर्भ :

1. https://www.researchgate.net/publication
2. https://www.thinkwithgoogle.com
3. https://hindivishwa.org

sanjayc1965@gmail.com

जन-संचार और हिंदी

श्री अमर कुमार चौधरी,
कोलकाता, भारत

'संचार' शब्द अंग्रेज़ी के 'communication' शब्द के 'common' शब्द से बना हुआ है, जिसकी उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'communicare' शब्द से हुई है। संचार के साधनों द्वारा सूचनाओं, विचारों, विकल्पों एवं निर्णयों का दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच आदान-प्रदान किया जाता है। विचारों का आदान-प्रदान लिखित, मौखिक अथवा सांकेतिक किसी भी प्रकार का हो सकता है। संचार का सीधा संबंध जन-साधारण से माना जाता है, इसलिए इसे जन-संचार या Mass Communication कहते हैं, अर्थात् जन-संचार का अर्थ है - 'जन-समुदाय के साथ सूचनाओं का आदान-प्रदान करना।' संचार-माध्यम के रूप में हिंदी भाषा का प्रयोग कोई नई बात नहीं है। अभिव्यक्ति की क्षमता पाते ही, जन-कथाओं एवं पौराणिक कथाओं के रूप में हिंदी जन-संचार का माध्यम बन गई थी। भारतीय विद्वान हिंदी की शक्ति को समझते थे। इसलिए उन्होंने जन-संचार के विभिन्न माध्यम-रंगमंच, प्रकाशन, प्रसारण, फ़िल्मों आदि में हिंदी का व्यापक प्रयोग कर विदेशी शासन के विरुद्ध सशक्त जन-आंदोलन चलाया था। जन-संचार साधारण जनता के लिए होता है। इससे संदेश तीव्र गति से गंतव्य तक पहुँचता है। आजकल हिंदी का प्रसार वैश्विक स्तर पर किया जा रहा है एवं जनसंख्या के आधार पर हिंदी आर्थिक एवं वाणिज्य के कार्यों की भाषा बनती जा रही है। "देश को देशत्व प्राप्त होने के लिए विशेषकर दो बातों की दरकार होती है - एक भाषा, दूसरा धर्म। अर्थात्, जिस देश में सर्वत्र एक ही भाषा और एक ही धर्म प्रचलित है, वही देश देशत्व युक्त है। अर्थात्, देश को सजीव रखने के लिए, एक भाषा और एक धर्म की प्रधान आवश्यकता रहती है।"[1]

जन-संचार का अर्थ केवल व्यक्ति का अपना हाल दूसरों तक पहुँचाने तक ही सीमित नहीं है, प्रत्येक व्यक्ति अपने या अपने संबंधियों की जानकारी प्राप्त करने के अलावा देश-दुनिया की जानकारियाँ प्राप्त करने का भी इच्छुक होता है। सूचनाओं की इसी भूख के कारण जन-संचार माध्यमों का लगातार विकास और विस्तार हो रहा है, जिसमें हिंदी भाषा का महत्त्व अधिक बढ़ता जा रहा है। हिंदी देशभर में बोली जाने वाली आम भाषा है। आज अधिकतर देश और देश के लोग हिंदी भाषा का प्रयोग कर रहे हैं। हिंदी आज एक ऐसी भाषा बन गई है, जिसे दुनिया में बहुत बड़े स्तर पर बोला और समझा जाता है। हिंदी जन-संचार माध्यम के लिए संपर्क भाषा बन गई है। भारत के साथ संपर्क रखने के लिए हिंदी की अनिवार्यता विदेशी धरती तथा उनकी सरकारें भी महसूस कर रही हैं।[2]

भारत में, आज जन-संचार का माध्यम जिस रूप में मौजूद है, उसकी प्रेरणा भले ही पश्चिमी जन-संचार माध्यम रही हो, लेकिन हमारे देश में भी जन-संचार माध्यमों का इतिहास कम पुराना नहीं है। हम बड़ी ही सहजता के साथ इसके बीज पौराणिक काल के काल्पनिक पात्रों में खोज सकते हैं। जन-भावनाओं को राजदरबार तक पहुँचाने और राजा का संदेश जनता के बीच प्रसारित करने की समृद्ध व्यवस्थाओं के उदाहरण भी दिखाई पड़ते हैं। लेकिन भारतीय संचार परंपरा की विशेषता यह भी रही है कि राजदरबारों के समानांतर हमारे यहाँ लोक-माध्यमों की भी सुलझी व्यवस्था मौजूद रही है। जन-संचार के आधुनिक माध्यम निश्चित ही अंग्रेज़ों से प्राप्त हुए हैं, चाहे समाचार-पत्र हों या रेडियो, टेलीविजन, इंटरनेट आदि सभी माध्यम पश्चिम से ही आए हैं। आज के जन-संचार माध्यमों का ख़ाका भले ही पश्चिमी हो, लेकिन उनकी विषयवस्तु और रंग-रूप भारतीय ही हैं। "व्यापक स्तर पर ज्ञान-विज्ञान का प्रचार-प्रसार अंततः जनभाषा के माध्यम से ही संभव होता रहा है।"[3] जन-संचार माध्यमों में हिंदी के आगमन से इनकी भूमिका भी कहीं अधिक बढ़ गई है।

पत्र-पत्रिकाएँ और हिंदी

समाचार-पत्र जन-संचार के महत्त्वपूर्ण माध्यम हैं। इनको शब्द ही सँवारकर जीवंत बनाते हैं। शब्द जब प्राणवान होते हैं, तब अज्ञान और जड़ता का अंधकार छँटता है। शब्द अर्थ देने में समर्थ होते हैं। पत्र-पत्रिकाएँ संसार की वर्तमान स्थिति के दर्पण हैं;

विश्वपटल पर घटित घटनाओं का विश्वसनीय दस्तावेज़ हैं। आज के युग में समाचार-पत्र सूचना संकलन का साधन मात्र ही नहीं है, बल्कि नई मशीनों तथा विभिन्न प्रकार की मुद्रण प्रक्रियाओं के प्रयोग से उसकी विषयवस्तु में भी सुधार हुआ है। आज समाचारों में हिंदी के प्रयोग के कारण हिंदी भाषा सूचनाओं का मुख्य स्रोत बन गयी है तथा जनसाधारण के विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम भी है। "1 मई 1982 का दिन भाषायी पत्रकारिता की दृष्टि से विशेष महत्त्व का दिन है। इसी दिन यू.ए.आई ने यूनीवार्ता नाम से हिंदी समाचार सेवा का आरंभ किया। हिंदी की यह सेवा हिंदी समाचार-पत्रों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई और देखते-ही-देखते उसके ग्राहकों की संख्या बढ़ गई।"[4]

वर्तमान युग में समाचार-पत्र जनतंत्र का चौथा स्तम्भ ही नहीं है, बल्कि वह जनता के सापेक्ष वैचारिक उद्वेलन और सामाजिक चेतना को रूपित-विरूपित करने वाला स्वतंत्र शक्तिपुंज भी है। समाचार-पत्र या पत्रिकाएँ अपनी सामान्य भाषा में राजनीतिक भ्रष्टाचार, प्रशासनिक शिथिलता, मिथ्या आश्वासनों तथा जनता के प्रति अहितकर षड्यंत्रों का पर्दाफ़ाश करती हैं। राष्ट्र की आर्थिक दशा का विश्लेषण करके जनता को सचेत करने में, पत्र-पत्रिकाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, क्योंकि इसका प्रत्यक्ष संबंध देश के साधारण वर्गों से रहा है और हिंदी भाषा ने इन्हें वह सरलता और सुबोधता प्रदान की, जिससे समाज का प्रत्येक वर्ग इससे मज़बूती के साथ जुड़ सका।

रेडियो और हिंदी

रेडियो जन-संचार माध्यमों के श्रव्य माध्यम के अंतर्गत सर्वाधिक लोकप्रिय है। यह एक ऐसा साधन है, जो संदेशों को अदृश्य विद्युत चुंबकीय तरंगों के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजता है। संचार या सम्प्रेषण में भाषा ही मुख्य माध्यम होती है। माध्यम के बिना संचार असंभव है। भाषा पहला विकसित माध्यम है, जिसने जन-संचार को व्यवस्था दी। वह माध्यम भाषा के रूप में हो या चित्र अथवा संगीत के रूप में ही क्यों न हो? - एक माध्यम ही माना जाएगा। यह माध्यम आपसी अनुभवों के ज़रिए लोगों को जोड़ता है और ऐसे विषय प्रदान करता है, जिसपर संवाद हो सके। सीमित शब्दों में यह कह सकते हैं कि रेडियो जन-जीवन का एक आवश्यक कारक बन चुका है। "रेडियो सुनने का एक माध्यम है, इसीलिए यह देखने व पढ़ने के माध्यम से नितांत अलग है। यह माध्यम शब्दभेदी बाण चलाने वाले धनुर्धरों को बल देता है और अनाचारों तथा दुराचारों की छाती को चीरकर रख देता है।"[5]

आज के बदलते युग में भाषा-सम्प्रेषण के अनेक माध्यम हमारे मन-मस्तिष्क को झकझोर रहे हैं। हर माध्यम में हिंदी भाषा का नया रूप उभरकर आता है। हिंदी को संचार भाषा बनाने में 'विविध भारती' का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। 'विविध भारती' भारतीय एकता का सशक्त प्रतीक है। देश-भर में 'विविध भारती केंद्रों' से एक ही समय एक ही प्रकार के कार्यक्रम का प्रसारण एक ही भाषा - हिंदी में होता है। रेडियो के हिंदी कार्यक्रम केवल भारत में ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी प्रसारित किए जा रहे हैं, जिससे हिंदी भाषा लोकप्रिय बन रही है। साथ-ही-साथ जनता की संपर्क-भाषा बनने का मौका भी इसे मिल जाएगा।

टेलीविजन और हिंदी

टेलीविजन जन-संचार का एक ऐसा माध्यम है, जिसमें चलते-फिरते चित्र और ध्वनि दोनों ही हम तक पहुँचते हैं। इसकी सहायता से विश्वभर की घटनाओं का आँखों देखा हाल हम तक पहुँचता है। इससे न केवल हमारा मनोरंजन होता है, बल्कि ज्ञान की वृद्धि भी होती है। यह शिक्षा के प्रचार-प्रसार का एक सशक्त माध्यम बन गया है। टेलीविजन के द्वारा प्रसारित किए जाने वाले कार्यक्रमों में अन्य भाषा की अपेक्षा हिंदी भाषा का विशेष स्थान है। ये कार्यक्रम एक बड़े समुदाय द्वारा देखे जाते हैं।

टेलीविजन में हिंदी का जो नया रूप उभरकर सामने आया है, उसका प्रमुख कारण है - बाज़ारवाद। जब भाषा बाज़ार से जुड़ती है, तब उसका रूप अवश्य बदलता है। वह अपने मूल रूप में नहीं रह पाती। आज टेलीविजन की हिंदी, बाज़ार की भाषा के रूप में परिवर्तित हो रही है। हिंदी भाषा ने टेलीविजन द्वारा होने वाले संचार की भाषा के रूप में अपनी विशिष्ट उपस्थिति दर्ज करा ली है। जिस जन-संचार माध्यम का प्रसारण चौबीस घंटों का हो, उसका वैविध्यपूर्ण होना आवश्यक है। जन-संचार भाषा में, हिंदी की सफलता को देखते हुए, अनेक विदेशी चैनलों ने भी हिंदी भाषा के महत्त्व को स्वीकारा है और हिंदी कार्यक्रमों को अपने चैनलों में

शामिल किया है। अतः आज टेलीविजन के कार्यक्रम, हिंदी भाषा के माध्यम से, संप्रेषित होकर लोकप्रियता के शिखर को छू रहे हैं। "टेलीविजन की भाषा में आज देश-विदेश के शब्द समाहित हो गए हैं। वह उन सारे शब्दों को आत्मसात कर रही है, जो क्षेत्र-विशेष या प्रांत-विशेष के हों। इसलिए टेलीविजन की हिंदी, वर्ग-विशेष की हिंदी बन गई है।"[6]

सिनेमा और हिंदी

देश में इस समय मनोरंजन का सबसे अधिक चर्चित साधन सिनेमा है। भारतीय इसे बायोस्कोप के नाम से जानते हैं। फ़िल्म-निर्माण के क्षेत्र में इस समय भारत को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। भारतीय सिनेमा के दर्शक समाज के हर वर्ग से आते हैं। शिक्षित वर्ग के साथ ही, अशिक्षित या कम पढ़ा-लिखा वर्ग भी सिनेमा का दर्शक होता है। कोई भी जन-संचार माध्यम ऐसी भाषा को अपनाता है, जिसे अधिक-से-अधिक लोग लिखते, बोलते और समझते हों। इसलिए फ़िल्मों के निर्माता-निर्देशक समाज के हर वर्ग के व्यक्तियों की भाषा का प्रयोग अपनी फ़िल्मों में करते हैं, जिससे फ़िल्म देखने वाले सभी दर्शकों को उस फ़िल्म की भाषा अपनी ही भाषा लगे। भारत एक बहुभाषी देश है, जिसके कारण यहाँ बहुत-सी भाषाओं के प्रयोग का प्रचलन है, किन्तु सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा हिंदी ही है। भारत में, सभी भाषाओं में फ़िल्मों का निर्माण किया जा रहा है, किन्तु हिंदी फ़िल्मों के निर्माण की संख्या अधिक है। "फ़िल्म में हिंदी भाषा को चुनना इस बात का प्रमाण है कि हिंदी सभी भारतीय भाषाओं में अधिक ऊर्जावान, सरल, सुबोध, सुगम तथा आम जनता से बहुत शीघ्र जुड़ने वाली भाषा है। मीडिया उस भाषा को अपनाता है, जो भाषा कम समय तथा कम प्रयास से लोगों से जुड़ जाती है। तात्पर्य यह है कि हिंदी भाषा में वह गुण है, जो उसे सर्वग्राह्य बनाता है।"[7]

"हिंदी सिनेमा का संबंध किसी क्षेत्र विशेष से जोड़ना उचित नहीं है। इसका संबंध पूरे भारत से है, इससे भी ज़्यादा सही यह कहना होगा कि इसका संबंध दक्षिण एशिया के उस हिस्से से है, जिसे भारतीय उपमहाद्वीप कहते हैं।"[8] हिंदी फ़िल्में अहिंदी भाषी जनता द्वारा बड़े पैमाने पर सराही जाती रही हैं। हिंदी फ़िल्मों के अधिकांश दर्शक अहिंदी भाषी हैं, जो हिंदी बोल नहीं सकते, पर उसे समझते हैं। इसका बहुत बड़ा कारण हिंदी फ़िल्मों की सरलता तथा उसके संगीत-पक्ष की मधुरता है। हिंदी के गाने अपनी सरसता और लयात्मकता के कारण अहिंदी भाषियों के होंठों पर भी रच-बस जाते हैं। यहाँ तक कि विदेशों में भी, जहाँ भारतीय जनता बड़ी संख्या में रहती है, वहाँ हिंदी फ़िल्में विशेष रूप से लोकप्रिय होती हैं।

विज्ञापन और हिंदी

किसी व्यक्ति, वस्तु, सेवा, या आंदोलन को प्रस्तुत करने वाली मुद्रित सामग्री, लिखित शब्द, बोले गए शब्द या चित्रांकन विज्ञापन हैं, जिसे विज्ञापनकर्ता अपने खर्च पर बिक्री, प्रयोग, वोट या अन्य प्रकार की सहमति प्राप्ति के लिए मुक्त रूप से प्रस्तुत कर सकता है। विज्ञापन जन-संपर्क की सर्वोत्तम विधा है। हिंदी भाषा का इस क्षेत्र में नए सिरे से प्रयोग हो रहा है। इससे हिंदी भाषा के शब्दों का सामर्थ्य बढ़ा है। हिंदी अब एक निश्चित क्षेत्र तक सीमित न होकर व्यापक होती जा रही है। इसकी अपनी शब्दावली और अपनी वाक्य-संरचना है। विज्ञापन के परिमाण में केवल उत्पादक और उपभोक्ता ही नहीं आते हैं, वरन् इस क्षेत्र से संबंधित जन-संचार के सभी माध्यम और परिवहन के साधन भी आते हैं, जो विज्ञापन के प्रचार-प्रसार में सहायक होते हैं। "विज्ञापन का क्षेत्र तेज़ी से अग्रसर हो रहा है। पहले बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने विज्ञापन को अंग्रेज़ी में देती थीं। मगर अब ये अपने विज्ञापन हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में दे रही हैं, क्योंकि वे कंपनियाँ यह जानती हैं कि हिंदी भाषा व्यापक वर्ग तक पहुँचती है।"[8]

हिंदी विज्ञापनों में आकर्षण उत्पन्न करने के लिए, उन्हें प्रभावपूर्ण बनाने के लिए अनेक प्रकार के जुमलों का प्रयोग किया जाता है, जिनसे विज्ञापन अत्यंत प्रभावशाली बन जाते हैं। विज्ञापनों की भाषा साहित्यिक भाषा से भिन्न होती है। विज्ञापन का उद्देश्य उपभोक्ता के मन में उत्पादक के प्रति आकर्षण निर्माण करना है। इसलिए इनकी भाषा प्रयोजनमूलक तथा व्यावहारिक होती है। विज्ञापन में जन-सामान्य में प्रयुक्त आम-बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग होता है। इसी भाषा के माध्यम से चीज़ें बिक रही हैं, लेकिन इसका लाभ हिंदी को मिल रहा है। हिंदी भाषा अपने-आप प्रगति की ओर बढ़ रही है। विज्ञापन को एक उपयोगी भाषा की आवश्यकता थी, उसे हिंदी ने पूरा किया।

इंटरनेट और हिंदी

इंटरनेट सूचनाओं के आदान-प्रदान का सबसे सुलभ और तेज़ साधन बन चुका है। इसने मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी पकड़ मज़बूत कर ली है। आबादी की दृष्टि से देखा जाए, तो भारत का विश्व में दूसरा स्थान है और यहाँ की 70 प्रतिशत जनसंख्या हिंदी भाषा में ही सूचनाओं का आदान-प्रदान करती है। विश्व के अधिकांश देशों में भी हिंदी बोलने वाले लोग काफ़ी तादाद में रहते हैं, जो हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। इसके साथ विकसित देशों में भी हिंदी को लेकर जागरूकता बढ़ रही है। कारण यह है कि किसी भी बहुराष्ट्रीय कंपनी या देश को अपना उत्पाद बेचने के लिए देश की साधारण जनता तक पहुँचना होगा। इसके लिए जनभाषा ही सबसे सरल और सशक्त माध्यम है। यही कारक हिंदी के प्रसार-प्रचार में सहायक सिद्ध हो रहा है। पत्रकार और आलोचक विष्णु खरे का मानना है कि "अगर दृढ़ इच्छा-शक्ति दिखाई जाए, तो हिंदी की वेबसाइटें भी अंग्रेज़ी के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चल सकती हैं।"[10] सन् 2000 में, इंटरनेट का पहला हिंदी वेबपोर्टल अस्तित्व में आया। तभी से इंटरनेट पर हिंदी ने अपनी छाप छोड़नी प्रारंभ कर दी, जो अब पूरी तीव्र गति से प्रवाहित हो रही है। नई पीढ़ी के साथ-साथ पुरानी पीढ़ी ने इंटरनेट में हिंदी की उपयोगिता समझ ली है। इंटरनेट पर हिंदी का सफ़र रोमन लिपि से प्रारंभ होता है और फ़ॉण्ट से जुड़ी हुईं समस्याओं से जूझते हुए, धीरे-धीरे यह देवनागरी लिपि तक पहुँच जाता है। आज इंटरनेट पर हिंदी साहित्य से संबंधित अनेक ई-पत्रिकाएँ देवनागरी लिपि में उपलब्ध हैं।

हिंदी भाषा के प्रयोग से इंटरनेट माध्यम सरल बनता जा रहा है। पहले इंटरनेट पर जानकारियाँ अंग्रेज़ी भाषा में ही उपलब्ध थीं, जिसके कारण इसकी पहुँच कुछ लोगों तक ही सीमित थी। सामान्य लोग इसका उपयोग करने से घबराते थे। किन्तु आज हिंदी भाषा के कारण इंटरनेट आधुनिक समय में मनोरंजन का सबसे बड़ा साधन बन गया है। आज हर क्षेत्र में आपको ऑनलाइन कार्य मिलता है, जिसमें रेलवे, मेट्रो-रेलवे, व्यापार-उद्योग, दुकान, स्कूल, कॉलिज, विश्वविद्यालय, एन.जी.ओ एवं कार्यालयों आदि सभी जगहों में इंटरनेट की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। आज के आधुनिक युग में हर व्यक्ति इंटरनेट से परिचित है। हिंदी ने इसका प्रयोग बहुत-ही आसान कर दिया है। अतः इंटरनेट हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है।

जन-संचार या सम्प्रेषण में भाषा मुख्य माध्यम है। माध्यम के बिना संचार असंभव है। भाषा पहला विकसित माध्यम है, जिसने जन-संचार को व्यवस्था दी। वह माध्यम भाषा के रूप में हो या चित्र-संगीत के रूप में ही क्यों न हो? - वह माध्यम तभी माना जाएगा, जब सूचना भेजने वाला और सूचना पाने वाला - दोनों उसे समझते हों। हर माध्यम में हिंदी भाषा का एक नया रूप उभरकर आता है। हिंदी जन-संचार माध्यमों की सामान्य बोलचाल की भाषा है और यह जीवन में सामान्य प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होती है। इसका ज्ञान सामान्य जीवन के परिवेश से ही मिलता है और इसके लिए किसी विशेष औपचारिक शिक्षा या प्रयास की आवश्यकता नहीं होती है।

संदर्भ-ग्रंथ :

1. द्विवेदी महावीर प्रसाद, हिंदी भाषा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण - 1995
2. प्रसाद डॉ. विनोद कुमार, भाषा और प्रौद्योगिकी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण - 1999
3. हर्षदेव, उत्तर आधुनिक मीडिया तकनीक, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण - 2001
4. आलोक टी.डी.एस, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया : दशा एवं दिशा, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. ली., नई दिल्ली, संस्करण - 2009
5. नदाफ़, डॉ. रेशमा, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और हिंदी, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण - 2010
6. तड़वी, डॉ. एस. ए, सिनेमा की भाषा - हिंदी, साहित्य और सिनेमा, सम्पादक - पुरुषोत्तम कूदे, साहित्य संस्थान, संस्करण - 2014
7. पारख जवरीमल्ल, हिंदी सिनेमा और भारतीय समाज, हिंदी सिनेमा का समाजशास्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण - 2006
8. कुमार सुरेश, इंटरनेट पत्रकारिता, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण - 2004

amarkumar_22@yahoo.com

प्रवासी भारतीय समस्या और 19वीं सदी की हिंदी पत्रकारिता

डॉ. राकेश कुमार दूबे
वाराणसी, भारत

प्रवासी भारतीयों की समस्या औपनिवेशिक भारत की एक अत्यंत विकट समस्या थी। विदेशी वातावरण में रहते हुए और अपनी अधम स्थिति का अनुताप सहते हुए प्रवासी भारतीयों ने अपने मूल देशवासियों को मोहनिद्रा से जगाने और आगे बढ़ाने के साथ ही, स्वतंत्रता-संग्राम में भी अपना योगदान दिया। परंतु भारत में उनकी समस्याओं की सुध लेने वाला शायद कोई नहीं था। यह भारत की हिंदी पत्रकारिता थी, जिसने औपनिवेशिक काल में प्रवासी भारतीयों की समस्याओं को समझा और उनकी समस्याओं से जुड़े सभी पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए, उनसे भारतीय जनमानस को परिचित कराया और यूरोपीय प्लांटरों के अत्याचारों एवं नस्लीय भेदभाव के विरुद्ध प्रवासी भारतवासियों द्वारा किए जा रहे आंदोलनों को बल प्रदान किया। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही भारत की हिंदी पत्रकारिता ने इस विषय को उठाना शुरू किया और 20वीं सदी के आरंभ में जैसे-जैसे हिंदी पत्रकारिता सशक्त होती गयी, उसी क्रम में इस समस्या को भी राष्ट्रीय स्वरूप प्राप्त होता गया। प्रवासी भारतीयों द्वारा अपनी समस्याओं से जूझते हुए भारतीयों में जागृति लाने और भारतीय राष्ट्रवाद को पुष्ट करने के साथ बृहत्तर भारत के निर्माण का जो उद्योग किया गया, उसमें हिंदी पत्रकारिता ने अपना पूर्ण योगदान दिया।

भारतीय पुनर्जागरण और राष्ट्रीय आन्दोलन में पत्रकारिता का महत्त्वपूर्ण योगदान था। भारतीय पुनर्जागरण और पत्रकारिता एक-दूसरे के बिम्ब और सहायक थे। भारतीय पुनर्जागरण ने जहाँ पत्रकारिता को श्री, शक्ति और बल प्रदान किया, वहीं पत्रकारिता ने उसे दशा एवं दिशा दी। जन-जागरण की जो क्षमता पत्रकारिता में है, वह विश्व के किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा वाद में नहीं है। पत्रकारिता ज्ञानान्धकार में पड़ी निश्चेष्ट जातियों का सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टि से कल्याण करने की क्षमता रखती है; न केवल भारत, वरन् विश्व के अन्य राष्ट्रों में भी। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों के पीछे पत्रकारिता की अहम भूमिका रही है। नेपोलियन सदृश व्यक्तित्व भी पत्रकारिता के महत्त्व से परिचित था। 19वीं शताब्दी में, भारत में जनजागृति लाने एवं प्रवासी भारतवासियों की समस्याओं को उजागर करने एवं उसे व्यापक फलक प्रदान करने में पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

प्राचीन काल से ही, भारत के लोग धर्म-प्रचार एवं व्यापार के उद्देश्य से दूसरे देशों में, स्थल एवं जल मार्ग द्वारा जाया करते थे। वे देशी शिल्प और वाणिज्य की उन्नति करने के साथ-साथ विदेशों से घनिष्ठ व्यापारिक संबंध स्थापित करते थे। इन सबका फल भारत के लिए बड़ा लाभप्रद सिद्ध हुआ। अपने सांस्कृतिक महत्त्व एवं आर्थिक समृद्धि के बल पर भारत ने संसार में अपना प्रमुख स्थान बना लिया। इसका प्रधान श्रेय इस देश के त्यागमूर्ति विद्वान प्रचारकों, अध्यवसाय शिल्पियों एवं उत्कृष्ट उत्साह वाले वणिकों को है।[1]

प्राचीन काल से भारतवासी दूसरे देशों में प्रवास करते रहे थे। भारतवासियों के प्रवास का उद्देश्य भारतीय सभ्यता, संस्कृति, धर्म, दर्शन और मैत्री का सच्चा संदेश दूसरे देशवासियों को देना था और इस प्रक्रिया में भारत के लोगों ने बल का प्रयोग शायद ही कभी किया हो। इस संदर्भ में डॉ. बैजनाथ पुरी का अभिमत रेखांकित करने योग्य है कि "भारत ने कभी भी तलवार के ज़ोर से विदेशियों को जीतने और वहाँ अपना धर्म तथा संस्कृति फैलाने का प्रयास नहीं किया। फिर भी यहाँ की संस्कृति की गहरी छाप पश्चिमी एशिया, मिस्र और रोम से लेकर पूर्व में चीन तक तथा मध्य एशिया के चीनी तुर्किस्तान से लेकर दक्षिण पूर्वी एशिया के हिंद चीन, इंडोनेशिया तथा अन्य द्वीप समूहों तक पड़ी। इस सफलता का श्रेय उन व्यापारियों, धर्म-प्रवर्तकों, सांस्कृतिक शिष्टमंडलों तथा ऐसे वीरों को है, जिन्होंने भौगोलिक शृंखलाओं को तोड़कर यातायात की असुविधाओं को झेलते हुए, विदेशों में जाकर अपनी संस्कृति का बीज बोया।"[2]

भारत में अंग्रेज़ व्यापारी बनकर आए थे, परंतु अपनी कुटिल नीतियों के कारण वे यहाँ के शासक बन गए। यूरोप में

हुए सुधारवादी आंदोलनों एवं नेपोलियन बोनापार्ट के पतन के बाद जब संसार से गुलामी की घृणित प्रथा समाप्त हो गयी, तब अंग्रेज़ों ने अपने लाभ के लिए भारत में उसी प्रथा को पुनः प्रारंभ किया। गुलामी की प्रथा की समाप्ति के बाद इंग्लैंड की सरकार ने देखा कि उपनिवेशों में, गन्ने इत्यादि का व्यवसाय नीग्रो दासों के सहारे नहीं चल सकता। भारतीय मज़दूर उनकी तुलना में अधिक परिश्रमी, नियमित और अनुशासित होते हैं, इसलिए मॉरीशस, फ़िजी, गयाना, सूरीनाम एवं त्रिनिदाद जैसे ब्रिटिश शासित देशों में लाखों भारतीय मज़दूर भारत से भेजे गए[3] और इस प्रकार अंग्रेज़ों ने भारत में एक ऐसी प्रथा का आरंभ किया, जिसके कारण भारत के लोगों को उपनिवेशों में जाकर न केवल अकथनीय कष्ट भोगने पड़े, बल्कि भारत का नाम भी कलंकित हुआ।

इस प्रकार 19वीं सदी के तीसरे दशक में जब संसार से गुलामी की प्रथा उठ गई, तब इस अभागे देश में मीआदी गुलामी का जन्म हुआ। इंग्लैंड ने, 1833 ई. में, दास-व्यवसाय का दाग तो धो बहाया, परन्तु उसके अगले ही साल भारत में उसी गुलामी का घृणित और परिवर्तित रूप अपनाया गया। अतएव 1834 ई. में मॉरीशस, 1838 ई. में गयाना, 1845 ई. में त्रिनिदाद, 1847 ई. में जमैका, 1854 ई. में मोंटिनिग्रो, 1854 ई. में ग्वाडेलूप, 1856 ई. में ग्रेनाडा, 1858 ई. में सेंट लूसिया, 1860 ई. में दक्षिण अफ़्रीका, 1861 ई. में सेंट विंसेंट, 1873 ई. में सूरीनाम, 1879 ई. में फ़िजी, 1895 ई. में पूर्वी अफ़्रीका, 1899 ई. में सीशेल्स आदि उपनिवेशों के लिए भारत से शर्तबंद गुलाम भेजे जाने लगे[4], जहाँ उन्हें लगभग 20 पाउण्ड में बेचा जाता और उन्हें यूरोपियन मालिकों के खेतों में कड़े-से-कड़े काम करने पड़ते थे और उनपर पाशविक अत्याचार भी किया जाता था।

हिंदी में सन् 1845 ई. के जनवरी में राजा शिवप्रसाद की सहायता से 'बनारस अखबार' का जन्म हुआ। यह पत्र लिथो में बहुत ही घटिया किस्म के कागज़ पर छपता था और इसके सम्पादक गोविन्द रघुनाथ थत्ते राजा साहब के आदेशानुसार इसे लिखते थे।[5] इस समाचार-पत्र के प्रकाशन के समय तक प्रवासी भारतीयों की समस्या इतनी भयावह नहीं हुई थी और न ही उस समय तक संचार साधन इतने विकसित थे कि प्रवासी भारतीय मज़दूरों की समस्याओं की सूचना उपनिवेशों से प्राप्त हो पाती और उसे प्रकाशित किया जाता। यही कारण है कि इस समाचार-पत्र में इस समस्या पर कोई जानकारी नहीं मिलती है।

हिंदी भाषा में सर्वप्रथम समाचार-पत्रों का इतिहास बाबू राधाकृष्णदास ने 1894 ई. में लिखा और हिंदी में प्रकाशित प्रथम पत्र की पदवी 'बनारस अखबार' को ही प्रदान की। उस समय हिंदी के प्रथम पत्र 'उदन्त मार्तंड' का किसी को ज्ञान ही नहीं था। 'मॉडर्न रिव्यू' और 'प्रवासी' के उप-सम्पादक बाबू ब्रजेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय को बंगला के पुराने पत्रों की खोज में हिंदी के प्रथम पत्र 'उदन्त मार्तंड' को प्रकाश में लाने का सौभाग्य प्राप्त हो गया। ब्रजेन्द्र बाबू ने यह जानकारी 'विशाल भारत' के संपादक पं. बनारसी दास चतुर्वेदी को दी और उन्होंने 'विशाल भारत' के 1931 ई. के फ़रवरी, मार्च, अप्रैल, मई, और जुलाई के अंकों में विस्तारपूर्वक इसका वर्णन किया। तब से 'उदन्त मार्तंड' हिंदी के प्रथम समाचार-पत्र के पद पर प्रतिष्ठित है।[6]

हिंदी पत्रकारिता के इतिहास पर यदि प्रकाश डाला जाए, तो ज्ञात होता है कि आरंभ में अधिकांशतः साप्ताहिक या फिर दैनिक समाचार-पत्र ही प्रकाशित हुए थे। पत्रिकाएँ, जो मासिक अथवा त्रैमासिक होती थीं, वे काफ़ी बाद में प्रकाशित होनी आरंभ हुईं। 'बुद्धिप्रकाश' हिंदी का पहला पत्र था, जिसने अपने प्रारंभिक काल से ही विदेशों के समाचार को बहुत ही सशक्त ढंग से प्रस्तुत करना आरंभ किया। इस अखबार में इतिहास और भूगोल सहित ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा और अन्य अनेक विषयों पर कई महत्त्वपूर्ण लेख छपे थे। साथ ही, पाश्चात्य जगत् में हो रही विज्ञान की प्रगति संबंधी काफ़ी जानकारियाँ भी इस पत्र ने प्रकाशित कीं। इस पत्र में ही सर्वप्रथम विश्व के कई देशों के बारे में, जिनमें वे उपनिवेश भी थे - जहाँ भारतीय मज़दूरों को ले जाया गया था, ज़िक्र मिलता है।

'बुद्धिप्रकाश' का प्रकाशन 1852 ई. से हुआ था और इसके प्रबंधक मुंशी सदासुखलाल थे। 'बुद्धिप्रकाश' ऐसा पहला समाचार-पत्र था, जिसमें भारत के विभिन्न प्रांतों से संबंधित विविध समाचारों के साथ ही भारत के बाहर के विभिन्न टापुओं और देशों के इतिहास और उनके समाचार भी प्रकाशित किए जाते थे। 'बुद्धिप्रकाश' अपने समय का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण समाचार-पत्र था, परंतु इसकी उपलब्ध फ़ाइलों के अवलोकन से एक बहुत ही अचंभित कर देने वाला सच सामने आता है। इस समाचार-पत्र में विविध

विषयों के अलावा भारत के बाहर की जानकारी और कई देशों का इतिहास देखने को मिलता है, यहाँ तक कि उन टापुओं या उपनिवेशों की भी यत्र-तत्र चर्चा मिलती है, जहाँ भारत के लोगों को गिरमिटिया मज़दूरों के रूप में ले जाया गया था। परंतु, इस समाचार-पत्र में कहीं पर भी प्रवासी भारतीय मज़दूरों का कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में से ऐसी कई पत्र-पत्रिकाओं की फ़ाइलें, जो देखने और पढ़ने के लिए उपलब्ध हो सकीं, उनके अवलोकन से यह बात सामने आती है कि 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारत की अंग्रेज़ सरकार भारत के भोले-भाले लोगों को उपनिवेशों में ले जाकर जानवरों की भाँति बेच रही थी और उन उपनिवेशों में भी उनपर मनमाना अत्याचार किया जा रहा था। पर भारत में, इस समस्या पर आवाज़ उठाने वाला शायद कोई नहीं था। अधिकांश हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में इस महत्त्वपूर्ण विषय पर एक पंक्ति भी देखने को नहीं मिलती है। इसका कारण यह हो सकता है कि उस समय संचार साधनों की कमी के कारण प्रवासी भारतीयों की सूचनाएँ भारत नहीं पहुँच पा रही थीं और यदि कोई सूचना पहुँच भी जाती थी, तो सरकार की आलोचना के भय से शायद कोई प्रकाशित करने का साहस नहीं करता था।

26 जून, 1882 ई. का 'सारसुधानिधि' नामक साप्ताहिक पत्र का एक आलेख प्राप्त हुआ है, जो सीधे ही प्रवासी भारतीय मज़दूरों से संबंधित है। यह लेख पत्रिका के संपादक पं. सदानंद मिश्र द्वारा लिखा गया था। इस लेख में प्रवासी भारतीय मज़दूरों से संबंधित ऐसा कोई भी विषय नहीं था, जिसपर उत्तम ढंग से प्रकाश न डाला गया हो। 'भारतीय कुली निर्वासन या दास व्यवसाय' शीर्षक लेख में भारतीय मज़दूर कहाँ भेजे जाते थे, वे द्वीप किनके अधिकार में थे, एजेंट या अरकटी उन्हें किस प्रकार झांसा देकर कलकत्ता लाते थे और उनका किस प्रकार से डॉक्टरों द्वारा परीक्षण किया जाता था - इन सभी बातों पर प्रकाश डाला है। पत्र में लिखा है - "भारतवर्ष के निकटवर्ती टापुओं में खेती-बाड़ी का काम कराने के लिए यहाँ से कुली भेजे जाते हैं। सब समेत 6 स्थान हैं, उनमें मॉरीशस, देमेरा, त्रिनिदाद, जमैका, लूसिया और नेटाल हैं, जो ब्रिटिश गवर्नमेंट के अधीन थे। सूरीनाम नामक स्थान डच गवर्मेंट को और ग्वाडेलूप नामक स्थान फ़्रांसीसी गवर्मेंट को अधिकृत थे। इन स्थानों में, जो यहाँ जो दरिद्र लोग भेजे जाते थे, उनको एकत्रित करने वाले गवर्नमेंट के नौकर नहीं थे। वे लोग व्यवसायी थे, उनका यही काम था कि गाँव-गाँव में जाकर वहाँ के दरिद्र कृषकों को प्रलोभन देते थे और उन्हें कलकत्ता ले आते थे। यहाँ सब समेत 6 सौदागर कुलियों के एजेंट थे। इनमें 4 अंग्रेज़, 1 डच और 1 फ़्रांसीसी। जो लोग दरिद्र कुलियों को प्रताड़ित करके यहाँ लाते थे, उनको एजेंट लोग कुछ देते थे। यहाँ गवर्नमेंट की ओर से नियुक्त एक डॉक्टर और अन्य कर्मचारी उन कुलियों का परीक्षण और रजिस्ट्री करते थे। गवर्नमेंट का नियम था कि डॉक्टर साहिब परीक्षण करेंगे कि ये कुली जहाज़ का कष्ट झेलकर निर्दिष्ट स्थान पर जीवित पहुँच सकेंगे या नहीं। इसके सिवाय जिसकी उम्र 16 वर्ष से कम थी, वह बिना अपने किसी बड़े के साथ भेजा नहीं जाएगा।"[7]

'सारसुधानिधि' पत्र ने भारत में कुली प्रथा से जुड़े लगभग सभी पहलुओं पर गंभीरता से प्रकाश डाला और जहाँ-जहाँ इसमें विसंगतियाँ थीं, उनपर आम जनता के साथ ही सरकार का भी ध्यान आकृष्ट किया। इस पत्र ने ही सर्वप्रथम इस विषय पर विस्तृत और गंभीर प्रकाश डाला तथा बिना किसी भय के सरकार की भी कटु आलोचना की। इस पत्र ने सभी बातों पर प्रकाश डालने के साथ ही तत्कालीन वायसराय लार्ड रिपन से इस कुप्रथा को समाप्त करने का भी निवेदन किया और अपना बहुत ही अकाट्य मत रखा, जो अवलोकनीय है : "हम अपने परमोदार धर्मात्मा महामान्य लार्ड रिपन साहिब बहादुर से सविनय प्रार्थना करते हैं कि जीवश्रेष्ठ मनुष्य पर जो किसी प्रकार का अत्याचार अथवा निर्दय व्यवहार आपके अधिकार में भी रह जाए, यह किसी भी प्रकार हम राजभक्त प्रजा को सह्य नहीं हो सकता है। अन्याय का फल अतएव हम लोगों की जैसी श्रद्धा आप पर है, तदनुसार कुली निर्वासन का निर्दय व्यवहार हमको सह्य नहीं होता। अतएव हमारी यही प्रार्थना है कि श्रीमान् की परिशुद्ध आत्मा को यह पाप स्पर्श न कर सके।"[8]

'सारसुधानिधि' पत्र ने अपने एक ही लेख में भारतीय कुली प्रथा से जुड़ी हुई अधिकांश समस्याओं पर गंभीरता से प्रकाश डाला। उस समय संचार साधनों का अभाव था और यूरोपीय कॉलोनियों के प्लांटरों का भी यह प्रयास होता था कि इस प्रकार की सूचनाएँ बाहर न जाने पाए। भारतीय कुलियों की समस्याओं के बारे में भारत के लोगों को पता ही नहीं चल पाता था। 'हिंदी प्रदीप' उस समय

की एक बहुत ही प्रसिद्ध हिंदी पत्रिका थी और उसके संपादक पं. बालकृष्ण भट्ट बहुत ही प्रखर लेखक थे, पर उनकी पत्रिका में भी कहीं पर इस समस्या के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती है। दूसरे देशों के विषय में जानकारियों का कितना अभाव होता था, यह बात 1884 ई. में प्रकाशित 'हिंदी प्रदीप' पत्रिका के अवलोकन से ज्ञात हो जाता है, जिसमें पं. बालकृष्ण भट्ट जब महाद्वीपों के बारे में लिखते हैं, तब अमेरिका, जोकि संयुक्त राज्य अमेरिका ही था, उसके बारे में लिखा है - " 'अमेरिका' असल में 'आमेरुक' अर्थात् मेरुपर्यन्त प्रसारित देश है। इसे 'आमेरिका' अर्थात् 'अमर देवताओं की ज़मीन कहते हैं' "[9] एक प्रकार से यह अतिशयोक्तिपूर्ण एवं विस्मयकारी वर्णन था।

1885 ई. में अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई और इतिहासकारों ने भारत का इतिहास इस प्रकार लिखा है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का इतिहास ही एक प्रकार से राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास है। इस संस्था ने 19वीं सदी क्या, 20वीं सदी के दो दशकों तक भी प्रवासी भारतीयों की समस्या को उठाना तो दूर, उसकी कभी चर्चा भी नहीं की है। प्रवासी भारतीयों की समस्या पर जिस राजनीतिक संस्था ने 19वीं सदी में सर्वप्रथम दिलचस्पी दिखायी, वह थी 'बॉम्बे एसोसिएशन'। जो मज़दूर मॉरीशस को भेजे जा रहे थे, उनके विषय में इस संस्था ने आवाज़ उठाई। मद्रास के एक सज्जन व्यक्ति राजाराथनम मुदालियार ने, जो जन समस्याओं में काफ़ी रुचि रखते थे, बॉम्बे एसोसिएशन को एक पत्र लिखा, जिसमें मॉरीशस में रह रहे भारतीय मज़दूरों की समस्याओं में दिलचस्पी लेने का निवेदन किया गया, क्योंकि मॉरीशस में गोरे प्लांटरों द्वारा भारतीय मज़दूरों के साथ बहुत अनुचित और निर्ममतापूर्ण व्यवहार किया जा रहा था।[10] प्लांटरों के कार्यों को एक रॉयल कमीशन द्वारा पहले ही निंदनीय ठहराया जा चुका था, फिर भी उन लोगों ने मज़दूरों पर अत्याचार जारी रखा था। एसोसिएशन ने भारत सरकार से निवेदन किया कि कुछ समय के लिए मज़दूरों का निर्वासन पूर्णतः रोक दिया जाए।

इंग्लैंड की महारानी विक्टोरिया (1819-1901) की, 22 जनवरी, 1901 ई. को मृत्यु हो गयी और उसके बाद जब एडवर्ड सप्तम (22 जनवरी, 1901-6 मई, 1910) सम्राट् बने, तो अधिकांश हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने अत्यंत प्रसन्नता प्रकट की। इससे थोड़े समय पूर्व ही 'अमृत बाज़ार' पत्रिका के लंदन संवाददाता डिग्बी महोदय ने ब्रिटिश साम्राज्य में भारतवासियों की अवस्था पर एक प्रबंध लिखा, जिसका भावानुवाद 18 फ़रवरी, 1901 ई. को 'भारत जीवन' पत्र में प्रकाशित हुआ, जिससे 1900 ई. तक अंग्रेज़ शासित उपनिवेशों में कितने भारतीय हैं और इसके साथ ही उनकी क्या अवस्था है, इसका भी पता चलता है। 'नवीन सम्राट् से भारतवासियों की बिनती' शीर्षक से प्रकाशित विस्तृत लेख में जो लिखा है, वह अवलोकनीय है - "स्वर्गवासी महारानी के उत्तराधिकारी इस समय उनके पुत्र श्रीमान् सप्तम एडवार्ड हुए हैं; यों तो जिस अधिकार को ईश्वर ने उन्हें सौंपा है, उसकी पूरी खबर उन्हें हुई है, तो भी हम भारतवासी प्रजा जो सदा सच्चे चित्त से उनकी राजभक्त प्रजा हैं और सदा अपनी महारानी पर न्योछावर होते आए हैं एवं स्वयं जिन्हें महाराजाधिराज अपने नेत्रों से देख गए हैं और मिल गए हैं। आशा है, उन्हें अवश्य हम लोगों की अवस्था पर विशेष ध्यान रहेगा और हमारे अभावों को मिटाने तथा हम लोगों की बिनती सुनने पर विशेष ध्यान देते रहेंगे। इसी आशा से आश्वासित होकर हम यहाँ यह दिखाना चाहते हैं कि हम उन्हीं की राजभक्त प्रजा हैं, जोकि भारत के बाहर उन्हीं के अधिकार में, उन्हीं के भरोसे पर जाते हैं। उसे हम यहाँ प्रकाश करते हैं।"[11]

इस पत्र में उपनिवेशों में भारतवासियों की संख्या और साथ ही उनकी अवस्था - दोनों पर प्रकाश डाला गया है। यहाँ उपनिवेशों को दो भागों में रख सकते हैं - प्रथम, जहाँ भारत के लोग गिरमिटिया मज़दूर के रूप में नहीं गए और दूसरा, जहाँ भारत के लोग गिरमिटिया मज़दूर के रूप में गए। ब्रिटिश उपनिवेशों में भारतीय लोगों की संख्या इस प्रकार दर्शाई गयी है :

उपनिवेशों में भारतीय लोगों की संख्या जहाँ भारतीय गिरमिटिया मज़दूर के रूप में नहीं गए

इंग्लैंड	ऑस्ट्रेलिया	न्यूज़ीलैंड	सिंहल	हांगकांग	लबुयान	कनाडा	सिकेलिस	माल्टा
2000	5361	47	500000	2802	129	0	277	54

(स्रोत : भारत जीवन, 18 फ़रवरी, 1901 ई.)

उपनिवेशों में भारतीय गिरमिटिया मज़दूरों की संख्या

फ़िजी	जमैका	ब्रिटिश गयाना	त्रिनिदाद	ग्रेनेडा	सेंट लूसिया	केप ऑफ़ गूड होप	नेटाल	मॉरीशस	स्ट्रेट सेटलमेंट
12397	14651	118000	8384	2118	2000	3471	64953	261622	63927

(स्रोत : भारत जीवन, 18 फ़रवरी, 1901 ई.)

इस पत्र ने ब्रिटिश उपनिवेशों में भारतीय लोगों की संख्या से सबंद्ध आँकड़े प्रस्तुत करने के साथ ही इस बात को भी रेखांकित किया कि किन उपनिवेशों में भारतीय जा सकते हैं और किन उपनिवेशों में उन्हें जाने की मनाही है। यह भी कहा गया है कि वे कहाँ स्वतंत्र रूप से जा सकते हैं और कहाँ पर केवल मज़दूर बनकर जा सकते हैं। पत्र में बताया गया है कि ऑस्ट्रेलिया, कनाडा इत्यादि उपनिवेशों में जाने पर एक प्रकार से रोक है और फ़िजी, ब्रिटिश गयाना, त्रिनिदाद, स्ट्रेट सेटलमेंट इत्यादि उपनिवेशों में, बिना सरकार की आज्ञा के, गिरमिटिया मज़दूरों के सिवाय कोई भारतीय जा ही नहीं सकता था। अपने-आप को स्वतंत्रताप्रिय कहने वाली ब्रिटिश जाति के साम्राज्य में ही, जिसका भारत भी एक अंग था, भारतीय लोगों को सभी जगहों पर जाने की स्वतंत्रता नहीं थी। इस बात पर 'भारत जीवन' पत्र में खेद प्रकट करते हुए लिखा गया है - "भारतवासी महारानी की प्रजा होने पर भी महारानी के विशाल साम्राज्य में सब जगह स्वाधीनता से न तो रह सके और न वाणिज्य-व्यापार कर सके। यह बात उपरोक्त सूची से भली-भाँति मालूम हो सकती है। भारतवासी कुलियों से घोड़े तथा बैलों का काम तो करा लेंगे, पर भारतवासी को स्वतंत्रता से अपने देश में घुसने तक नहीं देंगे। अब क्या इससे भी बढ़कर कोई और अन्याय हो सकता है!"[12]

स्वतंत्र देश के नागरिकों पर किसी देश की सरकार, किसी भी प्रकार का न तो प्रतिबंध लगा सकती है और न ही अमानवीय व्यवहार कर सकती है, क्योंकि ऐसा करने से उसके अपने देश के नागरिकों के साथ भी दूसरे देशों में वैसा ही व्यवहार किया जा सकता है। इसके विपरीत भारत उस समय गुलामी की ज़ंजीरों में बँधा था और अपने देश के नागरिकों की स्वतंत्रता की रक्षा नहीं कर पा रहा था, इसलिए भारत ही नहीं, विदेशों में भी भारतीयों के साथ बड़ा अमानवीय व्यवहार किया जा रहा था। 'भारत जीवन' पत्र ने अंग्रेज़ों की इस नीति की कटु आलोचना की और अपनी बात को बड़ी ही प्रखरता से जनता के सामने रखा - "ब्रिटिश साम्राज्य के प्रत्येक देश के लोग बेरोकटोक हमारे देश में आकर व्यापार-वाणिज्य तथा राजकाज करते हैं। परन्तु हम लोग उन सब देशों में स्वाधीनतापूर्वक नहीं रह सकते! इसका सुप्रबन्ध अवश्य होना चाहिए।"[13]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि संपूर्ण 19वीं सदी में प्रवासी भारतवासियों के साथ बहुत ही भेदभावपूर्ण एवं अमानवीय व्यवहार किया जा रहा था। भारतीय लोगों के साथ भारत में और विदेशों में दोयम दर्जे के नागरिकों जैसा बर्ताव किया गया और यदि उस समय भारत स्वतंत्र होता, तो निश्चित रूप से अपने नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करता। जो अंग्रेज़ जाति अपने को सबसे अधिक स्वतंत्रताप्रिय होने का दंभ भरती है, उसी के साम्राज्य में इतना अन्याय किया जा रहा था और उसे दूर करने की कौन कहे, उल्टे गिरमिटिया प्रणाली को और अधिक प्रोत्साहन दिया जा रहा था। अंग्रेज़ शासित उपनिवेशों के साथ ही यूरोप के अन्य देशों के उपनिवेशों के लिए भी भारत की अंग्रेज़ सरकार ने शर्तबंद मज़दूर भेजे। आर्थिक लाभ के लिए यूरोप के अन्य देशों के साथ ही इंग्लैंड ने

एक ऐसी घृणित प्रथा को न केवल जन्म दिया, बल्कि उसे प्रोत्साहन एवं नैतिक बल प्रदान किया, जिसके कारण प्रवासी भारतवासियों को अकथनीय कष्ट सहने पड़े और यह भारत की कीर्ति के लिए बहुत ही घातक सिद्ध हुआ।

19वीं सदी की हिंदी पत्रकारिता ने यद्यपि प्रवासी भारतीय समस्या पर बहुत अधिक नहीं लिखा है, तथापि कम-से-कम इस समस्या को तो अवश्य उठाया है और इससे देशवासियों को परिचित किया गया है। प्रवासी भारतीयों की समस्या का प्रश्न भी राष्ट्रीय आंदोलन से किसी भी प्रकार कमतर नहीं था। हिंदी पत्रकारिता ने उस दौर में, जब संचार साधनों का बहुत अभाव था, इस समस्या को उठाया और इसके प्रति सबको सजग किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि 20वीं सदी का आरंभ होते-होते राष्ट्रीय आंदोलन के समान ही प्रवासी भारतवासियों की समस्या बहस का एक प्रमुख मुद्दा बन गयी। 20वीं सदी की सभी प्रमुख हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने इस समस्या को प्रमुखता से उठाया, जिसपर आम जन के साथ भारत सरकार का भी ध्यान आकर्षित हुआ और इस समस्या के समाधान के प्रयास प्रारंभ हुए।

संदर्भ सूची :

1. वाजपेयी, कृष्णदत्त, भारतीय व्यापार का इतिहास, राष्ट्रभाषा प्रकाशन, मथुरा, 1951
2. सुदूर पूर्व में भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, हिंदी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, तृतीय संस्करण 1975
3. सहाय, कैलाश कुमारी, प्रवासी भारतीयों की हिंदी सेवा, अभिराम प्रकाशन दिल्ली, 2001, प्रस्तावना
4. वाजपेयी, बालमुकुंद, गोरा चाम काले काम, प्रताप कार्यालय, कानपुर, 1925 ई., प्रस्तावना संन्यासी, भवानी दयाल, प्रवासी की आत्म-कथा, राजहंस प्रकाशन, दिल्ली, 1947, प्राक्कथन
5. दास, राधाकृष्ण, हिंदी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1894 ई.
6. विशाल भारत, भाग-8, जुलाई-दिसम्बर 1931, विशाल भारत कार्यालय, कलकत्ता
7. सारसुधानिधि, 26 जून, 1982, बड़ा बाज़ार कलकत्ता; शिशिर, कर्मेंदु सं. नवजागरणकालीन पत्रकारिता और सारसुधानिधि, भाग 2, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डी., नई दिल्ली, 2008
8. हिंदी प्रदीप पत्रिका, दिसंबर, 1884, यूनियन प्रेस, इलाहाबाद
9. मजूमदार बी. बी., इंडियन पोलिटिकल एसोसिएशंस एंड रिफ़ार्म ऑफ़ लेजिस्लेटर (1818-1917), के. एल. मुखोपाध्याय, कलकता, 1965
10. भारत जीवन, 18 फ़रवरी, 1901 ई., भारत जीवन कार्यालय, बनारस सिटी

rkdhistory@gmail.com

नए संचार माध्यम और हिंदी के बढ़ते कदम

डॉ. कमलेश गोगिया
छत्तीसगढ़, भारत

परिवर्तन अखिल ब्रह्मांड का शाश्वत नियम है। परिवर्तन हर क्षण घटित होता है और इसके साथ ही हर बीता क्षण इतिहास बनता चला जाता है। इतिहास से प्रेरणा लेकर ही वर्तमान में उठाए गए कदम भविष्य की राह तय करते हैं। इस राह में कोई काँटों से ज़ख्मी होकर मंज़िल तक पहुँचने से पहले ही मिट जाता है, तो कोई संघर्षरत रहकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के बीज-मंत्र के साथ प्रगति करता चला जाता है। भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत से लेकर पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, अवहट्ट और फिर हिंदी तक के लगभग एक हज़ार साल के इस सफ़र में हिंदी की गिनती दूर-दूर तक उन भाषाओं में नहीं की जा सकती, जो या तो पूरी तरह विलुप्त हो चुकी हैं या विलुप्त होने के कगार पर हैं। हिंदी ने अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए भाषाई चुनौती-रूपी काँटों भरी राह में, अनेक ज़ख्म सहे हैं। उसे ये ज़ख्म अपने घर में ज़्यादा मिले, लेकिन हिंदी और हिंदी के शुभचिंतकों, लेखकों, भाषा वैज्ञानिकों, साहित्यकारों, पत्रकारों और तकनीकी विशेषज्ञों से लेकर सी-डैक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, राजभाषा विभाग और विश्व हिंदी सचिवालय तक के विद्वानों के प्रयासों से आज हिंदी ने अपनी वैश्विक पहचान स्थापित कर ली है।

मानव-सभ्यता के विकास-क्रम में मीडिया जीवन का अभिन्न अंग रहा है। कभी चीखना-चिल्लाना या हाव-भाव अभिव्यक्ति का माध्यम हुआ करता था। फिर चट्टानों और पत्तों पर आकृतियाँ उकेरी गईं। माना जाता है कि लेखन का प्रारंभिक स्वरूप चित्र हुआ करता था। धीरे-धीरे हज़ारों वर्षों की निरंतर चलने वाली प्रक्रिया से मनुष्य की अभिव्यक्ति के लिए विश्व में विभिन्न भाषाओं की उत्पत्ति हुई। शिलालेख, भोज-पत्र, ताम्रपत्र, कागज़, स्याही, लेखनी के बाद लकड़ी के ब्लॉक्स से छपाई, गुटनेबर्ग द्वारा टाइप और फिर मुद्रण मशीन के आविष्कार से संचार के माध्यमों का विकास होता चला गया। तकनीकी के विकास के साथ-साथ अभिव्यक्ति के माध्यमों में भी परिवर्तन होता चला गया। चिट्ठी-पत्री, टेलीग्राम, टेलीप्रिंटर, टेलीग्राफ़, टेलीफ़ोन, रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर, मोबाइल, इंटरनेट और अब इंटरनेट आधारित 'डिजिटल वर्ल्ड' में हम हिंदी में संवाद करने में सक्षम हैं। कहने का आशय यह है कि हिंदी भाषा ऐसी विशेषताओं से परिपूर्ण है, जिसने हर तकनीकी विकास के साथ कदम-से-कदम मिलाकर अपनी पहचान बनाए रखने में अपने-आपको समर्थ प्रमाणित किया है।

लगभग दो दशक पहले की बात है, हिंदी के विकास में अग्रणी मीडिया संस्थान बी.बी.सी. ने, अपनी हिंदी सेवा की साठवीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में, नई दिल्ली में 'हिंदी का बदलता स्वरूप : नए समाचार माध्यम, नई चुनौतियाँ' विषय पर एक सेमीनार का आयोजन किया था। इस सेमीनार के डॉक्यूमेंटेशन के रूप में 'नए जनसंचार माध्यम और हिंदी' नामक पुस्तक का प्रकाशन किया गया। इस पुस्तक के माध्यम से अचला शर्मा ने अपने आलेख 'बी. बी.सी. की ओर से' में एक बड़ा सवाल उठाया था कि "क्या हिंदी भाषा, नई तकनीक, नए प्रसार माध्यमों के अनुरूप खुद को ढाल पाएगी?" आज दो दशक बाद, विश्व हिंदी सचिवालय की 'विश्व हिंदी पत्रिका 2022' के लिए 'यूनिकोड' में यह शोध आलेख लिखते समय इस बात पर गर्व की अनुभूति हो रही है कि हिंदी ने नई तकनीक और नए प्रसार माध्यमों के अनुरूप खुद को ढाल लिया है। यह नये संचार-माध्यम अर्थात् न्यू मीडिया अथवा डिजिटल मीडिया का वह दौर है, जब पलक झपकते ही हम विश्व के किसी भी कोने में बैठे व्यक्ति तक हिंदी में ठीक वैसे ही अपना संदेश प्रेषित करने में सक्षम हैं, जैसा हम चाहते हैं। न्यू मीडिया ने जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित किया है। आज का आम आदमी भी न्यू मीडिया से लैस है और उसके देशकाल की सीमाएँ टूट चुकी हैं।

हिंदी भारत की राजभाषा, हिंदी भाषा-भाषी राज्यों की राज्यभाषा और केंद्र तथा हिंदी-अहिंदी राज्यों के मध्य सम्पर्क-भाषा के रूप में तो मान्य है ही, अब वह धीरे-धीरे विश्वभाषा के रूप में भी विकसित हो रही है। जनमानस की आशाओं-आकांक्षाओं के अनुरूप उसका हर क्षेत्र में विकासशील रूप दृष्टिगत होता जा रहा है। तकनीकी प्रयोग की दृष्टि से हिंदी भाषा भी पर्याप्त विकसित हो गई है। 'न्यू मीडिया : इंटरनेट की भाषायी चुनौतियाँ

और सम्भावनाएँ' में आर. अनुराधा लिखती है - "अमेरिका के रक्षा विभाग में आँकड़ों और सूचनाओं के लेन-देन को आसान बनाने के लिए स्थापित किया गया इंटरनेट अब आम आदमी तक पहुँच चुका है। कहीं समाचार माध्यमों के सहयोगी के रूप में, तो कहीं विकल्प के रूप में या सूचना-माध्यम के रूप में हिंदी का विकास हो रहा है।

हिंदी की प्रथम वेब-पत्रिका 'भारत दर्शन' के संस्थापक न्यूज़ीलैण्ड के आप्रवासी भारतीय श्री रोहित कुमार हैप्पी के अनुसार - " 'न्यू मीडिया' संचार का वह संवादात्मक स्वरूप है, जिसमें इंटरनेट का उपयोग करते हुए हम पॉडकास्ट, आर.एस. एस. फ़ीड, सोशल नेटवर्क (फ़ेसबुक, माई स्पेस, ट्विटर), ब्लॉगों, विक्किस, टैक्स्ट मैसेजिंग इत्यादि का उपयोग करते हुए पारस्परिक संवाद स्थापित करते हैं। न्यू मीडिया के विशेषज्ञ और हिंदी टाइपिंग ट्यूटर 'स्पर्श' के आविष्कारक बालेन्दु शर्मा दाधीच के अनुसार 'यूँ तो दो-ढाई दशक की जीवन-यात्रा के बाद शायद 'न्यू मीडिया' का नाम 'न्यू मीडिया' नहीं रह जाना चाहिए, क्योंकि वह सुपरिचित, सुप्रचलित और परिपक्व सेक्टर का रूप ले चुका है। लेकिन शायद वह हमेशा 'न्यू मीडिया' ही बना रहे, क्योंकि पुरानापन उसकी प्रवृत्ति नहीं है। जब रेडियो और टेलीविजन संचार के प्रमुख साधन हुआ करते थे, तब भी न्यू-मीडिया ही कहलाते थे।''

न्यू मीडिया को डिजिटल मीडिया भी कहा जाता है। डिजिटल मीडिया का सरल-सा अर्थ है - ''वे अंकीय माध्यम, जो मशीन द्वारा पढ़े जाने योग्य कोडिंग में बनाए गये हों।'' हिंदी भाषा को वैश्विक पहचान दिलाने में यूनिकोड ने अहम् भूमिका निभाई है। यूनिकोड का पहला संस्करण, 1991 में, पेश किया गया था। एक समय वह भी था, जब सोशल मीडिया में, रोमन लिपि में हिंदी लिखने की विवशता थी, लेकिन यूनिकोड ने इस समस्या से न सिर्फ़ छुटकारा दिलाया, बल्कि हिंदी का देवनागरी लिपि में उपयोग करने की सुविधा भी उपलब्ध करा दी। परिणामस्वरूप, इंटरनेट की दुनिया में हिंदी की वैश्विक पहचान बनती चली गई। यूनिकोड एक टेक्नोलॉजी है। कम्प्यूटर मुख्य रूप से नंबरों से संबंध रखता है और यह इन नंबरों पर ही आधारित है। यूनिकोड टेक्नोलॉजी में विश्व स्तर पर प्रचलित एवं प्रत्येक लिपि की वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर को चार अंकों का यूनिक कोड (अद्वितीय मान) प्रदान किया गया है। यूनिकोड विश्व की सभी लिपियों से, सभी संकेतों के लिए एक अलग बिन्दु कोड प्रदान करता है, जो एक ही फ़ॉण्ट में उपलब्ध है। यूनिकोड फ़ॉण्ट में टाइप किया मैटर, उसी लिपि में दिखाई देता है और पढ़ने योग्य होता है, चाहे किसी भी सिस्टम में, ऑनलाइन या ऑफ़लाइन पढ़ लें। मोबाइल में आज भी देवनागरी लिपि के हिंदी के कृतिदेव फ़ॉण्ट को नहीं पढ़ा जा सकता।

यूनिकोड ने हिंदी को वेबसाइट्स से लेकर सोशल मीडिया के विभिन्न प्लेटफ़ॉर्मों - व्हाट्सएप्प, फ़ेसबुक, इंस्टाग्राम, ट्विटर आदि पर पढ़ना-लिखना आसान बना दिया। यूनिकोड के अभाव में किसी भी हिंदी वेब पोर्टल या हिंदी वेब मीडिया की कल्पना नहीं की जा सकती थी। कुल मिलाकर यह अक्षरों को अंकों में परिवर्तित करने की विधि ही है। कुछ देर के लिए अतीत के पन्नों की तरफ़ चलते हैं। हाँ, यह तथ्य विषय से थोड़ा हटकर हो सकता है, लेकिन यह उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है कि भारत के महान् गणितज्ञ आर्यभट ने, सदियों पहले ही संख्याओं को शब्दों में परिवर्तित करने की विधि इज़ाद कर ली थी। उन्होंने उच्चारण में कम समय लेने वाले जैसे अ, इ, उ तथा उच्चारण में अधिक समय लेने वाले जैसे आ, ई, ऊ को संकेतों (कोड) के रूप में प्रयुक्त किया। वे बड़ी संख्याओं के लिए भी इसका प्रयोग करते थे, जैसे रव्यु - 3, 20, 000, ऋ - 10,00,000, योही - 5, 77, 53,336 आदि। आज हम देखते हैं कि कम्प्यूटर के कीबोर्ड में अंकित हर अक्षर के पीछे ऐसी ही कोई-न-कोई क्रिया छुपी होती है।

गुणाकर मूले अपनी पुस्तक 'आर्यभट प्राचीन भारत के महान् गणितज्ञ-ज्योतिषी' में लिखते हैं - "आर्यभट संख्याओं को शब्दों में भी लिख सकते थे, लेकिन तब उनकी पुस्तक बहुत बड़ी हो जाती। उन्होंने बड़ी-बड़ी संख्याओं को छोटे-छोटे शब्दों में लिखने का नया तरीका खोज निकाला। हालाँकि बाद के गणितज्ञों ने अक्षरों या शब्दों की सहायता से संख्याएँ लिखने के नए-नए आसान तरीके खोज निकाले।" लेकिन आर्यभट के योगदान को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता। हाल ही में, भारतीय विज्ञान संस्थान, बेंगलुरु के शोधकर्ताओं ने अगली पीढ़ी के एनालॉग कंप्यूटिंग चिपसेट बनाने के लिए एक डिज़ाइन फ़्रेमवर्क (प्रोटोटाइप) विकसित किया है। इसे आर्यभट-1 नाम दिया गया है।

वर्तमान युग सूचना प्रौद्योगिकी का युग है, जिसमें इंटरनेट

आधारित न्यू मीडिया अथवा वेब मीडिया में, हिंदी वैश्विक बाज़ार में अपनी उपयोगिता साबित कर रही है। माइक्रोसॉफ़्ट और गूगल जैसी प्रतिष्ठित कंपनियों ने कंप्यूटर और मोबाइल पर हिंदी फ़ॉण्ट, टाइपिंग और अनुवाद को सरल बनाकर हिंदी के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अब तो हिंदी टाइपिंग करने में असमर्थ लोग भी सिर्फ़ बोलकर हिंदी में लिख सकते हैं। कम्प्यूटर और मोबाइल में वॉइस टाइपिंग की सुविधा ने हिंदी लिखना आसान कर दिया। लगभग तीन वर्ष पहले गूगल ने दावा किया था कि हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाओं के अनुकूल सॉफ़्टवेयर विकसित करने के कारण गूगल ने भारत में अपनी पहुँच का अच्छा-खासा विस्तार किया है।

गूगल के अनुसार विश्व में, गूगल असिस्टेंट सॉफ़्टवेयर का सबसे अधिक उपयोग हिंदी में किया जाता है। वर्ष 2014 में गूगल में जहाँ भारतीय भाषाओं का सर्च मात्र दो प्रतिशत था, वहीं 2019 में यह बढ़कर 20 फ़ीसदी हो गया। भारत में वॉइस सर्चिंग 270 प्रतिशत प्रतिवर्ष की रफ़्तार से बढ़ रही है। गूगल ने वर्ष 2014 में वॉइस सर्च सुविधा हिंदी में प्रारंभ की थी, जबकि अंग्रेज़ी में वॉइस सर्च की सुविधा 2008 से उपलब्ध है। एक अनुमान के अनुसार वर्तमान में भारत में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या लगभग 46 करोड़ है और भारत में ऑनलाइन आने वाले उपयोगकर्ताओं में से आज 10 में से 9 भारतीय भाषा के हैं। वर्तमान में भारत में 38-40 करोड़ लोग स्मार्टफ़ोन का उपयोग करते हैं। हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाओं में इंटरनेट के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए गूगल ने 2014 में 'वॉइस- सर्च इन हिंदी', 2016 में 'सर्च रिज़ल्ट पेज' पर 'हिंदी टैब', 2017 में क्रोम में 'न्यूरल मशीन ट्रांसलेशन इन क्रोम', 2017 में 'गूगल असिस्टेंट' तथा 2018 में 'नवलेखा' का शुभारंभ किया गया। इस तरह के सॉफ़्टवेयर के माध्यम से गूगल की पहुँच हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाओं में बढ़ती जा रही है। यह सुखद अनुभूति है।

वर्ष 2020 में, 'न्यूज़-18' में, प्रकाश उत्प्रेती के आलेख 'हिंदी दिवस : डिजिटल दौर में भाषा पर गर्व के साथ प्रश्न भी ज़रूरी' में अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों को प्रकाश में लाया गया है। वे बताते हैं, "डिजिटल दौर में दुनिया में हिंदी बाज़ार और व्यवहार की भाषा बनती जा रही है। आज दुनिया के 40 से अधिक देशों के 600 से अधिक विश्वविद्यालयों और स्कूलों में हिंदी की पढ़ाई हो रही है। यह सिर्फ़ भाषा की पढ़ाई नहीं, बल्कि भाषा के ज़रिए भारत की संस्कृति को जानने व समझने का भी अवसर है। इस आलेख में वे डेनमार्क के एक विश्वविद्यालय में हिंदी की प्राध्यापिका रजनी बहल के हवाले से लिखते हैं - "पहले सीटें भरनी बहुत मुश्किल होती थी। लोग सिर्फ़ चाइनीज़ व जापानीज़ सीखने आते थे, मगर अब अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापार बढ़ जाने से लोग हिंदी सीखने लगे हैं।" इस डिजिटल युग में अलग-अलग माध्यमों और तकनीकी के ज़रिए पूरी दुनिया भारतीय नृत्य, संगीत एवं अन्य कलाओं से गहरे रूप में परिचित हो पा रही है। आज दुनिया के तमाम छोटे-बड़े देशों में भारतीय सांस्कृतिक परंपरा का ज़ोर है।

पूरे विश्व में हिंदी फ़िल्मों, धारावाहिकों और रियेल्टी शो ने अपनी जगह बनाई है और अब ओटीटी प्लेटफ़ॉर्म पर हिंदी भाषा की वेब सीरीज़ विश्व के अनेक देशों में लोकप्रियता प्राप्त कर रही हैं। डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म पर सिर्फ़ कंटेंट ही नहीं, बल्कि कलाकारों को भी खूब प्यार मिल रहा है। अब कई सिने-कलाकार और फ़िल्में ओटीटी पर डेब्यू हो रही हैं। आज विश्व के अनेक देशों में, विभिन्न भाषाओं और संस्कृति के लोग संचार के नये माध्यमों के कारण हिंदी सीख रहे हैं और हिंदी के माध्यम से भारत की संस्कृति से भी अवगत हो रहे हैं। डिजिटल युग में हिंदी की वैश्विक पहचान अवश्य निर्मित हो रही है।

निष्कर्षतः सूचना प्रौद्योगिकी के नित-नए आविष्कारों के साथ संचार के नये माध्यमों ने हिंदी का दायरा विस्तृत कर दिया है। कभी पत्र-पत्रिकाएँ, रेडियो, टेलीविजन, काव्य-गोष्ठियाँ, नाटक और साहित्य-सम्मेलन हिंदी के प्रचार-प्रसार के बड़े माध्यम हुआ करते थे। अब ब्लॉग, यूट्यूब, फ़ेसबुक, ट्विटर, व्हाट्सएप्प, ओ.टी.टी. प्लेटफ़ॉर्म भी हिंदी को समृद्ध बनाने की दिशा में सशक्त माध्यम बनकर उभरे हैं। विश्व में हिंदी के वर्चस्व को एक क्रांति के तौर पर हम देख सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. तिवारी, उदित नारायण, हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009
2. पचौरी, सुधीश, शर्मा, अचला, नए जनसंचार माध्यम और

हिंदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2002
3. https://www.hindikeguru.com/2022/06/hindi-ka-vikas-kaise-hua%20.html
4. आर. अनुराधा, न्यू मीडिया : इंटरनेट की भाषायी चुनौतियाँ और संभावनाएँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022, पुस्तक की भूमिका से।
5. भाटिया, कैलाशचंद्र, चतुर्वेदी, मोतीलाल, हिंदी भाषा विकास और स्वरूप, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2009
6. कुमार, राकेश, नया मीडिया : नया विश्व, नया परिवेश
7. https://www.hindikeguru.com/2022/06/hindi-ka-vikas-kaise-hua%20.html
8. https://www.rachanakar.org/2019/03/blog-post_5.html
9. https://patrakaritajagat.wordpress.com/2012/11/16
10. प्रसाद, लक्ष्मण, मिश्र, विनोद कुमार, विश्व के महान् आविष्कारक और उनके आविष्कार, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2003
11. मूले गुणाकर, आर्यभट प्राचीन भारत के महान् गणितज्ञ-ज्योतिषी, ज्ञान-विज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1991
12. https://www.sanskritiias.com/hindi/short-news/16-july-2022
13. https://www.livehindustan.com/career/story-google-search-increased-by-20-percent-in-indian-languages-including-google-search-in-hindi-2880109.html
14. Anuradha एजेंसी, भोपाल। Tue, 03 Dec 2019 06:39 AM
15. https://hindi.news18.com/blogs/prakash-upreti/hindi-diwas-raising-question-apart-from-feeling-proud-is-necessary-in-digital-era-3237270.html
16. https://hindi.business-standard.com/storypage.php?autono=190719
17. https://hindi.oneindia.com/photos/know-about-hit-popular-web-series-of-ott-platforms-in-2022-oi89547.html#photos-1

kamleshgogia@gmail.com

हिंदी-शिक्षण

1. भारत में हिंदी-शिक्षण : दशा एवं दिशा - श्री विशाल कुमार शर्मा

2. राष्ट्रीय शिक्षा-नीति-2022 के आलोक में हिंदी - डॉ. धर्मेंद्र प्रताप सिंह

3. भाषा-शिक्षण-प्रौद्योगिकी का वर्तमान परिदृश्य: मुद्दे, चुनौतियाँ और समाधान की दिशाएँ - प्रो. अनुपम श्रीवास्तव

4. फ़िजी में हिंदी-शिक्षण एवं हिंदी टीचर्स एसोसिएशन ऑफ़ फ़िजी - श्रीमती श्रद्धा दास

5. हिंदी-शिक्षण की चुनौतियाँ - डॉ. साएमा बानो

6. हिंदी सीखने-सिखाने के नए तरीके - डॉ. संध्या सिंह

भारत में हिंदी-शिक्षण : दशा एवं दिशा

श्री विशाल कुमार शर्मा
हैदराबाद, भारत

भारत की राजभाषा हिंदी को वैश्विक पहचान दिलाने का प्रयास किया जा रहा है और उसका असर विभिन्न देशों में साफ़ देखा जा सकता है। भारत के अलावा अनेक देशों में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन तथा उसमें शोध-कार्य हो रहे हैं। अहिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी पढ़ने-पढ़ाने की संस्कृति तेज़ी से विकसित होती दिखाई देती है। वैश्विक स्तर पर, जहाँ भारतीय रहते हैं, वहाँ हिंदी-शिक्षण की बहुत प्रभावी योजना बनाकर प्रशंसनीय कार्य किए जा रहे हैं, लेकिन भारत में उचित योजनाओं का विकास करना अभी शेष है। भारत हिंदी भाषा की जन्मभूमि है, तो इससे अपेक्षाएँ भी ज़्यादा होंगी। भारत में, हिंदी-शिक्षण की स्थिति को समझने के लिए, हमें विभिन्न राज्यों में हिंदी की परीक्षा के परिणामों को देखने की ज़रूरत है। विगत वर्षों में, कई ऐसे राज्यों की बोर्ड परीक्षाओं में, हिंदी विषय में परीक्षार्थी असफल रहे। 2020 में उत्तर प्रदेश में बारहवीं कक्षा के लगभग 2 लाख 70 हज़ार तथा दसवीं कक्षा के 5 लाख 28 हज़ार विद्यार्थी हिंदी विषय में असफल हुए। दसवीं और बारहवीं की परीक्षाओं में 2 लाख 39 हज़ार विद्यार्थी ऐसे थे, जिन्होंने हिंदी विषय की परीक्षाएँ ही नहीं दीं।[1] 2019 में, 9,98,250 परीक्षार्थी हिंदी में फ़ेल हो गए। दसवीं में 5,74,409 और बारहवीं में 4,23,841 विद्यार्थी असफल हुए।

जो शिक्षक परीक्षा की पर्चियाँ जाँचते हैं, उनका मानना है कि कुछ विद्यार्थी ऐसे भी हैं, जो हिंदी के सामान्य शब्दों की भी जानकारी नहीं रखते हैं और सही उत्तर नहीं लिख पाते हैं। कई बार वे जवाब में गाने की पंक्तियाँ लिख देते हैं।[2] पर्चियाँ सुधारते समय रियायत करते हुए इतने अंक दे दिए जाते हैं कि विद्यार्थी हिंदी में उत्तीर्ण हो जाएँ। फिर भी असफल विद्यार्थियों की बड़ी संख्या यह बताती है कि हिंदी के प्रति रुचि बढ़ाने में हम कितने पीछे रह गए हैं। हिंदी को लेकर न अभिभावक उतने चिंतित होते हैं और ना ही विद्यार्थी। हिंदी को बहुत हल्के में लेकर चलने की आदत्त हो गई है। हिंदी की जगह गणित, अंग्रेज़ी और विज्ञान आदि विषयों के लिए अतिरिक्त प्रयास किए जाते हैं। हिंदी के अध्यापकों द्वारा अगर रुचिकर ढंग से अध्यापन-कार्य किया जाता, तो ऐसा नहीं होता कि विद्यार्थी सफल होने के लिए न्यूनतम अंक भी नहीं ला पाते।

विभिन्न राज्यों में शिक्षकों के पद भी बड़ी मात्रा में खाली पड़े हुए हैं। शिक्षक भर्ती के अनियमित होने और भारी मात्रा में कदाचार के कारण बहाली प्रक्रिया लम्बे समय तक अटकी रहती है। अलग-अलग राज्यों में शिक्षकों के वेतन भी असमान हैं। बिहार जैसे अन्य राज्य भारी मात्रा में शिक्षकों की कमी से जूझ रहे हैं। 2018 के बाद अब तक केंद्रीय विद्यालयों में नियुक्ति के लिए शिक्षक भर्ती परीक्षा नहीं हुई है। नवोदय विद्यालय समिति ने 2019 के बाद अब जाकर 2022 में भर्ती का विज्ञापन दिया है। यही हाल कई राज्यों के शिक्षक भर्ती संगठनों का है। उत्तर प्रदेश की स्थिति थोड़ी ठीक हुई है, लेकिन अभी भी शिक्षकों की भारी कमी है। यदि योग्य शिक्षकों की विद्यालयों में नियुक्ति ही नहीं होगी, तो हिंदी की कक्षा से विद्यार्थी वंचित ही रहेंगे। देशभर में 10 लाख 60 हज़ार 139 से ज़्यादा पद खाली पड़े हैं। इसमें सबसे ज़्यादा खाली पद बिहार और उत्तर प्रदेश में हैं। बिहार के सरकारी विद्यालयों में 2 लाख 75 हज़ार 255 पद खाली हैं, तो उत्तर प्रदेश में 2 लाख 17 हज़ार से अधिक पद रिक्त हैं। उत्तराखंड में 30 प्रतिशत शिक्षकों के पद कॉलिजों में रिक्त हैं।[3]

वर्तमान समय में, नियमित भर्ती की जगह अल्पावधि अनुबंध पर शिक्षकों को रखने का चलन बढ़ गया है। इसमें न तो उनका भविष्य सुरक्षित रहता है, ना ही उनका वेतन ऐसा होता है, जिससे वे बिना किसी चिंता के कक्षा-संचालन करते रहें। जहाँ नियमित पद पर शिक्षक हैं, वहाँ भी कई बार पढ़ाने के प्रति ढुलमुल रवैया देखने को मिलता है। हालाँकि इसका निदान सेवारत प्रशिक्षण से हो सकता है।

भारत भर के सरकारी स्कूलों में शिक्षण के दौरान तकनीकी के इस्तेमाल की दशा बहुत अच्छी नहीं है। कुल 15,09,136 विद्यालयों में 12,66,435 विद्यालय ही ऐसे हैं, जहाँ सुचारु रूप से बिजली उपलब्ध है।[4] सभी स्कूलों में स्मार्ट बोर्ड और प्रोजेक्टर आदि

की उपलब्धता दूर की बात है। ऐसे में अंग्रेज़ी माध्यम वाले निजी विद्यालयों की संख्या बढ़ती जा रही है। इन विद्यालयों में दिखती भीड़ से पता चलता है कि हिंदी माध्यम को कितना कम महत्त्व दिया जाने लगा है। हिंदी माध्यम के विद्यालयों में स्थिति तो बुरी है ही, लेकिन हिंदी-शिक्षण के मामले में अंग्रेज़ी माध्यम के विद्यालयों की नीति से सभी परिचित होंगे। उनके परिसर में हिंदी बोलने पर दंड-राशि की व्यवस्था होती है। वे हिंदी-शिक्षण से न्याय कर पाएँगे, ऐसा मानना कठिन है।

हिंदी के प्रति अभिभावकों और विद्यार्थियों की मानसिकता में परिवर्तन लाने की ज़रूरत है। हिंदी को आसान मानकर न तो अभिभावक ध्यान देते हैं और ना ही विद्यार्थी। ऐसे में वे भाषागत् दरिद्रता के शिकार होते हैं। अपनी मातृभाषा के प्रति लाचार रवैया के कारण उनकी भाषिक क्षमता प्रभावित होती है। विद्वानों का मानना है कि अपनी मातृभाषा को अच्छे से जानने के बाद ही एक विद्यार्थी अन्य किसी भी भाषा को बहुत जल्दी समझने में सक्षम होता है।

हिंदी विषय के शिक्षण को रुचिकर बनाने के लिए कक्षा में शिक्षण के विविध तरीकों को अपनाने की ज़रूरत होती है। केवल पुस्तकों के अध्याय पढ़ा देना ही कर्तव्य की इतिश्री नहीं है और ना ही प्रश्नों के उत्तर लिखा देना शिक्षण को सार्थक बना सकता है। दरअसल, अभी शिक्षण के नाम पर यही सब चल रहा है। बहुत कम शिक्षक ऐसे हैं, जो शिक्षण और अधिगम को व्यवहार में उतारकर दिखा पाते हैं। केवल परीक्षा पास करना, शिक्षा का लक्ष्य बना देने से विद्यार्थी का न तो मानसिक विकास होगा, ना ही उसकी समझ बढ़ेगी, व्याख्या-विश्लेषण करने के कौशल का विकास करना तो दूर की बात है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली द्वारा भाषा-शिक्षण पर प्रकाशित पुस्तक में कहा गया है - "भाषा की पढ़ाई कैसी हो, इस सवाल के विषय में सोचना-विचारना केवल भाषा-शिक्षण का सवाल नहीं, बल्कि पूरी शिक्षा का सबसे अहम सवाल होना चाहिए।"[5] क्योंकि भाषा हमारे व्यक्तित्व का निर्माण भी कर रही होती है। विद्यालय में एक विद्यार्थी अपने साथ समाज की तमाम विशेषताओं को लेकर आता है। भाषिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और वर्गीय भिन्नता को ध्यान में रखते हुए शिक्षण-कार्य करना होता है। इसमें प्रत्येक कक्षा की ज़रूरतों और विभिन्न स्तरों की मानसिक क्षमता के विद्यार्थियों को ध्यान में रखते हुए अपनी शिक्षण-प्रविधि अपनानी पड़ती है। इन सबकी अनभिज्ञता से शिक्षण प्रभावी नहीं बन पाता है। शिक्षण के दौरान प्रशिक्षण से प्राप्त ज्ञान का सदुपयोग न करना हिंदी-शिक्षण को और भी नीरस बनाता है। हिंदी शिक्षण के दौरान गद्य और पद्य के शिक्षण की विधियाँ अलग-अलग होती हैं। एक एकांकी और एक कहानी पढ़ाने के अलग-अलग तरीके होते हैं। हाव-भाव और अनुतान, स्वराघात, बलाघात आदि का उचित उपयोग शिक्षण को रुचिकर बनाता है।

सरकारी विद्यालयों में जहाँ शिक्षण हिंदी माध्यम में होता है, वहाँ हिंदी की अच्छी समझ न हो पाने से विद्यार्थी अन्य सभी विषयों को भी अच्छी तरह से समझ नहीं पाते हैं। हिंदी की अच्छी समझ से तात्पर्य है - इस तरह का हिंदी-ज्ञान रखना, जिससे लिखे गए वाक्य और पूरे पाठ का मतलब समझ में आ जाए। उसके बाद अपनी समझ के द्वारा हिंदी ज्ञान का अपेक्षित स्थान पर उपयोग किया जा सके। विश्लेषण, संश्लेषण और मूल्यांकन किया जा सके। क्या हम विद्यार्थियों में इस स्तर की योग्यता विकसित कर पाए हैं? इसके उत्तर के लिए हमें विभिन्न संस्थाओं के सर्वेक्षण से मदद मिलती है। 2021 के प्रतिवेदन को अगर देखें, तो हमें पता चलता है कि प्राथमिक विद्यालय के विद्यार्थियों में एक बड़ा प्रतिशत अपनी कक्षा की पुस्तक पढ़ने में भी सक्षम नहीं है।[6] क्या यह एक बड़ा कारण नहीं है, जिससे कि प्राथमिक स्तर पर हिंदी पठन-पाठन की जड़ें कमज़ोर होती जा रही हैं? आगे चलकर क्या ये विद्यार्थी उन चीज़ो की समझ विकसित कर पाएँगे, जो इनको स्वरोज़गार में मदद करेंगी? इन सब चीज़ों को बदलने के लिए प्राथमिक स्तर की शिक्षा पर अधिक ध्यान देने की ज़रूरत है, ताकि उनका आधार मज़बूत बन सके। लेकिन सच्चाई यह है कि कोविड के आने के बाद बहुत सारी परेशानियाँ हर स्तर के विद्यार्थियों के सामने आ खड़ी हुई हैं। उसमें से एक परेशानी है - इंटरनेट या फ़ोन तक पहुँच न हो पाना। जब पूरे लॉक-डाउन में विद्यार्थी घर से निकल नहीं सकते थे, उस समय एक बड़ी समस्या सामने उभरकर आई। जो गरीब परिवार से आते थे, उनकी पढ़ाई ठप ही पड़ गई। प्राथमिक विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय तक ऑनलाइन कक्षा की कमियाँ देखने को मिलीं। एक तरफ़ उसके कुछ लाभ दिखे, तो दूसरी तरफ़ बहुत

सारी समस्याएँ खड़ी दिखीं। शारीरिक रूप से उपस्थित होने पर भी जब शिक्षक विद्यार्थियों को उनकी कक्षा के स्तर का अपेक्षित ज्ञान और कौशल नहीं दे पाता, तब ऑनलाइन पढ़ाई में वह कितना सफल होगा, यह प्रत्येक शिक्षक जानता है।

हिंदी भाषा के प्रति यदि हमारा नज़रिया नहीं बदलेगा, तो हिंदी-शिक्षण की स्थिति नहीं सुधर सकेगी। एक विद्यार्थी केवल विद्यालय में रहकर ही नहीं सीखता। कम-से-कम भाषा के मामले में तो ऐसा ही है। वह अपने परिवार से भाषा अर्जित करता है और अपने परिवेश से भी सीखता है। जिसका परिवेश भोजपुरी, मगही, अवधी, बघेली या बुंदेली का है, वह अपनी भाषिक विशेषता के साथ विद्यालय आता है। एक कक्षा में कई बोलियों और भाषाओं के विद्यार्थी उपस्थित हो सकते हैं। ऐसे में इस बहुभाषिकता को भाषा-शिक्षण हेतु बहुत अच्छे से इस्तेमाल किया जा सकता है। हिंदी की अगर बात करें, तो यह केवल खड़ी बोली हिंदी नहीं है। हिंदी एक भाषा-समूह का नाम है, जिसमें 5 उपभाषाएँ और कई बोलियाँ शामिल हैं। इनका इतिहास कुछ ऐसा है कि हिंदी साहित्य को पढ़ते हुए उसकी बोलियों से भी गुज़रना पड़ता है। इनके बिना हिंदी का साहित्य अधूरा है। ऐसे में उसकी बोलियों के क्षेत्रों से आने वाले विद्यार्थियों को हिंदी भाषा और साहित्य से जोड़ना बहुत आसान होता है।

भारत में और हिंदी क्षेत्रों में हिंदी-शिक्षण की स्थिति को सुधारना बहुत आवश्यक है। यह स्कूली व्यवस्था के परिष्कार से सम्भव होगा। पर्याप्त मात्रा में शिक्षक होंगे, तो उचित शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात होने से हर विद्यार्थी की ज़रूरतों और कमियों तक पर्याप्त ध्यान जा पाएगा। अध्यापन हेतु आवश्यक सामग्री उपलब्ध होगी, तो शिक्षक अपने ज्ञान का सही और अधिकतम उपयोग कर सकेगा। रुचिकर अध्ययन सामग्री विद्यार्थियों को आकृष्ट करेगी। सेवारत शिक्षक नए शिक्षकों का प्रशिक्षण करते हुए उनकी कुशलताएँ विकसित करते हैं। कुल मिलाकर कहा जाए, तो हमें हिंदी-शिक्षण की बेहतरी के लिए इन सभी चीज़ों का विकास एक साथ करना पड़ेगा। अन्यथा एक के अभाव में पूरी व्यवस्था इसी तरह चरमराती रहेगी।

हिंदी क्षेत्र में हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि शत-प्रतिशत विद्यार्थी हिंदी विषय में उत्तीर्ण हों। यह लक्ष्य निर्धारित करते हुए हमें हर कमी को दूर करने के तरीकों पर विचार करना चाहिए। हिंदी व्याकरण को समझने-समझाने के लिए हमें प्राथमिक स्तर से ही ध्यान देने की ज़रूरत है। व्याकरण की पुस्तकों को रुचिकर बनाने के लिए उसके उदाहरण सामान्य जीवन से संबंधित रखे जाएँ। वाक्यों की रचना और भाषा का उपयोग करने के ज़्यादा-से-ज़्यादा अवसर दिए जाने चाहिए, ताकि विद्यार्थी उससे बेहतर परिचित हो सकें। गद्य-शिक्षण में कहानी, नाटक, एकांकी, निबंध, संस्मरण और लेखों को पढ़ाने के विभिन्न उपयुक्त तरीकों पर शिक्षकों को लगातार नियमित रूप से प्रशिक्षित करने की ज़रूरत है। ऐसा देखा जाता है कि एक बार शिक्षक के तौर पर चुने जाने के बाद सेवारत प्रशिक्षण पर ध्यान नहीं दिया जाता। फलस्वरूप, पूरी शिक्षा व्यवस्था की नींव कमज़ोर पड़ जाती है। पुरानी घिसी-पिटी प्रणाली से उनका शिक्षण ऊबाऊ होता जाता है। बेहतर तरीकों के उपयोग द्वारा शिक्षण को ज़्यादा प्रभावी बनाया जा सकता है, जैसे - कहानी का वाचन करना और हाव-भाव सहित सरस पठन करना। इसमें दूसरा तरीका ज़्यादा कारगर होता है। इस दौरान विद्यार्थियों को कहानी के पात्र बनाए जा सकते हैं। नाटक और एकांकी में इसकी ज़्यादा संभावना होती है। इनका कक्षा में या विद्यालय के प्रेक्षागृह जैसी जगहों पर मंचन भी किया जा सकता है। निबंध जहाँ विचारोत्तेजक और ज्ञानवर्धक होता है, वहीं संस्मरण लेखक और उसकी ज़िंदगी से जुड़े पहलुओं की जानकारी देता है। इन सब चीज़ों को रुचिकर बनाकर और विद्यार्थियों को शामिल करते हुए शिक्षण किया जाए, तो अधिगम उच्च स्तर का होगा। लेकिन बहुत कम ऐसे शिक्षक हैं, जो हिंदी विषय को इस रूप में कक्षा में उपस्थित कर पाते हैं। जो थोड़े-बहुत अभिभावक हिंदी को लेकर जागरूक हैं, वे भी परीक्षा परिणामों को ज़्यादा महत्त्व देते हैं। इसी कारण हिंदी कक्षा में रटन प्रणाली से छुटकारा पाना कठिन होता है। रट-रटकर विद्यार्थी यह याद रख सकते हैं कि गोदान प्रेमचंद का उपन्यास है। वे प्रेमचंद और जैनेन्द्र की लेखन-शैली की विशेषताओं में अंतर बताते हुए बहस नहीं कर सकते। हमारी शिक्षा-व्यवस्था में ज्ञान स्तर के शिक्षण से आगे बढ़ते हुए अब अवबोध और प्रयोग स्तर पर शिक्षण को ज़्यादा महत्त्व दिए जाने की ज़रूरत है। इंटरनेट के रूप में बच्चों के सामने ज्ञान का विशाल भंडार मौजूद है। वह कहीं से भी बैठे-बैठे ज्ञान प्राप्त कर सकता है। ज़रूरत इस बात

की है कि उनकी समझ का हम विकास करें। अपने ज्ञान के प्रयोग के तरीके बताएँ, ताकि वे आगे विश्लेषण, संश्लेषण और मूल्यांकन करने योग्य बन सकें। इसपर अगर अमल किया जाएगा, तो ऐसा नहीं होगा कि कोई भी विद्यार्थी पास होने लायक अंक भी न ला पाए। बल्कि साहित्यिक अभिरुचि विकसित होने के कारण बड़ी मात्रा में विद्यार्थी हिंदी की सेवा करते हुए दिखेंगे।

संदर्भ :

1. 29 जून, 2020, hindustantimes.com
2. https://www.amarujala.com/photo-gallery/uttar-pradesh/agra/students-wrote-film-songs-on-answer-sheet-of-up-board-exam-2020
3. 17 मई, 2022, दैनिक जागरण
4. Report on UDISE+ 2020-2021, स्कूल शिक्षा और साक्षरता विभाग, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
5. भाषा-शिक्षण, हिंदी, भाग-1, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली
6. Annual status of education report (rural) 2021

vishalkumar5021@gmail.com

राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 2022 के आलोक में हिंदी

डॉ. धर्मेंद्र प्रताप सिंह
दिल्ली, भारत

शिक्षा एवं शिक्षा-नीति की जब भी बात होगी, तब भाषा की चर्चा ज़रूर होगी। भाषा के बिना शिक्षा संभव नहीं है। भारत के संदर्भ में भाषा का विषय न केवल महत्त्वपूर्ण और जटिल है, बल्कि भावनात्मक भी है। लगभग तीन दशकों के लंबे इंतज़ार के बाद भारतीय भाषाओं को प्राथमिकता देने के लिए बहुप्रतीक्षित शिक्षा नीति लागू हुई। देश की शिक्षा-व्यवस्था में इसे व्यापक बदलाव के रूप में देखा जा रहा है।

'राष्ट्रीय शिक्षा नीति – 2022' की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात है कि यह भारत के लोगों के लिए भारत की भाषा में शिक्षा की एक महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना रखती है। भारत के औपनिवेशीकरण की पूरी प्रक्रिया में भाषा महत्त्वपूर्ण थी। मैकाले ने अंग्रेज़ी का समर्थन करते हुए शिक्षा की जो नींव डाली थी, उसका उद्देश्य अंग्रेज़ी भाषा और सभ्यता का प्रसार करना था। मैकाले का उद्देश्य भारतीय बौद्धिकता को जाग्रत करना नहीं, बल्कि अंग्रेज़ी हुकुमत की सहयोगी फ़ौज खड़ी करना था, जिससे अंग्रेज़ों को शासन करने में सहूलियत हो सके। मैकाले बहुत हद तक इसमें सफल भी रहे। इस नीति ने भारतीय ज्ञान-विज्ञान और भारतीय भाषाओं को पीछे ढकेल दिया।

आज़ादी के बाद भारत में शिक्षा तंत्र को राष्ट्रीय अपेक्षाओं के अनुकूल बनाने की दिशा में राधाकृष्णन आयोग, मुदालियर आयोग और कोठारी आयोग जैसे तीन महत्त्वपूर्ण आयोग बनाए गए। इन आयोगों की सिफ़ारिशों ने स्वतंत्र भारत में शिक्षा की नींव रखी। कोठारी आयोग की रिपोर्ट (1964-66) और शिक्षा नीति (1986) स्वतंत्र भारत में शिक्षा के सुधार की दिशा में महत्त्वपूर्ण पहल थी। इनमें स्वतंत्र राष्ट्र की अपेक्षाओं को साकार करने, शिक्षा को मूल्यपरक बनाने और भारतीय संस्कृति से जोड़ने पर बल था, लेकिन क्रियान्वयन की कोई स्पष्ट योजना नहीं थी। परिणामतः औपचारिक शिक्षा की संरचना में बदलाव हुआ, लेकिन कार्यान्वयन योजना के अभाव में हम निर्धारित लक्ष्यों तक नहीं पहुँच सके। लेकिन क्रियान्वयन एवं भाषा की दृष्टि से यह नई शिक्षा-नीति पूर्व के कोठारी आयोग और राष्ट्रीय शिक्षा-नीति से अधिक मुखरित है। लगभग पाँच वर्षों की तैयारी के बाद एक बेहतर, समसामयिक एवं समेकित शिक्षा-नीति हमारे सामने आई है। इस नीति में शिक्षण माध्यम के रूप में भाषा से संबंधित सवालों को मुख्यतः बहुभाषावाद और भाषा की शक्ति[1] नामक एक उप-अध्याय में रखा गया है। भाषा की शक्ति को पहचानते हुए, भारतीय भाषाओं के बारे में विभिन्न प्रावधान व सुझाव समग्रता से शामिल किए गए हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति की एक महत्त्वपूर्ण अनुशंसा है कि विद्यालयी शिक्षा के स्तर पर कम-से-कम कक्षा पाँच तक तथा जहाँ संभव है, वहाँ कक्षा आठ तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए।[2] गैर हिंदी भाषी राज्यों के भाषा विवाद पर लगाम लगाते हुए यह नीति प्रस्तावित करती है कि अनिवार्य रूप से पाँचवीं तक, परन्तु यदि राज्य चाहे, तो आठवीं अथवा उसके बाद भी मातृभाषा में पढ़ाई जारी रख सकते हैं। विज्ञान समेत सभी विषयों के पाठ्यक्रम और किताबें भारतीय भाषाओं में उपलब्ध करायी जाएँगी।

मातृभाषा हमारे जीन में होती है। उसमें सीखना-समझना आसान होता है। बच्चा सर्वप्रथम अपनी भाषा सीखता है और फिर उस भाषा में वह ज्ञान की दूसरी शाखाओं को अर्जित करता है। भाषा हमारे लिए ज्ञानार्जन का माध्यम है। यह माध्यम जितना सरल-सहज होगा, बच्चों का विषय-प्रवेश उतना ही आसान होगा। दूसरी भाषा सीखने में विद्यार्थियों को अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है और फिर उनका सारा ध्यान भाषा सीखने तक ही सीमित हो जाता है। विषय पर सोचने और क्रियात्मक बनाने का अवकाश उन्हें नहीं मिल पाता। फिर शुरू होती है, एक रटन प्रक्रिया, जो विद्यार्थियों की व्यावहारिक समझ को संकुचित कर देती है। गांधी जी भी कहते हैं कि हमारा बालक स्नातक, स्नातकोत्तर तक की पढ़ाई में छः वर्ष अंग्रेज़ी के पीछे बर्बाद करता है, अगर यह समय उसके विषय पर खर्च होता है, तो वह अपने विषय में अधिक सक्षम हो सकता है।[3] इससे बच्चे अपनी भाषा व संस्कृति से घनिष्ठ संबंध बना पाएँगे।

नई शिक्षा नीति ने स्कूली शिक्षा में व्यापक बदलाव की जो आधारशिला रखी है, उसका महत्त्वपूर्ण आधार है - 'त्रिभाषा सूत्र'।

वास्तव में, कोठारी आयोग ने इसे प्रस्तावित किया था, जिसका उद्देश्य था कि प्रत्येक विद्यार्थी अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त दो अन्य भाषाओं की समझ विकसित करेगा। यह सूत्र था तो भारतीय भाषाओं के प्रोत्साहन के लिए, लेकिन इसका कार्यान्वयन इस रूप में हुआ कि यह संपर्क भाषा के रूप में अंग्रेज़ी की स्वीकार्यता और अनिवार्यता का सूत्र बन गया। इसका आग्रह था कि प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में हो। इस दृष्टि से, भारतीय भाषाओं में पढ़ने-लिखने से, संस्कृति के विकास की संभावना थी। दुर्भाग्य से इसकी व्याख्या और अनुपालन इस तरह से हुआ कि देश भर में भाषिक-दृष्टि से दोहरी शिक्षा-प्रणाली विकसित हो गई। परिणामतः इस सूत्र की मूल भावना कि उत्तर के राज्य अर्थात् हिंदी-भाषी राज्यों के छात्र दक्षिण या अन्य राज्यों की एक भाषा सीखेंगे और अहिंदी भाषी राज्यों के छात्र हिंदी सीखेंगे। परंतु व्यावहारिक रूप से ऐसा न हो सका। नई नीति में, त्रिभाषा सूत्र के कार्यान्वयन को लेकर, यह प्रावधान जोड़ दिया गया है कि छात्रों को तीन में से दो भारतीय भाषाएँ चुनना अनिवार्य होगा।

भारत में भाषा को लेकर कई प्रकार से भ्रम है। एक भ्रम तो यही है कि आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का जन्म पश्चिम में हुआ। अत: अंग्रेज़ी ज्ञान-विज्ञान की स्वाभाविक भाषा है। अनेक लोगों को लगता है कि अंग्रेज़ी समर्थ लोगों की भाषा है और यदि हमें भी समर्थ बनना है, तो अंग्रेज़ी माध्यम से ही शिक्षा लेनी होगी। परन्तु, यह तर्क ठीक नहीं है। भारत का प्राचीन वैदिक साहित्य इस बात का प्रमाण है कि ज्ञान-विज्ञान की ढेरों बातें संस्कृत साहित्य में सुरक्षित हैं। इस रूप में भारतीय शिक्षा-व्यवस्था और भारतीय भाषाओं के सामने एक ज़रूरी सवाल अंग्रेज़ी के वर्चस्व और प्रभुत्व का आता है। अंग्रेज़ी को विश्वभाषा मानकर भारत में एक ऐसा माहौल बना दिया गया है कि जैसे अंग्रेज़ी के बिना कुछ भी संभव नहीं है। इस संदर्भ में डॉ. वेद प्रताप वैदिक कहते हैं - "इधर पिछले सौ-डेढ़ सौ वर्षों में जो क्रांतियाँ हुई हैं, किस भाषा के माध्यम से हुई हैं? कार्ल मार्क्स ने जो 'दास केपिटल' नामक ग्रंथ लिखा है, किस भाषा में लिखा है? उसी ग्रंथ के आधार पर रूस और चीन में दुनिया की सबसे बड़ी क्रांतियाँ हुईं। मार्क्स ने अपने सारे ग्रंथ जर्मन भाषा में लिखे हैं। अंग्रेज़ी में कौन-सा ग्रंथ लिखा है? न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत बहुत महत्त्वपूर्ण है। न्यूटन की किताब की भूमिका पढ़िए। उसमें वे पूछते हैं कि 'अंग्रेज़ी कोई भाषा है?' उन्होंने अपनी किताब लैटिन में लिखी है। दुनिया के महान् वैज्ञानिक आइन्स्टाइन ने किस भाषा में ग्रंथ लिखे हैं? जर्मन भाषा में और हम मान बैठे हैं कि दुनिया के सम्पूर्ण विज्ञान पर अंग्रेज़ी का एकाधिकार है।"[6]

वस्तुतः विभिन्न विषयों का उत्कृष्ट ज्ञान विश्व की अलग-अलग भाषाओं में उपलब्ध है। जैसे कि विज्ञान का अधिक ज्ञान रूसी भाषा में है, दर्शन का ज्ञान जर्मन भाषा में संरक्षित है और पुरातत्व साहित्य का अधिक ज्ञान फ्रांसीसी भाषा में है। इन सभी विषयों के ज्ञान से यदि हमें जुड़ना है, तो अनुवाद इसका सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प हो सकता है। आज वैश्विक स्तर पर अच्छे ज्ञान की पुस्तक किसी भी भाषा में जैसे ही छपती है, एक माह के भीतर ही उसका जापानी भाषा में अनुवाद उपलब्ध हो जाता है। जापान के लोग बिना किसी दूसरी भाषा में जाए, अपनी ही भाषा में उस उत्कृष्ट ज्ञान का लाभ उठा पाते हैं। पूर्व राष्ट्रपति और वैज्ञानिक डॉ. अब्दुल कलाम से नागपुर के धरमपेठ महाविद्यालय के कार्यक्रम में व्याख्यान के बाद छात्रों ने पूछा कि आप सफल वैज्ञानिक कैसे बने? तब डॉ. कलाम का उत्तर था कि 'मैंने 12वीं तक विज्ञान, गणित सहित संपूर्ण शिक्षा मातृभाषा (तमिल) में ली है।'[7] टैगोर ने भी कहा कि "हमने अपनी आँखें खोकर चश्मे लगा लिए हैं।"[8] ये चश्मे विदेशी भाषाओं के हैं, जो आज़ादी मिलने के बाद अधिक बँटने और लगने लगे। आजकल ये चश्मे बौद्धिक बहसों में सर्वाधिक लगाए हुए देखे जा सकते हैं।

हिंदी-भाषा दैनिक कामकाज और संप्रेषण के अतिरिक्त जब तक शिक्षण, शोध और रोज़गार के क्षेत्र की भाषा नहीं बन जाती है, तब तक वह उल्लेखनीय समृद्धि अर्जित नहीं कर पाएगी। नयी शिक्षा-नीति में प्रस्तावित भाषा-प्रौद्योगिकी की प्रक्रिया से जुड़कर हिंदी देश की राष्ट्रीय भाषा के रूप में विकसित हो सकती है। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया होगी, जिसमें किसी राजनीतिक प्रतिरोध के लिए कोई स्थान नहीं होगा। तब जाकर हिंदी व्यक्ति के साथ समूह, परिवेश और राष्ट्र की आवश्यकता को पोषित कर पाएगी। परंतु राजभाषा हिंदी के विकास के साथ हमें भारतीय परिप्रेक्ष्य में भारतीय भाषाओं का भी ध्यान रखना होगा। डॉ. ज़ाकिर हुसैन की यह उक्ति तभी चरितार्थ हो सकेगी कि "हिंदी वह धागा है, जो विभिन्न मातृभाषा रूपी फूलों को पिरोकर भारत माता के लिए सुंदर

हार का सृजन करेगा।"[9]

भाषा के स्तर पर हिंदी माध्यम में शिक्षा की मुख्यतः तीन समस्याएँ दिखाई पड़ती हैं

(1) अंग्रेज़ी का वर्चस्व।

(2) हिंदी का शिक्षा और रोज़गार की भाषा न बन पाना।

(3) हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के बीच समन्वय का अभाव होना।

प्रायः यह कहा जाता है कि उच्च-शिक्षा में ज्ञान-विज्ञान की स्तरीय पुस्तकें हिंदी में उपलब्ध नहीं हैं। एक हद तक यह सही भी है। परंतु ऐसा भी नहीं है कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में हिंदी में काम नहीं हो रहा है। इस क्षेत्र में प्रयत्न जारी हैं। आज हिंदी दुनिया के अनेक विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जा रही है। वास्तविक परेशानी विज्ञान, तकनीकी, प्रबंधन और कानून जैसे विषयों के पाठ्यक्रमों और अध्ययन-सामग्री के निर्माण से संबंधित है। नयी शिक्षा नीति की स्वीकृति के एक वर्ष के भीतर ही इस दिशा में कई उल्लेखनीय प्रयास प्रारंभ हुए हैं। भोपाल के अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय में विज्ञान की सभी शाखाओं, कंप्यूटर साइंस और कानून इत्यादि की पढ़ाई हिंदी में जारी है। महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा में भी इस वर्ष से एल.एल. बी. की पढ़ाई हिंदी माध्यम में की जा रही है। अनेक राज्यों के इंजीनियरिंग कॉलिजों में हिंदी में अध्यापन प्रारंभ होना युगांतकारी घटना है। अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् ने इंजीनियरिंग का पाठ्यक्रम आठ भाषाओं में तैयार करके इसके क्रियान्वयन पर ठोस कार्य प्रारंभ कर दिया है। कुछ भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आई.आई.टी.), राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान (एन.आई.टी.) एवं मध्यप्रदेश सरकार चिकित्सा-शिक्षा के पाठ्यक्रम को हिंदी में लागू करने के लिए तत्पर हैं।

हिंदी-शिक्षण के विकास में अभी भी अनेक चुनौतियाँ हैं। सबसे बड़ी चुनौती हिंदी में शिक्षण-सामग्री तैयार करने की है। यद्यपि अन्य भारतीय भाषाओं से विज्ञान एवं तकनीकी लेखन में हिंदी की स्थिति बेहतर है, तथापि अंग्रेज़ी से तुलना करने पर निराशा होती है। इस कमी को अनुवाद द्वारा पूरा किया जा सकता है। नयी शिक्षा-नीति में अनुवाद की भूमिका को सराहते हुए यह योजना की गई है कि हमारे समाज में बेहतर अनुवादक पैदा हों। बाहर के कुछ विश्वविद्यालयों में विभिन्न विषयों के शिक्षकों को किसी-न-किसी पुस्तक का अनुवाद अपनी भाषा में करना, उनके अनिवार्य अकादमिक कार्य का हिस्सा है। हम अनुवाद द्वारा बेहतर सामग्री हिंदी में उपलब्ध करा सकते हैं। परंतु जब तक हम मानसिक भाषायी गुलामी नहीं त्यागते हैं, तब तक स्वभाषा की उन्नति का मार्ग नहीं दिखाई पड़ेगा। संजय कुमार का यह कहना बहुत समीचीन लगता है कि "हिंदी विज्ञान-लेखन के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा कुछ लोगों की बीमार मानसिकता है। हिंदी विज्ञान-लेखन का इतिहास लगभग सौ वर्ष से भी पुराना है। परंतु उसमें शीर्ष विज्ञान लेखकों का अभाव है। शायद इसका एक कारण यह भी है कि हमारे उच्च-कोटि के वैज्ञानिकों ने अपनी संकुचित मानसिकता के कारण हिंदी को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं बनाया।"[11] आगे वे लिखते हैं - "वैज्ञानिक एवं तकनीकी वर्ग की कुछ समस्याएँ हैं, जिनके कारण हिंदी विज्ञान-लेखन का स्तर अभी विकसित नहीं हो पा रहा है। हालाँकि हमारे वैज्ञानिक, आज प्रौद्योगिकी विषयों को हिंदी में लिखने में पूरी तरह सक्षम हैं, फिर भी, अधिकतर वैज्ञानिक हिंदी में लिखने से कतराते हैं। भारत की सभी प्रयोगशालाओं तथा संस्थानों में कुछ गिने-चुने वैज्ञानिक ही विज्ञान के क्षेत्र में हिंदी का प्रयोग करते हैं। इस कमी के निम्नलिखित कारण हैं –

(1) वैज्ञानिक एवं तकनीकी कार्यों में हिंदी का प्रयोग करने वाले वैज्ञानिकों को हेय दृष्टि से देखा जाना।

(2) पदोन्नति तथा अन्य कार्यों में हिंदी में लिखे शोध-पत्र एवं लेखों को अंग्रेज़ी के समतुल्य नहीं आँका जाना।

(3) साक्षात्कार में अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग करने वाले वैज्ञानिकों को ही प्राथमिकता दिया जाना।"[12]

उच्च शिक्षा में प्रायः यह देखा जाता है कि भारत के ग्रामीण बच्चे भाषा के कारण पिछड़ जाते हैं। इन समस्याओं का उत्तर ढूँढे बैगर हम अपनी भाषा में उच्च शिक्षा को फलते-फूलते नहीं देख सकते हैं। आज सूचना-क्रांति का युग है। इस दौर में वही भाषा प्रचार-प्रसार पा सकती है, जिसे कंप्यूटर और इंटरनेट का साथ मिला हुआ हो। आज पचास से अधिक सॉफ़्टवेयर हिंदी में काम कर रहे हैं और हिंदी विश्व की चुनौतियों का सामना कर रही है।

यह हर्ष का विषय है कि इस शिक्षा नीति में इन सभी समस्याओं को गंभीरता पूर्वक उठाया गया है और उनका निदान भी सार्थक हो पा रहा है।

संदर्भ :

1. https://bharatdarshan.co.nz/magazine/articles/204/yadi-main-tanashah-hota-gandhi.html
2. https://www.crackvacancy.com/2021/03/mahatma-gandhi-ke-hindi-bhasha-ke-liye.html
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (हिंदी संस्करण), 4 : स्कूलों में पाठ्यक्रम और शिक्षण तंत्र : अधिगम समग्र, एकीकृत, आनंददायी और रुचिकर होना चाहिए, 4.11, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
4. https://www.chhatrashakti.in/2022/02/21/international-mother-language-day-special-article-national-education-policy-and-indian-language-atul-kothari/
5. वैदिक, डॉ. वेद प्रताप; मेरे सपनों का हिंदी विश्वविद्यालय, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2014
6. https://www.chhatrashakti.in/2022/02/21/international-mother-language-day-special-article-national-education-policy-and-indian-language-atul-kothari/_
7. सिंह, प्रो. दिलीप; भाषा का संसार, अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान और भाषा-शिक्षण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008
8. https://www.tv9hindi.com/india/hindi-diwas-2021-know-many-facts-about-hindi-language-and-new-education-policy-read-here-full-details-823530.html
9. कुमार, डॉ. संजय; हिंदी विज्ञान-लेखन : समस्याएँ एवं संभावनाएँ, भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका, वर्ष 11, अंक 1, जून 2003

dsingh@hinducollege.du.ac.in

भाषा-शिक्षण-प्रौद्योगिकी का वर्तमान परिदृश्य : मुद्दे, चुनौतियाँ और समाधान की दिशाएँ

प्रो. अनुपम श्रीवास्तव
आगरा, भारत

भाषा-विज्ञान के समानांतर या स्वतंत्र विषय शाखा के रूप में अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का उदय विश्व युद्धों के इतिहास और युद्ध-प्रबंधन की आवश्यकताओं के साथ जुड़ा हुआ है। विश्व युद्ध और इनके साथ बदलते विश्व राजनीति के नक्शे पर अनेक कारणों से विजित और विजेता भाषाओं के बीच सीखे तथा सिखाए जाने की ज़रूरतें जन्म ले रही थीं। इस दौरान न्यूनतम समय-सामर्थ्य के निवेश से अधिकतम त्वरित, प्रभावी और परिणाम-उत्पादक तरीकों की खोज भी की जा रही थी और पद्धतियों का प्रयोग-परीक्षण भी हो रहा था। इस प्रकार भाषा-शिक्षण भाषाविज्ञान का शुरुआती अनुप्रयुक्त विषय-क्षेत्र बनकर उभरा। बाद में, जब सामरिक-राजनीतिक उपनिवेशों के स्थान पर आर्थिक कूटनीति और वैश्विक बाज़ार-व्यापार के विस्तार का युग आरंभ हुआ और तकनीकी तंत्र-आधारित सूचना-संचार क्रांति के साथ एक नये किस्म के सामाजिक गठजोड़ों और सामाजिक खाइयों का नक्शा सामने आया, तब भी भाषा-शिक्षण, विशेष रूप से अन्य भाषाओं के शिक्षण ने अपनी आवश्यकता को कायम रखा है।

युद्ध, कूटनीति, राजनीति, अर्थ-व्यवस्था, सूचना-प्रौद्योगिकी आदि संदर्भों के साथ अन्य भाषा के शिक्षण जैसे अकादमिक मसले की शुरुआत करने का एक प्रमुख कारण यह है कि भाषाओं की बात करते समय हम संवेदित होने के साथ-साथ सही संदर्भों में संजीदा भी होते हैं। ज़रूरत है कि हम न केवल सिद्धांततः संजीदा हों, बल्कि विषय की व्यावहारिक और विकासपरक ज़रूरत को भी संजीदगी से समझें। मेरे विचार से यह किसी भी विषय के अनुप्रयोग की मूलभूत कसौटी है। किसी सीमित अथवा बृहत्तर मानव-समुदाय में भाषाओं की पहुँच और पहचान, उत्थान और अवसान, यानी उनकी दशा और दिशा को तय करने वाले कारकों में जो तथ्य सबसे महत्त्वपूर्ण हैं, वे हैं - भाषा का प्रयोजन और भाषा के प्रयोजन की राजनीति। वास्तव में 'राजनीति' शब्द को नकारात्मक रूप में लेने की ज़रूरत नहीं है। केवल सही परिप्रेक्ष्य में इसकी जटिलता और संवेदनशीलता को समझने की अपेक्षा है।

यदि हम विश्व युद्धों से पहले की परिस्थितियों पर ग़ौर करें, तो पाएँगे कि विश्व युद्ध से पूर्व भाषाएँ आज के समान चर्चा का विषय न होकर चिंतन का विषय अधिक हुआ करती थीं। तब भाषा ज्ञान प्राप्त करने का साधन होती थी, जबकि बाद के समय में युद्ध और औद्योगिक-क्रांतियों एवं रोज़ी-रोटी, बाज़ार-अधिकार आदि की प्रतिस्पर्धात्मक परिस्थितियों ने इसे अधिक कौशल-केंद्रित बना दिया है। यही कारण है कि वर्तमान समय में भाषा सीखते या सिखाते समय शिक्षण के केंद्र में उच्चतर-मूल्यपरक उद्देश्यों की जगह तत्कालीन और समयबद्ध लक्ष्यों की सिद्धि अधिक प्रासंगिक है। इस परिदृश्य में शिक्षार्थी, ज्ञानार्थी के बजाय अधिकार-चेतनासंपन्न उपभोक्ता बनकर सामने आया है, तो अध्यापक भी गुरुत्व के प्रभा-मंडल से निकलकर अब इंस्ट्रक्टर, ट्रेनर और फ़ैसिलिटेटर की भूमिका में अधिक उन्मुख हो रहा है।

पिछले कुछ दशकों से अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान के विषय क्षेत्र में भाषा-शिक्षण और भाषा-प्रौद्योगिकी का महत्त्व न केवल लगातार बना हुआ है, बल्कि वैश्वीकरण और सूचना-समाज के विकासशील एवं निरंतर नवाचार-उन्मुख परिदृश्य में यह अधिकाधिक मुखर भी हुआ है। इसी प्रक्रिया में शिक्षण प्रौद्योगिकी (Educational Technology) एक ऐसे विषय-क्षेत्र के रूप में उभरता है, जिसकी अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान के दायरे में तो सीधे-सीधे चर्चा नहीं की जाती, लेकिन शिक्षण-प्रविधि का भाग होने के कारण यह एक ओर भाषा-शिक्षण से संबंधित होता है, तो दूसरी ओर सूचना एवं संचार-प्रौद्योगिकी के विविध उपागमों को अपने कार्य-क्षेत्र में सम्मिलित करता है। इसी प्रकार भाषा-प्रौद्योगिकी भी सूचना एवं संचार-प्रौद्योगिकी के अध्ययन-फलक को सम्मिलित करते हुए, अपना विषय-विमर्श विकसित करती है।

समेकित रूप से देखा जाए, तो वस्तुतः भिन्न-भिन्न या स्वतंत्र अस्तित्व रखने वाले ये विषय-क्षेत्र सैद्धांतिक अंतरानुशासनिकता

(Theoretical Inter-discipline) और प्रयोजनमूलक परस्परता (Functional Interaction) से जुड़े हुए हैं और इसी संबंधपरकता के आधार पर इनके बीच चिंतन-विमर्श योग्य अनेक प्रासंगिक मुद्दों और चुनौतियों को रेखांकित किया जा सकता है। इन्हें समझने और हल करने के लिए आवश्यक है कि इन सब विषयों को अलग-अलग रखकर देखा-परखा जाए और अंतरानुशासनपरक परस्परता (Interdisciplinary Interaction) के बीच एक सामान्य विषय या उपविषय क्षेत्र (common subject field) के रूप में समाधान खोजे जाएँ।

इस दृष्टि से भाषा-शिक्षण-प्रौद्योगिकी (Language Teaching Technology) की कल्पना की जा सकती है। चूँकि इसकी उपयोगिता और प्रासंगिकता का केंद्रीय तत्व/आधार इसकी 'अनुप्रयुक्तता' और 'प्रयोजनमूलकता' है, अतः मुद्दों और चुनौतियों को उचित रूपाकार में प्रस्तुत करना, समझना और समाधान की दिशाएँ खोजना अधिक फलदायी हो सकता है।

वर्तमान विश्व अपने बहुआयामी परिदृश्यों (समाज, संस्कृति, राजनीति, अर्थ-व्यापार, सूचना-संवाद आदि) में भूमंडलीकरण (ग्लोबलाइज़ेशन) और स्थानीकरण (लोकलाइज़ेशन) के द्वंद्व बोध के साथ गतिशील है। कुछ विद्वानों की नज़र में यह 'संक्रमण का दौर' है, तो कहीं इसे 'आदान-प्रदान के युग' के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। अनेक कारणों से इस युग में सूचना का महत्त्व बढ़ा है, जिसकी वजह से इसे 'सूचना-युग' या 'सूचना-क्रांति-काल' जैसे नाम दिए जाते हैं। इसी परिदृश्य में सूचना-शक्ति और सूचना-आधारित समाज (Information Society) की अवधारणा तेज़ी से विकसित हुई है। सूचना के साधक, धारक और वाहक रूप में भाषाओं की, उनके वर्चस्व की और वर्चस्वशाली (Dominant), वर्चस्वशील (Dominance gaining) और वर्चस्व-संघर्षी (Dominance seeking/struggling) भाषाओं के शैक्षणिक प्रचार-प्रसार की चर्चा की जा रही है। इंटरनेट पर भाषाई कंटेंट की उपलब्धता के आँकड़े एक नये किस्म के भाषा-विमर्श को उभार रहे हैं, जिसकी पृष्ठभूमि में नेट-भाषिकी (Internet Linguistics) जैसे विषय पुस्तकाकार रूप में सामने आ रहे हैं।

आज जिस प्रकार विश्वभर में विभिन्न प्रयोजनों से हिंदी सीखने-सिखाने की माँग बढ़ रही है, उससे इस भाषा को देखने-परखने की दृष्टि में उल्लेखनीय बदलाव आया है। भाषा-शिक्षण के संदर्भ में हिंदी को उभार का एक महत्त्वपूर्ण कारण अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, विश्व समुदाय और विश्व बाज़ार में भारत की पहचान बनाना है। पिछले लगभग 20 सालों से विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं के जो आँकड़े प्रस्तुत किए जाते रहे हैं, उनमें हिंदी को साधारणतः तीसरा-चौथा स्थान दिया जाता है।

बहुत प्रामाणिक आँकड़ों की उपलब्धि न होते हुए भी माना जाता है कि आज विश्व के लगभग 100 देशों में या तो जीवन के विविध क्षेत्रों में हिंदी का प्रयोग होता है या फिर इन देशों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है। एशिया में भारत के अलावा पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, नेपाल, भूटान, म्यांमार (बर्मा), चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, मंगोलिया, उज़्बेकिस्तान, ताजिकिस्तान, तुर्की और थाइलैंड देशों में हिंदी अध्ययन-अध्यापन की पुरानी परंपराएँ हैं। यूरोप, अफ़्रीका, अमेरिका, आस्ट्रेलिया और शेष विश्व में भी हिंदी विद्यमान है। विश्व के अनेक देशों में भारतवंशियों और प्रवासी भारतीयों की उल्लेखनीय उपस्थिति है। सारांशतः हिंदी दुनिया के विभिन्न देशों में अनेक रूपों, अनेक नामों, अनेक कारणों और अनेक प्रयोजनों के साथ अपनी ज़रूरत और मौजूदगी दर्ज कराती है।

भाषा-शिक्षण और विशेष रूप से अन्य भाषा-शिक्षण के परिदृश्य में हिंदी की क्षेत्रीय, अखिल भारतीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय भूमिका का लगातार विकास हुआ है। इसके साथ ही हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण की प्रविधियों और प्रौद्योगिकी को लेकर समसामयिक अनुसंधान एवं विकास की ज़रूरत भी बढ़ रही है। पिछले दशकों में हिंदी भाषा-शिक्षण और हिंदी शिक्षण प्रविधि पर हुए अनेक उल्लेखनीय अध्ययन एवं अनुसंधान कार्यों के बावजूद हमें यह स्वीकार करने में हिचक नहीं होनी चाहिए कि इस दिशा में विगत उपलब्धियों पर केवल गर्वित-गौरवान्वित होने के बजाय अभी और भी समयानुकूल, नये संदर्भ-परक और समस्या-उन्मुख एवं समाधान-केंद्रित अनुसंधान तथा विकास कार्यों की ज़रूरत लगातार बनी हुई है।

संप्रेषण-साधन के रूप में हिंदी भाषा की भूमिका का विस्तार होने के बावजूद हमें भली-भाँति विदित है कि भाषा केवल संप्रेषण का साधन नहीं है। यह भाषा-भाषी को संसार, समाज, परिवेश,

उसके स्वत्व और पारस्परिक संबंधबोध का निरंतर अनुभव कराते हुए, उसके व्यक्तित्व, रुचियों, क्षमताओं, दृष्टिकोणों एवं मूल्य-बोध को भी प्रभावित करती है। इस लिहाज़ से अर्जन और अधिगम, दोनों ही रूपों में हिंदी भाषा के शिक्षण की चुनौतियों को ध्यानपूर्वक देखने-परखने की ज़रूरत है। भाषा-शिक्षण की कुछ प्रमुख चुनौतियों को बिंदुवार ढंग से इस प्रकार रखा जा सकता है -

• शिक्षण प्रक्रिया में विविध भाषाई कौशलों के सम्यक विकास की चुनौती - अन्य भाषा-शिक्षण के दौरान विद्यार्थी में चारों भाषा कौशलों का संतुलित विकास कैसे किया जाए? और इससे जुड़ी उनकी विशिष्ट समस्याओं का निदान कैसे हो?

• शिक्षार्थी-केंद्रित एवं प्रयोजनमूलक शिक्षण सामग्री के निर्माण की चुनौती है कि विद्यार्थी की निजी ज़रूरत और विशिष्ट प्रयोजन से जुड़ी अध्ययन सामग्री कैसे बनाई जाए?

• व्याकरण एवं संरचना शिक्षण-संबंधित जटिलताओं के व्यवस्थित एवं तर्कसंगत समाधान की चुनौती – व्याकरण और संरचनापरक शिक्षण की खूबियों को बरकरार रखते हुए, उसकी प्रणालीजन्य जड़ता को कैसे तोड़ा जाए, ताकि विद्यार्थी के लिए भाषा सीखने का अनुभव अधिक सहज, रोचक, संतोषजनक और समृद्ध बन सके।

• वर्तनी-लेखन तथा उच्चारण-वाचन की समस्याओं के प्रणाली से संबद्ध उपचार की चुनौती – लेखन और वाचन के मामले में मानक और प्रचलित प्रयोगों की समस्या का सुसंगत समाधान कैसे निकाला जाए?

• श्रवण-बोधन की सर्वसामान्य और विशिष्ट वैयक्तिक बाधाओं तथा समस्याओं के बहुआयामी निदान की चुनौती – भाषा को सही रूप में सुनना-सीखना, भाषा सीखने का सबसे पहला और सबसे ज़रूरी अनुभव है। अन्य भाषा के रूप में हिंदी सीखते समय विद्यार्थियों को भाषा-भेद, देश/स्थान-भेद और व्यक्तिगत श्रवण योग्यता-भेद की समस्या हो सकती है। कक्षागत शिक्षण, प्रयोगशालागत प्रशिक्षण या अन्य परिस्थितियों में इनका यथासमय निदान कैसे किया जाए, ताकि विद्यार्थी के भाषा अर्जन की नींव मज़बूत हो सके?

• भाषा(ओं) विशेष रूप से मातृभाषा के प्रति अतिसामान्यीकृत, असावधान, अजागरूक, अरुचिपूर्ण, उपेक्षापूर्ण भाव और इसी प्रकार अन्य भाषा के प्रति विशिष्टताबोधक, अतिसावधान, असहजतापूर्ण, भयपूर्ण, आग्रहपूर्ण भाव के निराकरण की चुनौतियाँ – भाषा का सीखना केवल एक ज़रूरी संप्रेषण कौशल को सीखना मात्र नहीं है। मातृभाषा और अन्य भाषा(एँ) सीखे जाने के बीच परिस्थिति, प्रेरणा और प्रयोजन की खाइयों को कैसे भरा जाए?

• भाषा-शिक्षण में स्थानीयता, मानकता और विकासोन्मुखता (भाषाई खुलापन, आदान, नवोन्मेष) की चुनौती–भाषा प्रयोग के शुद्धतावादी और समाहारवादी दृष्टिकोणों की अति से कैसे बचा और बचाया जाए?

• शिक्षण प्रविधियों की विविधता एवं उपलब्ध विकल्पों में से उपयुक्त विकल्प के चयन की चुनौती–विद्यार्थियों के स्तर और ज़रूरत के अनुरूप उपयुक्त शिक्षण प्रविधि और सामग्री कैसे चुनें?

• भाषा-शिक्षण संसाधन-उपकरणों से जुड़ीं समस्याओं (अभाव, प्रयोग-कौशल, चयन-विवेक) के निदान की चुनौती – जो प्रविधि, सामग्री उपलब्ध नहीं हैं, उनका विकास कैसे और जो उपलब्ध हैं, उनका उचित प्रयोग कैसे किया जाए? साथ ही, उपलब्ध विकल्पों में किसी एक को किस आधार पर चुना जाए?

• भाषा-कक्षा (शिक्षार्थी-समूह) के स्वरूप/संरचना, परिमाण, परिवेश और व्यवस्थापन से जुड़ी चुनौती – भाषा-शिक्षण की कक्षाओं का शैक्षणिक नियोजन और प्रबंधन कैसे किया जाए?

• शिक्षार्थियों की व्यक्तिगत अपेक्षाओं, समस्याओं, सीमाओं के निदान, समाधान की चुनौतियाँ – भाषा शिक्षा के माहौल को विद्यार्थियों के अनुरूप कैसे बनाया जाए?

हिंदी शिक्षण से संबंधित उपर्युक्त चुनौतियों को विवेक और शिक्षण के प्रति समर्पण-भाव के द्वारा जीत सकते हैं। भूमंडलीकृत और बहुतकनीकी-संपन्न वर्तमान परिदृश्य में हमारे भाषा-शैक्षणिक परिवेश में विभिन्न प्रकार की जटिल सामाजिक-सांस्कृतिक संरचनाएँ आकार लेती हुईं देखी जा सकती हैं। देश के विभिन्न नगरों-महानगरों के विद्यालयों, विशेष रूप से केंद्रीय विद्यालयों में बहुभाषी, बहुप्रांतीय और बहुसांस्कृतिक शिक्षार्थियों की एक साथ मौजूदगी आम बात है। गाँवों, कस्बों और छोटे शहरों के विद्यालयों की कक्षाओं में बोली के रूप में हिंदी भाषा बोलने वाले विद्यार्थी एक साथ मिल जाएँगे। ये सब परिस्थितियाँ हिंदी भाषा की कक्षा

में चुनौतियों के नए प्रकार गढ़ती हैं, तो शैक्षणिक क्रियात्मकता एवं संवाद की परस्परता का ताना-बाना (Interactional Architecture) भी बुनती हैं। विश्व के विभिन्न देशों से आने वाली हिंदी शिक्षण और हिंदी शिक्षक-प्रशिक्षण की माँगों की पूर्ति करना भी कम चुनौतीपूर्ण नहीं है। लेकिन इन सबसे बड़ी चुनौती है–समग्र संदर्भ में और अर्थपूर्ण अर्थात् व्यापक व्यावहारिक और व्यक्तिगत प्रयोजनपरक संदर्भ में भाषा-शिक्षण एवं प्रशिक्षण प्रदान करना।

इस दृष्टि से हिंदी भाषा के शिक्षण के वर्तमान परिदृश्य में, प्रासंगिक मुद्दों और चुनौतियों के साथ-साथ उनके समाधान की प्रस्तावित एवं संभावित दिशाओं पर बात करना ज़रूरी है, जो विशेष रूप से अन्य भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण के संदर्भ में उल्लेखनीय और औचित्यपूर्ण हैं। कंप्यूटर साधित भाषा-शिक्षण एवं ऑनलाइन शिक्षण के लिए शैक्षणिक एवं तकनीकी गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक मल्टीमीडिया एवं विशेष रूप से इंटरेक्टिव मल्टीमीडिया कार्यक्रमों के निर्माण की माँग बार-बार देखने-सुनने में आती है। भाषा प्रयोगशाला निर्माण, प्रबंधन एवं शैक्षणिक संचालन को लेकर हमें काफ़ी सीखना-सिखाना है। एंड्रॉयड जैसे व्यापक प्रसार वाले एवं सहज, समर्थ तंत्र के उपलब्ध होने के बावजूद मोबाइल शिक्षण, वर्चुअल भाषा-शिक्षण और कस्टमाइज़्ड हिंदी भाषा-शिक्षण गैजेट पर न के बराबर काम हुआ है। इन सब पक्षों पर योग्य पेशेवर समुदाय का ध्यान अपेक्षित है। भाषा-शिक्षण-प्रौद्योगिकी का यह नवोन्मेषी विषय-क्षेत्र वर्तमान विश्व-भाषा परिदृश्य और इसकी अपेक्षाओं के अनुकूल सिद्ध हो सकता है। इस सामान्य विषय-क्षेत्र में हम भाषा-शिक्षण, शिक्षण-प्रौद्योगिकी और भाषा-प्रौद्योगिकी की सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक क्षमताओं का लाभ लेते हुए अधिक प्रभावी शिक्षार्थी-केंद्रित प्रविधियों की खोज कर सकते हैं, अनुप्रयोगों यानी संसाधन-उपकरणों का विकास कर सकते हैं और सुव्यवस्थित अनुसंधानपरक प्रभावी, प्रामाणिक एवं उपयोगी सामग्री का निर्माण कर सकते हैं।

अध्ययन-संदर्भ :

1. Bamford, J. 1990. **Education and Action Beyond the Classroom,** The Language Teacher 14 (5) May 1990
2. Cates, K. 1990. **Teaching for a Better World,** The Language Teacher 14 (5) May 1990
3. Maley, A. 1992. **Global Issues in ELT,** Practical English Teaching 13 (2) December 1992
4. Ronald Wardhaugh (1965): **Some Current Problems in Second Language Teaching**, in Language Learning, Vol. XVII, Nos. 1&2
5. Mario Cal Varela, Francisco Javier Fernández Polo, Lidia Gómez García and Ignacio M. Palacios Martínez (ed.) (2010), **Current Issues in English Language Teaching and Learning**, Cambridge Scholars Publishing, NE6 2XX, UK
6. Michael McCarthy, 2001. **Issues in applied linguistics**, Cambridge University Press
7. Pike, G. and D. Selby. 1999. **In the Global Classroom** (Books 1 & 2), Toronto: Pippin
8. Rosengren, F. et al. 1983. **Internationalizing Your School**, New York: NCFLIS.
9. Christopher J. Jenks and Paul Seedhouse 2015: **Applying Global Perspectives on ELT**, in Classroom Interaction to Current Issues in Language Teaching, C. J. Jenks et al. (eds.), International Perspectives on ELT Classroom Interaction
10. DIANE PINKLEY EFL, **Children Learning English as a Foreign Language : Current Issues in Language Teaching,** AUTHOR FOR PEARSON LONGMAN, <www.longman.com/backpack>
11. Tye, K. (ed.) 1984. **Global Education: School-based Strategies**, USA: Interdependence Press
12. Canagarajah, A.S. (ed.) (2013) **Literacy as Translingual Practice: Between Communities and Classrooms**. New York, NY: Routledge.
13. García, O. (2011) **Bilingual Education in the 21st Century: A Global Perspective**. Chichester: John

Wiley & Sons.

14. García, O., Skutnabb-Kangas, T. and Torres-Guzmán, M.E. (eds.) (2006) **Imagining Multilingual Schools : Languages in Education and Glocalization**. Clevedon: Multilingual Matters.
15. **Issues in Language Teaching (I LT)** an open-access, double-blind, peer-reviewed journal published by Allameh Tabataba'i University, Iran. <http://ilt.atu.ac.ir/volume_31.html>
16. **American Forum for Global Education : books on global education, world cultures, and global awareness**. American Forum, 120 Wall Street, Suite 2600, New York, NY 10005, USA. <www.globaled.org>
17. **Center for Teaching International Relations : primary/secondary texts on world cultures/ global issues**. CTIR, University of Denver, 2199 S. University Blvd., Denver, CO 80208, USA. <www.du.edu/ctir>
18. **Multilingual education research** : http://blog.britishcouncil.org.in/ towards-a-multilingual-education-research-partnership-for-india/
19. **Guide to language readiness in multilingual contexts** (Jharkhand): https://www.academia.edu/ 7602970/ Bhasha_Puliya_Guidebook_for_a_Childrens_Language_Readiness_Programme_in_multilingual_Jharkhand_India
20. **Bilingual dictionaries in Jharkhand :** https://www.academia.edu/ 4503737/ Childrens_Bilingual_Picture_Dictionaries_-_Meri_Bhasha_mein_Meri_Duniya
21. https://www.academia.edu/ 4668458/ Childrens_BILINGUAL_Picture_Dictionary_in_Santhali_language
22. http://www.nmrc-jnu.org/ nmrc_about_us.html
23. National Council of Educational Research and Training (2006) **'National focus group on teaching of Indian languages'** (online) NCF 2005 position paper. Available from: http://www.ncert.nic.in/ html/ pdf/ schoolcurriculum/ Position_Papers/ Indian_Languages.pdf (accessed 18 November 2014).

anupam.khsagra@gmail.com

फ़िजी में हिंदी-शिक्षण एवं हिंदी टीचर्स एसोसिएशन ऑफ़ फ़िजी

श्रीमती श्रद्धा दास
फ़िजी

फ़िजी देश भारत की पूर्व दिशा में, 12 हज़ार किलोमीटर की दूरी पर प्रशान्त महासागर में स्थित एक द्वीप है। भूमध्य रेखा से क़रीब 1,000 किलोमीटर की दूरी पर, ऑस्ट्रेलिया से पूर्व दिशा तथा न्यूज़ीलैंड से उत्तर-पूर्व की ओर 2,000 किलोमीटर की दूरी पर बसा और 300 छोटे-बड़े द्वीपों से बना हुआ देश है। इसमें दो बड़े द्वीप 'वीती लेवू' तथा 'वनुवा लेवू' है। 'वीती लेवू' एक बड़ा द्वीप है, इसी में 'सूवा' शहर है, जो फ़िजी की राजधानी है। फ़िजी की आबादी करीब 9 लाख 10 हज़ार है। यहाँ 40 प्रतिशत भारतीय मूल के लोग हैं। यहाँ तीन मुख्य भाषाएँ हैं। अंग्रेज़ी, फ़िजीयन तथा हिंदी भाषा। सभी भाषाएँ औपचारिक हैं तथा उन्हें राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त है। यहाँ आने पर ऐसा लगता है, जैसे कि छोटे भारत में आए हैं। फ़िजी भी भारत की तरह ब्रिटिश शासन के आधीन था। 10 अक्टूबर सन् 1970 में फ़िजी को आज़ादी मिली।

फ़िजी में हिंदी भाषा का प्रवेश कैसे हुआ? 143 वर्ष पूर्व सन् 1879 से लेकर 1916 तक ब्रिटिश शासक भारतीय मज़दूरों को फ़िजी में गन्ने की खेती करने के लिए लाए थे। पहला जहाज़ 'लिओनिदास' आया था, जिसमें 481 मज़दूर लाए गए थे। उन्हीं के साथ फ़िजी में हिंदी का प्रवेश हुआ। कहते हैं कि इससे पहले फ़िजी में बड़े–बड़े जहाज़ आते थे। उनमें काम करने वाले जो 'खलासी' भारतीय होते थे, वे हिंदी में बात करते थे। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से फ़िजी में हिंदी का प्रवेश हो गया था। भारतीय मज़दूरों का कार्य खत्म होने पर कुछ वापस चले गए तथा कुछ लोग फ़िजी में ही बस गए। उन्होंने मेहनत करके फ़िजी को आबाद और समृद्ध बनाया।

भारतीय मज़दूर फ़िजी में सन् 1879 में लाए गए थे, उन्होंने गन्ने की खेती करते समय कई मुसीबतों का सामना किया। अंग्रेज़ों ने उन्हें बड़े कष्ट तथा वेदना सहने के लिए मजबूर किया। अनजान लोगों के बीच कठिन समय में भी उन्होंने अपने अस्तित्व और अपने धर्म तथा संस्कृति को बनाये रखने के लिए सफल प्रयत्न किए। उन्होंने हिंदी भाषा तथा साहित्य की रक्षा का भार संभाला। उनमें से कुछ ही लोग पढ़े-लिखे थे। वे शनिवार तथा रविवार को साथ में बैठकर रामायण, महाभारत, हनुमान चालिसा तथा आल्हाखण्ड का पाठ करते थे। बाकी सब सुनते, सीखते तथा साथ में गाने का आनन्द उठाते थे। वे कबीर, तुलसी, रैदास, दादू तथा मीरा के भजन गाते थे। उनके विश्वास भरे अखण्ड प्रयत्नों से आज हिंदी भाषा हमारे साथ है।

जो लोग यहाँ बस गए, उन्होंने अपने बच्चों को आगे पढ़ाने के लिए पाठशालाओं का निर्माण किया। अन्य विषयों के साथ हिंदी भाषा भी पढ़ाने की व्यवस्था की गई। आरम्भ में पाठ्य-पुस्तकें तैयार की गयीं। फिर वे पढ़ाने लगे। फिर भारत से किताबें - जैसे प्रेमचन्द के उपन्यास 'गोदान', 'निर्मला', 'सेवाश्रम' इत्यादि मँगाए गए। सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा, आर्य समाज, संगम संस्था तथा रामकृष्ण मिशन जैसे प्रमुख संस्थाओं ने पूरा सहयोग दिया। भारत से कई शिक्षकों को यहाँ पढ़ाने के लिए लाया गया। पहले प्राथमिक पाठशालाएँ बनीं, फिर हाई स्कूलों आदि का निर्माण हुआ। बच्चों के लिए अन्य विषयों के साथ हिंदी की शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। पाठशालाओं में मानक हिंदी पढ़ाई जाती थी और आज भी पढ़ाई जाती है। आगे चलकर सूवा में नसीनू टीचर्स कॉलिज, तथा लोटोका में लोटोका टीचर्स कॉलिज की स्थापना हुई। इसमें शिक्षकों को पाठशाला में पढ़ाने का प्रशिक्षण दिया जाने लगा। इनमें अन्य विषयों के साथ हिंदी भी पढ़ाने का प्रशिक्षण दिया जाता है।

अब हिंदी में डिग्रियाँ पाने वालों के लिए यूनिवर्सिटी ऑफ़ साउथ पैसिफ़िक, सुवा में पढ़ाई कर सकते हैं। खुशी की बात यह है कि यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़िजी, सवेनी, लोटोका शहर में भी अन्य विषयों के साथ, जैसे - विधि, मेडिकल, इंग्लिश के साथ हिंदी की पढ़ाई होती है। हिंदी में डिप्लोमा, बैचलर्स डिग्री (डबल मेजर), पोस्ट ग्रेज्युएट तथा मास्टर्स की डिग्री प्राप्त कर सकते हैं। इसमें आर्य प्रतिनिधि सभा ऑफ़ फ़िजी का पूर्ण प्रयत्न तथा सहयोग है। वे हिंदी के साथ-साथ, आगे संस्कृत पढ़ाने का भी विचार रखते हैं।

फ़िजी में हिंदी की पढ़ाई के लिए फ़िजी में स्थित भारतीय उच्चायोग कई प्रकार से सहायता प्रदान करता रहता है।

पाठशालाओं को पाठ्य सामग्री दी गई। विभिन्न हिंदी सॉफ़्टवेयर उपलब्ध कराए गए। शिक्षकों के लिए कार्यशालाएँ आयोजित करने में सहयोग दिया गया। अब हिंदी में विभिन्न विषयों को लेकर भाषा और वाद-विवाद प्रतियोगिता आदि का आयोजन करते हैं। विजयी बच्चों को उचित पुरस्कार देते हैं तथा भारत भ्रमण का भी अवसर देते हैं। पाठशालाओं में जो बच्चे हिंदी विषय में सबसे अधिक अंक पाते हैं, उन्हें पुरस्कार देकर प्रोत्साहित करते हैं। हिंदी प्रेमी व्यक्तियों तथा संस्थाओं को रामायण ग्रंथ, शब्दकोश और पत्रिकाएँ भेंट करते हैं। भारत में आगे पढ़ने के लिए इच्छुक विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देने की व्यवस्था भी है।

आकाशवाणी फ़िजी 2, सरगम, नवतरंग तथा अन्य रेडियो स्टेशनों द्वारा हिंदी में कार्यक्रम चलते रहते हैं। प्रात: 5 बजे से रात के 12 बजे तक हिंदी में कार्यक्रम चलते रहते हैं। भारतीय चित्रपटों के गीतों के साथ फ़िजी के गायकों द्वारा गाये गए लोकगीत रेडियो पर खूब बजते हैं। हिंदी का प्रचार-प्रसार बराबर चल रहा है। कई वर्ष पूर्व फ़िजी में हिंदी के पाँच समाचार-पत्र चलते थे। बाद में, कुछ कारणों से केवल दो पत्र 'प्रशान्त समाचार' तथा 'शान्तिदूत' ही चले। दुख की बात यह है कि अब एक भी समाचार-पत्र प्रकाशित नहीं हो रहा है। सभी पाठक निराश हैं तथा कई उभरते हुए लेखकों को अपने लेख न छपने से निराशा हुई है। यह फ़िजी में हिंदी के भविष्य के लिए खतरा है। फ़िजी में हिंदी को अगर किसी ने कायम रखने में पूर्ण सहयोग दिया है, तो वह है 'रामायण ग्रंथ'। फ़िजी में रामायण का निरंतर पठन-पाठन तथा गायन चलता रहता है। यहाँ 2,000 से भी अधिक रामायण मंडलियाँ हैं। ये हर मंगलवार को एकत्रित होकर घर-घर में जाकर रामायण पढ़ती और गाती हैं। ऐसा ही रहा, तो हिंदी सुदृढ़ होती रहेगी। सन् 2015 में भारतीय उच्चायोग के द्वारा सूवा सेंटर, सूवा में रामायण सम्मेलन आयोजित किया गया था। उसमें दुनिया भर के विद्वान साहित्यकार पधारे थे। उन्होंने रामायण के विषय में विश्लेषणात्मक चर्चा करते हुए भाषण प्रस्तुत किए थे। वह अत्यंत ज्ञानवर्धक था।

फ़िजी में, फ़िजी देश के मूल निवासी भी भारतीय संस्कृति से परिचित हैं। वे भी हिंदी भाषा सीखने और बोलने में रुचि लेते हैं। वे भारतीयों के साथ मिल-जुलकर रहते हैं। उन्हें भारतीय भोजन तथा मिठाई खूब पसंद है। वे हिंदी धारावाहिक खूब देखते हैं। हिंदी गीत भी गाते हैं। उनका गाया हुआ फ़िजीयन ईसालेई गीत बड़ा ही मर्मस्पर्शी है। यह एक बिदाई गीत है।

हिंदी टीचर्स एसोसिएशन ऑफ़ फ़िजी

फ़िजी द्वीप में 'हिंदी टीचर्स एसोसिएशन ऑफ़ फ़िजी' नाम से एक संघ स्थापित किया गया था। इनका उद्देश्य फ़िजी में हिंदी भाषा को बढ़ावा देना तथा उसके अस्तित्व को सुदृढ़ बनाना था। इस संघ में, फ़िजी के प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों के अध्यापकों ने हिंदी के प्रचार तथा प्रसार के लिए एक साथ मिलकर सराहनीय कार्य किए हैं। यह स्वयं-सेवी संस्था हिंदी सीखने वाले बच्चों की सहायता करने के लिए स्थापित की गई है। इस संस्था की स्थापना का पूर्ण श्रेय श्रीमती मनीषा रामरक्खा जी को जाता है।

"जहाँ एकता है, वहाँ शक्ति है। जहाँ शक्ति है, वहाँ सफलता है।"- ऐसा ही कुछ विचार था फ़िजी की वरिष्ठ शिक्षा-अधिकारी श्रीमती रामरक्खा का। उनका लक्ष्य था फ़िजी के समस्त हिंदी अध्यापकों को एक साथ, एक समाज में जोड़कर हिंदी पठन-पाठन में चार–चाँद लगाना। सभी जानते हैं, 'हिंदी है तो संस्कृति है। संस्कृति है, तो हिंदुओं का अस्तित्व है।' फ़िजी के भारतीय पूर्वज फ़िजी में हिंदी की जो जड़ें जमा गए थे, उन्हें एक फलते-फूलते विशाल वृक्ष के रूप में देखने के लिए हिंदी अध्यापकों के एक मज़बूत संगठन की आवश्यकता थी। उनके इस नेक विचार को फ़िजी के वरिष्ठ विद्वानों ने तन-मन-धन से समर्थन किया और परिणामस्वरूप फ़िजी हिंदी अध्यापकों का एक सशक्त समाज हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए सामने आया।

वर्ष 2004 में, एक कार्यशाला के दौरान ही इस संगठन की स्थापना हुई। सभी अध्यापकों ने पूरा सहयोग दिया और सफलता हासिल की। सन् 2005 में अथक प्रयास से पश्चिम विभाग में इसकी शाखा का आरम्भ हुआ। कार्य सुचारु रूप से चलने लगा। इन दोनों शाखाओं की सफलता के बाद वर्ष 2006 में एक कार्यशाला के दौरान उत्तरी विभाग में भी इसकी शाखा की स्थापना हुई। इन तीनों शाखाओं को एकसूत्र में बाँधे रखने के लिए हिंदी टीचर्स एसोसिएशन ऑफ़ फ़िजी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति वर्ष 2006 में स्थापित की गई। धीरे-धीरे सफलता समिति के चरण छूने लगी। वर्ष 2010 में एसोसिएशन द्वारा पाँचवा वार्षिक अधिवेशन

सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ। सभी ने बधाइयाँ दीं।

हिंदी टीचर्स एसोसिएशन ऑफ़ फ़िजी का सही ढंग से पंजीकरण 26 जनवरी 2008 को 12.19 बजे किया गया। इसे पंजीकरण नम्बर 39529 दिया गया। तीन संरक्षक (ट्रस्टी) की नियुक्ति की गई, जो निम्न प्रकार हैं:

1. श्रीमती सुशीला पथिक
2. श्रीमान जगजेन्द्र प्रसाद
3. श्रीमती मनीषा रामरक्खा

पंजीकरण एक वकील के समक्ष हुआ। पंजीयन कार्यालय में, सभी नियमों की पूरी जानकारी दी गई। लोगो भी तैयार किया गया। संस्था का नारा 'भूमि माता है, मातृभाषा आत्म गौरव' निश्चित किया गया। यह नारा संस्था की सचिव श्रीमती महाराज कुमारी भिंड़ी द्वारा चुना गया था। संस्था के संबंध में निम्नांकित निर्णय लिये गए थे -

i. संस्था की राष्ट्रीय कार्यकर्ता समिति सूवा में स्थित रहेगी तथा सभी कार्यकर्ता सूवा से कार्य करेंगे।
ii. उत्तरी तथा पश्चिमी विभाग की संस्थाएँ और उपसंस्थाएँ खोलने का निर्णय हिंदी टीचर्स एसोसिएशन का होगा।
iii. प्रत्येक संबंधित संस्था दो सदस्यों को नियुक्त करेंगी, जो अर्थ-व्यवस्था की देखभाल करेंगे तथा वे राष्ट्रीय विभाग से भी जुड़े रहेंगे।
iv. 21 वर्ष से कम उम्र वाले व्यक्ति को नहीं चुना जाएगा।
v. जो व्यक्ति शिक्षक है तथा पढ़ा रहा है, वही केवल सदस्य बन सकता है।
vi. एन्युअल जनरल मीटिंग द्वारा लेखा परीक्षक(ऑडिटर) की नियुक्ति की जाएगी, जो संघ के सभी वित्तीय अभिलेखों का निरीक्षण करने का अधिकारी होगा।
vii. अध्यक्ष बैठक की अगुवाई करेगा, लेकिन उसकी अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष सभी कर्तव्यों को पूरा करेगा।
viii. सचिव पत्राचार करेगा और अन्य रिकॉर्ड रखेगा तथा बैठक में हुई चर्चा को मिनट बुक में लिखेगा। अगर सचिव किसी कारण से अनुपस्थित हुआ, तो उपसचिव सभी कार्य संभालेगा।
ix. कोषाध्यक्ष प्राप्त धन इकट्ठा करेगा तथा एसोसिएशन के निर्देशानुसार उसका खर्च करेगा। वह सभी पैसों का उचित लेखा बनाएगा और एसोसिएशन की बैठक में रिपोर्ट प्रदान करेगा। अध्यक्ष या सचिव के साथ कोषाध्यक्ष भी संघ की ओर से हस्ताक्षरकर्ता होगा।
x. राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति संविधान के नियमानुसार एसोसिएशन के सभी मामले प्रबंधित करेगी।
xi. एसोसिएशन की ओर से हिंदी के प्रचार तथा प्रसार के लिए उचित कार्य किए जाएँगे।
xii. आवश्यकता पड़ने पर विशेष कार्यों को करने के लिए उपसमिति को नियुक्त किया जाएगा।
xiii. संघ का वित्तीय वर्ष 31 मई को समाप्त होगा।
xiv. संघ की बैठक में पारित सभी संकल्प निर्णायक होंगे।

निश्चित किया गया कि संस्था की वार्षिक आम बैठक में चुने गए संरक्षक तीन से कम और पाँच से अधिक नहीं होंगे। ये सदस्य अपनी मृत्यु तक कायम रहेंगे या विशेष बैठक में 75 % उपस्थित हो, तो सदस्यों के समक्ष त्यागपत्र दे सकते हैं या हटा दिए जाएँगे।

हिंदी टीचर्स एसोसिएशन ऑफ़ फ़िजी हिंदी भाषा को बढ़ावा देने के लिए प्राथमिक और माध्यमिक पाठशालाओं तथा उच्च महाविद्यालयों में पुस्तकों की व्यवस्था करता है। पाठशालाओं में फ़ॉर्म 6 में जिस बच्चे को सबसे अधिक अंक प्राप्त होता है, उसे पुरस्कार के रूप में धनराशि दी जाती है। फ़ॉर्म 7 में हिंदी पढ़ने के लिए छात्रवृत्ति देने की योजना तैयार की गई है।

फ़िजी में भारतीय दूतावास द्वारा 19 हज़ार पुस्तकें शिक्षा मंत्रालय को दी गईं, जो पाठशालाओं में वितरित की गईं। जो पुस्तकें एसोसिएशन को दी गईं, उन्हें राष्ट्रीय शाखा द्वारा उत्तरी तथा पश्चिमी शाखाओं में बाँटा गया। भारतीय दूतावास की सहायता से अध्यापकों के लिए कार्यशालाएँ आयोजित की गईं। अब अध्यापकगण आपसी सहयोग से कार्य करने लगे हैं। उन्हें हिंदी टाईपिंग सिखाने में भारतीय उच्चायोग ने सहयोग दिया। शिक्षकों में हिंदी के प्रति विश्वास जगा। पाठ्यक्रम में बदलाव लाया गया, जिससे अध्यापकों को पढ़ाने में सुविधा हुई। पण्डित अमीचन्द विद्यालंकार की चार बेटियों तथा एसोसिएशन के अन्य सदस्यों ने फ़ॉर्म 7 में

सबसे अधिक अंक पाने वाले विद्यार्थियों को 'पण्डित अमीचन्द विद्यालंकार अवार्ड' के रूप में $500 पुरस्कार प्रदान किए। यह सब एसोसिएशन की कोशिशों से सम्भव हुआ।

वर्तमान में फ़िजी सरकार भी हिंदी की पढ़ाई और विकास के लिए कार्य कर रही है। पाठशालाओं में बच्चों को भाषाओं का ज्ञान दिया जा रहा है। जैसे हिंदी तथा अंग्रेज़ी भाषा पढ़ाई जा रही है। प्राथमिक पाठशाला में कक्षा 1 से 8 तक हिंदी की पढ़ाई अनिवार्य कर दी गई है। हाई स्कूल में वर्ष 9 तथा 10 तक हिंदी अनिवार्य हो, ऐसी कोशिश जारी है। पाठशालाओं में वर्ष 11, 12 तथा 13 तक वैकल्पिक विषय के रूप में हिंदी का पठन-पाठन जारी है। यहाँ मानक हिंदी की लिपि देवनागरी लिपि है। गैर-भारतीय बच्चों के लिए वार्तालाप की हिंदी है, जिसे रोमन लिपि में सिखाया जाता है। इस प्रकार हिंदी की प्रगति के लिए एसोसिएशन ने अथक प्रयास किए हैं। श्रीमती मनीषा रामरक्खा का इसमें शत-प्रतिशत योगदान है। वे पिछले 43 वर्षों से फ़िजी में रहते हुए हिंदी भाषा की सेवा में लगी हुई हैं। उन्होंने उत्तर प्रदेश (भारत) के आगरा विश्वविद्यालय से मास्टर ऑफ़ आर्ट्स (हिंदी) तथा अर्थशास्त्र में स्नातकोत्तर की पढ़ाई की। सन् 1979 में विवाह के पश्चात् उन्हें फ़िजी आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

फ़िजी में रहते हुए, उन्होंने हिंदी के प्रति अपनी सेवा बड़ी निष्ठा और तन्मयता से की। वे अनेक संस्थाओं के साथ कार्यरत रहीं। सर्वप्रथम उन्होंने सन् 1981 से पंडित विष्णुदेव मेमोरियल कॉलिज में अध्यापन-कार्य आरम्भ किया तथा वहाँ वे 19 वर्ष तक पढ़ाती रहीं। इसके पश्चात् एक सरकारी कर्मचारी के पद पर उन्हें लोटोका टीचर्स ट्रेनिंग कॉलिज में हिंदी व्याख्याता के पद पर कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यहाँ कार्य करते हुए, उन्होंने फ़िजी शिक्षा मंत्रालय के पाठ्यक्रम विकास विभाग के हिंदी अधिकारियों के साथ हिंदी से जुड़ी हुईं अनेक योजनाओं में अपना सहयोग दिया। इसी दौरान 'यूनीवर्सिटी ऑफ़ साउथ पैसिफ़िक हिंदी विभाग' में अंशकालिक व्याख्याता के रूप में हिंदी का अध्यापन-कार्य किया।

सन् 2002 से उन्होंने शिक्षा मंत्रालय, फ़िजी के पाठ्यक्रम विकास विभाग में हिंदी के वरिष्ठ शिक्षा अधिकारी के पद पर कार्य भी किया। सन् 2009 में फ़िजी सरकार की अनिवार्य अवकाश योजना के तहत आपको शिक्षा मंत्रालय से अवकाश ग्रहण करना पड़ा, क्योंकि फ़िजी सरकार द्वारा अवकाश की अवधि 60 वर्ष की आयु से घटाकर 55 वर्ष की आयु कर दी गई थी। इसी समय उन्हें फ़िजी हायर एजुकेशन कमीशन बोर्ड के साथ कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। वे लगभग एक वर्ष तक रेजिस्ट्रेशन कमेटी में सदस्य के पद पर कार्यरत रहते हुए, फ़िजी के उच्च शैक्षिक संस्थाओं के पंजीकरण सम्बंधी कार्य करती रही। सन् 2010 में तीन वर्ष तक फ़िजी नेशनल यूनिवर्सिटी में हिंदी डिप्लोमा एवं डिग्री पाठ्यक्रम तैयार करने में और डिग्री लेवल तक हिंदी का अध्यापन करने में कार्यरत रहीं। फ़िजी नेशनल यूनिवर्सिटी, फ़िजी सरकार द्वारा संचालित संस्था है, जिसकी स्थापना 2009 में की गई थी। फ़िजी की समस्त हायर एजुकेशन संस्थाओं को एक साथ जोड़ते हुए 'फ़िजी नेशनल यूनिवर्सिटी' का गठन किया गया था। इसके गठन के बाद यहाँ पर सभी मातृभाषाओं के अध्ययन–अध्यापन की आवश्यकता पर ध्यान दिया गया, क्योंकि अंग्रेज़ी के साथ–साथ हिंदी और फ़िजियन भाषाओं को फ़िजी संविधान में पूर्ण मान्यता प्राप्त है। फ़िजी नेशनल यूनिवर्सिटी में हिंदी पाठ्यक्रम तैयार करने और हिंदी पठन-पाठन शुरू करने का श्रेय श्रीमती मनीषा रामरक्खा को जाता है।

वर्ष 2017 से श्रीमती रामरक्खा यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़िजी, सवेनी, लोटोका में हिंदी की प्राध्यापिका के पद पर कार्य कर रही हैं। यह विश्वविद्यालय सन् 2005 में भारतीय गिरमिटिया वंशजों द्वारा पश्चिमी इलाके में सवेनी, लोटोका शहर में स्थापित किया गया। आर्य प्रतिनिधि सभा ऑफ़ फ़िजी द्वारा संचालित यह विश्वविद्यालय विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ निरंतर तरक्की करता जा रहा है। यहाँ पर एम.बी.बी.एस., वकालत, मेडिसिन और अन्य समस्त विषयों के साथ-साथ हिंदी साहित्य एवं संस्कृति की उच्च शिक्षा की व्यवस्था उपलब्ध है। फ़िजी के तीन विश्वविद्यालयों में से यह एक ऐसी संस्था है, जहाँ पर 'पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा इन हिंदी लेंगुएज' एवं 'लिटरेचर और मास्टर्स इन हिंदी कल्चर एण्ड लिट्रेचर' के अध्यापन की पूर्ण सुविधाएँ उपलब्ध हैं। मनीषा जी के संचालन में हिंदी का कार्य उत्तम प्रकार से चल रहा है। वे विदुषी, विनम्र, समर्पित तथा मेहनती हैं। अपने विद्यार्थियों की हमेशा सहायता करने के लिए बड़े नि:स्वार्थ भाव से और ईमानदारी से तत्पर रहती हैं।

संदर्भ सूची :

1. जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, फ़िजी में प्रवासी भारतीय
2. फ़िजी में हिंदी
3. http://bharatdarshanco.nz/magzine/literature/hindiinfiji
4. फ़िजी हिंदी बोलने वाला देश
5. youtube.com/watch Alphafacts.
6. Notes & Paper cuttings collected from Mrs. Manisha Ramrakha

shraddhadass@yahoo.ca

हिंदी-शिक्षण की चुनौतियाँ

डॉ. साएमा बानो
अलीगढ़, भारत

21वीं सदी में भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में काफ़ी विकास हुआ। भाषा-अर्जन और भाषा-अधिगम को लेकर सैद्धांतिक और गंभीर चर्चाएँ तेज़ हो रही हैं। भाषा-शिक्षण के केंद्र में जहाँ पहले पाठ्य-सामग्री या कक्षा-संचालन होता था, आज उनके स्थान पर छात्र-केंद्रित शिक्षण का प्रचलन हो गया है। ऐसे में भाषिक-क्षमता के साथ संप्रेषणीयता भी आवश्यक हो गई है। मनुष्य और मशीन की अंतर्क्रियात्मक प्रकृति ने भाषा-शिक्षण के उपकरणों के साथ उसकी दशा और दिशा को भी प्रभावित किया है। भाषा किसी-न-किसी विशेष उद्देश्य से सीखी और सिखाई जा रही है। ऐसे में हिंदी भाषा के शिक्षण को लेकर चिंताएँ बढ़ जाती हैं, क्योंकि हिंदी अपनी विविध बोलियों के समायोजन के साथ भारत की जातीय चेतना और सांस्कृतिक अस्मिता की संवाहिका भी है। बहुभाषिक राष्ट्र की राष्ट्रीयता का प्रतीक, यह भाषा यहाँ के जीवन की धड़कन है। हिंदी देश की एकता, अखंडता और संप्रेषण-शक्ति का आधार है। देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक हलचलों का केंद्र है। दरअसल, हिंदी भाषा भारत की आत्मा है। इस देश के नागरिकों के व्यक्तित्व-विकास और अभिव्यक्ति का माध्यम होने के साथ-साथ राजभाषा के रूप में यह संवैधानिक अधिकारों और शक्तियों से संपन्न भी है।

विभेद, विलगाव और टकराव के मूल में हिंदी भाषा के सूत्र खोजे जाते हैं। यही कारण है कि हिंदी-शिक्षण संबंधी निर्णयों और नीतियों का प्रभाव यहाँ के व्यक्ति, समाज और राष्ट्र पर सीधे तौर पर पड़ता है। देश विघटित होगा या संगठित, वह कृषि-प्रधान सामंती प्रथा का निर्वाह करता रहेगा अथवा दूसरे राष्ट्रों को प्रभावित करने और उनसे प्रभावित होने की ओर बढ़ेगा, इन सबका सीधा संबंध भाषा-शिक्षण की नीति के साथ देखा जा सकता है। कनाडा, बेल्जियम, अफ़्रीका, श्रीलंका, पाकिस्तान और हिंदुस्तान जैसे देशों की भाषाई स्थिति के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संबंध और सम्प्रेषण-व्यवस्था का निर्वाह किए बिना भाषा-शिक्षण संबंधी सुविचारित नीति नहीं हो सकती।[1] ऐसे में हिंदी-शिक्षण को लेकर कई स्तरों पर चिंताएँ उभरती हैं जैसे -

* भारतीय बच्चों को प्राथमिक स्तर पर दिया जाने वाला हिंदी-शिक्षण
* विद्यालयों में सिखाई जाने वाली हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य
* विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी-शिक्षण
* हिंदी भाषी राज्यों में हिंदी-शिक्षण
* अहिंदी भाषी राज्यों में हिंदी-शिक्षण
* विश्व के विभिन्न देशों में हिंदी-शिक्षण

हिंदी-शिक्षण की प्रकृति और प्रणाली प्रयोक्ता की आवश्यकता, अभिप्रेरणा और प्रयोजन पर निर्भर करती है। अतः आज हिंदी-शिक्षण की संभावनाओं के विस्तार के साथ उसकी चुनौतियाँ ज़्यादा बढ़ गई हैं। वर्तमान पूँजीवादी और बाज़ारवादी विश्व में, भाषाओं को भी पूँजी-निर्माण के साधनों के रूप में देखा जाने लगा है। उनके अध्ययन-अध्यापन को व्यावसायिकता के चश्मे से परखा जा रहा है। शिक्षा और शिक्षण अपने व्यापक उद्देश्यों से भटककर आर्थिक रूप से सफल मनुष्यों के निर्माण के साधन बनकर रह गए हैं। जहाँ शिक्षा ही अपने मूल उद्देश्यों से विचलित होने लगी हो, वहाँ भाषा-शिक्षण और हिंदी-शिक्षण पर संकट आना स्वाभाविक है। किंतु इन संकटों को पहचानना और उनसे संघर्ष कर हिंदी भाषा को वैश्विक पहचान दिलाने का प्रयास करना, आज प्रत्येक भाषा प्रशिक्षक और हिंदी अध्यापक का कर्तव्य है।

कंप्यूटर और सूचना तकनीक के क्षेत्र में होने वाले विस्फ़ोटक परिवर्तनों ने भाषा के क्षेत्र में मानो क्रांति ला दी है। अभी तक भाषा मनुष्य की आवश्यकताओं को पूर्ण करने का साधन थी, अब वह मशीन और कंप्यूटर की नित-नई भाषाई माँगों को पूर्ण करने के लिए मजबूर है। अतः कंप्यूटर टेक्नोलॉजी की नई भूमिकाओं के निर्वाह के लिए भाषावैज्ञानिक भाषा प्रयोग की असीम संभावनाओं को एक बार फिर से टटोल रहे हैं और भाषा की प्रकृति और

स्वरूप पर पुनर्चिन्तन कर भाषा की नई गहराइयों का पता लगा रहे हैं।"[2] हिंदी भाषा में व्याप्त असीम संभावनाओं की तलाश के लिए हिंदी-शिक्षण की चुनौतियों पर निम्नलिखित बिन्दुओं में विचार प्रस्तुत किए गए हैं।

• चिंतन तथा विचार-प्रक्रिया में मातृभाषा का योगदान

भारत में, प्राथमिक रूप से ही, बच्चों को दी जाने वाली शिक्षा के स्वरूप और स्तर में स्पष्ट भेद पाया जाता है। सामाजिक और आर्थिक विभिन्नताओं के आधार पर यहाँ के बच्चों को दी जाने वाली शिक्षा का निर्धारण होता है। जहाँ उच्च और धनी वर्गों के बच्चे अंग्रेज़ी मीडियम स्कूलों में दाखिला पाते हैं, वहीं निम्नवर्ग और निम्नमध्य वर्ग के बच्चे कम फ़ीस वाले हिंदी माध्यम स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करते हैं। प्रायः अंग्रेज़ी माध्यम स्कूलों में बच्चों के मन में यह भाव भर दिया जाता है कि व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास अंग्रेज़ी से ही संभव है, हिंदी बोलने में वे हीनता का अनुभव करने लगते हैं। लेकिन इससे भी बदतर दशा उन सस्ते और निम्नस्तरीय सरकारी स्कूलों की है, जहाँ भ्रष्टाचार, पद-प्रतिष्ठा और धन के बल पर शिक्षा का सौदा होता है। यहाँ बच्चे मातृभाषा में शिक्षा ग्रहण ज़रूर कर रहे होते हैं, लेकिन शिक्षा का निम्न स्तर, अनाकर्षक शिक्षण, भ्रष्ट और अप्रशिक्षित अध्यापक, पुरातनपंथी और घिसे-पिटे पाठ्यक्रम, व्याकरण की जटिलताएँ आदि अनेक कारणों से विद्यार्थियों की रुचि नहीं बढ़ती है। वे चिंतन-मनन की परंपरा से जुड़ नहीं पाते हैं और ना ही उनमें कौशलों का विकास ही हो पाता है। शिक्षा की दयनीय दशा के कारण इन बच्चों का भाषिक आधार बेहद कमज़ोर होता है और जब ये महाविद्यालय और विश्वविद्यालय तक पहुँचते हैं, तब कई बार वहाँ की अच्छी शिक्षा भी उन पर कोई प्रभाव नहीं डाल पाती है। ये दोनों ही स्थितियाँ प्राथमिक स्तर से ही हिंदी-शिक्षण के लिए खतरे की घंटी हैं। यहाँ नामवर सिंह का यह वक्तव्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है - "सोचने और अनुभव हासिल करने का दारोमदार किसी विदेशी भाषा पर नहीं छोड़ा जा सकता। वह अपनी हिंदी ही हो सकती है। कोई भाषा किसी दूसरी भाषा का विकल्प नहीं हो सकती और मातृभाषा का तो कोई विकल्प ही नहीं हो सकता।"[3]

• विश्व बाज़ार की भाषा अंग्रेज़ी

औद्योगिक क्रांति, ज्ञान-विज्ञान के विस्तार और सूचना तकनीकी के इस युग में अंग्रेज़ी भाषा के वर्चस्व से इनकार नहीं किया जा सकता है। ज़ाहिर है, जिन देशों की मातृभाषा अंग्रेज़ी है, उनके यहाँ कोई भाषागत संकट नहीं है, लेकिन वे देश जो भारत जैसे अंग्रेज़ी के इतर मातृभाषा वाले हैं, वहाँ अनेक स्तरों पर समस्याएँ हैं। शिक्षार्थी के सामने यह प्रश्न बार-बार आता है कि जब उच्च शिक्षा, व्यवसाय, कानून, सूचना-तकनीक, विज्ञान और मीडिया की विश्वस्तरीय भाषा अंग्रेज़ी है। प्रायः रोज़गार की भाषा भी अंग्रेज़ी है, तब वह हिंदी-शिक्षण के लिए क्यों प्रेरित हो? अपना समय और धन हिंदी के लिए क्यों खर्च करे? दूसरे हिंदी में कौशल-विकास और उसके रोज़गरपरक स्वरूप पर भारत में प्रायः कम ही ध्यान दिया जाता है। ऐसे में द्विभाषा शिक्षण को महत्त्व देकर समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। "द्विभाषिक शिक्षा का उद्देश्य शिक्षार्थी में ऐसी भाषाई क्षमता पैदा करना होता है, जिससे वह मातृभाषा और द्वितीय भाषा - दोनों ही में स्वतंत्र रूप से विचार और अनुभव कर सके।"[4]

• कुशल और प्रशिक्षित अध्यापकों और शिक्षकों का अभाव

विदेशों में हिंदी पढ़ने और सीखने वालों की स्थिति फिर भी बेहतर कही जा सकती है, क्योंकि वहाँ हिंदी-शिक्षण के लिए प्रशिक्षित और योग्य अध्यापकों का चयन किया जाता है। किंतु भारत में विशेषकर सरकारी स्कूलों-कॉलिजों में प्रायः ऐसे अध्यापक होते हैं, जिन्हें अन्य कोई रोज़गार न मिलने के कारण मजबूरन हिंदी-शिक्षण अपनाना पड़ता है; जिनमें स्वयं हिंदी के प्रति कोई अभिरुचि या प्रेरणा नहीं होगी, वे विद्यार्थियों में उनका विकास कहाँ से करेंगे? वे प्रायः हिंदी पढ़ाने वाले शिक्षण की नवीन पद्धतियों-प्रणालियों से अनभिज्ञ होते हैं। वे भाषा-शिक्षण की नई विधियों से अपरिचित होते हैं। उनका शिक्षण रूढ़िवादी और पुरातनपंथी होने के कारण बेहद उबाऊ और नीरस होता है। स्मार्ट कक्षाओं से अक्सर वे घबराते हैं। कंप्यूटर में दक्षता न होना, अपने ज्ञान को नवीनीकृत न करना, शोध और आलोचना की नई तकनीक से अज्ञानता, आकर्षक व्यक्तित्व की कमी तथा निरंतर अध्ययनशीलता के अभाव से ये अध्यापक हिंदी-शिक्षण के लिए लाभदायक नहीं हो पाते हैं। यहाँ भी अक्सर

अध्यापक या तो मजबूरी में इस पेशे से जुड़े होते हैं या शिक्षण और अध्यापन के अतिरिक्त अन्य अकादमिक और गैर-अकादमिक गतिविधियों में वे संलिप्त होते हैं। किसी तरह पाठ्यक्रम पूरा करा देना उनका मकसद होता है। उनकी रुचि का केंद्र झूठी वाहवाही, प्रतिष्ठा, सम्मान तथा सेमिनार कॉन्फ्रेंस में बुलाए जाने के बहाने भ्रमण का आनंद लेना होता है। इन्क्रीमेंट और प्रमोशन पर विशेष ध्यान होता है। अतः उनका पूरा प्रयास अपनी व्यक्तिगत प्रोफ़ाइल चमकाने में होता है। प्रायः यहाँ के विद्यालयों-विश्वविद्यालयों में अध्यापकों की कुशलता और दक्षता को सराहा भी नहीं जाता है और ना ही उनकी खामियों-त्रुटियों के कारण उन्हें दण्डित ही किया जाता है, जिसके कारण हिंदी-शिक्षण का विकास करना चुनौतीपूर्ण हो जाता है।

• अच्छी पुस्तकों का अभाव

हिंदी में प्राथमिक स्तर हो या विश्वविद्यालयीय स्तर - सभी स्तरों पर अच्छी पुस्तकों का सर्वथा अभाव है। प्राथमिक स्तर पर छोटे बच्चों की किताबों में आकर्षण, रंगीन प्रिंट, सुंदर प्रस्तुति, चित्रों का संयोजन और अनुभवपरक विषयों का समायोजन अक्सर नहीं होता है, जैसा अंग्रेज़ी की पुस्तकों में होता है। पुस्तकों में विषय चयन, सामग्री संकलन, प्रस्तुतीकरण आदि बाल मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर नहीं किया जाता है, जिससे बच्चे आरंभ से ही हिंदी के प्रति अरुचि के शिकार हो जाते हैं। स्वाभाविक है कि सस्ती किताबों में इन सबका प्रावधान करना कठिन है। सरकार की तरफ़ से इस ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। कई बार सरकारी दखल की वजह से भी अच्छी किताबों को पाठ्यक्रमों से बाहर कर दिया जाता है। विशेष घटना व्यक्ति तथा विचारधारा आदि को ऊपर उठाने या नीचे गिराने के उद्देश्य से भी पाठ्यक्रमों पर सरकारी नियंत्रण हावी होता है। पाठ्यक्रमों का निर्माण भाषाविदों, अध्यापकों या विद्वानों के बजाय सरकारी तंत्र के अज्ञानी, जाति और धर्म से संचालित प्रतिष्ठित लोगों के हाथों में होता है। प्रकाशकों और संपादकों की मूल्यहीनता से भी पुस्तकों का स्तर प्रभावित होता है। धन के बल पर कोई भी सामग्री पुस्तक में शामिल कर ली जाती है। अयोग्य संपादक त्रुटियों-खामियों और कमियों को पकड़ भी नहीं पाते हैं और ऐसी पुस्तकें बिना किसी विश्लेषण के, शिक्षार्थियों के सामने पहुँच जाती हैं। यह हिंदी-शिक्षण की गुणवत्ता के लिए बड़ा आघात होता है। हिंदी के पुस्तकालयों की दशा भी बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती।

• आलोचनात्मक और शोधपरक दृष्टि का अभाव

हिंदी-शिक्षण में आलोचनात्मक और शोधपरक दृष्टि विशेष आवश्यक है, जो अध्यापकों में और विद्यार्थियों में होनी चाहिए, किन्तु इसकी सर्वथा कमी दिखाई देती है। हिंदी पढ़ने-लिखने का अर्थ ही एक प्रकार का निकम्मापन और आरामतलबी समझा जाता है। 'कुछ भी लिख दिया और वह हिंदी हो गई - फिर भला हिंदी में कैसा शोध और अनुसंधान ? इस प्रकार की अवधारणाएँ समाज में आम हैं। भाषा, व्याकरण और साहित्य ऐसे पढ़ाए जाते हैं कि वे ब्रह्मवाक्य हैं और उनमें शोध और अनुसंधान की कोई गुंजाइश नहीं। शिक्षार्थियों में शोधपरक और आलोचनात्मक दृष्टि का विकास नहीं होने दिया जाता। "मानव के पास आज तक के संचित ज्ञान को रागात्मक, बौद्धिक और पौराणिक खंडों में विभाजित किया जा सकता है। इन्हीं क्षेत्रों में, जिज्ञासु के लिए अनुसंधान भी संभव है और वह रागात्मक साहित्य संबंधी, बौद्धिक साहित्य संबंधी और पौराणिक साहित्य संबंधी अनुसंधान कर सकता है।" [5]

• व्याकरणिक जटिलता

हिंदी-शिक्षण में प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालयी स्तर तक भाषा और व्याकरण की जटिलताएँ और सैद्धांतिक उलझन बनी रहती है। वैसे तो प्रत्येक भाषा में व्याकरण और सिद्धांतों की अपनी जगह होती है, लेकिन इनसे शिक्षार्थी को कब, कितना और किस अनुपात में जोड़ना होता है कि वह उन्हें बोझ समझने के बजाय आत्मीय रूप में स्वीकार सकें, यह विश्लेषण और चिंतन का विषय होता है। विदेशी छात्रों को हिंदी सिखाते समय तथा छोटे बच्चों को पढ़ाते समय हिंदी व्याकरण की जटिलताएँ विशेष बाधक होती हैं, क्योंकि ये हिंदी के व्यावहारिक रूप के बजाय सैद्धांतिक रूप पर अधिक निर्भर करती हैं। इन व्याकरणिक जटिलताओं और सैद्धांतिक उलझनों से भाषा की सहजता, स्वाभाविकता और सृजनात्मकता नष्ट हो जाती है। यहाँ प्रो. दिलीप सिंह के इस वक्तव्य पर विचार करना उपयोगी होगा - "अब अनेक संस्थाएँ जैसे केंद्रीय

हिंदी संस्थान, हिंदी निदेशालय, वर्धा विश्वविद्यालय ये मिलकर 'हिंदी के व्यावहारिक व्याकरण' की बात कर रहे हैं। उसमें अखबारों वाली हिंदी भी शामिल हो, पत्र-पत्रिकाओं वाली हिंदी भी शामिल हो, हिंदी का एक बहुत बड़ा विकास उसमें शामिल हो, जो गद्य का विकास होगा, क्योंकि अभी तक हिंदी गद्य के विकास क्रम को देखकर कोई व्याकरण ग्रन्थ नहीं लिखा गया है। व्याकरण में एक भाषा को मानक बनाने की परंपरा रही और इसलिए संरचनात्मक भाषा-विज्ञान, जो भारत में फलीभूत हुआ, की बहुत बड़ी सीमा रही। वह मानक व्याकरण ही लिखता रहा और जो व्यवहार में भाषा है, उसका व्याकरण लिखने की ज़रूरत नहीं समझी गई।"[6]

• वर्तनी तथा लेखन संबंधी समस्या

आरंभ से ही बच्चे अंग्रेज़ी वर्णमाला और अंकों को सहजता से सीख लेते हैं और वहीं हिंदी वर्णमाला लिखने और बोलने में उन्हें कठिनाई होती है। कुछ ऐसी ही स्थिति विदेशी छात्रों को हिंदी सिखाते समय भी आती है। इसमें भाषा को दोष देने के बजाय सिखाने की तकनीक और शिक्षार्थियों की ग्रहण-क्षमता का आकलन होना चाहिए। हिंदी के लगभग 52 वर्णों की तुलना अंग्रेज़ी के 26 वर्णों से करना सर्वथा गलत है। हिंदी के विविध रूपों से मानक रूप तक शिक्षार्थी सहजता से नहीं पहुँच पाते हैं। वर्तनी की अशुद्धियाँ अभ्यास और सही प्रशिक्षण से दूर की जा सकती हैं। हिंदी वर्णों को भी चरणबद्ध रूप में सिखाया जाना चाहिए, उनके आकार-प्रकार तथा उनकी संख्या को बाँटकर शिक्षार्थी की अधिगम-क्षमता, रुचि और नई शिक्षण पद्धतियों को ध्यान में रखकर सिखाना चाहिए।

• वाचन और उच्चारण की समस्या

हिंदी वर्णों की अधिक संख्या के कारण एक समस्या उसकी ध्वनियों के उच्चारण को लेकर उत्पन्न होती है। हिंदी में अनेक ऐसे वर्ण हैं, जो अनेक अन्य भाषाओं में मौजूद नहीं, साथ ही कई बार मानक हिंदी की कुछ ध्वनियों का सही उच्चारण खुद हिंदी की किसी बोली को मातृभाषा रूप में ग्रहण करने वाले व्यक्ति भी नहीं कर पाते हैं - 'प', 'ड़', 'ट', 'घ', 'ध', 'भ' और 'झ' जैसी अनेक ध्वनियों का उच्चारण किसी अरबी भाषी के लिए कठिन है, वहीं 'श' और 'ष' का अंतर तथा 'ण', 'छ', 'र', 'त', 'द' आदि अनेक वर्णों का उच्चारण अंग्रेज़ी भाषी के लिए कठिन होता है। अक्सर नौसिखिए के सामने ध्वनियों के सही उच्चारण की समस्या आती है।

• नवीन शिक्षण विधियों का अभाव

आज भी हिंदी-शिक्षण सदियों पुराने तरीकों से हो रहा है, जिसमें विद्यार्थी न तो शिक्षक से आकर्षित हो पाते हैं और न ही विषय से। हिंदी की कक्षाएँ अक्सर उबाऊ, नीरस और स्थिर बनी रहती हैं। विद्यार्थी कुछ रटे-रटाए उत्तरों का अभ्यास करके पास हो जाना अपना उद्देश्य समझते हैं। शिक्षण की विभिन्न नवीन विधियों और पद्धतियों का प्रयोग न करने के कारण शिक्षण एक तरफ़ा रह जाता है। भाषा-शिक्षण की विभिन्न विधियाँ हैं, जिन्हें आवश्यकतानुसार हिंदी-शिक्षण में प्रयोग करके अधिगम-क्षमता का विकास संभव है। अनुकरण विधि, प्रत्यक्ष विधि, व्याकरण विधि, इकाई शिक्षण विधि, आगमन-निगमन विधि, प्रोजेक्ट विधि, प्रयोजन विधि, समस्या-समाधान विधि, समवाय विधि, प्रदर्शन विधि, डाल्टन विधि, व्याख्या विधि, भाषा-संसर्ग विधि, पाठ्य-पुस्तक विधि, व्यास विधि, चित्र विधि आदि विभिन्न विधियों के प्रयोग से हिंदी-शिक्षण की दशा को बेहतर बनाया जा सकता है।

• आधुनिक सुविधाओं और शिक्षण के सहायक उपकरणों का अभाव

लैंग्वेज-लैब आदि तकनीक के प्रयोग में हिंदी-शिक्षण पीछे है। विभिन्न ऑडियो और वीडियो सुविधाओं की सहायता से भाषा में उच्चारण और लेखन की समस्याओं को दूर किया जा सकता है, किन्तु प्रायः विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में यह सुविधा होती ही नहीं है और यदि होती भी है, तो उनका प्रयोग शिक्षकों के लिए संभव नहीं होता। ये उपकरण एक बंद कमरे में धूल खा रहे होते हैं। इस समस्या पर विचार करते हुए अभी हाल ही में शिक्षक दिवस के अवसर पर भारत के 14,500 सरकारी स्कूलों को 'प्रधानमंत्री स्कूल्स फ़ॉर राइज़िंग इंडिया (पी.एम. श्री)' नामक योजना से जोड़ने की घोषणा माननीय प्रधानमंत्री ने की है - "पी.एम.-श्री स्कूलों में शिक्षा प्रदान करने का तरीका आधुनिक, परिवर्तनकारी और समग्र होगा। यहाँ शोध उन्मुख और ज्ञान आधारित शिक्षण पर ज़ोर दिया जाएगा। इनमें नवीनतम तकनीक, स्मार्ट क्लासरूम, खेल समेत

और भी बहुत सारी आधुनिक बुनियादी सुविधाओं पर ध्यान दिया जाएगा।"[7] प्रधानमंत्री की यह घोषणा भारत के लगभग दस लाख सरकारी स्कूलों तक कब पहुँचेगी, यह तो विचार का विषय है, किंतु यदि आधुनिक शिक्षण पद्धतियाँ और शिक्षण उपकरण भारत के 14500 स्कूलों तक भी सही तरीके से पहुँच जाएँ, तो यह कोई बड़ी उपलब्धि नहीं होगी। शायद इसी बहाने हिंदी-शिक्षण की दशा में भी कुछ सुधार की उम्मीद की जा सकती है।

• स्थानीय बोलियों और मानक भाषा में अंतर

हिंदी-शिक्षण में एक समस्या स्थानीयता के अभाव के कारण भी उत्पन्न होती है। विशेषकर आदिवासी और ग्रामीण परिवेश वाले क्षेत्रों में शिक्षार्थियों की मातृभाषा हिंदी की बोली होती है - जैसे ब्रज, अवधि, मारवाड़ी, कुमाऊनी, बुन्देली आदि और शिक्षण की भाषा शिष्ट मानक हिंदी है। शिक्षण में मानक हिंदी और हिंदी की बोलियों में गहरा अंतर महसूस किया जाता है, इससे शिक्षण की अनुभवपरकता में बाधा आती है। यानी बोलियों की स्थानीयता भाषा के साथ आसानी से नहीं जुड़ पाती है। इस समस्या को कुशल प्रशिक्षण से समाप्त किया जा सकता है। यहाँ अनुवादों की सहायता से इनके बीच के अंतर को कम किया जा सकता है और मानक हिंदी परंपरा से शिक्षार्थियों को जोड़ा जा सकता है। यह आवश्यक है कि शहरी और विकसित क्षेत्रों की अपेक्षा इन स्थानों पर पाठ्यक्रम आदि को पूर्ण करने में अधिक समय लगे। "हिंदी भाषा के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि सामान्यतः विभिन्न बोलियाँ उसके प्रयोक्ताओं के लिए प्रथम भाषा और स्वभाषा के रूप में स्थित है। पर साक्षरता का प्रश्न उठता है, तो वह बोली से भाषा की ओर उन्मुख हो उठता है और जब किसी निश्चित साहित्यिक परम्परा और सामाजिक अस्मिता की बात उठती है, तब हिंदी भाषा को मातृभाषा के रूप में अपनाया जाता है।"[8]

• रूढ़िवादी सोच तथा पुरातनपंथी पाठ्यक्रम

संदेह नहीं कि हिंदी-शिक्षण नीति पर भी जाति, धर्म, संप्रदाय, क्षेत्र तथा पद-प्रतिष्ठा का विशेष प्रभाव रहा है। नई और समसामयिक तकनीकों का प्रयोग, पाठ्यसामग्री की नवीनता के बजाय पुराने, घिसे-पिटे और नीरस विषय आज भी पाठ्यक्रम का हिस्सा बने हुए हैं। इन सबसे ऊपर उठकर समय की माँग के अनुरूप विषय को नवीनीकृत करने की ज़रूरत है।

• विद्यार्थियों की अधिक संख्या तथा समय का अभाव

प्रायः विद्यार्थियों की अधिक संख्या और कुशल शिक्षकों के अभाव में हिंदी-शिक्षण की दशा दयनीय होती रही है। स्वीकार्य संख्या से अधिक विद्यार्थी होने के कारण शिक्षक उनकी क्षमताओं का सही मूल्यांकन नहीं कर पाता है। अपने पाठ्यक्रम को निर्धारित समय में किसी तरह से भी निपटा देना उसका उद्देश्य रहता है। हिंदी-शिक्षण में प्रयोक्ता की अधिगम क्षमता, उद्देश्य तथा उसकी ज़रूरत को देखते हुए समय का निर्धारण किया जाना चाहिए।

• सरकारी दखल

जिस तरह हिंदी-शिक्षण की नीति का सीधा प्रभाव यहाँ के जीवन और समाज पर पड़ता है, उसी प्रकार हिंदी-शिक्षण नीति को सरकारें अपने वोट का आधार बनाने के रूप में अपने अधिकार-क्षेत्र में रखना चाहती हैं। जान-बूझकर उसमें दखल देती हैं। धर्म, जाति, इतिहास और साम्प्रदायिकता के नाम पर किसी एक भाषा को पाठ्यक्रम में शामिल करना और यदि किसी भाषा को पूर्व की सरकारों द्वारा प्रश्रय मिला हो, उसे उखाड़ फेंकना, नई सरकारें अपना उद्देश्य मानती हैं। ऐसी कूटनीतियाँ उनकी शिक्षा नीति के अंग हैं। हिंदी-ज्ञान और अधिगम-कौशल का विकास करने के बजाय जाति, धर्म और संप्रदाय हिंदी-शिक्षण को संचालित करने लगते हैं।

• रोज़गार के अवसरों में कमी

हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में रोज़गार के अवसर मुहैया कराना सरकार की ज़िम्मेदारी है, तभी राजभाषा हिंदी के व्यवस्थित और वास्तविक विकास का सपना साकार होगा। व्यापार, फ़िल्म, मीडिया और अध्ययन-अध्यापन के साथ हिंदी भाषा में अन्य रूपों में भी रोज़गार की संभावनाएँ विकसित की जानी चाहिए।

• अंतर्भाषिक और अंतर-अनुशासनिक अध्ययन की कमी

हिंदी-शिक्षण में इस प्रकार के अध्ययन की प्रायः कमी रही

है और इसी वजह से यहाँ रूढ़िग्रस्तता, पुरातनपंथी सोच और हीन-भाव का प्रवेश रहा है। अन्य भाषाओं और अन्य अनुशासनों के साथ तथा तुलनात्मक रूपों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन पर, ध्यान बहुत कम दिया गया है और जहाँ ऐसे प्रयास हुए हैं, उनकी उपेक्षा करने वालों की भी कमी नहीं। यहाँ अनुवादों के लिए भी व्यापक संभावनाएँ बनती हैं।

• फ़ीडबैक लेना

हिंदी-शिक्षण में फ़ीडबैक को विशेष तरजीह मिलनी चाहिए प्रायः न तो विद्यार्थियों से शिक्षक का फ़ीडबैक लिया जाता है और ना ही शिक्षक से शिक्षार्थियों का। अतः समस्याओं, कमियों, त्रुटियों, खूबियों तथा विशेषताओं का पता लगाना आसान नहीं होता है।

• कार्यालयी भाषा की जटिलता

हिंदी-शिक्षण में कार्यालयी भाषा की जटिलता, क्लिष्टता तथा अंग्रेज़ी से भावों के बजाय शब्दानुवाद को तरजीह देना हिंदी भाषा के शिक्षार्थियों और अध्यापकों दोनों के लिए समस्यात्मक होता है। सम्प्रेषण में ऐसी भाषा का शिक्षण कठिन होता है।

यदि हिंदी-शिक्षण को उद्देश्यपरक और सार्थक बनाना है, तो ज़रूरी है कि उसके लक्ष्य को भाषा-प्रयोक्ता की आवश्यकता के संदर्भ में देखा-परखा जाए। भाषा प्रयोक्ता की भाषा संबंधी आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं और तदानुसार भाषा के लक्ष्य भी भिन्न होंगे। यही लक्ष्य, भाषा-शिक्षण के पूरे तंत्र को अपने ढंग से नियोजित करता है।[9] हिंदी-शिक्षण की व्यवस्था के सम्पूर्ण तंत्र को नियोजित करके विश्व स्तर पर हिंदी की छवि बेहतर बनाई जा सकती है। भारतीय परम्पराओं और मूल्यों के विकास के साथ हिंदी शिक्षा को आधुनिक वैज्ञानिक चेतना संपन्न बनाना होगा। भारत की सांस्कृतिक अस्मिता की प्रतीक होने के साथ, इसमें रोज़गार के भरपूर अवसर उपलब्ध कराने होंगे। सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन की अभिव्यक्ति के साथ व्यक्तित्व विकास का आधार गढ़ना होगा। इसे समसामयिक जीवन और समाज से जोड़ने के साथ, इसमें नवीन शोध और अनुसंधान के मार्ग प्रशस्त करने होंगे। तब कहीं अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी के विकास और विस्तार के ख्वाब देखे जा सकते हैं और हिंदी वैश्विक भाषा का पद प्राप्त कर सकेगी। यहाँ भाषाशास्त्री प्रो. हाइंज़ वर्नर वेस्लर के निम्नलिखित विचार उल्लेखनीय हैं - "बहुत ज़रूरी है कि हिंदी को न सिर्फ़ बोलचाल की भाषा, बल्कि अपनी पहचान को आगे बढ़ाने की भी भाषा बनानी चाहिए। बहुत ज़रूरी है कि हिंदी के छात्र भारतीय मूल के हों या विदेशी हों, वह हिंदी को आधुनिकता के साथ उसी तरह जोड़े, जिस तरह से चीनी, जापानी और कोरियाई आधुनिक हैं।"[10]

संदर्भ :

1. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ : भाषा-शिक्षण, वाणी प्रकाशन, 1992
2. सिंह महिपाल और मिश्र, देवेन्द्र : विश्व बाज़ार में हिंदी, ब्रह्म प्रकाशन, 2010
3. सं. गुप्त उमाकांत और जोशी, ब्रजरतन : अनुसंधान स्वरूप और आयाम, वाणी प्रकाशन, 2016
4. सं. तिवारी, शम्भुनाथ : शोध और समीक्षा के विविध आयाम, शोध परिषद्, हिंदी विभाग, ए.एम.यू. 2013
5. प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी का वक्तव्य : दैनिक समाचार-पत्र 'अमर उजाला', 6 सितम्बर, 2022
6. विश्व हिंदी पत्रिका 2016, विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस

sayemabano52@gmail.com

हिंदी सीखने-सिखाने के नए तरीके

डॉ. संध्या सिंह
सिंगापुर

प्रौद्योगिकी की बात की जाए, तो बहुत सारी ऐसी तकनीकी सुविधाएँ हमारे पास उपलब्ध हैं, जो अलग-अलग कार्यों के लिए बनाई गई हैं और उनसे अनेक विशेष कार्य संपन्न कराए जा सकते हैं। लेकिन जब हम मानव-प्रवृत्ति की बात करते हैं, तब मानव-प्रवृत्ति किसी एक दायरे में संकुचित न होकर विभिन्न आयामों में दिखाई देती है और उसके उस विस्तार में उसकी सोच और कार्य करने की क्षमता के साथ ही उसका व्यवहार और अनुभव करने की शक्ति भी समाहित होती है। हर कोई अपने नज़रिए से इस दुनिया को देखता है और अपने नज़रिये से चीज़ों को ग्रहण करता है। अंधों की एक कहानी प्रचलित है कि एक हाथी को कुछ अंधों ने जब छुआ, तब उन्होंने उसके जिस भाग को छुआ, जिस तरह से उसे महसूस किया, उसी तरह से हाथी के स्वरूप को समझा। लेकिन जब हम खुली हुई आँखों से उस हाथी को देखेंगे, हमारे देखने का नज़रिया अलग ही रहेगा। इसी तरह अलग-अलग लोगों के सीखने के अलग-अलग कौशल होते हैं। सीखने की क्षमता आदि के लिए आज विभिन्न प्रौद्योगिकी मंचों का इस्तेमाल करना कहीं-न-कहीं अनिवार्य बनता जा रहा है।

भाषा-अधिगम कला रूप में हो, तो अधिक सहायक होती है और आज इसके कई प्रमाण मिलने लगे हैं। भाषा-अधिगम और उसके लिए उपयोग में लाए गए खेल, कई विचारों के द्वार खोलते हैं, जिनमें सामुदायिक स्तर पर आधारित खेलों पर पहुँच बन सके और आभासी वास्तविकता का सार्थक रूप उसमें समाविष्ट हो सके। ऑनलाइन संसाधन शिक्षक-केंद्रित होने के बजाय अध्येता या अधिगम केंद्रित होता है। पारंपरिक शिक्षण पद्धतियों में अध्यापक केंद्र में होता था, आज अलग-अलग तरीकों से ऑनलाइन माध्यमों के उपयोग के कारण अधिगम केंद्र में है। उसके इर्द-गिर्द अध्येता हैं और अध्यापक सिर्फ़ एक समन्वयक की तरह कार्य करता है।

ऑनलाइन संसाधन निश्चित रूप से अधिगम प्रक्रिया को एक दिशा देने के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं। आज का अध्येता प्रौद्योगिकी की दुनिया में अपने-आपको इस कदर मशगूल रखता है कि अगर अध्ययन की सामग्री तकनीकी माध्यम से प्रस्तुत की जाए, तो वह उस सामग्री को जल्दी आत्मसात कर लेता है। यह भी प्रोत्साहित करने वाली बात है कि आज ऑनलाइन मंच सिर्फ़ शब्दावली या व्याकरण के लिए ही नहीं हैं, बल्कि उसके द्वारा भाषा-अध्ययन के विभिन्न आयाम प्रस्तुत होते हैं। प्रौद्योगिकी के इस युग में शिक्षण अब अधिगम का रूप ले चुका है और भाषा-अधिगम बहुत ही रचनात्मक रूप से किया जा रहा है। अधिगम की इस प्रवृत्ति को बढ़ावा देने के लिए तथा शिक्षण में सुधार लाने के लिए विभिन्न प्रौद्योगिकी माध्यमों का उपयोग किया जा रहा है। वर्तमान में अधिगम की इस प्रक्रिया में शिक्षक और प्रशिक्षक के साथ ही सीखने वाला चाहता है कि अलग-अलग तरीकों का इस्तेमाल करके तथा विभिन्न वेब अनुप्रयोगों का उपयोग करके जानकारी हासिल की जाए, अभ्यास किया जाए और अपनी अधिगम-क्षमता को बढ़ाया जाए। हिंदी अधिगम अपने-आप में एक कौशल है, या यूँ कहें कि भाषा-शिक्षण और अधिगम अपने-आप में एक कौशल है, जिसका सही ज्ञान होने पर बड़ी ही सहजता से दूसरों तक अपने भाषा-ज्ञान को पहुँचाया जा सकता है।

भाषा-शिक्षण में खेलों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। खेल जो किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्तर का ध्यान रखकर बनाए गए हों, न सिर्फ़ कक्षा की गतिविधि को बेहतर स्वरूप प्रदान करते हैं, बल्कि कक्षा में अधिक ऊर्जा भरते हैं और शिक्षण को प्रभावी बनाते हैं। कुछ खेलों के बारे में इस लेख में जानकारी दी जाएगी, जिनका प्रयोग भाषा-अधिगम में समय-समय पर करने से अधिगम प्रभावी रहता है।

पैडलेट

कुछ समय से पैडलेट का इस्तेमाल भाषा की कक्षाओं में काफ़ी बड़े स्तर पर किया जा रहा है। एक पैडलेट भित्ति पर कई पोस्ट बनाई जा सकती है। आप बिना खाता बनाए भी लेख, टिप्पणी साझा कर सकते हैं। पैडलेट एक तरह से ज्ञान-निर्माण के लिए

बहुत ही उपयोगी मंच है और जब हम कोरोना काल की विभीषिका से गुज़र रहे थे, तब उस समय यह मंच आभासी कक्षाओं के लिए एक तरह से वरदान साबित हुआ। सामान्य कक्षा में फिर भी संभव है कि सभी छात्र अपने-अपने विचार एक-एक करके या एक ही बार में रखते हैं। कक्षा के वातावरण में छात्रों द्वारा एक साथ कई विचार रखे जाने पर काफ़ी बातें सुनाई भी देती हैं, लेकिन आभासी कक्षा में एक-दूसरे की आवाज़ों के टकराने से स्पष्टता नष्ट हो जाती है। पैडलेट ने उस मंच की कमी को पूरा किया और ज्ञान-निर्माण के लिए दो अथवा अधिक मामलों के अध्ययन के लिए इसका प्रयोग किया जाने लगा है। अधिगम से संबंधित, जो गतिविधियाँ हैं, उनके पूरक के रूप में इसका इस्तेमाल होता है, इसमें छात्रों की भागीदारी ही अधिक होती है। इस तरह के प्रयोगों से उन्हें अधिक प्रेरणा मिलती है, जो उनके प्रदर्शन को बेहतर बनाने में सहायता करते हैं।

पैडलेट में किसी भी विषय पर विभिन्न छात्रों के विचार एक साथ, एक मंच पर उपस्थित हो जाते हैं और उनका तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। भाषा-अधिगम के स्तर पर, जब छात्र एक कक्षा से अगली कक्षा में पहुँचते हैं, तब विद्यार्थियों में इतनी क्षमता होती है कि वे अपनी बात क्रमबद्ध और व्यवस्थित तरीके से एक स्थान पर रख सकें। इस मंच के माध्यम से अलग-अलग विद्यार्थी, अलग-अलग क्षेत्रों में शोध करके जानकारी एकत्रित करके या अलग-अलग तरह के वाक्य-संरचनाओं पर कार्य करके एक ही जगह पर अपनी-अपनी बात रखते हैं और इससे उन्हें अपने साथियों की बातें पढ़ने का अवसर मिलता है, जिससे कि वे एक-दूसरे से सीखते हैं और सुचारू रूप से प्रगति कर पाते हैं।

पैडलेट का इस्तेमाल एक-दूसरे के साथ सहयोग करते हुए, ज्ञान का आदान-प्रदान करने का अनुभव देता है और सोचने की क्षमता बढ़ाता है। खुद को भी प्रतिबिंबित कर छात्रों को अपने कार्यों का भी पुनर्परीक्षण करने के लिए प्रोत्साहित करता है। आपने क्या लिखा है या किस प्रकार से प्रस्तुति की है, उसका तो पुनर्परीक्षण होता ही है। साथ ही, आपके ही सहपाठी किस रूप में प्रस्तुति कर रहे हैं, यह देखकर भी आपको और बेहतर करने का अवसर मिलता है। यह सृजन आपकी क्षमता को और अधिक सक्षम करता है और एक ऐसे वातावरण का निर्माण होता है, जो आगे चलकर अधिक सहयोगात्मक प्रवृत्ति विकसित करने में सहायक होता है। इसे पैलौफ़ एंड प्रैट ने भी साबित किया है।

पैडलेट साथियों के कार्यों पर टिप्पणियाँ करने, उनका समर्थन करने और सीखने के व्यक्तिगत अनुभव को हमेशा बढ़ाने में सहायक होता है। इस तरह के मंच से भाषा-अधिगम में सामूहिक परियोजनाएँ देना अधिक आसान हो गया है, क्योंकि विद्यार्थी किसी भी समय अपने विचार आसानी से रखकर किसी एक विषय पर जानकारी एकत्रित कर अपनी परियोजना को बहुत ही सुंदर चित्रात्मक रूप में पूरा कर सकते हैं।

कुछ कथित बाधाएँ, जो गतिविधियों में भाग लेने से कई विद्यार्थियों को रोकती हैं, उनका निवारण पैडलेट के माध्यम से भी किया जा सकता है। जैसे भाषा-अधिगम की कक्षा में कई बार कुछ विद्यार्थी बोलने में कठिनाई महसूस करते हैं; कई बार वे शर्मीले स्वभाव के होते हैं, ऐसी स्थिति में वे अपनी टिप्पणी रखने से घबराते हैं कि कहीं उनसे कोई गलती न हो जाए। पैडलेट के माध्यम से उनमें बातचीत करने की प्रवृत्ति धीरे-धीरे विकसित होती है। उस प्रवृत्ति के विकास की प्रक्रिया को तेज़ करने के लिए जब पैडलेट का इस्तेमाल कक्षा में किया जाता है, तब वे अपनी बात पहले लिखकर ज़ाहिर करते हैं और उसी दौरान वे तुलना करके यह देखते हैं कि उनके सहपाठी उन्हीं की तरह लिख रहे हैं, तो उनमें आत्मविश्वास बढ़ता है और वे अपनी बात को बड़ी ही सुविधाजनक रूप में प्रस्तुत कर पाते हैं।

पैडलेट का प्रयोग करते हुए प्रत्येक विद्यार्थी की भागीदारी सुनिश्चित की जाती है। बड़ी कक्षाओं में, जिनमें अधिक विद्यार्थी हैं, वहाँ हर बार बोलने का मौका नहीं दिया जा सकता, उन कक्षाओं के लिए भी पैडलेट बहुत उपयोगी साबित होता है। विद्यार्थी अपने हर सहपाठी के विचारों को जानना चाहते हैं। पैडलेट पर कार्य करने के कारण उन्हें आभास हो जाता है कि उनकी कक्षा से किस तरह के विचार आ रहे हैं। इस प्रकार एक-दूसरे के विचारों से तो सीखते ही हैं, साथ ही उनके द्वारा किए गए कार्यों पर सुधार का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

कहूट

पिछले कुछ वर्षों से इस ऑनलाइन खेले जाने वाले खेल का इस्तेमाल भाषा-शिक्षण की कक्षाओं में होता आया है। सन् 2013 में, इस मंच को शुरू किया गया था और उसके कुछ ही समय बाद से यह भाषा-शिक्षण से जुड़े लोगों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय हो गया। यह मंच कक्षा में की जाने वाली चर्चाओं के साथ शिक्षकों को खेल-आधारित प्रश्नोत्तर-प्रतियोगिता के आयोजन की अनुमति देता है। हालाँकि इसका इस्तेमाल आज कई विभिन्न विषयों के लिए विविध तरीकों से किया जा रहा है, लेकिन भाषण-शिक्षण में यह अब भी उतना ही कारगर है। कहूट पर किसी भी पाठ के अभ्यास के लिए या उस पाठ का परिचय देने के लिए बड़ी आसानी से छोटे-छोटे अभ्यास और खेल बनाए जा सकते हैं। इसे अकेले या टीम में बाँटकर खेला जा सकता है।

खेल आधारित इस शिक्षण मंच का उपयोग कक्षा में ज्ञान की समीक्षा करने के लिए तो होता ही है, साथ ही रचनात्मक मूल्यांकन में भी इसका प्रयोग बड़े स्तर पर किया जाने लगा है। पारंपरिक कक्षाओं में भी इस गतिविधि का इस्तेमाल कक्षा को अधिक सक्रिय और पाठ के मध्य विराम के रूप में प्रयोग करने के लिए किया जाता है। समय के साथ यह मंच और विकसित होता जा रहा है, तो इस पर तरह-तरह के अभ्यास व खेल बनाने की सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं और उनके इस्तेमाल से भाषा-शिक्षण प्रभावी हो रहा है।

इससे एक तरह से खेल का शो कक्षा में उपस्थित हो जाता है और इसमें अध्यापक खेल कराने वाला और उसके सभी विद्यार्थी प्रतिभागी बन जाते हैं। इस मंच की विशेषता है कि अध्यापक अपनी आवश्यकतानुसार खेल आदि तैयार करता है और बड़े ही मज़ेदार तरीके से अपने विद्यार्थियों को खेलने के लिए आमंत्रित करता है। इसमें तैयार की गई परीक्षाएँ भी विद्यार्थी रोचक रूप से देते हैं।

इस मंच की कुछ सीमाएँ भी हैं। कुछ विद्यार्थी जल्दी उत्तर नहीं दे पाते हैं, क्योंकि उनके पढ़ने की गति धीमी होती है। इसका इस्तेमाल पहले खेल के लिए किया जाए और बाद में मूल्यांकन के लिए, तो धीरे-धीरे विद्यार्थी इससे परिचित हो जाते हैं और उनमें उत्तर देने की क्षमता बढ़ जाती है। इस प्रकार के निरंतर अभ्यास से परिचित होने पर यह चिंता कम की जा सकती है। इस मंच द्वारा विद्यार्थियों के प्रदर्शन के साथ, कक्षा की गतिशीलता और अध्यापक तथा छात्रों के दृष्टिकोण भी प्रस्तुत होते हैं। कभी-कभी प्रश्नों के उत्तर न देने की स्थिति में असफल होने का भाव हावी होता है। जिन शिक्षकों को प्रौद्योगिकी का प्रयोग करना नहीं आता, उन्हें कठिनाइयाँ होती हैं। विदेशों में इंटरनेट आदि की समस्याएँ कम होती हैं, इसलिए इस तरह के मंच काफ़ी कारगर होते हैं।

क्विज़लेट

सीखने और सिखाने की गतिविधियों का समर्थन करने के लिए संस्थाएँ तेज़ी से विभिन्न प्रकार के प्रौद्योगिकी उपकरणों का प्रयोग कर रही हैं। इसी क्रम में 'क्विज़लेट' का इस्तेमाल भी विदेशी भाषा-शिक्षण के लिए किया जाता है और इसका अधिकांश प्रयोग शब्दावली-अधिग्रहण-क्षमता को व्यापक बनाने के लिए होता है। इस प्रायोगिक मंच से शब्दावली अधिग्रहण पर अधिक कार्य किया जा सकता है। इसे कुछ अन्य रूपों में भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

क्विज़लेट से उन छात्रों को अधिक सफलता मिलती है, जो बार-बार अभ्यास करके सीखते हैं। इसके फ़्लैश-कार्ड्स आदि के माध्यम से, एक ही शब्द या वाक्यांश को बार-बार देखने से, कई संकल्पनाएँ तस्वीर की तरह मस्तिष्क में स्थान बना लेती हैं और भाषा सीखने में वे चित्र बहुत सहायक होते हैं।

कुछ लोग इसे उतना सकारात्मक रूप में नहीं लेते हैं, लेकिन शिक्षार्थी या अभ्यर्थी हर तरह के होते हैं और हर किसी के सीखने की शैली अलग होती है। ऐसी स्थिति में तरह-तरह के 'उपकरणों' का उपयोग करने से हम कक्षा की विभिन्न प्रतिभाओं वाले छात्रों की सहायता कर सकते हैं और उनके अधिगम के कौशलों को और बेहतर करने में अपना सहयोग दे सकते हैं।

इसे परीक्षा की तैयारी करने का एक शानदार अध्ययन उपकरण माना जा सकता है। छात्र कई बार स्वयं फ़्लैश-कार्ड बनाने में सहयोग करते हैं। इससे वे न सिर्फ़ सीखते हैं, बल्कि उन्हें बहुत आनंद आता है। टीम के रूप में भी प्रतिस्पर्धा का मौका मिलता है, जो सीखने को और मज़ेदार बनाता है। यद्यपि क्विज़लेट की कुछ सीमाएँ हैं, लेकिन उसके बावजूद वह काफ़ी कारगर साबित होता है। वर्तमान समय में अन्य कई मंच उपस्थित हैं, जिनको जानने, समझने और उनका इस्तेमाल करने की आवश्यकता है। आज

हिंदी में बहुत से मंचों पर आसानी से गतिविधियाँ आयोजित की जा रही हैं। यूनिकोड फ़ॉन्ट आने से कंप्यूटर पर हिंदी खेल और गतिविधियाँ बनाना आसान हो गया है। जिन मंचों का इस्तेमाल अंग्रेज़ी, फ्रेंच या अन्य भाषाओं के खेल के लिए किया जाता रहा है, लगभग उन सभी पर अब हिंदी में भी खेल बनाए जा रहे हैं। ऊपर बताए गए तीनों मंच कुछ शर्तों के साथ मुफ़्त में भी उपलब्ध हैं और बिना किसी अतिरिक्त खर्च के भाषा-अधिगम की कक्षा में इनका इस्तेमाल किया जा सकता है। इनके अलावा भी कई ऐसे मंच हैं, जो मुफ़्त हैं, किन्तु वे भाषा-अधिगम की कक्षा के लिए उपयोगी हैं। विश्वविद्यालय आदि में कुछ ऐसे मंच होते हैं, जिनका प्रयोग सिर्फ़ विश्वविद्यालय में पंजीकृत विद्यार्थी और अधिकारी ही कर सकते हैं, लेकिन जब हम सार्वजनिक मंचों का इस्तेमाल करते हैं और उनमें यह सुविधा होती है कि आप अपना खाता बनाकर अपने हिसाब से अपनी कक्षा के लिए गतिविधियाँ तैयार करें, तो यह सबके लिए सहज हो जाता है। हिंदी भाषा-अधिगम को रुचिकर बनाकर ही भविष्य के लिए संजोया जा सकता है। समय बदल रहा है, परिस्थितियाँ बदल रही हैं और लोगों के व्यवहार में भी परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं। इस स्थिति के अनुरूप हिंदी भाषा के अध्येताओं को भी स्वयं को ढालने की आवश्यकता है।

निष्कर्षत: ऑनलाइन यन्त्र उपयोग करने की काफ़ी संभावनाएँ हैं, क्योंकि इसमें छात्रों को शामिल करने के अधिक अवसर उपलब्ध होते हैं। वे अपने ज्ञान को पुख्ता करते हैं और एक-दूसरे का सहयोग करते हैं। रचनात्मक खोज के लिए, वे अपने विचारों को रखते और सीखते हैं। उनके साथ ही अध्यापक भी मूल्यांकन के अलग-अलग और मूल्यवान तरीके प्रस्तुत कर सकता है। 'फ़ीडबैक' की संभावना और अपनी टिप्पणियों से छात्रों के अधिगम की कमियाँ दिखाने में सहयोग मिलता है। विभिन्न तरह के माध्यमों के इस्तेमाल से कक्षा का स्वरूप व्यापक और अधिक सक्रिय बनता है। अध्येता अपने ज्ञान और कौशल की वृद्धि के लिए पुन:अभ्यास और मूल्यांकन के लिए तथा अपनी क्षमता जाँचने और अपने ज्ञान का परीक्षण करने के लिए इनका उपयोग कर सकता है।

संदर्भ :

1. Asmali, M. (2018). Integrating technology into esp classes: Use of student response system in English for specific purposes instruction.
2. Atherton, P. (2018). More than just a quiz: How kahoot! Can help trainee teachers understand the learning process.
3. Baydas, O., & Cicek, M. (2019). The examination of the gamification process in undergraduate education: A scale development study.
4. Baida, M. (2014). 'Using Padlet wall in cooperative group investigation method', Modern Communicative Methods of Teaching English.
5. Klimova, B., & Kacetl, J. (2018). Computer game-based foreign language learning: Its benefits and limitations. Springer.
6. Fisher, C. D. (2017). Padlet: An online tool for learner engagement and collaboration, available at https://Padlet.comPadlet.
7. Yuruk, N. (2020). Using Kahoot as a skill improvement technique in pronunciation. Journal of Language and Linguistic Studies.

sandhyasingh077@gmail.com

हिंदी : विविध आयाम, व्यक्ति एवं संस्था और आज के प्रश्न

1. भारत की प्रमुख हिंदी सेवी संस्थाएँ – डॉ. दीपक कुमार पाण्डेय

2. मॉरीशस में विश्व हिंदी सम्मेलन की यात्रा के तीन अहम् पड़ाव – डॉ. बीर पाल सिंह यादव

3. समावेशी भाषा हिंदी – डॉ. ज्योति यादव

4. गिरमिटिया देशों में हिंदी को लेकर होती तनातनी: ये तेरी हिंदी ये मेरी हिंदी – श्रीमती अरुणा घवाना

5. स्वातंत्र्योत्तर अमृतकालीन हिंदी – डॉ. रश्मि वार्ष्णेय

6. हिंदी का विश्व : आज और कल – डॉ. सविता डहेरिया

भारत की प्रमुख हिंदी सेवी संस्थाएँ

डॉ. दीपक कुमार पाण्डेय
भटिंडा, भारत

हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में हिंदी सेवी संस्थाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। स्वतंत्रता से पूर्व हिंदी भाषा, स्वतंत्रता आंदोलन को राष्ट्रीय रूप देने में महती भूमिका का निर्वहण करती हुई, राष्ट्रीयता का प्रतीक बनी। राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का प्रचार-प्रसार करने हेतु प्रत्येक प्रदेश में आवश्यकतानुसार विभिन्न हिंदी सेवी संस्थाओं की स्थापना की गयी। ये हिंदी सेवी संस्थाएँ, हिंदी भाषा तथा साहित्य के विकास एवं संवर्धन का कार्य निरंतर कर रही हैं। इनके अतिरिक्त तमाम ऐसी स्वैच्छिक संस्थाएँ हैं, जो साहित्य-सृजन तथा प्रकाशन के माध्यम से हिंदी की श्रीवृद्धि कर रही हैं। यद्यपि हिंदी सेवी संस्थाओं की संख्या अत्यधिक है और सभी का समुचित मूल्यांकन कर पाना इस लेख में संभव नहीं है, तथापि प्रस्तुत शोध आलेख में कतिपय प्रमुख हिंदी सेवी संस्थाओं के योगदान एवं उद्देश्य पर प्रकाश डालने का एक लघु प्रयास किया जा रहा है।

भाषाविदों, साहित्यकारों तथा संस्थाओं के सद्प्रयासों के कारण ही हिंदी भाषा अपने परिष्कृत एवं परिवर्धित रूप में आज हमारे समक्ष उपस्थित है। सुधिजनों के सद्प्रयासों के फलस्वरूप इन संस्थाओं का निर्माण हुआ तथा इसके द्वारा जो चुनौतीपूर्ण कार्य सम्पादित किये गए, वे हिंदी की पहचान का आधार सिद्ध हुए।

हिंदी सेवी संस्था के रूप में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने कुशल नेतृत्व का परिचय दिया। इसने भाषा के निर्माण तथा साहित्य के विकास में सम्यक रूप से योगदान दिया। इस संस्था की स्थापना के संबंध में इसके संस्थापक सदस्यों में शामिल हिंदी भाषा एवं साहित्य के अनन्य सेवक श्यामसुन्दर दास जी ने अपनी आत्मकथा 'मेरी आत्मकहानी' में लिखा है -

"9 जुलाई सन् 1893 को इस सोसाइटी का एक अधिवेशन बाबू हरिदास बुआसाव के अस्तबल के ऊपरी कमरे में हुआ। इसमें आर्यसमाज के उपदेशक शंकरलाल जी आए और उन्होंने एक व्याख्यान दिया। बाद में वे दक्षिण-अफ़्रीका में स्वामी शंकरानंद के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनका व्याख्यान बड़ा जोशीला होता था। हम लोग इस व्याख्यान से बड़े उत्साहित हुए। यह निश्चय हुआ कि अगले सप्ताह में 16 जुलाई को फिर सभा होगी। उसमें यह निर्णय लिया गया कि नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना की जाए।"[1]

इस प्रकार नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई और श्यामसुंदर दास जी को मंत्री पद दिया गया। साहित्य और भाषा को लेकर भिन्न-भिन्न प्रकार के भ्रामक और विवादास्पद मत सदैव प्रचलित रहे हैं। नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना के समय श्यामसुंदर दास जी तथा उनके अन्य संस्थापक सदस्यों की उम्र और कक्षा को लेकर आज भी साहित्य-जगत् में भ्रम की स्थिति बनी हुई है। कुछ विद्वानों का मत है कि स्थापना के समय श्यामसुंदर दास जी पाँचवी कक्षा के छात्र थे, तो कुछ मानते हैं कि वे नौवीं कक्षा के छात्र थे। अपनी आत्मकथा 'मेरी आत्मकहानी' में श्यामसुंदर दास जी स्वयं इस रहस्य का पर्दाफ़ाश करते हुए लिखते हैं - *"सन् 1883 की बात है। मैं उस समय इंटरमीडिएट के सेकेंड इयर में था।"*[2]

नागरी प्रचारिणी सभा ने अपने शुरुआती दिनों में ही शासन के समक्ष देवनागरी लिपि के कार्यालयी प्रयोग हेतु अपनाए जाने के लिए एक मेमोरेंडम भेजा था और शासन की तरफ़ से, सर एंटोनी मेक्डोनल्ड द्वारा प्रेषित उत्तर इस प्रकार से था -

"आप लोग जिस परिवर्तन के लिए प्रार्थना करते हैं, वह उस भाषा का परिवर्तन नहीं है, जिनमें वह भाषा लिखी जाती है। वह भाषा जो हमारी अदालतों और सरकारी कागज़ों में लिखी जाती है। वह कठिन और फ़ारसी शब्दों से पूर्ण हो सकती है और उसे सरल करने का उद्योग आवश्यक हो सकता है, पर, वास्तव में, वह भाषा हिंदी है, जिसे इन प्रांतों की प्रजा का बहुत बड़ा अंश बोलता है। परन्तु यदि हमारी अदालतों की भाषा हिंदी है, तो जिन अक्षरों में वह लिखी जाती है, वह फ़ारसी है और आप लोगों का यह प्रस्ताव है कि फ़ारसी के स्थान पर नागरी अक्षरों का, जिसमें हिंदी साधारणतः लिखी जाती है, प्रचार किया जाए। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस प्रस्ताव के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। इन प्रांतों में चार

करोड़ सत्तर लाख मनुष्य बसते हैं और प्रसिद्ध भाषातत्व-वेत्ता डॉक्टर ग्रियर्सन प्रत्येक ज़िले में भाषाओं की जाँच के संबंध में जो दौरा कर रहे हैं, उससे यह प्रकट होता है कि इन चार करोड़ सत्तर लाख मनुष्यों में से चार करोड़ पचास लाख मनुष्य हिंदी या उसकी कोई बोली बोलते हैं।"[3]

तत्कालीन समय में भी समाज के बहुसंख्यक लोगों की भाषा को दरकिनार कर ठीक वैसे ही फ़ारसी को सत्ता का सारथी बनाया गया था, जैसे वर्तमान में अंग्रेज़ी को विशेष सम्मान से महिमामण्डित किया जा रहा है। सर एंटोनी मेक्डोनल्ड आगे अपने पत्र में लिखते हैं।

"मेरे इस कथन से आप लोग समझ सकते हैं कि यद्यपि मैं नागरी अक्षरों के विशेष पक्ष में हूँ, तथापि मैं इस बात को कह देना उचित समझता हूँ कि जितनी आप लोग समझते हैं, उससे अधिक आपत्तियाँ इसके पूर्ण प्रचार की अवरोधक हैं।"[4]

कहने की आवश्यकता नहीं है कि ये कौन-सी अवरोधक शक्तियाँ थीं, जो सीमित होकर भी सर्वाधिक विस्तृत थी। इन अवरोधों के बाद भी नागरी प्रचारिणी सभा का प्रयास अनुक्षण चलता रहा। इस सभा ने विद्यालयी स्तर पर नागरी के प्रचारार्थ कार्य किया, जिसका विवरण डॉ. रामनिरंजन परिमलेंदु इस प्रकार देते हैं -

"पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध में शिक्षा-विभाग की ओर से, प्रतिवर्ष बालकों को उत्तम फ़ारसी और अंग्रेज़ी अक्षर लिखने के लिए पारितोषिक प्रदान किए जाते थे और नागरी अक्षरों की सुधि तक भी नहीं ली जाती थी। इसलिए नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने निश्चय किया कि प्रतिवर्ष दस रुपये, आठ रुपये और पाँच रुपये के तीन पारितोषिक देवनागरी लिपि लिखनेवाले बालकों में से सर्वोत्कृष्ट लेखन करने वाले प्रथम तीन बालकों को उनकी ओर से प्रदान किये जाएँगे। इसके प्रबंध हेतु प्रान्तिक शिक्षा विभाग से सभा ने निवेदन किया और यह परीक्षा प्रारंभ में सन् 1894 ई. में बनारस और गोरखपुर प्रमंडलों में प्रचलित की गयी।"[5]

इसके अलावा नागरी-प्रचारिणी सभा ने शब्दकोश का निर्माण कराया, हिंदी साहित्य के इतिहास का संपादन किया, हिंदी की पत्रिका शुरू की, समय-समय पर सभा एवं कवि-गोष्ठी का आयोजन किया तथा देश भर में फैले हिंदी साहित्य की खोज कर उसका संकलन, संपादन, तथा अनुसंधान जैसे महत्त्वपूर्ण कार्यों द्वारा हिंदी को यथोचित सम्मान दिलाया।

हिंदी सम्मेलन, प्रयाग की स्थापना, नागरी प्रचारिणी सभा के तत्वावधान में, 10 अक्टूबर, 1910 ई. में की गई थी। हिंदी भाषा एवं साहित्य को समुन्नत बनाने में हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की अति महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इस संस्था के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार थे -

(1) हिंदी भाषा व साहित्य का सर्वांगीण विकास करना।
(2) देवनागरी लिपि में राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार-प्रसार करना।
(3) हिंदी भाषा एवं साहित्य के पाठ्यक्रम तैयार कर पठन-पाठन करवाना एवं परीक्षा आयोजित कराना।
(4) सरकारी एवं गैर-सरकारी तंत्र में हिंदी के प्रयोग को प्रोत्साहन देना।
(5) हिंदी में विज्ञान एवं तकनीकी, विधि एवं वाणिज्य तथा मानविकी विषयों में पुस्तकें प्रकाशित करना।
(6) अनुवाद-कार्य द्वारा हिंदी को समृद्ध करना।
(7) हिंदी के विद्वानों को सम्मानित करना।
(8) हिंदी में बहुलता की प्रवृत्ति विकसित करना।

सम्मेलन द्वारा किये गए शुरुआती प्रयासों का विवरण देते हुए प्रेमनारायण टंडन ने कहा है -

"इसके अंतर्गत खोज द्वारा प्राप्त प्राचीन पुस्तकों, मौलिक ग्रंथों और अनुदित कृतियों के प्रकाशन का प्रबंध है; लगभग 250 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं; तथा वाणिज्य विषय के लिए पारिभाषिक शब्दों के निर्माण और पुस्तकों के संपादन का अलग से प्रबंध है; त्रैमासिक सम्मेलन पत्रिका का नियमित प्रकाशन होता है; सम्मेलन से संबद्ध भारत में दूर-दूर स्थापित लगभग 60 संस्थाएँ हैं, जो इससे प्रेरणा ग्रहण करती हैं।"[6]

हिंदी सेवी संस्थाओं के उद्भव एवं विकास में हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग का अतुलनीय योगदान रहा है। इसी क्रम में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना एक महत्त्वपूर्ण घटना के रूप में विख्यात है। इसकी स्थापना में हिंदी साहित्य सम्मेलन की भूमिका को रेखांकित करते हुए महात्मा गांधी ने सम्मेलन के 24वें अधिवेशन के सभापति-भाषण में कहा था -

"सम्मेलन न होता, तो दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा न होती। सन् 1918 में इसी शहर में, इसी सम्मेलन की छाया में, इस संस्था का उद्भव हुआ।"[7]

महामना मदन मोहन मालवीय, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी तथा राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन का हिंदी साहित्य सम्मेलन से अति विशिष्ट संबंध रहा है। टंडन जी ने सम्मेलन को विकासोन्मुख रखने हेतु निरंतर प्रयास किया। इनके पूर्ण समर्पित प्रयासों के कारण इन्हें सम्मेलन का गांधी कहा गया है।

हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा समय-समय पर आयोजित होने वाले राष्ट्रव्यापी अधिवेशनों की एक सुदीर्घ एवं गौरवमयी परंपरा है, जो इसकी स्थापना से लेकर वर्तमान समय तक किसी-न-किसी रूप में निर्विघ्न रूप से जारी है, परन्तु इसके अन्य कार्यों में शिथिलता आ गयी है।

महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय एकीकरण के निमित्त, स्वयं आगे आकर सन् 1918 ई. में 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास' की स्थापना की। वहाँ उनके सुपुत्र देवदास गांधी प्रथम प्रचारक नियुक्त हुए। इस संस्था के संदर्भ में कहा जा सकता है कि यह दक्षिण भारत में हिंदी की नींव की प्रथम ईंट है। महात्मा गांधी आजीवन इस संस्था के अध्यक्ष रहे तथा उनके मरणोपरांत बाबू राजेंद्र प्रसाद, लालबहादुर शास्त्री, श्रीमती इंदिरा गांधी, राजीव गांधी, पी. वी. नरसिम्हा राव, आर. वेंकट रमन, न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्र, श्री एम. महादेव एवं श्री एम. वी. राजशेखरन आदि प्रभृति मनीषियों ने सभा के अध्यक्ष पद को सुशोभित करते हुए हिंदी के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया। इस संस्था द्वारा हिंदी भाषा एवं साहित्य के संवर्धन हेतु दक्षिण भारत के लोगों के लिए हिंदी पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण एवं प्रकाशन, हिंदी कक्षाओं का संचालन तथा शब्दकोश का निर्माण इत्यादि महत्त्वपूर्ण कार्य किये गए। इसके साथ ही 'दक्षिण भारत', 'सभाचार', 'केरल भारती' आदि मासिक एवं त्रैमासिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन एवं संपादन, अनुवाद के पाठ्यक्रमों का निर्माण, उच्च शिक्षा हेतु हिंदी के पुस्तकालयों के साथ-साथ उच्च शोध संस्थानों की स्थापना - जैसे समयानुकूल कार्य किये गए। इस संस्था के योगदान का सम्यक मूल्यांकन करते हुए र. शौरीराजन ने लिखा है -

"सभा अब सैकड़ों शाखा-प्रशाखाओं में फैलकर बृहद् वटवृक्ष की तरह परिव्याप्त है। सन् 1920 से अब तक सवा पाँच करोड़ दक्षिण भारतवासियों को हिंदी सिखा चुकी है। दो हज़ार परीक्षा केन्द्रों में, बारह हज़ार सक्रिय हिंदी प्रचारकों और वर्ग केन्द्रों के द्वारा परीक्षार्थी अनुस्तरित हिंदी परीक्षाओं में शामिल होते हैं। दक्षिण भारत प्रचार सभा, इसकी भगिनी हिंदी संस्थाएँ दक्षिण भारत में हिंदी को राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रीय एकता के साधक-संबल के रूप में फैला रही हैं।"[8]

स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अनवरत संघर्ष करते हुए महान स्वतंत्रता सेनानियों को सर्वमान्य राष्ट्रभाषा की आवश्यकता महसूस हुई। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने हिंदी साहित्य सम्मेलन के माध्यम से गैर-हिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य सम्पादित किया। गैर-हिंदी भाषी क्षेत्रों के लोगों के मध्य फैले भ्रम को दूर करना तथा नई लिपि के साथ एक भाषा को स्वीकार करना असंभव प्रतीत हो रहा था। इसके अतिरिक्त गांधी जी अपने सद्प्रयासों के बल पर हिंदी भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करने हेतु दृढ़ संकल्पित थे। हिंदी साहित्य सम्मेलन के 24वें अधिवेशन में गांधी जी ने अपने अभिभाषण के दौरान कहा था –

"मैं हमेशा से यह मानता रहा हूँ कि हम किसी भी हालत में प्रांतीय भाषाओं को मिटाना नहीं चाहते। हमारा मतलब तो सिर्फ़ यह है कि विभिन्न प्रान्तों के पारस्परिक संबंध के लिए हम हिंदी भाषा सीखें। ऐसा कहने से हिंदी के प्रति हमारा कोई पक्षपात प्रकट नहीं होता। हिंदी को हम राष्ट्रभाषा मानते हैं। यह राष्ट्रीय होने के लायक है। वही भाषा राष्ट्रीय भाषा बन सकती है, जिसे अधिसंख्यक लोग जानते-बोलते हों और जो सीखने में सुगम हो। ऐसी भाषा हिंदी ही है।"[9]

हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के नागपुर अधिवेशन में दक्षिण भारत के अतिरिक्त अन्य हिंदीतर प्रदेशों तथा विदेशों में भी हिंदी प्रचार के लिए राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना वर्धा में करने का प्रस्ताव पारित हुआ। 4 जुलाई, 1936 ई. को सेवाग्राम आश्रम में स्थित महात्मा गांधी के निवास स्थान पर बैठक हुई, जिसमें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा का गठन किया गया। इस समिति का प्रथम अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद को बनाया गया। इस संस्था की स्थापना के महत्त्व को रेखांकित करने वाले डॉ. अनंतराम त्रिपाठी का मंतव्य द्रष्टव्य है –

"गुलाम और गूंगे भारत को स्वतंत्र और आत्मनिर्भर बनाने के लिए गांधी जी ने जो विविध कार्यक्रम अपनाए और उन्हें संस्थागत रूप दिये, उनमें से एक राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा है। एक राष्ट्र और एक राष्ट्रभाषा का पवित्र संकल्प लेकर गांधी जी ने इस समिति की प्राण-प्रतिष्ठा की और उनकी परिकल्पना को मूर्त रूप देने में डॉ. राजेंद्र प्रसाद, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, आचार्य नरेन्द्र देव, आचार्य काका कालेलकर, सेठ जमनालाल बजाज, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, पं. माखनलाल चतुर्वेदी, श्री वियोगी हरि आदि महानुभावों ने अथक प्रयास किए।"[10]

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार थे –

(1) देश के साथ-साथ विदेशों में हिंदी के प्रति अनुराग उत्पन्न करना एवं हिंदी का प्रचार करना।
(2) हिंदी भाषा एवं साहित्य की अभिवृद्धि हेतु उपयोगी पुस्तकें लिखवाना।
(3) अनुवाद करना और उन्हें प्रकाशित करना।
(4) हिंदी की शिक्षा का प्रबंध करना।
(5) भावात्मक एकता के लिए भाषायी सहयोग के द्वारा अनुकूल वातावरण तैयार करना, आदि।

इस संस्था द्वारा भारत के विभिन्न प्रदेशों में हिंदी का प्रचार-प्रसार करने हेतु 17 प्रादेशिक राष्ट्रीय समितियों का गठन किया गया। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन का प्रथम आयोजन 1975 ई. में, नागपुर में हुआ, जिसकी अध्यक्षता मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ. सर शिवसागर रामगुलाम ने की थी।

हिंदीतर क्षेत्रों में कार्यरत हिंदी सेवी संस्थाओं में ओडिशा राष्ट्रभाषा परिषद्, जगन्नाथपुरी अपना अन्यतम स्थान रखता है। सन् 1934 ई. में स्थापित इस संस्था का शुभारंभ प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा कटक के एक अंग के रूप में हुआ था। इस संस्था के उद्देश्य इस प्रकार थे –

(1) देवनागरी लिपि में हिंदी का प्रचार करना।
(2) भारत में भाषा के प्रसार हेतु समन्वित वैयक्तिक प्रयासों को सुनिश्चित करना।
(3) स्वतंत्र हिंदी पाठ्यक्रमों का निर्माण कर परीक्षाओं का संचालन करना।
(4) आवश्यकतानुसार हिंदी विद्यालय का संचालन करना।

परिषद् ने हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु कई क्षेत्रीय केन्द्रों की स्थापना भी की। वर्तमान में, इस परिषद् की 10 शाखाएँ ओडिशा में तथा उससे बाहर कार्यरत हैं और यह परिषद् हिंदी भाषा के संवर्द्धन हेतु निरंतर सक्रिय योगदान दे रहा है।

भारतीय जनमानस द्वारा हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करने की प्रतिज्ञा के फलस्वरूप देश के अन्य भागों की ही भाँति असम के गुवाहाटी में, 3 नवंबर, 1938 ई. को, असम हिंदी प्रचार समिति की स्थापना की गयी। कालांतर में, असम हिंदी प्रचार समिति ही असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी के नाम से विख्यात हुई। असम राज्य तथा हिंदी भाषा एवं साहित्य का पारस्परिक संबंध प्राचीनकाल से ही रहा है। इस प्राचीन संबंध की पड़ताल करते हुए डॉ. सी. इ. जीनी लिखते हैं –

"राष्ट्रभाषा प्रचार का इतिहास असम में भले ही 20वीं शताब्दी के चौथे दशक से औपचारिक रूप से प्रारंभ हुआ हो, परन्तु असम में हिंदी की परंपरा बहुत ही पुरानी है। इस दृष्टि से असम क्षेत्र में हिंदी के संबंध में सर्वप्रथम जिन महामानवों के नाम बलात स्मृति-पटल पर उभरते हैं, वे महामानव हैं - शंकरदेव, माधवदेव और उनके अनुयायी। शंकरदेव और माधवदेव के नाटकों और गीतों में जिस भाषा का प्रयोग हुआ है, उसे 'ब्रजबुलि' की संज्ञा दी गयी है।"[11]

यह संस्था हिंदी भाषा एवं समन्वयवादी संस्कृति के प्रचार-प्रसार के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सन् 1951 से निरंतर अपना त्रैमासिक मुखपत्र 'राष्ट्रसेवक' प्रकाशित कर रही है।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् स्थापित होने वाली प्रमुख हिंदी सेवी संस्थाओं में से एक है। इस संस्था की स्थापना के संदर्भ में डॉ. धीरेंद्र वर्मा का मानना है –

"परिषद् का उद्घाटन 11 मार्च, 1951 ई. के दिन हुआ। तब से यह विभिन्न क्षेत्रों में द्रुतगति से कार्यशील है। उद्देश्यों की सफलता के लिए श्रेष्ठ साहित्य के संकलन एवं प्रकाशन की व्यवस्था की गयी। प्रारम्भिक एवं वरिष्ठ ग्रंथ-प्रणेताओं एवं नवोदित साहित्याकारों को पुरस्कार देने की योजना बनी और सोचा गया कि उपयोगी साहित्य

का संपादन करने वालों को आर्थिक सहायता प्रदान की जाएगी।"[12]

इस संस्था ने मात्र सात वर्षों की अल्पावधि में 3273 प्राचीन पांडुलिपियों का संग्रहण किया। परिषद् द्वारा आलोचनात्मक ज्ञान संपन्न त्रैमासिक 'परिषद् पत्रिका' का निरंतर प्रकाशन हो रहा है। इस परिषद् के उद्देश्य हैं -

(1) हिंदी के अभावों की पूर्ति करने वाले ग्रंथों का प्रकाशन करना।
(2) प्राचीन पांडुलिपियों का शोध और अनुशीलन करना।
(3) लोकसाहित्य का संग्रहण करना।
(4) साहित्यिक शोध हेतु पुस्तकालय का संचालन करना।
(5) विभिन्न भाषाओं के उपयोगी एवं प्रामाणिक ग्रंथों का हिंदी अनुवाद करना अथवा कराना, आदि।

हिंदी तथा हिंदी सेवी संस्थाओं के मध्य ठीक वही संबंध प्रतीत होता है, जो व्यक्ति एवं परिवार के मध्य होता है। जिस प्रकार व्यक्ति के विकास में परिवार का योगदान होता है, उसी प्रकार हिंदी भाषा एवं उसके साहित्य को पुष्पित-पल्लवित करने में हिंदी सेवी संस्थाओं का अविस्मरणीय योगदान रहा है। हिंदी सेवी संस्थाओं को हम मुख्यतः तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं, यथा -

(1) हिंदी प्रदेश की हिंदी सेवी संस्थाएँ
(2) हिंदीतर प्रदेश की हिंदी सेवी संस्थाएँ
(3) विदेशों में कार्यरत हिंदी सेवी संस्थाएँ

हिंदी सेवी संस्थाओं में जिनका ज़िक्र उपरोक्त लेख में हो चुका है, उनके इतर हिंदी प्रदेश से भाषा संवर्द्धिनी सभा, अलीगढ़, गया धर्म सभा, गया, बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन, पटना, हिंदी विद्यापीठ, देवघर, हिन्दुस्तानी अकादमी, प्रयाग, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, दिल्ली, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, अखिल भारतीय भाषा साहित्य सम्मेलन, भोपाल, तथा हिंदीतर प्रदेश से हिंदी साहित्य सभा, कोलकाता, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, बंबई हिंदी विद्यापीठ, महाराष्ट्र सभा, पुणे, भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर, मैसूर हिंदी प्रचार परिषद्, बेंगलुरु, सौराष्ट्र हिंदी प्रचार समिति, राजकोट आदि एवं विदेशों में कार्यरत हिंदी सेवी संस्थाएँ हिंदी प्रचारिणी सभा, मॉरीशस, अक्षरम, इंग्लैण्ड, हिंदी परिषद्, नीदरलैंड, हिंदी सोसाइटी, सिंगापुर, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति, वर्जिनिया, अमेरिका आदि अन्यान्य प्रमुख हिंदी सेवी संस्थाएँ समवेत स्वर में हिंदी के संवर्द्धन एवं विकास में सतत रूप से अपना विशेष योगदान दे रही हैं। वास्तव में, आज हम जिस समर्थ हिंदी भाषा के उत्तराधिकारी बने हैं, उसको गढ़ने में उपरोक्त संस्थाओं का उल्लेखनीय योगदान है। हिंदी भाषा एवं साहित्य के विकास में ये संस्थाएँ मील का पत्थर सिद्ध हुई हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. श्यामसुंदरदास, मेरी आत्मकहानी, प्रयाग, इंडियन प्रेस लिमिटेड, 1941
2. विभूति मिश्र (सं), हिंदी की विकास-यात्रा और हिंदी सेवी संस्थाएँ, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2011
3. टंडन, प्रेमनारायण (सं), हिंदी सेवी संसार लखनऊ, विद्या मंदिर, 1965
4. राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन, 1952
5. शौरिराजन, आर., संपर्क भाषा : हिंदी के 50 वर्ष, भाषा - वर्ष 39, अंक 6, जुलाई-अगस्त 2000,
6. जीनी, डॉ. सी. आई., पूर्वांचल प्रदेश में हिंदी भाषा और साहित्य, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 1990
7. वर्मा, डॉ. धीरेंद्र (सं) हिंदी साहित्य कोश (भाग 2), वाराणसी, ज्ञानमंडल लिमिटेड, 1986

deepakpandeypcb29@gmail.com

मॉरीशस में विश्व हिंदी सम्मेलन की यात्रा के तीन अहम् पड़ाव

डॉ. बीर पाल सिंह यादव
वर्धा, भारत

हिंदी भाषा के सबसे बड़े सम्मेलन के रूप में प्रचलित विश्व हिंदी सम्मेलन, प्रारंभ से ही, हिंदी को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित करता रहा है। यह एक ऐसा आयोजन है, जिसमें विश्वभर से हिंदी प्रेमी एकत्रित होकर हिंदी की विकास-यात्रा का आकलन करते हैं और हिंदी को उत्तरोत्तर प्रगति की ओर ले जाने वाले बिंदुओं पर विचार-विमर्श कर उनके कार्यान्वयन की दिशा में सक्रिय होते हैं। विश्व हिंदी सम्मेलन की आयोजन-यात्रा सन् 1975 में भारत से शुरू हुई। विश्व हिंदी सम्मेलनों के आयोजनों द्वारा हिंदी को सशक्त वैश्विक भाषा के रूप में स्थापित करने के प्रयास किए जाते रहे हैं। इन सम्मेलनों द्वारा वैश्विक स्तर पर हिंदी के विकास के लिए भाषागत सद्भाव और सहयोग प्राप्त होता रहा है।

"प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में मुख्य अतिथि के रूप में भाग लेने वाले मॉरीशस के प्रथम प्रधानमंत्री डॉ. सर शिवसागर रामगुलाम ने नागपुर में यह प्रस्ताव रखा था कि हिंदी के व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए एक सक्षम संस्था बनाई जाए। उपस्थित सभी प्रतिनिधियों ने तुमुल ध्वनि से उस प्रस्ताव का स्वागत किया था। सन् 1976 में, मॉरीशस में आयोजित दूसरे विश्व हिंदी सम्मेलन में इसका नामकरण किया गया और कहा गया कि यह संस्था 'विश्व हिंदी सचिवालय' के नाम से काम करेगी। भारत के साथ मिलकर, सम्मिलित रूप से, हिंदी के विश्व रूप को स्थापित करना मॉरीशस के लिए गौरव की बात थी। विश्व हिंदी सचिवालय में भारत और मॉरीशस की साझेदारी का एक अधिनियम मॉरीशस की संसद ने पारित किया और सन् 2007 से यह संस्था कार्यरत है।"[1] इस संस्था के माध्यम से हिंदी को विश्व भाषा बनाने के लिए अथक प्रयत्न जारी है।

अभी तक ग्यारह सम्मेलन भारत और विश्व के विभिन्न स्थानों में आयोजित किए जा चुके हैं। मॉरीशस और भारत ही ऐसे दो देश हैं, जहाँ तीन-तीन बार विश्व हिंदी सम्मेलनों का आयोजन हुआ है। मॉरीशस के सौंदर्य पर मुग्ध धर्मवीर भारती ने लिखा था –

"वह द्वीप सुंदर है, प्यार भरा है। दक्षिणी तट का शांत, कहीं अंगूरी, कहीं धानी, कहीं फ़ीरोज़ी और कहीं मंदिर के पुराने पवित्र काई जमे पोखरों जैसे रंगवाला सुहावना समुंदर है। द्वीप को चक्र की तरह घेरी हुई, लहरें उछालती हुई प्रवाल रेखा और उत्तरी तट का गहरा नीला और चट्टानों से टकराकर फ़ेन उगलता विक्षुब्ध महासागर है। गाढ़ी काली रात में ज्वालामुखी के शून्य वृत्ताकार क्रेटर पर खड़े होकर सचमुच आकाश छूने और तारे तोड़ लाने का अहसास होता है। नीली धुंध में ढँके पहाड़, मीलों-तक फैले गन्ने के खेत, चीड़ के जंगल और पानी की लहरातीं झीलें हैं। द्वीप में पक्की सड़कें, छोटे-छोटे कलात्मक कॉटेज, शामारेल की रहस्यमयी रंग-बिरंगी धरती और पाँप्लेमूस के थालीदार पत्तोंवाले शतदल कमल और सैकत तटों के जादू रेखाओं वाले शंख और चीड़ वनों के बारहसिंगे हैं! इस छोटे से द्वीप को विधाता ने किन प्रेरित क्षणों में गढ़ा होगा, कौन-सा देश है दुनिया में जहाँ प्रकृति ने इतना सौंदर्य बाहर से बिखेरा हो और इतना भावभीना प्यार लोगों के हृदयों में हो? ये दो आयाम हैं, इस इंद्रधनुषी द्वीप के आंतरिक और बाह्य सौंदर्य के!"[2]

इन पंक्तियों के माध्यम से हिंदी लेखकों के हृदय में मॉरीशस की धरती के प्रति अनुराग एवं अटूट लगाव दिखाई देता है।

दूसरे विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन मॉरीशस में किया गया था। भारतवंशियों के लिए यह विशेष रूप से गौरव का अवसर था, क्योंकि हिंदी के कारण ही भारत से उनका भावात्मक एवं रचनात्मक संबंध बना हुआ है। 28 से 30 अगस्त, 1976 को मॉरीशस की राजधानी पोर्ट लुई से कुछ ही दूरी पर स्थित महात्मा गांधी संस्थान में आयोजित सम्मेलन के राष्ट्रीय आयोजन समिति के अध्यक्ष मॉरीशस के प्रधानमंत्री डॉ. सर शिवसागर रामगुलाम थे। उन्होंने ही पहले विश्व हिंदी सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण प्रस्तुत किया था। मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम ने कहा था –

"हम मॉरीशसवासी हिंदी की महानता को भली प्रकार पहचानते हैं। यही एक भाषा है, जिसे लेकर पिछले 150 वर्षों में

हमने अपने बाप-दादाओं की परम्परा को ज़िन्दा रखा है। आप जानते हैं कि लगभग 150 वर्ष पहले हमारे बाप-दादा भारत से मज़दूर के रूप में मॉरीशस आए थे। आज उन्हीं मज़दूरों की मेहनत से हमारा देश एक प्रगतिशील देश बन सका है। हमारे देश में भारत के वंशजों के अलावा और कई लोग भी बसने आए। हम सभी ने मिलकर एक मिली-जुली सभ्यता और एक मिले-जुले समाज की रचना की है। हमारे छोटे से देश में फ्रेंच, इंग्लिश, उर्दू, तेलुगु, चीनी, तमिल, मराठी और गुजराती भाषाएँ बोली जाती हैं, लेकिन हिंदी सबसे अधिक लोग समझते-बोलते हैं।"[3]

इस भाषण से स्पष्ट पता चलता है कि भारत में जो स्थिति हिंदी भाषा की अन्य भाषाओं के साथ सम्पर्क एवं सहयोग की है, लगभग वही स्थिति मॉरीशस में हिंदी की अन्य भाषाओं के साथ सम्पर्क एवं सहयोग की है। हिंदी भाषा के महत्त्व को बताते हुए प्रधानमंत्री श्री शिवसागर रामगुलाम ने भारत और मॉरीशस के संयुक्त प्रयासों की सराहना करते हुए कहा था –

"हिंदी के ही द्वारा भारत की सभ्यता को समझा और परखा जा सकता है। आप सबको यह जानकर खुशी होगी कि हमारे यहाँ भारत सरकार के सहयोग से बन रहे महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट में भी भारतीय चिंतन और दर्शन और साथ-साथ हिंदी का विकास होगा। इस महत्त्वपूर्ण संस्था का शिलान्यास मॉरीशस की परम मित्र श्रीमती इंदिरा गांधी ने किया था। हमें आशा है कि महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट न केवल मॉरीशस का एक बहुत मूल्यवान संस्थान बन सकेगा, बल्कि पूरे भारतीय महासागर क्षेत्र में भारतीय संस्कृति का एक महान केन्द्र बन सकेगा, जहाँ आस-पास के लेखक-विचारक आएँगे। इस प्रकार मॉरीशस को उस भाषा और संस्कृति की सेवा करने का एक और अवसर प्राप्त होगा, जिसने उसे पिछले 150 वर्षों में दुनिया में आगे बढ़ने की शक्ति दी है।"[4]

सम्मेलन के उद्घाटन एवं समापन समारोह की अध्यक्षता भारत के तत्कालीन स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन मंत्री डॉ. कर्ण सिंह ने की थी। सम्मेलन में चार पूर्ण शैक्षिक सत्रों का आयोजन किया गया था, जिनके विषय थे –

1) हिंदी की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति, शैली और स्वरूप
2) जन-संचार के साधन और हिंदी
3) हिंदी के प्रचार में स्वैच्छिक संस्थाओं की भूमिका
4) विश्व में हिंदी के पठन-पाठन की समस्या

सम्मेलन में एक पुस्तक-प्रदर्शनी एवं एक चित्र-प्रदर्शनी भी लगाई गई थी। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भारतीय कला केंद्र और मॉरीशस के महात्मा गांधी संस्थान तथा युवा एवं क्रीड़ा मंत्रालय की प्रस्तुतियाँ थीं। उस अवसर पर एक कवि-सम्मेलन का आयोजन भी किया गया था। उसी अवसर पर मॉरीशस के तीन डाक टिकट जारी किए गए थे तथा नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'तुलसी ग्रंथावली' के तृतीय खण्ड का लोकार्पण किया गया था। इस सम्मेलन में पहले विश्व हिंदी सम्मेलन में पारित मंतव्यों को पुनः स्वीकार्यता प्रदान करते हुए दो मंतव्य पारित किए गए थे :

1) मॉरीशस में एक विश्व हिंदी केंद्र की स्थापना की जाए, जो पूरे विश्व की हिंदी गतिविधियों का समन्वय कर सके
2) एक अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका का प्रकाशन हो, जो भाषा के माध्यम से हिंदी के समुचित वातावरण का निर्माण कर सके।

मॉरीशस में आयोजित इस दूसरे विश्व हिंदी सम्मेलन में 17 देशों के लगभग 181 प्रतिभागियों ने हिस्सा लिया था। दूसरे विश्व हिंदी सम्मेलन को मॉरीशस में आयोजित करके, वास्तव में, हिंदी को एक विश्व भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया था। सम्मेलन में न केवल हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप प्रकट हुआ, वरन् विश्व की अन्य भाषाओं के समकक्ष हिंदी की स्थिति का आकलन भी किया गया था। इस सम्मेलन द्वारा यह स्पष्ट हो गया था कि हिंदी विश्व स्तर पर अन्य विश्व-भाषाओं के साथ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगी। "विश्व हिंदी सम्मेलनों के क्रम में ऐतिहासिक दृष्टि से प्रथम नागपुर सम्मेलन और द्वितीय मॉरीशस सम्मेलन का अपूर्व महत्त्व है। प्रथम दो का महत्त्व इस दृष्टि से ही विशेष है कि प्रथम का तो सूत्रपात की दृष्टि से अपना अग्रणी महत्त्व है तथा दूसरे का स्थान इसलिए विशेष है कि एक भारतवंशी-बहुल देश में जहाँ मज़दूर बनकर भारत से आए प्रवासियों ने त्याग, तपस्या, साधना और बलिदान से हिंदी की अस्मिता की रक्षा की और उसका विकास किया।"[5]

चौथा विश्व हिंदी सम्मेलन 02 से 04 सितम्बर, 1993 को मॉरीशस की राजधानी पोर्ट लुई में आयोजित किया गया था। दूसरी बार मॉरीशस में आयोजित हो रहे इस समारोह की राष्ट्रीय आयोजन

समिति के अध्यक्ष मॉरीशस के कला, संस्कृति, अवकाश एवं सुधार संस्थान मंत्री श्री मुकेश्वर चुनी थे। तीसरे विश्व हिंदी सम्मेलन में प्रदर्शनी उद्घाटक एवं मॉरीशस प्रतिनिधि-मंडल के नेता श्री हरीश बुधू ने कहा था - "मॉरीशस में हिंदी हमारे धर्म, हमारी संस्कृति और हमारी परम्पराओं का प्रतीक है। यहाँ हिंदी से मेरा मतलब उन सभी भारतीय भाषाओं से भी है, जिन्हें डेढ़ सौ साल पहले से हमारे पूर्वजों ने, आँधी-तूफ़ानों में, विपरीत परिस्थितियों में भी बचाए रखा है। राष्ट्रीय शिक्षा की दृष्टि से मॉरीशस सरकार ने हर भाषा के पठन-पाठन और सृजन को सरंक्षण दे रखा है, किंतु हिंदी का अधिक प्रचार कार्य गैर-सरकारी ढंग से हुआ। एक ओर आर्य समाज और हिंदी प्रचारिणी सभा जैसी सभाओं ने देश के गाँव-गाँव में हिंदी पाठशालाएँ शुरू करवाईं, तो दूसरी ओर पंडित विष्णुदयाल ने सैकड़ों भाषा सेवी शिक्षकों को तैयार किया। भूतपूर्व प्रधानमंत्री डॉ. शिवसागर रामगुलाम ने हिंदी के लिए अनेक नीतियाँ लागू कराईं। फलस्वरूप, आज मॉरीशस में हिंदी भाषा रचना और सृजन की भाषा बनी है।"[6] सम्मेलन का उद्घाटन मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री सर अनिरुद्ध जगन्नाथ जी द्वारा किया गया था। 'हिंदी की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति' विषय पर दो पूर्ण सत्र थे तथा पाँच समानांतर सत्रों का आयोजन निम्नलिखित विषयों पर किया गया था -

1) हिंदी योजनाएँ एवं नीतियाँ
2) हिंदी साहित्य एवं साहित्यकार
3) हिंदी संचार एवं विज्ञान
4) बहुफलकीय हिंदी
5) हिंदी, संस्कृति एवं लोक साहित्य

अन्य कार्यक्रमों में हिंदी विकास संबंधी प्रदर्शनी लगाई गई थी। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भारतीय कला केंद्र, मॉरीशस के भोजपुरी सांस्कृतिक दल, महात्मा गांधी संस्थान तथा कला, संस्कृति, अवकाश एवं सुधार संस्थान मंत्रालय द्वारा प्रस्तुतियाँ दी गई थीं। सम्मेलन में भारत और मॉरीशस के अतिरिक्त अन्य देशों से लगभग दो सौ प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। इस अवसर पर मॉरीशस के चार विद्वानों को सम्मानित किया गया। पिछले तीन विश्व हिंदी सम्मेलनों में पारित संकल्पों की सम्पुष्टि करते हुए सात मंतव्य पारित किए गए। चौथे विश्व हिंदी सम्मेलन में शामिल हुए भारतीय प्रतिनिधि-मंडल के नेता श्री मधुकरराव चौधरी और उपनेता भारत के तत्कालीन गृह राज्यमंत्री श्री रामलाल राही थे।

11वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन 18-20 अगस्त 2018 को मॉरीशस के स्वामी विवेकानंद अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन केंद्र में आयोजित किया गया था। सम्मेलन का मुख्य विषय 'हिंदी विश्व और भारतीय संस्कृति' था। सम्मेलन हेतु शुभकामनाएँ देते हुए विदेश मंत्री एवं प्रवासी भारतीय कार्य मंत्री सुषमा स्वराज ने अपने संदेश में कहा था कि "भारत और मॉरीशस के बीच प्रगाढ़ रिश्ते हैं और वैश्विक पटल पर हिंदी को आगे बढ़ाने में मॉरीशस का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इसका उदाहरण है कि वर्ष 1976 और 1993 में विश्व हिंदी सम्मेलनों का आयोजन मॉरीशस में किया जा चुका है और अब तीसरी बार मॉरीशस में यह आयोजन होने जा रहा है।"[7] हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाए जाने के आंदोलन की पृष्ठभूमि में मॉरीशस के तत्कालीन नेतृत्व का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है और यह राजनैतिक सहयोग लगातार मिलता रहा है।

इससे पूर्व नौवे विश्व हिंदी सम्मेलन में भारत सरकार की विदेश राज्य मंत्री श्रीमती प्रणीत कौर ने उद्घाटन-भाषण में हिंदी के लिए मॉरीशस के प्रति अपने प्रेम को उजागर करते हुए उनके प्रयासों की सराहना की थी। उनके शब्दों में - "यहाँ मैं अपने प्रिय मित्र देश मॉरीशस का ज़िक्र किए बग़ैर नहीं रह सकती, लगभग 40 वर्ष की हमारी इस यात्रा में मॉरीशस न केवल शुरू से हमारे साथ रहा, बल्कि मैं कहूँगी कि वह कदम-से-कदम मिलाकर हमारे साथ चला। पहले विश्व हिंदी सम्मेलन में मॉरीशस के प्रधानमंत्री शिवसागर रामगुलाम, मॉरीशस से एक बड़ा प्रतिनिधि-मंडल लेकर आए और उन्होंने हमारी प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के साथ उस सम्मेलन में अहम भूमिका निभाई। सर शिवसागर रामगुलाम के प्रस्ताव पर उसके अगले वर्ष सन् 1976 में, दूसरा विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरीशस में आयोजित किया गया और उसके बाद 1993 में चौथा सम्मेलन भी मॉरीशस में किया गया। इतना ही नहीं, पहले ही सम्मेलन में सर शिवसागर रामगुलाम ने मॉरीशस की भूमि पर विश्व हिंदी सचिवालय स्थापित करने की बात कही थी। मुझे यह बताते हुए बहुत खुशी हो रही है कि भारत और मॉरीशस की सरकारों की समन्वित एवं निरंतर प्रयासों से यह सचिवालय मॉरीशस में स्थापित किया जा चुका है और इसने काम करना शुरू कर दिया है। यह सब हिंदी भाषा के लिए मॉरीशस की सरकार और मॉरीशस

के हमारे भाई-बहनों का प्रेम ज़ाहिर करता है।"[8] 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन के प्रतीक में भारत और मॉरीशस के राष्ट्रीय पक्षी मोर और डोडो एक साथ हिंद महासागर की लहरों में खड़े हैं। दोनों पक्षी 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन की संख्या 11 को हिंदी में दर्शाते हैं। विश्व हिंदी सम्मेलन के प्रतीक-चिह्न में मोर और डोडो का एक साथ खड़े होना, भारत और मॉरीशस के प्रगाढ़ मैत्री-संबंधों को स्पष्ट करने के साथ, मॉरीशस में हिंदी की विकास-यात्रा को भी दर्शाता है।

"भारत और मॉरीशस का संबंध बड़ा आत्मीय और प्रगाढ़ है। भाषा-संस्कृति के क्षेत्र में भारत जहाँ भी कोई अगुआई करता है, मॉरीशस सदैव उसके साथ खड़ा रहता है। सन् 1975 के जनवरी मास में प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन नागपुर, भारत में हुआ और उसके तुरंत बाद 28 से 30 अगस्त, 1976 में, मॉरीशस में, द्वितीय सम्मेलन आयोजित किया गया।"[9] "मॉरीशस में सन् 1976 में पहली बार विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन होना, उसके अप्रतिम हिंदी प्रेम का प्रतीक है, सन् 1975 में भारत में हुए सम्मेलन के तुरंत बाद मॉरीशस में हिंदी के लिए इतना विराट आयोजन करना मॉरीशस के आंतरिक हिंदी प्रेम का परिचय देता है। इस सम्मेलन के आयोजन से हिंदी का विराट स्वरूप पहली बार दृष्टिगत हुआ।"[10]

हिंदी के प्रति मॉरीशस के अनुराग को श्री नरेंद्र मोदी ने भी, दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन के उद्घाटन भाषण में याद किया था। दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन में, उद्घाटन-भाषण देते हुए, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा था - "पिछले दिनों जब प्रवासी भारतीय सम्मेलन हुआ था, तब हमारे विदेश मंत्रालय ने एक बड़ा अनूठा कार्यक्रम रखा था कि दुनिया के अन्य देशों में भारतीय लेखकों द्वारा लिखी गई किताबों का प्रदर्शन किया जाए। मैं हैरान भी था और खुश भी कि अकेले मॉरीशस से 1500 लेखकों द्वारा लिखी गई किताबें और वह भी हिंदी में लिखी गई किताबों का वहाँ पर प्रदर्शन हो रहा था। यानी दूर-दूर के देशों में भी हिंदी भाषा का प्यार, हम अनुभव करते हैं। हर कोई अपने-आप से जुड़ने के रास्ते खोज लेता है, कोई अगर इस भू-भाग में नहीं आ सकता है, या आने की संभावना नहीं होती है तो कम-से-कम हिंदी के दो-चार वाक्य बोलकर, वह अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त कर देता है।"[11]

जब 11वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन 18-20 अगस्त 2018 को मॉरीशस के स्वामी विवेकानंद अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन केंद्र में आयोजित किया गया था, तब सम्मेलन-स्थल को गोस्वामी तुलसीदास नगर नाम दिया गया। मॉरीशस की शिक्षामंत्री लीला देवी दुकन लछुमन ने स्वागत-भाषण दिया था। उद्घाटन-सत्र के आरंभ में ही भारत के दिवंगत राजनेता अटल बिहारी वाजपेयी को श्रद्धाजंलि अर्पित करते हुए दो मिनट का सामूहिक मौन रखा गया था। भारत की विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने कहा था - "इस सम्मेलन में आकर मेरे मन में दो भाव एक साथ उभर रहे हैं। पहला शोक का भाव और दूसरा संतोष का भाव। अटल जी के निधन पर शोक की छाया इस सम्मेलन पर है, किंतु दूसरा संतोष का भाव भी है कि समूचे विश्व के हिंदी प्रतिनिधि आज अटल जी को श्रद्धांजलि देने के लिए एकत्र हैं। गिरमिटिया देशों में लुप्त हो रही भाषा को बचाने की ज़िम्मेदारी भारत की है। भारत ने वह ज़िम्मेदारी संभाली है।"[12] 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन में विचार-विमर्श के लिए आठ समानान्तर सत्रों के विषय थे –

1) भाषा और लोकसंस्कृति के अंतर्संबंध
2) प्रौद्योगिकी के माध्यम से हिंदी सहित भारतीय भाषाओं का विकास
3) हिंदी-शिक्षण में भारतीय संस्कृति
4) हिंदी साहित्य में संस्कृति चिंतन
5) फ़िल्मों के माध्यम से भारतीय संस्कृति का संरक्षण
6) संचार-माध्यम और भारतीय संस्कृति
7) प्रवासी संसार : भाषा और संस्कृति
8) हिंदी बाल साहित्य और भारतीय संस्कृति

भारत सरकार के विदेश राज्यमंत्री श्री एम.जे. अकबर की अध्यक्षता में 'प्रौद्योगिकी का भविष्य' विषय पर विचार-गोष्ठी का आयोजन भी किया गया था। 16 अगस्त 2018 को, भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के निधन के कारण सम्मेलन में सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत नहीं किए गए। उद्घाटन-सत्र के पश्चात् अटल जी के निमित्त श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया, जिसमें देश-विदेश के विद्वानों ने अटल जी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की। इस सत्र में मॉरीशस के पूर्व प्रधानमंत्री अनिरुद्ध जगन्नाथ ने कहा –

"मैं अपने और अपने देश की ओर से अपने करीबी दोस्त और सहयोगी के लिए शोक व्यक्त करता हूँ, मैंने उनसे बहुत कुछ

सीखा है। अटल जी दोनों देशों के सांस्कृतिक संबंधों को अटल बंधन में बाँधने के लिए प्रयत्नशील रहे।"[13]

मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री प्रवीण कुमार जगन्नाथ ने सम्मेलन में आए सभी अतिथियों का स्वागत करते हुए एक महत्त्वपूर्ण बात कही थी। उनके शब्दों में –

"भारत को हम माता कहते हैं, इसलिए हम उसके पुत्र हुए और पुत्र अपना कर्तव्य जानता है, अत: हम हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाने का समर्थन करते हैं।"[14]

मॉरीशस के प्रतिष्ठित साहित्यकार अभिमन्यु अनत के सम्मान में मुख्य सभागार का नाम अभिमन्यु अनत सभागार रखा गया। हिंदी के लिए समर्पित रहे भारतीय एवं मॉरीशसीय विद्वानों के नाम पर समानान्तर सत्रों के कक्षों के नाम रखे गए थे, जैसे – 'गोपालदास नीरज कक्ष', 'भानुमति नागदान कक्ष', 'सुरुज प्रसाद मंगर भगत कक्ष' आदि।

प्रदर्शनी स्थल को 'रायकृष्ण दास' का नाम दिया गया। सम्मेलन के समापन-समारोह के मुख्य अतिथि मॉरीशस के कार्यवाहक राष्ट्रपति परमशिवम् पिल्लै वायापुरी ने कहा था - "हिंदी मोर के समान एक बहुत सुंदर और पवित्र भाषा है और वह अपने पंखों को विश्व के कोने-कोने में फैला रही है। मॉरीशस में हिंदी डोडो की तरह समाप्त नहीं होगी।"[15] विशिष्ट अतिथि के रूप में मॉरीशस गणराज्य के मार्गदर्शक मंत्री अनिरूद्ध जगन्नाथ ने कहा - "हिंदी को अंतर्राष्ट्रीय मंच पर पहचान दिलाने के लिए तथा भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार हेतु मॉरीशस की सरकार और मॉरीशसवासी अपना पूरा सहयोग देंगे।"[16]

11वें विश्व हिंदी सम्मेलन में 18 भारतीय एवं 18 विदेशी हिंदी सेवियों को विश्व हिंदी सम्मान से अलंकृत किया गया था। विश्व हिंदी सम्मेलन के इतिहास में पहली बार हिंदी सेवी संस्थाओं को भी विश्व हिंदी सम्मान से विभूषित किया गया था। दो हिंदी शिक्षकों को विशिष्ट हिंदी सम्मान से नवाज़ा गया। इस अवसर पर 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन के प्रतीक चिह्न के विजेता श्री रुचित यादव को भी पुरस्कृत किया गया। इस सम्मेलन में मॉरीशस के प्रधानमंत्री प्रवीण कुमार जगन्नाथ द्वारा दो डाक टिकट जारी किए गए। 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन में 20 देशों के दो हज़ार से अधिक प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया था।

अभी तक के विश्व हिंदी सम्मेलन अधिकांशत: ऐसे देशों में आयोजित किए गए हैं, जहाँ भारतीय समुदाय के लोग बड़ी संख्या में हैं। अभी तक के ग्यारह विश्व हिंदी सम्मेलनों में से भारत और मॉरीशस में तीन-तीन बार इनका आयोजन किया गया है। मॉरीशस में आयोजित हुए तीनों विश्व हिंदी सम्मेलनों में हिंदी प्रेमी भारतीय और विदेशी विद्वानों द्वारा हिंदी के विभिन्न पक्षों पर विचार-विमर्श हुआ और कई महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव भी पारित हुए। उनमें कुछ क्रियान्वित हो गए और कुछ को साकार करने की प्रक्रियाएँ चल रही हैं। इन सम्मेलनों में पारित प्रस्तावों के फलस्वरूप ही वर्धा में महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय और मॉरीशस में विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना हुई, लेकिन अभी तक हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा नहीं बनाया जा सका है। इन सम्मेलनों के कारण विश्व में हिंदी के प्रति जागरूकता में वृद्धि हुई है और अब हिंदी विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है। आशा है हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने का हिंदी प्रेमियों का स्वप्न जल्दी ही साकार होगा।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. विश्व हिंदी सम्मेलन : विराट का दर्शन, श्री राजेन्द्र अरुण, स्मारिका, 11वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन।
2. धर्मवीर भारती, मॉरीशस : इंद्रधनुष, काँपती प्रत्यंचा, स्मारिका 11वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन।
3. विश्व हिंदी सम्मेलन ग्रंथ 2012, भाषा की अस्मिता और हिंदी का वैश्विक संदर्भ, संपादक रवीन्द्र कालिया।
4. विश्व हिंदी सम्मेलन ग्रंथ 2012, रामगुलाम अध्यक्षीय उद्बोधन अंश
5. विश्व हिंदी सम्मेलन - उपलब्धियाँ एवं आशंकाएँ, लल्लन प्रसाद व्यास हिंदी की विश्व-यात्रा, संपादक सुरेश ऋतुपर्ण, गौरव प्रकाशन, दिल्ली।
6. तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन
7. श्रीमती सुषमा स्वराज, विदेश मंत्री एवं प्रवासी भारतीय कार्य-मंत्री, भारत सरकार, 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन में शुभकामना संदेश।

8. श्रीमती प्रणीत कौर, विदेश राज्यमंत्री, भारत सरकार, 9वें विश्व हिंदी सम्मेलन का उद्घाटन भाषण।
9. श्री अनिरुद्ध जगन्नाथ, पूर्व प्रधानमंत्री, मॉरीशस, 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन में उद्घाटन सत्र के पश्चात् अटल जी के निमित्त आयोजित श्रद्धांजलि सभा में प्रस्तुत वक्तव्य।
10. श्री प्रवीण कुमार जगन्नाथ, मॉरीशस के प्रधानमंत्री, 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन में स्वागत-भाषण।
11. श्री परमशिवम् पिल्लै वायापुरी, कार्यवाहक राष्ट्रपति, मॉरीशस, 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन के समापन समारोह के मुख्य अतिथि के रूप में प्रस्तुत भाषण।
12. श्री अनिरुद्ध जगन्नाथ, मॉरीशस गणराज्य के मार्गदर्शक मंत्री, 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन के समापन समारोह के विशिष्ट अतिथि के रूप में प्रस्तुत भाषण।

bpshv20@gmail.com

समावेशी भाषा हिंदी

डॉ. ज्योति यादव
उत्तर प्रदेश, भारत

भाषा संस्कृति की संवाहिका होती है और उसके साहित्य में संस्कृति की गहरी झलक मिलती है। इसीलिए भाषा और संस्कृति का अविच्छिन्न संबंध होता है। "भाषा के बिना यदि संस्कृति पंगु है, तो संस्कृति के अभाव में भाषा अंधी है।"[1] हिंदी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है। राहुल सांकृत्यायन ने कहा था - "हिंदी हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक व्यवहार में आने वाली भाषा है।"[2] वहीं जवाहरलाल नेहरू का मानना था "हिंदी का ज्ञान राष्ट्रीयता को प्रोत्साहन देता है और हिंदी अन्य भाषाओं की अपेक्षा सबसे अधिक राष्ट्रभाषा के योग्य है।"[3] फलत: हिंदी आज भारत की राजभाषा तथा देश के कई अन्य राज्यों की राजकीय भाषा के रूप में जानी-पहचानी जाती है। हिंदी सिर्फ़ भारत की ही नहीं, बल्कि विश्व की भाषा भी है, जिसके बोलने वाले देश के विभिन्न हिस्सों में रोज़गार या अन्य कारणों से फैले हुए हैं। ये अपने ज्ञान-विज्ञान और तकनीकी की मदद से न सिर्फ़ हिंदी का, बल्कि भारत का भी नाम रोशन कर रहे हैं।

हिंदी की सबसे बड़ी विशेषता उसकी समन्वयवादी शक्ति है। वह किसी भी भाषा के शब्दों को बिना किसी भेदभाव के अपना लेती है। अपनी इसी क्षमता और सामंजस्यपूर्ण स्वीकार्यता के कारण हिंदी देश के लगभग 58 फ़ीसदी लोगों द्वारा बोली जाती है। "भारत में, 1961 की जनगणना के अनुसार हिंदी भाषा तथा उसके विभिन्न रूप बोलने वालों की संख्या 22 करोड़ 52 लाख थी।"[4] भारत की जनगणना 2011 के अनुसार हिंदी बोलने वालों की संख्या में इज़ाफ़ा हुआ है। "जहाँ 2001 में, 41.03% लोगों की मातृभाषा हिंदी थी, वहीं 2011 में इसकी संख्या बढ़कर 43.63% हो गई, यानी 53 करोड़ लोगों की मातृभाषा हिंदी हो गई। दूसरी तरफ़ पूरे देश के 13.9 करोड़ भारतीयों की मातृभाषा और 53 करोड़ लोगों की दूसरी भाषा हिंदी है। 55% भारतीयों की मातृभाषा या दूसरी भाषा हिंदी है। पूरी दुनिया में 64.6 करोड़ लोगों की बोलचाल की भाषा हिंदी है।"[5]

अतः भारत ही नहीं, पूरे विश्व में हिंदी का वर्चस्व तेज़ी से बढ़ रहा है। "सन् 1900 से 2021 के दौरान यानी 121 सालों में हिंदी के बढ़ने की रफ़्तार 175.52 फ़ीसदी रही। यह अंग्रेज़ी की 380.71 फ़ीसदी के बाद सबसे तेज़ प्रगतिशील भाषा है। अंग्रेज़ी और मंदारिन के बाद हिंदी दुनिया की तीसरी सबसे ज़्यादा बोली जाने वाली भाषा है। वर्ष 1900 में यह दुनिया में सबसे ज़्यादा बोली जाने वाली भाषाओं में चौथे स्थान पर थी। उस समय मंदारिन भाषा पहले स्थान पर थी, स्पेनिश दूसरे और अंग्रेज़ी तीसरे पायदान पर थी। जैसे-जैसे भारत तरक्की की राह पर बढ़ा, भारतीय भाषाओं का और विशेषतः हिंदी का महत्त्व बढ़ा। लंबी यात्रा तय करने के बाद हिंदी, वर्ष 1961 में, स्पेनिश को पीछे छोड़कर दुनिया की तीसरी सबसे ज़्यादा बोली जाने वाली भाषा बन गई। तब दुनियाभर में 42.7 करोड़ लोग हिंदी बोलते थे। इनकी संख्या 2021 में बढ़कर 64.6 करोड़ तक पहुँच गई। यह संख्या उन 53 करोड़ लोगों के अतिरिक्त है, जिनकी मातृभाषा हिंदी है। इतना ही नहीं, अब तो यह शीर्ष 10 कारोबारी भाषाओं में भी शुमार है।"[6]

विश्व में आज विज्ञान और तकनीकी का बोलबाला है। इंटरनेट की पहुँच ने पूरे विश्व के लोगों को हर स्तर पर जोड़ा है। "इस विश्वव्यापी तकनीक ने हिंदी के विस्तार को सात समंदर पार तक पहुँचा दिया है। अपने वतन और माटी से दूर रहने वाले लोग, अपनी पहचान और अपनी एकता के लिए, अपनी माटी को ही बुनियाद बनाते हैं। अब इस बुनियाद में भारतीय भाषाएँ भी जुड़ गई हैं। पाकिस्तान और बांग्लादेश के लोग भी विदेशी धरती पर खुद की पहचान हिंदी या हिंदुस्तानी ज़ुबान के ज़रिए बनाने की कोशिश करते हैं। भारतीय उपमहाद्वीप की अपनी सरज़मीन पर भारत-पाकिस्तान के बीच भले ही विरोधी माहौल हो, लेकिन भारतीय उपमहाद्वीप से दूर सात समंदर पार हिंदी हमें जोड़ने का साधन बन रही है, तो इसका स्वागत होना चाहिए। हिंदी को इस चुनौती को भी स्वीकार करना होगा, ताकि उसका रूप और विकसित हो तथा वह सीमाओं के आरपार की मादरी ज़ुबान की तरह विकसित हो सके। वैसे जिस तरह बाज़ार इस मोर्चे पर हिंदी को आधार दे रहा

है, उससे साफ़ है कि हिंदी यह लक्ष्य भी जल्द हासिल कर लेगी। इसलिए उसे तैयार होना होगा, यह तैयारी शब्द-संपदा बढ़ाकर, उसकी बुनियादी पहचान बनाकर, ज्ञान-विज्ञान की भाषा के तौर पर उसका व्यवहार बढ़ाकर की जा सकती है।" [7]

हिंदी द्वारा सबको आत्मसात करने के कारण ही इसकी उन्नति भी निरंतर हो रही है। "मुंबई विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के वरिष्ठ प्रोफ़ेसर डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय ने बताया कि गूगल पर 7 सालों में हिंदी सामग्री 94% की दर से बढ़ी है। गूगल पर 10 लाख करोड़ पन्ने हिंदी में उपलब्ध हैं। आज दुनिया के 10 सबसे ज़्यादा पढ़े जाने वाले अख़बारों में शीर्ष 6 हिंदी में प्रकाशित हैं। भारत से बाहर 260 से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। विदेशों में 28 हज़ार से ज़्यादा शिक्षण संस्थान हिंदी सिखा रहे हैं।" [8]

भारत के सांस्कृतिक समन्वय के लिए समय-समय पर जो प्रयास होते रहे हैं, उनमें हिंदी भाषा का विशेष योगदान रहा है। भारतीय संस्कृति के मूलमंत्र में उसकी उदारता और सहिष्णुता तथा 'वसुधैव कुटुंबकम्' की अवधारणा ने भी हिंदी के विकास का मार्ग प्रशस्त किया है। यदि हम पीछे मुड़कर देखें, तो हिंदी की समन्वयवादी भूमिका स्वत: स्पष्ट होती है। संत रामानंद ने भक्ति आंदोलन का सूत्रपात किया -"भक्ति द्रविड़ उपजी, लाए रामानंद/ प्रकट किया कबीर ने, सात दीप नौ खंड।" उन्होंने सिर्फ़ भक्ति ही नहीं लायी, बल्कि यहाँ की भाषा में उन्होंने अपनी भक्ति का प्रचार भी किया। गुरु नानक, कबीर, तुलसी, सूर, दादू, रैदास, मीरा इत्यादि संतों ने धार्मिक सहिष्णुता, सौहार्द और प्रेम का उपदेश दिया। हिंदू-मुस्लिम ऐक्य की भावना को बढ़ावा दिया। उक्त कारणों ने भी हिंदी की वृद्धि में योगदान दिया।

दूसरी तरफ़ जब वली दकनी दक्षिण से दिल्ली आए, तब वे अपने साथ अपनी भाषा लेकर आए, जिसे 'दकनी हिंदी' कहा जाता है। इसे आजकल उर्दू वाले अपनी भाषा मानते हैं। इस तरह हिंदुओं और मुसलमानों की मिली-जुली सभ्यता और संस्कृति से देश का विकास होता रहा। रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में - "हिंदी साहित्य केवल हिंदू कवियों का ही निर्माण नहीं है, उसकी शक्ति और शोभा मुसलमानों ने भी बढ़ाई है। अमीर खुसरो, कबीर, जायसी, रहीम, रसखान, अनीस अहमद, कमाल, ताज़, नवाज़, फ़ख़रुद्दीन, आलम, शेख़, मुबारक एवं रसलीन - ये सबके सब मुसलमान थे। हिंदी की परंपरा साम्प्रदायिक परंपरा नहीं - एकता, उदारता, सामाजिक समानता और वैयक्तिक स्वतंत्रता की परंपरा है।"[9] इसी तरह, "1857 का जो स्वतंत्रता आंदोलन था, वह हिंदी और उर्दू में साथ-साथ चला था। बहादुरशाह ज़फ़र के नाम से एक शेर प्रसिद्ध है - हिंदियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की, तख्ते लंदन तक चलेगी तेग हिंदुस्तान की।"[10]

औपनिवेशिक शासन से मुक्ति के लिए भारत के स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान हिंदी आंदोलनकारियों को जोड़ने वाली भाषा रही थी। इसे 1909 से ही गांधी जी ने पहचान लिया था। वे पूरे देश को जोड़ने के लिए एक राष्ट्रभाषा की ज़रूरत को बड़े शिद्दत से महसूस कर रहे थे। ऐसी भाषा 'हिंदुस्तानी' ही हो सकती थी। इसके लिए उन्होंने जीवन पर्यन्त काम भी किया। 'हिंद स्वराज' में गांधी जी कहते हैं कि - "हर एक पढ़े-लिखे हिंदुस्तानी को अपनी भाषा का, हिंदू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को फ़ारसी का और सब को हिंदी का ज्ञान होना चाहिए। कुछ हिंदुओं को अरबी और कुछ मुसलमानों और पारसियों को संस्कृत भाषा सीखनी चाहिए। उत्तरी और पश्चिमी हिंदुस्तान के लोगों को तमिल सीखनी चाहिए। सारे हिंदुस्तान के लिए जो भाषा चाहिए, वह तो हिंदी ही होनी चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट रहनी चाहिए। हिंदू-मुसलमानों के संबंध ठीक रहें, इसलिए बहुत-से हिंदुस्तानियों का इन दोनों लिपियों को जान लेना ज़रूरी है।"[11]

गांधी जी पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक के भारतीयों को जोड़ने के लिए भाषा के रूप में हिंदी की पैरवी करते रहे, परंतु वे भारत की विविधता को देखते हुए, इसे किसी पर थोपना नहीं चाहते थे। मातृभाषा हिंदी और अंग्रेज़ी के सवाल पर उन्होंने कहा था कि - 'मैं नहीं चाहता कि मेरा घर चारों ओर से प्राचीरों से घिरा हुआ हो और मेरी खिड़कियाँ बंद हों। मैं चाहता हूँ कि मेरे घर में सभी देशों की संस्कृतियों का बिना रोक-टोक के प्रवेश हों, लेकिन मैं नहीं चाहता कि कोई भी संस्कृति मुझे अपनी जड़ों से उखाड़ दे। मैं दूसरों के घरों में घुसपैठिए, भिखारी या गुलाम की तरह नहीं रहना चाहता, मुझे कोई आपत्ति नहीं कि हमारे नवयुवक और युवतियाँ जितना चाहें अंग्रेज़ी और विश्व की अन्य भाषाएँ सीखें, लेकिन मैं उनसे उम्मीद करता हूँ कि वे अपने ज्ञान का पूरा लाभ

अपने देशवासियों को और विश्व को दें, जैसे श्री जगदीशचन्द्र बोस, राममोहन रॉय और रविंद्रनाथ ठाकुर ने किया था। मैं यह कभी बर्दाश्त नहीं करूँगा कि एक भी भारतीय अपनी मातृभाषा के प्रति हीन भाव महसूस करे और यह समझे कि वह देसी भाषा में न उच्च कोटि के विचार सोच सकता है और ना व्यक्त कर सकता है।"

पंडित जवाहरलाल नेहरू भी भाषा के समन्वयकारी पक्ष के समर्थक थे। उन्होंने भी भाषा के प्रति दकियानूसी विचार नहीं रखा, अपितु यह कहा - "किसी भाषा को ऐसी तंग कोठरी में बंद कर दिया जाए, जिसमें कोई दरवाज़ा और खिड़की न हो और प्रगतिशील परिवर्तन के आने की गुंजाइश न रहे, तो उसमें निश्चितता और छटा भले ही क्यों न हो, बदलते वातावरण में जन-साधारण के साथ उसका संपर्क टूट जाने की संभावना रहती ही है। उसमें एक तरह की कृत्रिमता आ जाती है। यह अच्छी बात नहीं होगी। परंतु तेज़ी से बदलने वाले युग में तो बंद कमरे में भाषा मर ही जाएगी।"[12] भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद भी हिंदी में अन्य भाषाओं के शब्दों को सम्मिलित करने के पक्षधर थे। अपनी आत्मकथा में वे कहते हैं - "कोई भी हिंदी का लेखक - चाहे वह कितना भी विदेशी शब्दों का विरोधी क्यों न हो, सभी विदेशी शब्दों का बहिष्कार नहीं करना चाहता और न अपने लेखों अथवा भाषणों में उनका बहिष्कार करता है।"[13]

हिंदी भाषा की इसी सहिष्णुता से उसकी शब्द-संख्या में वृद्धि हुई है। इसका समर्थन करते हुए डॉ. राजेंद्र प्रसाद कहते हैं - "मैं इस बात का हिमायती हूँ कि जिस भाषा का शब्द-भंडार जितना भरा-पूरा होगा, वह भाषा उतनी ही अधिक उन्नत होगी। यदि एक ही अर्थ में कई शब्द होंगे, तो उनके अर्थ में थोड़ा-बहुत भेद होता जायेगा और उसमें बारीकियाँ आती जाएँगी। विचार की सूक्ष्मता को व्यक्त करने की शक्ति ऐसी भाषा में अधिक होती जाएगी। जीती-जागती भाषा दूसरी भाषाओं के संपर्क से तो लाभ उठाती जाएगी और उसका शब्द-भंडार बढ़ता जायेगा। वह इस बात से डरकर, घोंघे की तरह, अपनी खोपड़िया के अंदर घुसकर अपने को बंद नहीं कर लेती, जिससे कि बाहर की हवा से, बाहर के शब्दों से, वह पिस जाएगी और अपना अस्तित्व ही खो देगी। वह हिम्मत के साथ खुलेआम संघर्ष में आएगी और दूसरी भाषाओं के अच्छे भावग्राही शब्दों को अपने में मिला लेगी। हाँ, ऐसा करने में वह अपने नियमों को, अपने रूप को, नहीं बदलेगी। अपनी पोशाक और अपनी सजावट को भले ही बदल ले और उसमें भले ही विचित्रता लाए।"[4] वे हिंदी द्वारा विदेशी शब्दों को ग्रहण करने से पहले यह शर्त रखते हैं - "मेरा कहना था कि हिंदी को विदेशी शब्दों के ग्रहण करने में हिचकना नहीं चाहिए, चाहे वे फ़ारसी और अरबी के हों या अंग्रेज़ी के, पर जो शब्द हिंदी में आए उन्हें हिंदी का बन जाना चाहिए। अर्थात् हिंदी में आकर वे अपने साथ अरबी-फ़ारसी या अंग्रेज़ी का व्याकरण हिंदी में न दाखिल करें, बल्कि वे हिंदी व्याकरण के अनुशासन के अधीन होकर रह जाएँ।"[15]

देखा जाए, तो हिंदी अन्य भाषाओं के शब्दों को अपनी प्रकृति के अनुसार ही गृहीत करती है। जैसे - 'ट्रेन' अंग्रेज़ी भाषा का शब्द है। जिसका अंग्रेज़ी में बहुवचन 'ट्रेन्स' होगा, लेकिन हिंदी में 'ट्रेन्स' नहीं बोला जाता है, हिंदी में इसका बहुवचन रूप बनाते समय हम 'ट्रेनें' बोलते हैं। ऐसे और बहुत से उदाहरण दिए जा सकते हैं। स्पष्ट है कि हिंदी एक ग्रहणशील भाषा है। अपनी ग्रहणशीलता के कारण हिंदी ने विभिन्न भाषाओं के शब्दों को ग्रहण ही नहीं किया है, बल्कि उन्हें अपनी प्रकृति के अनुरूप आत्मसात भी किया है। सभी भाषाओं के शब्दों को गृहीत करने की क्षमता के कारण ही हिंदी की सरलता और प्रवाह में निरन्तर वृद्धि हुई है। यह कथन सत्य ही है कि "हिंदी भाषा उस समृद्ध जल-राशि के सदृश है, जिसमें अनेक नदियाँ मिली हों।" [16] पूरे विश्व में जहाँ भी हिंदी भाषी गये, उन्होंने अपनी संस्कृति और भाषा के इन गुणों को अक्षुण्ण रखा है। इसका उदाहरण हम त्रिनिदाद-टोबेगो, मॉरीशस, फ़िजी, सूरीनाम तथा दक्षिण अफ़्रीका आदि देशों में प्रत्यक्ष रूप से देख रहे हैं।

संदर्भ-ग्रंथ :

1. आजकल, जून 2015
2. डॉ. श्याम सिंह शशि, हिंदी हम सबकी, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पुनर्मुद्रित संस्करण दिसंबर-1990
3. डॉ. भोलानाथ तिवारी, हिंदी भाषा, किताब महल प्रकाशन इलाहाबाद, पुनर्मुद्रित संस्करण-2016
4. अमर उजाला (वाराणसी संस्करण), 14 सितम्बर 2022
5. अमर उजाला, 14 सितम्बर 2022

6. गांधीजी, हिन्द स्वराज, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, पन्द्रहवाँ संस्करण : सितम्बर 2019
7. जवाहरलाल नेहरू, राष्ट्रभाषा का सवाल, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, प्रथम संस्करण : मई 1949
8. राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, एन.बी.टी, नई दिल्ली, पाँचवी आवृत्ति, 2010
9. हिंदी हम सब की

umesh198129@gmail.com

गिरमिटिया देशों में हिंदी को लेकर होती तनातनी : ये तेरी हिंदी ये मेरी हिंदी

श्रीमती अरुणा घवाना
नई दिल्ली, भारत

"ये तेरा घर ये मेरा घर, किसी को देखना हो गर
तो पहले आके माँग ले, तेरी नज़र मेरी नज़र
ये तेरा घर ये मेरा घर, ये घर बहोत हसीन हैं।"

हिंदी फ़िल्म 'साथ-साथ' का यह गीत गाते हुए चित्रा सिंह और जगजीत सिंह ने कभी नहीं सोचा होगा कि हिंदी के लिए भी कुछ ऐसा तेरा-मेरा होगा - 'यह तेरी हिंदी, यह मेरी हिंदी और वह है, सबकी हिंदी, जो बहोत हसीन है।'

गिरमिट शब्द सुनकर एक दर्द भरे दौर का चित्र उभर आता है, जहाँ एक वंचित और शोषित गिरमिट वर्ग था। इसे बहला-फुसलाकर भरपेट रोटी और सुंदर भविष्य के सपने दिखाकर इन द्वीपों में खेती के लिए लाया गया, जिन्हें आबाद करने के लिए स्वयं वहाँ के मूल निवासी भी तैयार नहीं थे। वे अब देश विशेष के सम्मानित, प्रतिष्ठित, समृद्ध व स्थापित नागरिक बन चुके हैं, जिसमें मॉरीशस के प्रथम प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम का नाम एक जीवन्त उदाहरण है। अब तो इन देशों में गिरमिटियों की यह तीसरी और चौथी पीढ़ी है। उपनिवेशवादी और साम्राज्यवादी ताकतों के अमानवीय कृत्यों के फलस्वरूप गिरमिटियों द्वारा बसाए गए देशों में हिंदी का लिखित और मौलिक रूप अलग है, जिसका बड़ा कारण उन देशों में हिंदी को दिया गया स्थान है। गिरमिट देशों में हिंदी का अपना एक नया रूप विकसित हुआ। हिंदी गिरमिट देशों की स्थानीय भाषा के साथ एक नए कलेवर को लेकर आई - जैसे सूरीनाम में सरनामी हिंदी, फ़िजी में 'फ़िजीबात'। हाँ, यह ज़रूर है कि यह मानक हिंदी के स्तरों को नहीं छू पा रही है, पर यहाँ दो पहलुओं को देखने की आवश्यकता है। गिरमिटिया अपने-अपने प्रदेशों से बोलियाँ [मुख्यतः अवधी, भोजपुरी और मैथिली] साथ लेकर उपनिवेशों में गए थे। कई बोलियाँ बोलने वालों को एक ही जहाज़ से इन क्षेत्रों में ले जाया गया था, यह मिली-जुली भाषा, हिंदी का रूप तो पूरी तरह नहीं ले सकी, पर कुछ वैसी ही बन पड़ी। कालांतर में, यह भाषा स्थानीय भाषाओं के साथ मिलकर संप्रेषण का माध्यम बनी। यदि इन्हें मानक हिंदी के आधार पर देखा जाए, तो यह किसी श्रेणी में नहीं आती, फिर भी अनुभूतियों से विभूषित ये भारतवंशी हिंदी पढ़ने भारत आते हैं।

एक ओर भारत में हिंदी का रूप जानने और दूसरी ओर गिरमिटिया देशों में हिंदी का क्रियोल स्वरूप होने के कारण इन गिरमिटिया देशों में हिंदी के अलग-अलग गुट बन गए, जो तेरी हिंदी और मेरी हिंदी की तनातनी में लग गए। इस हिंदी की तनातनी में ये लोग यह भूल बैठे हैं कि इसके कारण हिंदी भाषा का कतई भला नहीं हो पाएगा। वैसे भी इन गुटों को यह स्मरण होना चाहिए कि अंग्रेज़ों द्वारा जहाज़ में चढ़ाए जाने के बाद ही इस तरह की संपर्क भाषा का जन्म हुआ और इसी के सहारे अलग-अलग धर्मों और जातियों के होने के बावजूद कई वर्षों तक अंग्रेज़ अफ़सरों के कोड़े और बूट इन जहाज़ी भाइयों ने एक-साथ झेले। सब तरह के दुख-दर्द झेले। फिर मेरी अच्छी, तेरी बुरी की तनातनी क्यों?

"भारतेत्तर गिरमिटियों द्वारा बसाए गए देशों में हिंदी का स्थान एक-सा नहीं है। फ़िजी, मॉरीशस, गयाना तथा त्रिनिदाद में भारतीयों की संख्या अन्य जातियों की तुलना में लगभग समान है, अतः हिंदी को प्रशासन द्वारा भी सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं।"[1]

"हिंदी के अनेक रूपों में मारवाड़ी, खड़ी बोली, ब्रज अवधी तथा मैथिली; मुख्यतः साहित्यिक रचनाओं की भाषाएँ हैं। हिंदी भाषा एक समष्टि का नाम है।"[2]

हिंदी को लेकर होती तनातनी में कहीं हिंदी की बिन्दी मिट न जाए, इस बात का ध्यान गिरमिट देश के भारतवंशी हिंदी भाषियों को रखना होगा। मानक हिंदी और हिंदी में आए क्षेत्रीय शब्दों को हमें खुले दिमाग से अपनाना होगा। तभी हिंदी का भला हो सकेगा।

आपसी द्वेष के चलते हिंदी का भला नहीं हो सकता। यदि आप सचमुच हिंदी भाषा के हितैषी हैं, तो हिंदी को अपने अंदर नए अर्थों और क्षेत्रीय शब्दों को पिरोने दो।

भाषा बहती नदी-सी होती है, नदी जिस क्षेत्र-विशेष से

गुज़रती है, वहाँ की संस्कृति और संस्कार अपने अंदर समाहित कर लेती है, उसी प्रकार भाषा भी जिस क्षेत्र में पहुँचती है, वहाँ की संस्कृति और संस्कारों को अपने अंदर समाहित करते चलती है।

'प्रवासी भारतीय समाज के सामने आज कई चुनौतियाँ भी हैं, जो वस्तुतः प्रवासी होने के कारण उनकी प्रवासी नियति से जुड़ी हुई है। प्रवासी भारतीयों की भाषा के संदर्भ में आज एक बड़ी चुनौती है कि प्रवासी भारतीय हिंदी भाषा बोलने के साथ ही हिंदी को देवनागरी में लिख भी सकें। बिना लिपि-ज्ञान के भाषा-ज्ञान तो अधूरा ही होता है। इसके कारण भाषा जानने वालों के मन में आत्मविश्वास भी नहीं जग पाता है। फ़िजी, सूरीनाम आदि देशों में हिंदी आज भी रोमन लिपि में ही लिखी जाती है। यही स्थिति इंग्लैंड, अमेरिका, जर्मनी आदि देशों में बसे प्रवासी भारतीयों की भी है, जो हिंदी बोलते तो हैं पर देवनागरी के स्थान पर हिंदी रोमन में लिखते हैं। मुझे याद है कि जब चेतन भगत ने हिंदी को रोमन लिपि में लिखे जाने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया था, तब सम्पूर्ण हिंदी समाज ने उनका पुरज़ोर विरोध किया था। किसी ने इन प्रवासी भारतीयों को देवनागरी लिपि सिखाने की बात नहीं कही। भाषा सीखने की प्रक्रिया में, यदि भाषा आती हो, तो लिपि का सीखना बहुत ही सरल होता है और वह बहुत ही कम समय में लगभग एक सप्ताह में ही सीखी जा सकती है। यदि फ़िजी, मॉरीशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद, गयाना और खाड़ी के देशों में बसे हुए हिंदी बोलने वालों को योजनाबद्ध रूप में कार्यशालाएँ लगाकर देवनागरी लिपि सिखा दी जाए, तो हिंदी जानने वालों का आत्मविश्वास तो बढ़ेगा ही, हिंदी का सहज ही व्यापक स्तर पर प्रचार भी हो सकेगा।'[3]

सूरीनाम

सूरीनाम की बात करें, तो सरनामी हिंदी यहाँ की तीसरी बड़ी भाषा है, जिसे कुछ भाषाविद् भोजपुरी का एक रूप मानते हैं। सूरीनाम के युवा अब भी भारतीयता और हिंदी को ही जीते हैं। भारतीय मूल का भारतवंशी होने की बात को वे अपना सौभाग्य मानते हैं, वहाँ प्रेम और जुड़ाव प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है। हिंदी के प्रति मोह उनकी तीन पीढ़ियों में देखा जा सकता है। वे हिंदी बोलने और लिखने पर गौरवान्वित महसूस करते हैं। भारत ना जा पाने के मलाल के कारण वे किसी भारतीय को छूकर ही भारत को महसूस करते हैं। इससे अधिक मर्मस्पर्शी क्या हो सकता है? यहाँ भी हिंदी गुटबाज़ी और आपसी तनातनी में उलझी हुई दिखती है।

सूरीनाम से हिंदी शिक्षिका लैला लालाराम की कविता

ताजी यादें

वह घर
जहाँ होती थीं संस्कार की बातें
जहाँ परिवार एक साथ एक पंक्ति में सो आराम पाते
वह घर जो आज भी सपनों में आकर इन यादों को जगाती है।

वह आँगन
जहाँ खेल-कूद और मस्ती होती थी
जहाँ मुर्गी-दोक्सि गिरे हुए दाने के लिए दौड़ पड़ती
वह आँगन जो आज भी सपनों में आकर इन यादों को जगाती है।

वह तालाब
जहाँ से हम बाल्टी में पानी लाकर नहाती थीं
जहाँ का पानी पीकर गाय-बकरी अपनी प्यास बुझाती थीं
वह तालाब जो आज भी सपनों में आकर इन यादों को जगाती है।

गयाना

गयाना में हिंदी भाषा बोली तो जाती है, किंतु रोमन लिपि में लिखी जाती है। गयाना में जस्टिस ऑफ़ पीस एवं कमिश्नर ऑफ़ ओथ तथा मैरिज ऑफ़िसर पंडित हरिशंकर शर्मा का कहना है कि यहाँ हिंदी की स्थिति काफ़ी चिंताजनक है। या यों कहा जाए कि प्रायः लुप्त होने के कगार पर ही है। यह भारतीयों का दुर्भाग्य ही है कि हिंदी तो हिंदी, संस्कृत भी रोमन लिपि में लिखी जाती है। "भाषा और व्याकरणिक पक्ष के विश्लेषण से पता चला कि गयाना के पश्चिमी इलाकों से हिंदी लुप्त हो गई है। हाँ, अपनी शब्दावली में क्रियोल और अंग्रेज़ी के साथ हिंदी की संज्ञाओं का प्रयोग अब भी करते हैं... गयाना के बरबीस अंचल में जो पूर्व में सूरीनाम की

सीमा से लगा हुआ है, एक-आध वृद्ध लोग हिंदी या विकृत हिंदी में बोलते हैं। समस्या उनके लड़कों, लड़कियों और नाती-पोतों की है, क्योंकि वे हिंदी को समझ ही नहीं पाते हैं। हाँ, मातृभाषा की शब्दावली से अवश्य परिचित हैं।"[4]

गयाना में पुरखों से सीखी हिंदी भाषा और उसके आधुनिक रूप को देखकर अन्तर तो दिखता ही है, परन्तु साथ ही जो गुटबाज़ी का जन्म हुआ है वह हिंदी के अस्तित्व के लिए खतरा है।

त्रिनिदाद और टोबेगो में हिंदी

"हिंदी को भारतीयता के साथ जोड़ने की प्रवृत्ति 1950 के दशक में आरंभ हो गई थी। धार्मिक संस्थाओं ने यह समझ लिया था कि हिंदी के प्रारंभिक ज्ञान के बिना मंदिर भी उजड़ जाएँगे। हिंदी के प्रचार-प्रसार में पंडितों का बड़ा योगदान था।"[5]

इसके बाद हिंदी को बचाने का बहुत प्रयास किया गया, जिसमें प्रोफ़ेसर और महाकवि हरिशंकर आदेश के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता।

"जो प्रवासी भारतीय हिंदी पढ़ते हैं, उनका ध्येय होता है, पंडित बनना, भारत से व्यापार करना या भारत में उच्च शिक्षा के लिए जाना। त्रिनिदाद के पंडित हिंदी सीखने के बाद भी अपने मंत्र, भजन और वक्तव्य देवनागरी में नहीं लिख पाते हैं। वे लिखते हैं, रोमन लिपि में।

त्रिनिदाद में बोली जाने वाली मिश्रित हिंदी का भाषा-विश्लेषण भी हुआ। मोहन (1978) कहते हैं - "यहाँ की हिंदी प्रवासी भारतीयों की, 1950 के दशक के बाद, केवल शब्दावली के उपयोग तक सीमित रह गई है। एक तरह से अंग्रेज़ी में हिंदी आत्मसात हो गई है।"

भाटिया (1982) मानते हैं - शब्द भंडार केवल धर्म, खाना-पकाना, संस्कार, मसाले, बर्तन और रिश्तेदारी तक ही सीमित है। कुछ लोग तो त्रिनिदाद की हिंदी को 'क्रियोल हिन्दुस्तानी' भी कहते हैं।"[6]

त्रिनिदाद-टोबेगो में लोग हिंदी और संस्कृत को रोमन लिपि में लिखकर काम चला रहे हैं। हाँ, चटनी संगीत में हिंदी को वे अपने सांस्कृतिक कार्यक्रमों का हिस्सा ज़रूर बना लेते हैं, क्योंकि 'चटनी संगीत' भोजपुरी भाषा क्षेत्र से जुड़ा हुआ है। अब यहाँ भी एक वर्ग है, जो चटनी संगीत के माध्यम से हिंदी को अपनाता है और दूसरा वर्ग भारत से हिंदी की शिक्षा ग्रहण करके आया है। तो मेरी हिंदी, उसकी हिंदी से श्रेष्ठ होने का तुरा तो यहाँ भी चलता है। जबकि वे यह भूल जाते हैं कि भारत से हिंदी शिक्षा ग्रहण कर हिंदी के अन्य रूपों को वे नज़रंदाज़ नहीं कर सकते।

त्रिनिदाद से रुकमिनी होल्लास की एक कविता

फ़ेटल रोज़ेक जहाज़ में आइले, पाहिले थी नर-नारी
नौकरी के कारण आए, छोड़ पिता मातहारी
और जहाज़ में मिलकर आए, और भी नर-नारी
नौकरी के कारण आए, छोड़ पिता मातहारी
साहिब के एस्टेट में गैइले, मिलकर सब नर-नारी
पाँच बरस ता नागा काते, संकट परा है भारी
दुई बजे जब घंटा बाजे, जाग उठे नर-नारी
कोई बनावे आलू चौखा, बैंइगन की तरकारी
चार बजे जब घंटा बाजे तैयार भए नर-नारी
एक हाथ में बोली लेके, दूजे हाथ कुदारी
कितने जनता बैल पकर-पकर नादे बैल की गाड़ी
कितने और मौस्किटो काटे, जिगा के अधिकारी
पाँच बरस ता नागा काते, संकट परा है भारी
कोई लोग जगह, किन्ने कोई किन्ने गारी
देखो भैइया-बहन हमारी, माँ-बाप काम है भारी
धर्म और संस्कृति मनावे, लरकन को सिखावे
नौकरी के कारण आए छोड़

दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी - नेताली हिंदी

दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी के प्रति रुझान है, परन्तु यहाँ भी बाकी द्वीपों की तरह हिंदी रोमन लिपि में पढ़ी जाती है। यहाँ बोली जाने वाली हिंदी को नेताली हिंदी कहा जाता है। "माना जाता है कि वर्ष 1860 में हिंदी भाषा अपने ग्रामीण आंचलिक स्वरूप के साथ दक्षिण अफ़्रीका आई, जिसमें भोजपुरी और अवधी मिश्रित थीं। इससे कालांतर में जो संपर्क भाषा विकसित हुई, वह नेटाली हिंदी बनी, जिसे भोजपुरी लक्षणों की बाहुलता के कारण साउथ

अफ़्रीकन भोजपुरी भी कहा जाने लगा।"[7] दक्षिण अफ़्रीका की हिंदी में भी भारतीय बोलियों का प्रभाव देखा जा सकता है। ऐसे में वे लोग अंग्रेज़ी बोलना ज़्यादा पसंद करते हैं। एक वेबिनार में गांधी जी के बारे में हिंदी में वक्तव्य देने के बजाय वहाँ के विद्वान अंग्रेज़ी में वक्तव्य देना पसंद करते हैं। कारण स्पष्ट है कि वे गलत हिंदी नहीं बोलना चाहते। अजीब-सी विडंबना है, भाषा मृत्यु शैया पर है और आप सही और मानक हिंदी बोलने की ज़िद्द पर अड़े हैं। सही बोलने की ज़िद्द सही है, पर पूरी तरह बोलना तो बंद करना गलत है। "हिंदी एक भाषा का ही नहीं, वरन् एक भाषा समष्टि का नाम भी है। सभी उपभाषाओं में जिनमें भोजपुरी के साथ अवधी तथा खड़ी बोली भी शामिल हैं, पर्याप्त लोक साहित्य प्राप्त है तथा क्षेत्र विशेष में वहाँ के निवासियों की भावाभिव्यक्ति का माध्यम है।"[8]

मॉरीशस में हिंदी

मॉरीशस में भारत से हिंदी पढ़कर जाने वाले लोगों में यह बात ज़रूर देखी जा सकती है कि वे मानक हिंदी के प्रति ज़्यादा सजग हैं। किंतु बोलचाल की भाषा में भोजपुरी भाषा का पुट सुना जा सकता है। वर्तमान में डॉ. हेमराज सुंदर, डॉ. इन्द्रदेव भोला इन्द्रनाथ, श्री प्रह्लाद रामशरण, डॉ. उदय नारायण गंगू, डॉ. बीरसेन जगासिंह, श्री धनराज शंभु, आदि कई हिंदी साहित्यकार हैं, जिन्होंने अभिमन्यु अनंत की हिंदी की साहित्यिक धारा को आगे बढ़ाया है।

कवि धनराज शंभु की कविता के कुछ अंश प्रस्तुत हैं -

यह देश मेरा है
मुझे बड़ा गर्व है
मुझे बड़ी प्रसन्नता है
कि मैं इस पवित्र भूमि पर
जन्म पाकर धन्य हुआ
मुझे बड़ा गर्व है
कि यह देश मेरा है।

हालाँकि कुछ लोग इसको
अपनी पूंजी समझ बैठे
हर चीज़ पर अपना अधिकार जमाते
पर वे अनभिज्ञ हैं
कि कोई भी वस्तु शाश्वत नहीं
बदलना तो प्रकृति का नियम है
इसलिए मुझे गर्व है
कि यह मेरा देश है।
लोकतंत्र की दुहाई देते
लोक में इसको नमूना मानते
गरीबी उन्मूलन की कसमें खाते
पवित्र विचार तो हैं
पर पूर्ण रूप से अपना तो लें
ताकि गर्व से मैं कह सकूँ
यह देश मेरा है।

मॉरीशस में हिंदी आधिकारिक तौर पर कोई स्थान नहीं रखती, पर साहित्यिक विधा के लिए इस भाषा का बखूबी इस्तेमाल हो रहा है। यहाँ भी तेरी हिंदी, मेरी हिंदी गुट का दुखद अध्याय देखा जाता है। हिंदी शिक्षित लोग मानक हिंदी को ही हिंदी मानते हैं, जिसमें मुख-सुख की धारणा काम नहीं करती।

भोजपुरी मिश्रित हिंदी बोलने वाले को हेय दृष्टि से देखा जाता है। मॉरीशस हिंदी लेखक संघ के मंत्री शंभुनाथ ने बड़े सख्त लहज़े में कहा कि मानकीकृत हिंदी में किसी अन्य भाषा के शब्दों को बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। एक ओर तो हम हिंदी को यू.एन. में मान्यता दिलवाने की बात कर रहे हैं और दूसरी ओर उसके क्रियोल रूप की प्रस्तुति दे रहे हैं। साहित्य तो मानकीकृत और व्याकरणिक शुद्ध रूप में ही होना चाहिए। विश्व में भूमंडलीकरण के कारण अब वहाँ का युवा-वर्ग फ्रेंच और अंग्रेज़ी को जीविकोपार्जन की भाषा स्वीकार करके चल रहा है। ऐसी स्थिति में हिंदी पंडिताई और व्यापारिक ज़रूरत की भाषा बनकर रह जाने के कगार पर है। अन्य विद्वानों की तरह डॉ. दिवाकर भट्ट भी हिंदी को राष्ट्र संघ की भाषा बनाने पर ज़ोर देते हैं।

हिंदी के लिए फ़िक्रमंद मॉरीशस में यह हिंदी और वह हिंदी की तनातनी देखकर दुख होता है।

फ़िजी में हिंदी

'फ़िजीबात' के रूप में, भारत में उत्तर और दक्षिण से फ़िजी आने वाले श्रमिकों ने हिंदी का नया और गतिशील संस्करण बनाया, जो भोजपुरी का मिश्रण था। अवधी और अन्य बोलियाँ और एक-दूसरे के साथ संवाद करने के लिए अंग्रेज़ी और इताउकेई से उधार लिए गए शब्द और वाक्यांश, अनिवार्य रूप से तुलसीदास के रामचरितमानस से आए थे। वहीं समय बीतने के साथ, फ़िजी में हिंदी उसकी बहुभाषी संस्कृति का हिस्सा बन गयी है। देशज/देशी इताउकेई ने भी हिंदी सीखना और बोलना शुरू कर दिया है। उपन्यास, लघुकथाएँ और कविताएँ मानक हिंदी और फ़िजी हिंदी दोनों में दिखाई देती हैं। विश्वविद्यालयों ने हिंदी में डिग्री की पढ़ाई के लिए पाठ्यक्रम तैयार किए। लेखकों, विद्वानों और शिक्षकों को विश्व हिंदी सम्मेलनों में सम्मानित कराया गया।

लेकिन इस सच से इनकार नहीं किया जा सकता है कि आज फ़िजी में लिखित और कथित हिंदी भाषा की स्थिति शिथिल है। हमें विचार करना होगा कि भाषा को बनाए रखने के लिए क्या किया जा रहा है और हिंदी बोलने वाली यह दुनिया किस प्रकार से इस भाषा का संरक्षण कर सकती है और इसे मज़बूत बनाए रखने के लिए हमारे पास कौन से विकल्प हैं। विशेष रूप से फ़िजी हिंदी, जो ग्रामीण इलाके में विकसित हुई है, एक बेघर भाषा बन गई है। यह अपनी जीवन-शक्ति तथा लचीलापन खो चुकी है। इंडो-फ़ीजियन की नई पीढ़ी, स्पष्ट कारणों से कभी भी खेती में वापस नहीं आना चाहती है। शहरी इलाकों/केंद्रों में रोज़गार की खोज का मतलब था - अंग्रेज़ी जानने या बोलने की अनिवार्यता। स्वतंत्रता के समय फ़िजी में भारतीय आप्रवासियों की आबादी आधी से अधिक थी। (फ़िजी की आबादी अभी भी एक मिलियन से कम है)। अब भारतवंशी लगभग 34 प्रतिशत हो गये हैं। इसका मतलब यह भी है कि अब हिंदी बोलने वाले भी कम हैं।

'बोलचाल की भाषा जिसे फ़िजी हिंदी कहते हैं।...भारत के अधिकांश प्रांतों से लोगों को फ़िजी लाया गया, जिनकी भाषा-बोलियाँ अलग-अलग थीं, जैसे भोजपुरी, अवधी, ब्रज, राजस्थानी, बिहारी आदि।... आवश्यकता आविष्कार की जननी है। अतः जब अपने दुख-सुख में दूसरों को शामिल करने की आवश्यकता हुई, तब मिश्रित भाषा 'फ़िजीबात' का आविष्कार हुआ। जब भारत से नए कुली आते, तब सरदार उनसे कहता फ़िजीबात सीखो। यह फ़िजीबात उस समय भारतीय मज़दूरों के विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम थी।"[9]

'वेस्ट इंडीज़ में जो कुछ हुआ वह शिक्षाप्रद था। भारतीयों की मिश्रित आबादी और अफ़्रीकी मूल के लोगों के बीच संसार के साधन के रूप में युवा पीढ़ी के अंग्रेज़ी अपनाये जाने के कारण हिंदी ने अपना जोश खो दिया। अंग्रेज़ी, आर्थिक शक्ति और सफलता की भाषा थी। आज हिंदी मात्र वेस्ट इंडीज़ में पुराने रिवाज़ों में, लोगों के नामों में और 'चटनी संगीत' में अवशेष रूप में उपस्थित है।' [10]

वर्ष 2004 में, मुझे याद आता है कि मैंने एक इंटरव्यू में कहा था – "हिंदी की बिंदी का परचम होगा तो बहुत-से लोगों ने इसका मज़ाक उड़ाया था और कुछ ऐसा भाव प्रकट किया था कि अंग्रेज़ी बिन तो सब सूना, लाख पढ़ा ले तू हिंदी, इसकी बिंदी तो मिट ही जानी है। पर अब पासा उलटा पड़ा है - लाख पढ़ा ले अंग्रेज़ी तू, हिंदी तो अब रानी है। विश्व भर में धाक जमा, यू.एन. में तो आनी है।"

आज की ज़रूरत को समझते हुए सभी हिंदी भाषा-भाषियों को यू.एन. में हिंदी को स्थापित करने के लिए एकजुट होना होगा। यह सही है कि भाषा के किसी भी क्रियोल रूप को यू.एन. में स्थापित करना उचित नहीं होगा, किंतु यू.एन. में स्थापित करने से पहले हमें अपने मन-मस्तिष्क में हिंदी को जगह देनी होगी। ऐसे में भोजपुरी, अवधी आदि स्थानीय भाषाओं के शब्दों को अपनाने वाली हिंदी को हेय दृष्टि से देखना अनुचित है। भारत में भी हिंदी के बदलते स्वरूप को समझना सभी के लिए ज़रूरी है। पर क्या हम भिंडी को अंग्रेज़ी में 'Ladyfinger' या 'Okra' कहने में कुछ हेय भाव रखते हैं? नहीं तो हिंदी के साथ ऐसा भेदभाव क्यों?

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. रामभजन सीताराम, नेटाली हिंदी-बहुवचन अंक 46, जुलाई-सितंबर, 2015
2. डॉ. वर्मा, विमलेश कांति, हिंदी और उसकी उपभाषाएँ, दिल्ली, सूचना प्रसारण मंत्रालय-प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 1995
3. डॉ. वर्मा, विमलेश कांति, प्रवासी भारतीय समाज, भाषा साहित्य और संस्कृति-पुस्तक भारती- https://www.

pustak-bharati-

4. प्रो. गौतम मोहनकांत, कैरेबियन देशों में हिंदी भाषा और समाज, बहुवचन अंक 46, जुलाई-सितंबर 2015 http://www.mgahv.in/Pdf/Publication/Bahu-vachan-46_12_10_15.Pdf

5. रामरक्खा मनीषा, फ़िजी में हिंदी भाषा शिक्षण एवं प्रचार-प्रसार पेपर-3 http://www.vishwahindi.com › papers › paper3

6. डॉ. सुब्रमणि, फ़िजी में हिंदी की स्थिति शिथिल, गर्भकाल ई-पत्रिका, 1 फ़रवरी 2020

arunaghawana@gmail.com

स्वातंत्र्योत्तर अमृतकालीन हिंदी

डॉ. रश्मि वार्ष्णेय
मुंबई, भारत

वैश्वीकरण के मौजूदा दौर में संपूर्ण विश्व संक्रमण काल से गुज़र रहा है, जिसमें सभी अपनी-अपनी जगह बनाने में जुटे हुए हैं और इसके लिए यथासंभव परिवर्तन भी किए जा रहे हैं। इस उथल-पुथल के क्रम में वही अपना अस्तित्व बचा पाएगा, जो श्रेष्ठ होने के साथ-साथ वैश्विक स्वरूप धारण किया हुआ होगा। कल तक जो श्रेष्ठता का दंभ भर रहे थे, वे अब हाशिए पर खिसकते नज़र आ रहे हैं और अनेक हाशियों की रेखा को पार करके मुख्यधारा में अपना स्थान बनाते जा रहे हैं।

18वीं सदी से ऑस्ट्रिया-हंगरी का वर्चस्व क्रमशः 19वीं सदी में ब्रिटेन-जर्मनी और इसके बाद 20वीं सदी में अमेरिका-रूस के पास स्थानांतरित होते हुए 21वीं सदी में भारत-चीन के दर पर दस्तक देने लगा है। डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय कहते हैं - "21वीं सदी, बीसवीं शताब्दी से भी ज़्यादा तीव्र परिवर्तनों वाली तथा चमत्कारिक उपलब्धियों वाली शताब्दी सिद्ध हो रही है।... वर्तमान विश्व व्यवस्था आर्थिक और व्यापारिक आधार पर ध्रुवीकरण तथा पुनर्संगठन की प्रक्रिया से गुज़र रही है। ऐसी स्थिति में विश्व के शक्तिशाली राष्ट्रों के महत्त्व का क्रम भी बदल रहा है। ... आज भारत और चीन विश्व की सबसे तीव्र गति से उभरने वाली अर्थव्यवस्थाओं में से हैं तथा विश्व स्तर पर इनकी स्वीकार्यता और महत्ता बढ़ रही है।... निकट भविष्य की विश्व-शक्ति के रूप में देखा जाने लगा है।"

वास्तविकता भी यही है कि अंग्रेज़ों की गुलामी से मुक्त होने के बाद भारत ने अपना विकास इतना अधिक कर लिया है कि ब्रिटेन की गुलामी करता हुआ जिस भारत की गरीबी निम्नतम सीमा-रेखा से नीचे जा चुकी थी, अब वही भारत ब्रिटेन को पछाड़कर विश्व की पाँचवीं आर्थिक शक्ति बन चुका है। जिस भारत को नमक, सुई, आदि बनाने का अधिकार तक नहीं था, वही भारत आज 'मेक इन इंडिया' के अंतर्गत अनगिनत नवाचारी अन्वेषणी उत्पादों से वैश्विक बाज़ार पर अपना आधिपत्य स्थापित कर रहा है। ऐसी स्थिति में भारत की स्वतंत्रता के अमृत-काल में भारत का मूल्यांकन इसकी भाषा सहित समग्रता में किया जाना प्रासंगिक, समीचीन और समसामयिक है। यह इसलिए भी आवश्यक है, क्योंकि भारत अगले पच्चीस वर्षों में अपनी स्वतंत्रता के सौवें वर्ष में प्रवेश करते समय, भारतीय भाषाओं को, विशेषकर हिंदी को एक वैश्विक परिवेश के अनुकूल पूर्णतया विकसित, पल्लवित और कुसुमित भाषा के रूप में ढाल लेने के लिए कृतसंकल्प है।

भाषा के क्षेत्र में परिवर्तन

विश्व की सभी भाषाओं की अन्योन्य क्रिया भी दृष्टिगत हो रही है। इनमें से, जो भाषाएँ सशक्त हैं; अद्यतन हो रही हैं; अपना विस्तार कर रही हैं; ज्ञान-विज्ञान की अभिव्यक्ति का माध्यम बन रही हैं; मौलिक और अनूदित साहित्य में संतुलन स्थापित कर रही हैं; अधिसंख्यक लोगों के लिए, विशेषकर नई पीढ़ी के लिए अपरिहार्य हो रही हैं; विज्ञान, तकनीकी, शोध, मौलिक चिंतन, प्रबंधन, आदि की अभिव्यक्ति का माध्यम बन रही हैं, वे ही अपना अस्तित्व अक्षुण्ण रखते हुए आने वाले समय की आवाज़ बनेंगी।

डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय ने '21वीं सदी में हिंदी के समक्ष चुनौतियों एवं समाधान' पर चर्चा करते हुए कहा है - "जो भाषाएँ बहुभाषिक कंप्यूटर, इंटरनेट एवं सूचना-प्रौद्योगिकी की एकदम नवीनतम आविष्कारों में अपने संपूर्ण शब्दकोश, विश्वकोश, व्याकरण, साहित्य तथा ज्ञान-विज्ञान के संपूर्ण क्षेत्र की तमाम उपलब्धियों के साथ दर्ज होंगी और कंप्यूटर लाइब्रेरी में अपनी उपस्थिति का गहरा अहसास कराएँगी, उनकी प्रगति निर्विवाद है।"

बदलते हुए दौर के अनुरूप, जो भाषाएँ अपने स्वरूप में परिवर्तन नहीं करेंगी, अपना विस्तार नहीं करेंगी; आवश्यकता की पूर्ति नहीं करेंगी - वे भाषाएँ देर-सवेर सिकुड़ती चली जाएँगी और काल के गाल में समा जाएँगी। इसलिए राहुल देव भारतीय भाषाओं के बारे में आगाह करते हुए कहते हैं, "सारी भारतीय भाषाएँ अपने जीवन के सबसे गंभीर संकट के मुहाने खड़ी हैं। यह संकट अस्तित्व का है, महत्त्व का है, भविष्य का है। कुछ दर्जन या सौ लोगों द्वारा बोली जाने वाली छोटी आदिवासी भाषाओं से लेकर 45-50 करोड़

भारतीयों की विराट भाषा हिंदी तक इस संकट के सामने अलग-अलग अंशों में, लेकिन लगभग अटल और अपरिहार्य दिखते लोप के समक्ष निरुपाय खड़ी दिखती है।"

हिंदी का बदलता स्वरूप

ऐसे परिदृश्य में आशा की किरण का प्रस्फुटन हिंदी में किए जा रहे प्रयासों से हो रहा है। हिंदी का सर्वांगीण विकास करने के प्रयास हर मोर्चे पर दिखाई दे रहे हैं। ज्ञान-विज्ञान की सामग्री भले ही अनुवाद के माध्यम से हिंदी में आ रही हो, लेकिन इससे हिंदी भाषा का परिचय होने के साथ-साथ यह सामग्री हिंदी भाषा का हिस्सा बनती जा रही है, हिंदी में समाती जा रही है और हिंदी में रच-बस रही है, जिससे हिंदी का परिपूर्ण रूप विकसित हो रहा है; जिसके फलस्वरूप आने वाले समय की आवश्यकताओं के अनुरूप हिंदी परिपूर्ण भाषा के रूप में अपनी भूमिका के निर्वहण के लिए तैयार हो चुकी होगी। लोकेशचंद्र के अनुसार -

"हिंदी संस्कृत की उत्तराधिकारिणी है, 'रामायण', 'भगवद्गीता' की पुत्री है। जब वह अपना समुचित स्थान पाएगी, तब नए सृजन का प्रारंभ होगा।... अब हिंदी सृजनशील विज्ञान युग की वाहिनी बनने की प्रतीक्षा में है।... अंग्रेज़ी से योरोपीकरण की धारा बहती है, हिंदी से आधुनिकीकरण का द्रुतगति से विकास होगा। हिंदीकरण से सुप्त चिंतन का नवोन्मेष होगा।"

फ़िलहाल हिंदी के स्वरूप में भी काफ़ी परिवर्तन लक्षित हो रहा है। कहीं कुछ घट रहा है, तो कहीं कुछ बढ़ रहा है। अब तक हिंदी ने जिन क्षेत्रों में कदम नहीं रखा था, उनमें भी वह, अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हुए, काफ़ी बढ़त बनाई है। कल तक जो हिंदी लोकभाषा मात्र थी, अब उसने राजभाषा बनकर राजपाट संभाला है और अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर अपना वर्चस्व स्थापित करते हुए, अपने वैश्विक कलेवर से संपूर्ण विश्व का आलिंगन कर रही है। डॉ. कृष्ण कुमार रत्तू कहते हैं -

"ग्लोबल हो रहे इस विश्व में इन दिनों भाषा के प्रसंग बदल रहे हैं। शब्द जुड़ रहे हैं, भाषा का मानकीकरण हो रहा है, जिससे भाषा का विकास और इसका भाषाई चेहरा एकदम बदलता जा रहा है।"

इस बदलते वातावरण में हिंदी की स्थिति का विश्लेषण करना तथा उस पर पुनर्विचार करना आवश्यक हो जाता है। आज के दौर की आवश्यकताओं को पूरा करने तथा चुनौतियों से जुझने में हिंदी की तैयारी का जायज़ा लेना आवश्यक है। तभी हिंदी की प्रासंगिकता का निर्धारण किया जा सकेगा।

लोकेशचंद्र स्पष्टतः कहते हैं - "आज के चिंतन में विश्लेषण और संश्लेषण का इतना समन्वय है कि भाषा के प्रत्येक साधारण-से-साधारण शब्द की कोई-न-कोई निश्चित रूढ़ि देने की आवश्यकता हो गई है। अंग्रेज़ी में यह प्रक्रिया पिछली दो-तीन शताब्दियों का फल है। परंतु आज जब हिंदी में इस विचार-सूक्ष्मता को हम लाना चाहेंगे, तब अनेक नए शब्दों का सृजन करना होगा और पुराने शब्दों को नई अर्थाभिव्यक्ति, निश्चितता अथवा अर्थभिन्नता प्रदान करनी होगी।" इस लिहाज़ से हिंदी में अनेक प्रयास विविध स्तरों पर किए जा रहे हैं। इन प्रयासों में अनगढ़ प्रयास भी शामिल हैं, जो निरंतर प्रयोग से घिसते हुए या बदलते हुए अपना आकार स्वतः ही ग्रहण करेंगे और ऐसे प्रयासों को इनका पूरा समय मिलना चाहिए। इन प्रयासों से यह पता चल रहा है कि हिंदी में कहाँ-कहाँ परिवर्तन अपेक्षित हैं, कहाँ-कहाँ ध्यान देने की आवश्यकता है, कहाँ-कहाँ और अधिक कार्य किए जाने की आवश्यकता है, इत्यादि।

विकसित भाषा के मानदंड और हिंदी

लोकेशचंद्र के अनुसार, जो भाषा नए शब्दों की सृष्टि से घबराती है, वह भाषा न रहकर बोली के स्तर पर उतर जाती है। किसी भी भाषा की जीवंतता और संकट की गहराई नापने के लिए प्रमुख कसौटियाँ हैं :

* कोई भाषा पिछली पीढ़ी से अगली पीढ़ी तक कितना अंतरित हो रही है।

* इस भाषा का उपयोग ज्ञान-विज्ञान के आधुनिक क्षेत्रों में किया जा रहा है, या नहीं।

* इस भाषा की पहुँच नयी तकनीक और आधुनिक संसाधनों में कितनी है ।

* इस भाषा के विविध रूपों के दस्तावेज़ों का औपचारिक संकलन किया जा रहा है, या नहीं? यदि किया जाता है, तो किस तरह से किया जाता है?

* इस भाषा को बोलने वाले समाज के संस्थानों की नीतियाँ

उस भाषा के बारे में कैसी हैं?

* इस भाषा को बोलने वाला समुदाय इस भाषा के साथ कैसा व्यवहार करता है?

यदि इन मानदंडों पर हिंदी को कसते हैं, तो स्पष्ट हो जाता है कि प्रायः इन सभी मानदंडों पर हिंदी खरी उतरती है। एक पीढ़ी से, अगली पीढ़ी तक हिंदी भाषा के अंतरण का कार्य भारतवंशियों और आप्रवासियों ने अत्यंत शिद्दत के साथ किया है और उसकी झलक वहाँ विकसित स्थानीय बोली क्रियोल, फ़िजी हिंदी, आदि में सहज ही दिखाई देता है। चूँकि हिंदी विकासशील है, अतः इसके विभिन्न क्षेत्रों में लगातार कार्य किए जा रहे हैं और इसका उत्तरोत्तर विकास भविष्य में परिलक्षित होना ही है। भारत की नई शिक्षा-नीति ने भी हिंदी भाषा के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने में महती भूमिका निभाई है और उसी के सहयोग से ज्ञान-विज्ञान की उच्चतर शिक्षा हिंदी में उपलब्ध कराने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं।

राहुल देव का स्पष्ट मत है - "अब हम वाचिक युग में नहीं लिखित और डिजिटल युग में हैं। इसलिए भाषा का बोली रूप उसे बनाये रखने और बढ़ाने के लिए अपर्याप्त है।" इस दृष्टि से हिंदी में कंप्यूटर-मोबाइल पर काम करने की सुविधाएँ उपलब्ध हैं - ईमेल से संप्रेषण किया जा सकता है, इंटरनेट पर हिंदी में प्रचुर सामग्री उपलब्ध है, जिसमें लगातार वृद्धि हो रही है। विश्व में, भारत का अग्रणी बनने के साथ-साथ, भारतीयों में अपनी संस्कृति, सभ्यता, भाषा, आदि के प्रति गौरव-बोध हो रहा है और वे हिंदी के प्रति सहज हुए हैं। इससे यह आशा बंधती है कि आने वाले समय में हिंदी की माँग बढ़ेगी और बाज़ार का सिद्धांत यही है कि जहाँ माँग होती है, वहाँ आपूर्ति भी अवश्य होती है। इसलिए भविष्य में हिंदी की माँग बढ़ने की तथा इसके प्रयोग की संभावनाएँ अपार हैं।

विश्वनाथ कहते हैं - "आवश्यकता ही किसी भाषा की स्वीकार्यता का आधार होती है। इस दृष्टि से हिंदी की स्वीकृति व्यापक है।" हिंदी का क्रमिक विकास करने के लिए इसकी वर्तमान स्थिति का लेखा-जोखा आवश्यक है। विभिन्न क्षेत्रों में हिंदी का प्रयोग किया जा रहा है और इसमें लगातार वृद्धि भी लक्षित हो रही है। इन्हें वर्गीकृत करने की दृष्टि से प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित ने कहा है - "वर्तमान हिंदी के आठ चरित्र दिखायी दे रहे हैं, इसलिए भाषा प्रौद्योगिकी के परिप्रेक्ष्य में उसे संप्रति इन आठ क्षेत्रों में उतारने की आवश्यकता है – (1) राजकाज में (2) विज्ञान और तकनीकी में (3) संचार माध्यमों में (4) बाज़ार विपणन में (5) शिक्षा माध्यम के रूप में (6) रोज़मर्रा के व्यावहारिक जीवन में (7) वैचारिक लेखन में (8) रचनात्मक लेखन में।"

राजकाज के क्षेत्र में हिंदी की तैयारी स्वतंत्रता के बाद से ही आरंभ हो गई थी और अब राजकाज संभालने में उसे कोई संकोच नहीं है। जैसे-जैसे हिंदी का प्रयोग किया जाएगा, वैसे-वैसे उसे अपना स्थान मिलता जाएगा। रोज़मर्रा के व्यावहारिक जीवन में हिंदी पहले से ही लोकभाषा के रूप में प्रतिष्ठित है। शिक्षा माध्यम के रूप में भी हिंदी का प्रयोग किया जाता है और अब नई शिक्षा नीति में हिंदी सहित विभिन्न भारतीय भाषाओं को प्रमुखता दी गई है। वैचारिक और रचनात्मक लेखन के रूप में भी हिंदी में लेखन, हिंदी के प्रारंभिक दौर से ही किया जा रहा है। साहित्य की सभी विधाओं में हिंदी में प्रचुर साहित्य उपलब्ध है और निरंतर इसमें लिखा जा रहा है। आधुनिक विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में भी काफ़ी काम किया गया है और लगातार किया जा रहा है।

संचार, बाज़ार-विपणन आदि के क्षेत्रों में हिंदी की स्थिति के बारे में विश्व आर्थिक मंच के हवाले से हरिवंश ने आगाह किया है - "हिंदी का इतना विस्तार तो हो रहा है, लेकिन यह अर्थव्यवस्था में भूमिका निभाने में 16वें नंबर पर है। संचार में आठवें नंबर पर है। कूटनीति की भाषा बनने में दसवें नंबर पर है। असल चुनौतियाँ यही हैं कि क्या हिंदी की संस्थाओं, हिंदी प्रेमियों या हिंदी पक्षधरों की ओर से कोई ऐसा प्रयास हो रहा है कि हिंदी समग्रता में सिरमौर भाषा बने?"

इन 'अगर-मगर', 'किंतु-परंतु', 'यदि-वदि', 'लेकिन-वेकिन' के बीच में संयुक्त राष्ट्र के कार्यों को हिंदी में भी प्रस्तुत करने की बढ़त विश्व स्तर पर हिंदी की स्थिति मज़बूत करती है। इसीलिए डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय मानते हैं कि हिंदी राष्ट्रभाषा की गंगा से विश्वभाषा का गंगासागर बनने की प्रक्रिया में है। ऐसे में हिंदी के पाट का निरंतर चौड़ा और विस्तृत होता जाना एक स्वाभाविक-सी प्रक्रिया है। इसकी अनेक धाराएँ विभिन्न देशों में भारतवंशियों, आप्रवासी भारतीयों, विदेशी हिंदी प्रेमियों आदि के माध्यम से प्रवाहित हो रही हैं।

वस्तुतः हिंदी का सही मूल्यांकन तभी संभव है, जब उसका विश्लेषण वैश्विक स्तर पर किया जाए। वैश्विक ग्राम के युग में हिंदी को सिर्फ़ भारत की सीमाओं तक ही नहीं रखा जा सकता है। इसलिए हिंदी के लिए बनाई जाने वाली नीतियों का स्वरूप वैश्विक होना चाहिए। सिर्फ़ भारत के भरोसे हिंदी विश्वमय नहीं हो सकती। इसके लिए विश्व के अन्य देशों को भी इसके साथ जुड़ना, इसका प्रयोग करना और इसे अपनाना होगा। हिंदी के अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को भी हिंदी की परंपरागत भूमिका से आगे बढ़ाकर नए-नए क्षेत्रों में हिंदी को लाने का विश्वव्यापी अभियान करना होगा। हरिवंश ने कहा है - "अनेक मोर्चों पर सृजनात्मक और मौलिक प्रयासों से ही हिंदी की विश्व-यात्रा पूरी होगी। आपसी सहयोग-समन्वय से ही वैश्विक ग्राम बनती दुनिया में हिंदी अपनी जगह पा सकेगी।"

सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा के सम्मान से अब हिंदी विश्व में प्रथम पंक्ति में अपना स्थान भले ही बना चुकी हो, लेकिन वहाँ बने रहने के लिए उसे सतत प्रयासरत रहना होगा और विश्व की आवश्यकताओं के अनुरूप खुद को ढालना होगा। तभी हिंदी विश्वभाषा के रूप में स्थाई रूप से स्थापित हो पाएगी तथा हिंदी का अभी तक का 'ट्रैक रिकॉर्ड' इस बात के लिए आश्वस्त भी करता है, क्योंकि हिंदी समावेशी गुणधर्म अपनाते हुए समय के साथ अपने अंदर आवश्यक बदलाव लाती रही है।

हिंदी के सामने सबसे बड़ी चुनौती इस समय, इस बात की है कि संक्रमणकाल में परिवर्तन करते-करते वह अपने उन गुणधर्मों को तिलांजलि न दे दे, जिनके लिए वह जानी जाती है और जो उसकी पहचान है। उदाहरण के लिए हिंदी जैसी बोली जाती है, वैसी ही लिखी जाती है। इसके इस गुण ने इसे भारत में ही नहीं, बल्कि विश्व में सम्मान दिलाया है। लेकिन हिंदी पर पड़ते अंग्रेज़ी के प्रभाव के कारण अब हिंदी को रोमन में भी लिखा जाने लगा है, जिससे हिंदी के वर्णमाला की वैज्ञानिकता दाव पर लग गई है।

20वीं सदी में हिंदी की बोलियों का संसार भारत के हिंदी-भाषी क्षेत्रों से बढ़कर भारत के हिंदीतर क्षेत्रों तक विस्तृत होता चला गया था और इसमें मुंबइया हिंदी, हैदराबादी हिंदी जैसी बोलियाँ जुड़ती चली गई थीं। इसी क्रम में 21वीं सदी में अब भारत से इतर के देशों में हिंदी की विकसित या विकासशील बोलियों की बारी है, जो हिंदी के वैश्विक स्वरूप को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएँगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. लोकेशचंद्र, एशिया के हृदयांचलों में भारत-भारती, प्रकाशक : राष्ट्रीय बुक न्यास (एन.बी.टी.), नई दिल्ली, भारत, वर्ष 2021
2. राहुल देव, भारतीय भाषाएँ : दशा, दिशा और भविष्य, भवन्स नवनीत पत्रिका, सितंबर, 2019
3. डॉ. कृष्ण कुमार रत्तू, भाषा-विज्ञान नये भाषायी संदर्भ, बुक एनक्लेव, जयपुर, वर्ष 2003,
4. विश्वनाथ, संपादकीय : राष्ट्रभाषा के सवाल, भवन्स नवनीत, पत्रिका सितंबर, 2022
5. डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, हिंदी का विश्व संदर्भ, प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति वर्ष 2010
6. हरिवंश, हिंदी के समक्ष चुनौतियाँ, भवन्स नवनीत, पत्रिका मुंबई, सितंबर, 2022

drrashmivarshney@gmail.com

हिंदी का विश्व : आज और कल

डॉ. सविता डहेरिया
भोपाल, भारत

हिंदी को किसी पर थोपा नहीं गया है। हिंदी में काम करने वाले कार्मिकों के लिए प्रोत्साहन एवं पुरस्कार की योजनाएँ हैं, किन्तु हिंदी में काम नहीं करने वाले कार्मिकों के लिए दण्ड का कोई प्रावधान नहीं है। भारत सरकार चरणबद्ध कार्यक्रमों के ज़रिए राजभाषा हिंदी को सरकारी संगठनों, उपक्रमों, बैंकों आदि पर लागू करने की ओर प्रवृत्त है। आधुनिक प्रौद्योगिकी की भाषा यानी कम्प्यूटर, इंटरनेट आदि की भाषा को भी जीवन के निकट लाया जाए। आज हिंदी में आधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग बहुतायत में हो रहा है। भाषा के नये रूप का निर्माण भी हो रहा है। क्या युवा और क्या प्रौढ़ सभी आधुनिक प्रौद्योगिकी का उपयोग कर रहे हैं। मोबाइल संदेश की तो नई भाषा ही बनती जा रही है। आज हिंदी विश्व की अन्य आधुनिक भाषाओं से नवीन प्रौद्योगिकी के उपयोग की दृष्टि से किसी भी प्रकार पीछे नहीं है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 1873 में कहा - "हिंदी नई चाल में ढली। हिंदी गद्य का परिष्कार भारतेंदु युग में ही हुआ, जिसे हम खड़ी बोली कहते हैं। हिंदी को खड़ा करने में ब्रजभाषा और अवधी दोनों बोलियों का बड़ा योगदान है।" भारतेंदु हरिश्चन्द्र को खड़ी बोली को विकसित और परिष्कृत करने का श्रेय जाता है। इसके बाद भारतेंदु मण्डल के अनेक साहित्यकारों ने इसका समर्थन किया। यही खड़ी बोली विज्ञान लेखन में प्रगति की परिचायिका है। 1900 ई. में प्रयाग से 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन एक युगान्तकारी घटना है। इसके द्वारा पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने खड़ी बोली या हिंदी को ज्ञान-विज्ञान की भाषा बना डाला। वैसे तो कम्प्यूटर युग का सूत्रपात 1984 में हुआ, किन्तु हिंदी में कम्प्यूटर की पहली पुस्तक 1970 में रमेश वर्मा ने लिख दी थी। जब स्कूलों, कॉलिजों तथा विश्वविद्यालयों में कम्प्यूटर शिक्षा प्रारंभ हुई, तब अनेक पाठ्य पुस्तकें तैयार होने लगीं। इससे सूचना प्रौद्योगिकी का पल्लवन हुआ। भोपाल से ही प्रकाशित 'इलेक्ट्रॉनिकी' एक महत्त्वपूर्ण पत्रिका है।

मातृभाषा के महत्त्व को समझते हुए संयुक्त राष्ट्रसंघ ने भी 21 फ़रवरी को मातृभाषा दिवस के रूप में मनाने का निर्णय लिया है। इस दिवस को मनाने का उद्देश्य यह है कि विश्व में भाषाई एवं सांस्कृतिक विविधता और बहुभाषिकता को बढ़ावा मिले। स्वतंत्रता के इतने वर्ष बाद भी संविधान में हिंदी राजभाषा घोषित होने के बावजूद, हम चिकित्सा विषयों की शिक्षा हिंदी में अब प्रारंभ कर सकें। जबकि पूरे विश्व में अधिकांश देश चिकित्सा शिक्षा अपनी मातृभाषा में ही देते हैं।

भारतकोश का काम सन् 2006 में प्रारंभ हुआ। आज भारतकोश पर भारत का इतिहास, भूगोल, साहित्य, दर्शन, धर्म, संस्कृति, जीवनी, समाज, रहन-सहन, खान-पान, त्यौहार आदि की जानकारियाँ उपलब्ध हैं। भारतकोश को भारत सरकार, विश्वविद्यालयों, अन्य शिक्षण संस्थानों, हिंदी विद्वानों, समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं एवं छात्र-छात्राओं द्वारा पढ़ा और सराहा जा रहा है। भारतकोश पर उपलब्ध जानकारियाँ हिंदी देवनागरी UTF-8 (यूनीकोड) में हैं। प्रवासी भारतीय बच्चों के लिए तो भारतकोश जैसे वरदान है। साथ ही, हिंदी के प्रति उनका रुझान बढ़ता जा रहा है। भारतकोश की वस्तुनिष्ठ प्रश्नोत्तरी की लोकप्रियता के कारण पाठकों में 70 प्रतिशत युवा हैं। सूचना पहुँचाने वाली विभिन्न माध्यमों, जैसे - रेडियो, टेलीविजन, टेलीफ़ोन, समाचार-पत्र, फ़ैक्स तथा निश्चित ही कम्प्यूटर और कम्प्यूटर संजालों के तकनीकी समागम की दिशा में तेज़ प्रगति हुई है। सूचना की इन सभी प्रणालियों में हिंदी का खूब प्रयोग हो रहा है। इंटरनेट प्रणाली इनमें महत्त्वपूर्ण है। हिंदी का पहला पोर्टल बेवदुनिया सितंबर 1999 में प्रारंभ हुआ, 'भारत दर्शन' नामक हिंदी पत्रिका न्यूज़ीलैंड से प्रकाशित होने वाली पहली साहित्यिक-वेब पत्रिका है। आज इंटरनेट पर हिंदी में अनेकानेक वेब पत्रिकाएँ, ब्लॉग, माइक्रो ब्लॉगिंग, पोडकॉस्टिंग, विकीपीडिया, आरकुट, ई-बुक आदि उपलब्ध हैं। वेब पत्रिकाओं से तात्पर्य हिंदी की उन पत्रिकाओं से है, जिनका निर्माण नेट के लिए हुआ है, अर्थात् वे नेट पर ही प्रसारित, संशोधित और परिवर्धित होती हैं तथा उनके रचनाकार और संपादन प्रभारी, नेट तथा ई-मेल के द्वारा संपर्क स्थापित करते हैं। हिंदी की प्रमुख वेब पत्रिकाओं में 'लघुकथा

डॉट-कॉम' (बरेली), 'हिंदी नेस्ट' (राजस्थान), 'हिंदी साहित्य सरिता' (नेपाल), 'सृजन गाथा' (छत्तीसगढ़) आदि प्रमुख हैं। इंटरनेट पर आधारित नवीन विधाओं में 'ब्लॉग' अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम बनकर उभरा है। हिंदी में इसे 'चिट्ठा' की संज्ञा दी गई है। 17 सितंबर 1997 को अमेरिका के प्रसिद्ध वेब कमेंटेटर 'जॉन बर्गर' ने पहला 'वेब ब्लॉग लिखा।' हिंदी में आजकल ई-अखबार का भी प्रचलन ज़ोरों पर है। इससे आप जहाँ के भी अखबार का संस्करण पढ़ना चाहें, आपको तुरंत ई-अखबार के माध्यम से उपलब्ध होता है। 'दैनिक जागरण', 'अमर उजाला', 'हिन्दुस्तान', 'आज', 'जनसत्ता' आदि नेट पर अपनी सूचना उपलब्ध करवाते हैं। हिंदी फ़िल्मों में भी सूचना प्रौद्योगिकी के नए-नए उपकरणों के माध्यम से हिंदी का प्रचार-प्रसार हो रहा है।[1]

भारत के सूचना प्रौद्योगिकी ज्ञान ने पूरे विश्व में प्रतिष्ठा अर्जित की। आज बड़े-बड़े देश भारतीय तकनीकी व्यक्तियों को अपने यहाँ आमंत्रित करने में जुटे हैं। साथ ही हिंदी का प्रयोग अब इन सभी क्षेत्रों में होने लगा है। कम्प्यूटर को आरंभ में विदेशी यंत्र माना जाता था। 1984 में इसको लोगों ने देखा था। यह अंग्रेज़ी का गुलाम था। कम्प्यूटर में न तो कभी हिन्दुस्तानी ज्ञान को महत्त्व दिया गया, न ही यहाँ की भाषा को, पर हमारे भारतीय इंजीनियरों (1983 आई.आई.टी. कानपुर) ने एक ऐसी तकनीक विकसित की, जिसके माध्यम से कम्प्यूटर हिंदी की देवनागरी लिपि में तो काम कर ही सकता था, भारत की अन्य भाषाओं में भी वह कार्य करने लगा। इसका नामकरण हुआ - 'जिस्ट कार्ड'। यह कार्ड कम्प्यूटर के केन्द्रीय संसाधक एकांश में लगाते ही अंग्रेज़ी जानने वाला कम्प्यूटर, हिंदी सीख जाता था और बड़ी सरलता से वह हिंदी में काम करने लगता था। परिणाम यह हुआ कि हिंदी का प्रयोग कम्प्यूटर में बड़ी सहजता से होने लगा। बैंक और रेलवे विभाग में भी हिंदी का प्रयोग किया जा रहा है। उच्च प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाएँ भी आसानी से कम्प्यूटर पर काम कर रही हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि इसके लिए एक कुंजी पटल बनाया गया है, जो कि हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाओं तथा अंग्रेज़ी में भी काम कर सकता है, साथ ही लिप्यांतर का भी उसमें सामर्थ्य है। [2]

भारतीय विचार और संस्कृति का वाहक होने का श्रेय हिंदी को ही जाता है। आज संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्थाओं में भी हिंदी की गूंज सुनाई देने लगी है। विश्व हिंदी सचिवालय विदेशों में हिंदी का प्रचार-प्रसार करने और संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने में कार्यरत है। उम्मीद है कि हिंदी को शीघ्र ही संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा का दर्जा भी प्राप्त हो सकेगा। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा था – 'भारतीय भाषाएँ नदियाँ हैं और हिंदी महानदी।' आज सूचना प्रौद्योगिकी में हिंदी का इस्तेमाल बढ़ रहा है। आज वैश्वीकरण के दौर में, हिंदी विश्व स्तर पर एक प्रभावशाली भाषा बनकर उभरी है। आज पूरी दुनिया में 175 से अधिक विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा पढ़ाई जा रही है। ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकें बड़े पैमाने पर हिंदी में लिखी जा रही हैं। सोशल मीडिया और संचार माध्यमों में हिंदी का प्रयोग निरंतर बढ़ रहा है। भाषा का विकास उसके साहित्य पर निर्भर करता है। आज के तकनीकी युग में विज्ञान और इंजीनियरिंग के क्षेत्र में भी हिंदी में काम को बढ़ावा देना चाहिए, ताकि देश की प्रगति में ग्रामीण जनसंख्या सहित सबकी भागीदारी हो सके। इसके लिए यह आवश्यक है कि हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में तकनीकी ज्ञान से संबंधित साहित्य का सरल अनुवाद किया जाए। इसके लिए राजभाषा विभाग ने सरल हिंदी शब्दावली भी तैयार की है। राजभाषा विभाग द्वारा राष्ट्रीय ज्ञान-विज्ञान मौलिक पुस्तक लेखन योजना के द्वारा हिंदी में ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकों के लेखन को बढ़ावा दिया जा रहा है। वही भाषा जीवित रहती है, जिसका प्रयोग जनता करती है। भारत में लोगों के बीच संवाद का सबसे बेहतर माध्यम हिंदी है। एक भाषा के रूप में हिंदी न सिर्फ़ भारत की पहचान है, बल्कि यह हमारे जीवन मूल्यों, संस्कृति एवं संस्कारों की सच्ची संवाहिका, संप्रेषिका और परिचायिका भी है। यह विश्व की सबसे वैज्ञानिक भाषा है, जिसे दुनियाभर में बोलने, समझने और चाहने वाले लोग बहुत बड़ी संख्या में हैं।

"हिंदी के पुस्तकालय बढ़ाने होंगे। हर बड़े शहर और गाँव में साक्षरता के साथ हिंदी साक्षरता पर बल देना होगा। पुस्तकों की प्रदर्शनियाँ बढ़ानी होंगी। मोबाइल लायब्रेरियाँ बढ़ानी होंगी। हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण के केन्द्रों की संख्या बढ़ानी होगी। हिंदी के पुस्तक क्लब बनाने होंगे। प्रवासी भारतीयों के हिंदी-लेखन को प्रोत्साहित करना होगा। उस पर भी शोध कराना होगा। उसे दोयम दर्जे का न मानकर मुख्य धारा का मानना होगा। हिंदी साहित्य एवं हिंदी कार्य

को स्थान देना होगा। मूल बात यह है कि हिंदी के प्रति अंग्रेज़ीदाँ-मानसिकता के लोगों को अपना नज़रिया बदलना होगा। इसी से हमारी आने वाली पीढ़ियों के मन में भी हिंदी के प्रति सम्मान और श्रद्धा उत्पन्न होगी। 'हिंदी की बात' से ज़्यादा 'हिंदी में बात' पर बल देना होगा। हिंदी को 'आजीविका साधक' बनाना होगा।" [3]

हिंदी दुनिया की सबसे लोकप्रिय भाषा है, जिसका मीडिया में धड़ल्ले से प्रयोग हो रहा है, ताकि मीडिया ज़्यादा-से-ज़्यादा लोकप्रिय हो सके। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भी यह अहसास हो चुका है कि विदेशी माल को हिन्दुस्तानी बाज़ार में फैलाने के लिए हिंदी का प्रयोग ज़रूरी है। इसलिए उनके विज्ञापन भी हिंदी में होते हैं। सूचना विज्ञान के क्षेत्र में हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ एक तरह मशाल का कार्य कर रही हैं। देश से बाहर हिंदी ही एक ऐसी भाषा है, जिसमें बनी फ़िल्में विदेशी सिनेमाघरों में स्थान पाती हैं। राजकुमार की फ़िल्म 'मेरा नाम जोकर', रूस में हिट होती है, तो सुभाष घई की 'ताल' इंग्लैंड में और आमिर खान की 'लगान' अमेरिका में। आज मुद्रित माध्यम और इलेक्ट्रॉनिक माध्यम की बदौलत ही हिंदी 'ग्लोबल' भाषा बन रही है। वैश्वीकरण ने न केवल अर्थ और राजनीति के जगत् को प्रभावित किया है, बल्कि भाषा और संस्कृति की दुनिया पर भी गहरा प्रभाव डाला है। पिछले आठ से दस वर्षों में हिंदी की पहचान तेज़ी से बढ़ी है। सूचना प्रौद्योगिकी ने हिंदी को विश्वव्यापी बनाने में बड़ी भूमिका निभाई है। बाज़ार की ज़रूरतों के चलते हिंदी एक विश्व भाषा के रूप में विकसित हो रही है। भारत के भीतर और बाहर तीर्थाटन, पर्यटन और रोज़ी-रोटी की तलाश ने हिंदी को व्यापक फलक प्रदान किया है। कभी हिंदी विरोध का झंडा उठाने वाले दक्षिण भारतीय भी अब हिंदी का सहज व्यवहार करते हुए देखे जाते हैं। चीन में कैंटोनी बोलने वालों की संख्या करोड़ों में है। मंदारिन से यदि कैंटोनी भाषियों को अलग कर दिया जाए, तो मंदारिन और हिंदी में कोई बड़ा अंतर नहीं रह जाएगा। अब बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ किसी उत्पाद को भारतीय बाज़ारों में उतारने से पहले हिंदी में ही उसका विज्ञापन करती हैं। विदेशी भाषाओं की फ़िल्में हिंदी में डब की जा रही हैं। हिंदी में यूनीकोड आ जाने से इन दिनों रोमन के बजाय देवनागरी में ई-मेल भेजने का प्रचलन तेज़ी से बढ़ा है। यह सूचना-प्रौद्योगिकी का कमाल है कि विदेशी हमारी आशाओं से ज़्यादा हिंदी में रुचि ले रहे हैं। किसी भी भाषा के ज्ञान-विज्ञान को सुरक्षित रखने एवं पूरी दुनिया तक पहुँचाने के लिए उसका कम्प्यूटरीकरण अत्यंत आवश्यक है। भाषाई कम्प्यूटिंग की दुनिया में हिंदी ने बहुत तरक्की की है। अस्सी के दशक में कम्प्यूटिंग की दुनिया में प्रवेश के बाद आज हिंदी ने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है।

जो लोग भारत से बाहर गए हैं, चाहे वे किन्हीं कारणों से गए हों, वे भारतीय ही हैं। इस धरती की मिट्टी ने ही उन्हें पाल-पोसकर इस योग्य बनाया है कि वे धरती पर जहाँ भी हों, वहाँ गर्व से सिर उठाकर कह सकें कि हम भारतीय हैं, भारतवंशी हैं, बनिस्बत इसके कि हम प्रवासी हैं या आप्रवासी हैं। जिस देश में भी हम बसे हैं, उसके प्रति भी हमारा कर्तव्य है और हमें उससे मुँह नहीं मोड़ना है। हम दोनों ही देशों के बीच अपने संबंधों में माँ और मौसी का रिश्ता क्यों नहीं कायम कर सकते हैं? माँ, माँ ही है पर साथ ही माँ जैसी प्रिय 'मासी' भी हो सकती है, भारत ने हमें अन्नपूर्णा बनाया है, उदार बनाया है, देने में कभी भी कृपण नहीं बनाया है। हमारा इतिहास उदारता का कोष है। हमें यही सिखाया गया है कि प्यार दोगे, तो प्यार मिलेगा, घृणा दोगे तो घृणा। तो फिर स्नेह बाँटने में कृपणता की जगह उदारता का हाथ क्यों नहीं पकड़ें। इसमें हिचक कैसी? हम देश में रहें, चाहे विदेश में, इतनी अमूल्य रत्न-जड़ित भारतीय संस्कृति, जो हमें विरासत में मिली है, उसका प्रचार-प्रसार न करना आत्म-हनन होगा। हाँ, जिन देशों में हम बसे हुए हैं, उनकी संस्कृति तथा मूल्यों को समझना भी हमारा दायित्व है और उन्हें समझकर उनकी अच्छी बातों को स्वयं के शीशे में उतारना भी हमारा ही कर्तव्य है। कोई भी संस्कृति न पूर्णतया खराब होती है और न ही संपूर्ण रूप से अच्छी ही। वह देश, समय और काल से प्रभावित होती है। वातावरण से अप्रभावित रहना असंभव है। अतः सब तथ्यों को ध्यान में रखकर हमें सहृदयता का परिचय देना है। हमें हर एक का सम्मान करना सिखाया गया है। दूसरों को दिए गए यथोचित् सम्मान से ही आप अपने आत्म-सम्मान की रक्षा कर सकते हैं।

हिंदी राजभाषा से राष्ट्रभाषा और अब विश्वभाषा बनने की ओर अग्रसित है। नवीनतम सर्वेक्षण के अनुसार हिंदी विश्व की पहली भाषा है। हिंदी अगले पाँच वर्षों में संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनेगी। वैश्वीकरण के दौर की हिंदी के जानने वाले 982 मिलियन हैं,

जबकि चीनी जानने वाले 874 मिलियन हैं। यही हाल बाज़ारीकरण का है, रूपर्ट मरडोक सोनी जैसे चैनल अंग्रेज़ी में लाये, परन्तु हिंदी की माँग और बाज़ार को देखते हुए, चैनल को हिंदी में परिवर्तित किया गया। हिंदी की शब्द संख्या 2.50 लाख है, जबकि अंग्रेज़ी के मूल शब्द 10,000 हैं। समय ठीक है, हिंदी अपनी गति से आगे बढ़ रही है, अपने-अपने स्तर से हिंदी भाषा के उन्नयन के लिए प्रयास करते रहना चाहिए। वैश्विक स्तर पर 73 राष्ट्रों के 150 विश्वविद्यालयों में हिंदी के अध्ययन, अध्यापन व अनुसंधान की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। अमेरिका के 38, रूस के 7, जर्मनी के 17, जापान के 2, श्रीलंका के 3 विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन किया जा रहा है। चीन के पेइचिंग विश्वविद्यालय तथा चीनी आकाशवाणी पर हिंदी का बोलबाला है। पाकिस्तान के पंजाब व कराची विश्वविद्यालय में हिंदी पठन-पाठन की व्यवस्था है। जापान के क्योतो और ओसाका विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्ययन की सुविधा उपलब्ध है। वहाँ से 'ज्वालामुखी', 'सर्वोदय' तथा 'जापान भारती' पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। यूरोप और अमेरिका में भी हिंदी कार्य प्रशंसनीय स्तर पर है। लन्दन, केम्ब्रिज व यॉर्क विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग इसके प्रमाण हैं। बी.बी.सी. द्वारा निरंतर 'हिंदी' का प्रसारण हो रहा है। फ़्रांस, इटली, स्वीडन, ऑस्ट्रिया, नॉर्वे, डेनमार्क, स्विट्ज़रलैंड, हॉलैंड, पोलैंड, चेक गणराज्य, जर्मन, रोमानिया, बुल्गारिया, हंगरी आदि राष्ट्र भी हिंदी के संदर्भ में कदापि पीछे नहीं हैं। तुर्की, ईराक, मिस्र , लीबिया, संयुक्त अरब अमीरात, दुबई, अफ़गानिस्तान, उज़्बेकिस्तान तथा मध्य एशिया के राष्ट्रों में भी हिंदी का प्रचार-प्रसार हो रहा है।

इस प्रकार हिंदी आज विश्व के कोने-कोने तक पहुँच चुकी है। अंग्रेज़ी, रूसी, स्पेनिश, फ़्रेंच, अरबी एवं चीनी को संयुक्त राष्ट्र संघ में आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है। हिंदी भाषा अब भी वह स्थान पाने में संघर्षरत है। लेकिन आज हिंदी ने अपनी क्षमता के बल पर वैश्विक स्तर पर विश्वभाषा बनने का सम्मान पाया है, इसमें कदापि संदेह नहीं है। हिंदी को वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाने में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा विदेशों में स्थापित भारतीय विद्यापीठों की केन्द्रीय भूमिका रही है। जो विश्व के अनेक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रों में फैली हुई हैं। अनन्त कुमार सिंह कहते हैं कि 'हिंदी की खड़ी-बोली के प्रथम रचनाकार के रूप में ख्यात अमीर खुसरो, उनका लेखन तथा उनका बहुआयामी व्यक्तित्व मील का पत्थर है। हिंदी खड़ी बोली को जन्म देने, उसे सँवारने, सरल बनाने और गुरु परंपरा की गरिमा को और भी गहराई प्रदान करने में उनका नाम लिखा जा सकता है। कबीर, तुलसी, जायसी, रैदास, प्रेमचन्द, टैगोर, निराला की साहित्यिक कृतियाँ समाज की धरोहर हैं। हिंदी भाषा को समृद्ध करने में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण है।'[4]

हिंदी के विकास तथा उसकी प्रगति के विषय में प्रबुद्धजनों को तथा सामान्य जनता को अधिकाधिक जानकरियाँ दी जाए, जो सुविधाएँ हिंदी में उपलब्ध हैं, उनका उपयोग किया जाए, हिंदी का प्रयोग बढ़ाने के लिए समन्वित प्रयास किए जाए। हिंदी की प्रगति के मार्ग में जो कठिनाइयाँ हैं, उनका विश्लेषण किया जाए और समस्याओं के समाधान के लिए व्यावहारिक हल खोजे जाएँ, तो हिंदी का कल पूर्णत: उज्ज्वल होगा।

संदर्भ ग्रंथ :

1. हिंदी जगत् : विस्तार एवं संभावनाएँ, संपादक - गिरीश्वर मिश्र, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, 2015, पृ. 107-108
2. वही, पृ. 110-111
3. साहित्य अमृत, सितम्बर 2015, वर्ष-21, अंक-02, संपादक - त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी, नई दिल्ली, पृ. 95
4. राजभाषा भारती, वर्ष - 39, अंक 150, जनवरी-मार्च 2017, भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग, पृ. 15.

savitadehariya449@gmail.com

विश्व में हिंदी

1. वैश्विक मंच पर हिंदी का लहराता परचम – डॉ. शिप्रा श्रीवास्तव

2. विश्व में हिंदी को आगे बढ़ाने के प्रयास एवं संभावनाएँ – डॉ. सुप्रिया प्रभाकर जोशी

3. बर्मा में हिंदी की उपस्थिति तथा उसकी विकास-यात्रा – डॉ. कामता कमलेश

4. हिंदी की उदारता तथा व्यापकता – डॉ. प्रभाकर कुमार पाण्डेय

5. हिंदी देश से विदेश तक : एक परिप्रेक्ष्य – डॉ. पद्माकर पांडुरंग घोरपड़े

6. हिंदी के प्रसार के लिए आवश्यक है हिंदी की माँग – डॉ. मोतीलाल गुप्ता 'आदित्य'

7. नेपाल में हिंदी – डॉ. कविश्री जायसवाल

वैश्विक मंच पर हिंदी का लहराता परचम

डॉ. शिप्रा श्रीवास्तव
हिमाचल प्रदेश, भारत

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में वह अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचाने हेतु भाषा का सहारा लेता है। मनुष्य के उच्चारण अवयवों से उच्चरित ध्वनि प्रतीकों के सतत् परिवर्तनशील अध्ययन, विश्लेषणात्मक व्याकरण सम्मत ध्वनि प्रतीकों की यादृच्छिक व्यवस्था का नाम ही भाषा है। भाषा दैवीय उत्पत्ति नहीं है, बल्कि मनुष्य की पारस्परिक वैचारिकता का महत्त्वपूर्ण रूप है। भाषा मानव की रचनात्मक यात्रा का प्रमुख संसाधन है। भाषा धर्म, चिंतन, संस्कृति तथा राष्ट्रीयता - ये पाँच ऐसे आवश्यक तत्त्व हैं, जो मानव-समाज में कभी बिखराव तो कभी मेल के कारण बनते हैं। उक्त तत्त्वों में भाषा, विशेषतः मानव-व्यवहार तथा प्रवृत्ति प्रकाशन का मुख्य माध्यम है। यह एक ऐसी पद्धति अथवा व्यवस्था है, जिससे मानव अपने सभी कार्य-व्यापारों को निष्पन्न करता है। 'यह किसी राष्ट्र के संगठन के लिए परमावश्यक साधनों में से एक है। विश्व मानवता का मानसिक संगठन भी भाषा के ही आधार पर किया जा सकता है। भाषा अनुभूति के अनुबंधी है। इसमें वृत्त की लीनता और अनुभूति में रेखा की गति होती है। [1]

संस्कृत के सुप्रसिद्ध आचार्य दंडी ने 'काव्यादर्श' में भाषा के महत्त्व का प्रतिपादन अत्यंत सुघर एवं कलात्मक रूप में किया है -

इदमन्धतमः कृत्सनं जायेत भुवनत्रयम।
यदि शब्दाहवयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते॥

अर्थात् यदि शब्द (भाषा) की ज्योति न जली होती, तो यह त्रिभुवन अंधकार में निमग्न हो जाता।

देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी वर्तमान समय में भारतीय संघ की राजभाषा है, किंतु विचित्रता तो यह है कि केवल जैन महाराष्ट्री में लिखित 'कालकाचार्य की कथा' में एक स्थल विशेष पर प्रयुक्त 'हिन्दूग' शब्द ''सुरिण भणीयम रामाणो जेण 'हिन्दूग' देसम वच्चामो''[2] के अलावा वैदिक, संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश आदि किसी भी प्राचीन भारतीय आर्य भाषा में कहीं भी 'हिंदी' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। परंतु विद्वानों ने इस शब्द की अनेक व्युत्पत्तियाँ सप्रमाण प्रस्तुत की हैं। हिंदी शब्द वस्तुतः फ़ारसी भाषा का है। कुछ भाषा वैज्ञानिकों ने हिंदी शब्द की व्युत्पत्ति सीधे 'हिन्द' शब्द से माना है। उनका कहना है कि ऋग्वेद में प्रयुक्त 'सिन्ध' और 'सप्तसिन्धवः' संभवतः इन दोनों शब्दों ने याजकों के साथ भारत से ईरान की यात्रा की हो। ईरानियों की प्राचीनतम धर्म पुस्तक का नाम 'आवेस्ता' है। विद्वानों का विचार है कि इस पुस्तक में प्रयुक्त शब्द 'हैन्दू', 'हिन्दू' तथा 'हफ़्तहिन्द्रः' या 'हफ़्तहिन्दवी' [3] ऋग्वेद में प्रयुक्त शब्द क्रमशः 'सिन्धु' और 'सप्तसिन्धवः' के ईरानी उच्चारण मात्र हैं, क्योंकि भारतीय आर्य भाषा की 'स' ध्वनि ईरानी में 'ह' के रूप में उच्चरित होती है।

कुछ विद्वानों ने हिंदी शब्द की व्युत्पत्ति 'सिन्धी' शब्द से मानी है, पर विकास क्रम की दृष्टि से यह मान्यता ठीक नहीं जान पड़ती, क्योंकि हिंदी शब्द का रूप-निर्माण प्राकृत काल में ही ईरान में हो चुका था।[4] इस तरह भी 'सिन्धी' शब्द की चर्चा किसी भी प्राचीन भारतीय साहित्य में नहीं मिलती। अतः ज़ाहिर है कि 'सिन्धी' शब्द से 'हिंदी' शब्द का विकास नहीं हुआ है। डॉ. शिवराज वर्मा भी 'हिंदी' का जन्म 'सिन्धी' से नकारते हैं - " 'हिंदी' शब्द की रचना का आधार 'सिन्धी' शब्द नहीं है, क्योंकि हिंदी शब्द के निर्माण-काल में भारतीय आर्य भाषा के आधुनिक रूप सिन्धी का अस्तित्व ही नहीं था तथा वह काल भारतीय आर्य भाषा का प्राकृत अपभ्रंश काल था"।[5] ईरान से 'हिन्द' और 'हिंदी' शब्द अरब, मिस्र, सीरिया तथा अन्य देशों के साहित्य में प्रविष्ट हुए। अरब वालों को 'हिन्द' और 'हिंदी' शब्द ईरानियों से ही मिले। अरब यात्री 'हिन्द' और 'सिन्ध' को दो अलग प्रदेश मानते हैं, संभवतः कश्मीर के तराई से सिन्धु नदी के किनारे तक को 'सिन्ध' और गुजरात से लेकर भीतरी देश को 'हिन्द' कहते थे।"

'हिंदी' शब्द की व्युत्पत्ति का तीसरा आधार संस्कृत का 'सिन्धु' शब्द में सुझाया गया है। यह आधार अन्य आधारों की तुलना में काफ़ी प्रामाणिक, तर्कसंगत और विश्वसनीय हैं। अधिकांश विद्वान इसी आधार को सही मानते हैं। भारत के पश्चिमी छोर पर इतिहास-प्रसिद्ध सिन्धु नदी बहती है। भारत के प्रसिद्ध धर्म-

ग्रंथ 'ऋग्वेद' में 'सिन्धु' तथा 'सप्तसिन्धवः' शब्द क्रमशः नदी के अर्थ में तथा उस नदी के आसपास के प्रदेश के लिए भी प्रयुक्त हुए हैं। 'भारत और ईरान के बीच प्रसिद्ध व्यापारिक संबंधों के अलावा सांस्कृतिक संबंधों की भी चर्चा मिलती है। इन देशों की इस आवाजाही में अनेक शब्द भारत से ईरान गए तथा ईरान से भारत आए। इसी क्रम में 'सिन्धु' तथा 'सप्तसिन्धवः' शब्द भी भारत से ईरान पहुँचे। वहाँ के निवासियों ने इन भारतीय शब्दों का उच्चारण क्रमशः 'हिन्दू' तथा 'हफ़्त हिन्दवः' के रूप में किया। डॉ. हेमचन्द्र जोशी लिखते हैं कि नियम है कि वैदिक 'स' प्राचीन ईरानी में 'ह' हो जाता है, जैसे 'सप्त' का 'हफ़्त', 'सप्ताह' का 'हफ़्ता'। इस नियम से 'सिन्धु' का प्राचीन ईरानी में 'हिन्दू' और 'हिन्द' हो गया।[7] प्राचीन ईरानी साहित्य में 'हिन्दू' (मूल सिन्धु) शब्द केवल नदी के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता था, लेकिन कालांतर में इसका अर्थ संपूर्ण भारत के निवासियों के लिए होने लगा। इस संबंध में डॉ. रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं - 'सिन्धु' नदी भारत की पश्चिमोत्तर सीमा के पास पड़ती थी और उधर से आने वाले लोग इस देश की पहचान उसी से करते थे। उसमें ईरान तथा उसके पास के देशों के लोग 'स' का सही उच्चारण न कर पाने के कारण 'सिन्धु' को 'हिन्दू' कहने लगे।"[8] डॉ. उदय नारायण तिवारी ने भी इसी बात की चर्चा की है - "ईरान तथा फ़ारस के निवासी सिन्धु नदी के तट के प्रदेश को 'हिन्द' तथा वहाँ के रहने वालों को 'हिन्दू' कहते थे"।[9] चीनी लोगों ने भी सिन्धु नाम की परंपरा का व्यवहार किया था, साथ ही भारत को सिन्धु शब्द के आधार पर 'शिन-तु' नाम से संबोधित किया था।[10]

आगे चलकर 'हिन्दू' शब्द में ध्वनि-विकास हुआ, जिसके परिणामस्वरूप 'उ' का लोप हो गया। इस प्रक्रिया के कारण 'हिन्दू' शब्द 'हिन्द' बन गया। पुनः हिन्द में 'ईक' विशेषणार्थक प्रत्यय जुड़कर 'हिंदीक' शब्द उत्पन्न हुआ। बाद में शायद उच्चारण की सरलता के कारण हिंदीक से 'क' का लोप हो गया और बच गया केवल 'हिंदी' शब्द। एक ओर जहाँ डॉ. श्यामसुंदर दास, डॉ. धीरेंद्र वर्मा तथा डॉ. हरदेव बाहरी आदि भाषा-चिंतकों ने हिन्द शब्द का मूलाधार संस्कृत शब्द सिन्ध को माना है, वही डॉ. भोलानाथ तिवारी ने 'सिन्धु शब्द को द्रविड़ भाषाओं अथवा बोलियों का शब्द माना है।[11]

भाषा के अर्थ में हिंदी शब्द 8वीं से 10वीं शताब्दी के मध्य तक विदेशों में 'देश' का बोध कराता था। जॉर्ज ग्रियर्सन का विचार है कि फ़ारसी के लेखक भारत के निवासियों को 'हिंदी' कहते थे।[12]

वैश्विक भाषा परिवार में भाषा वैज्ञानिकों के मतानुसार भारत-यूरोपीय परिवार का मौलिक महत्त्व है। इसी भारत-यूरोपीय भाषा परिवार की एक शाखा भारतीय आर्य भाषा है। 'प्राचीन आर्य भाषा हिंदी की जननी है। आदि काल से लेकर आधुनिक काल तक का इसका रूप बहुत कुछ उसके पुरातन रूप में, समय-समय पर रचित ग्रंथों में उपलब्ध हो जाता है।[13]

इसी भारोपीय आर्य भाषा का पुरातन स्वरूप संस्कृत के वैदिक हिमालय से उद्भूत लौकिक संस्कृत परिवर्तित हुआ और पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश के तानेबाने से निकलकर अंततः हिंदी एक महार्णव के रूप में विकसित हुई। "हिंदी-महासागर में पूर्ववर्ती अपभ्रंश, प्राकृत और पालि जन-भावनाओं को काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए अभिन्न भाव से समाहित हो गई। इस प्रकार हिंदी भाषा का अवतरण हुआ"।[14]

वर्तमान में हिंदी भाषा न केवल भारत में अपितु विदेशों में भी करोड़ों लोगों की संपर्क भाषा बनी हुई है। भारत की आबादी का तकरीबन आधा हिस्सा मूलतः हिंदी भाषी है और वह आपसी विचार विनिमय के लिए हिंदी का ही प्रयोग करता है। हिंदी भाषा भारत का स्वाभिमान है और हिंदी के विकास तथा प्रचार-प्रसार में वास्तविक रूप से भारत के भविष्य की झांकी देखी जा सकती है। आज हिंदी का स्वरूप वैश्विक या ग्लोबल हो चला है, वह अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पकड़ मज़बूत कर रही है, साथ ही अपने स्वरूप को निरंतर माँज भी रही है।

भारतीय संविधान के अनुसार देवनागरी लिपि में लिखी गई हिंदी को भारतीय संघ की राजभाषा घोषित किया गया। साथ ही 1965 ई. तक अंग्रेज़ी भाषा का प्रावधान रखा गया, बाद में संशोधन करके इसे आगे के लिए बढ़ा दिया गया। आज हिंदी भारत के अलावा कई देशों में व्यवहृत हो रही है। दुनिया के कई देशों में प्रवासी भारतीयों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। दुनिया में अनेक देशों के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य में भारतीय मूल के नागरिकों और हिंदी भाषा की उपस्थिति प्रतिदिन अधिक प्रभावशाली रूप धारण कर रही है।

आज 'वैश्वीकरण', 'ग्लोबलाइज़ेशन' या 'भूमंडलीकरण'

का अर्थ है, विश्व में चारों ओर अर्थव्यवस्थाओं का बढ़ता हुआ एकीकरण। वैश्वीकरण आधुनिक विश्व का वह स्तंभ है, जिस पर खड़े होकर दुनिया के हर समाज को देखा, समझा और महसूस किया जा सकता है। वैश्वीकरण के प्रभाव से आज तक कोई भी भाषा और साहित्य अछूता नहीं रह पाया है, वह सरहदों को पार कर विश्वभर के पाठकों तक अपनी पहचान बना चुका है, जिसमें दुनियाभर के प्रबुद्ध पाठक भी एक-दूसरे से जुड़ सके हैं और साहित्य का वैश्विक परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन संभव हो सका है।

हिंदी के वैश्विक रूप के विषय में आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी, हिंदी की महत्ता तथा उससे कीं जाने वाली अपेक्षाओं के संदर्भ में ठीक ही लिखते हैं - "भारत वर्ष के पड़ोसी देशों में आजकल हिंदी पढ़ने और समझने की तीव्र लालसा जागृत हुई है। चीन, मलय, सुमात्रा, जावा समस्त एशिया से माँग आ रही है। एशिया के देश अब अंग्रेज़ी पुस्तकों में प्राप्त सूचनाओं से संतुष्ट नहीं हैं। वे देशी दृष्टि से देशी भाषा में लिखे हुए साहित्य की खोज करने लगे हैं। आगे यह जिज्ञासा और भी तीव्र होगी"।[15]

जब हम हिंदी को विश्वभाषा के रूप में देख रहे हैं और उसे विश्वभाषा की संज्ञा से विभूषित कर रहे हैं, तब यह आवश्यक है कि हम विश्वभाषा का स्वरूप भी विश्लेषित कर लें। संक्षेप में विश्वभाषा के निम्नलिखित लक्षण हैं -

1. विश्वभाषा के बोलने और समझने वालों की संख्या बड़ी हो और वे विश्व के हर कोने में फैले हों।
2. उस भाषा के साहित्य की परंपरा दीर्घ तथा साहित्य की समस्त विधाओं पर गंभीर कार्य हुआ हो। इसके साथ ही कोई एक विधा का साहित्य विश्वस्तरीय हो।
3. उस भाषा का साहित्य अनूदित होकर विश्व की दूसरी भाषाओं में भी पहुँच रहा हो।
4. वह विश्व चेतना की संवाहिका हो तथा उसका शब्द-भंडार समृद्ध हो।
5. वह भाषा मनुष्य की परिवर्तनशील आकांक्षाओं को वाणी देने में समर्थ हो।
6. उसमें मानवीय और यांत्रिक अनुवाद की आधारभूत तथा विकसित सुविधाएँ हों, जिनसे वह बहुभाषिक कंप्यूटर की दुनिया में अपने समग्र-सूचना स्रोत तथा प्रक्रिया सामग्री (सॉफ़्टवेयर) के साथ उपलब्ध हो। साथ ही, इतनी समर्थ है कि वर्तमान प्रौद्योगिकी उपलब्धियाँ, जैसे - ईमेल, ई-कॉमर्स, ई-बुक, इंटरनेट तथा एस.एम.एस. एवं वेब जगत् में प्रभावपूर्ण ढंग से अपनी भूमिका निभा सके।

इन आधारों पर यदि हिंदी का परीक्षण करें, तो हिंदी काफ़ी हद तक विश्व-भाषा की कसौटी पर खरी उतरती है। हिंदी विश्व के सभी महाद्वीपों तथा लगभग 195 राष्ट्रों में किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है। 'वह विश्व पटल पर एक नवल एवं मनोहर चित्र की भाँति अपना स्थान बना रही है'। इस बात को टोक्यो विश्वविद्यालय के प्रो. होजुमि तनाका ने सर्वप्रथम 1999 में यांत्रिक अनुवाद संबंधित 'मशीन ट्रांसलेशन समिट' नामक संगोष्ठी में आँकड़े प्रस्तुत करके सिद्ध किया था।[16] प्रो. होजुमि तनाका ने तो चीनी भाषा को प्रथम, हिंदी को द्वितीय तथा अंग्रेज़ी को तीसरे दर्जे में रखा। हिंदी के अनेक विद्वान हिंदी को पहले स्थान पर लाने हेतु प्रयत्नशील हैं। डॉक्टर जयंती प्रसाद नौटियाल भी इसी कोटि के विद्वान हैं। वे हिंदी बोलने वालों की संख्या चीनी भाषियों से भी अधिक मानते हैं। जो भी हो यह तो मानना ही पड़ेगा कि हिंदी भाषा विश्व की दो बड़ी भाषाओं के साथ एक ही पायदान पर खड़ी है। इस बात से परहेज़ नहीं किया जा सकता कि अंग्रेज़ी के प्रयोक्ता विश्व के सबसे ज़्यादा देशों में फैले हुए हैं। अंग्रेज़ी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रशासनिक, व्यावसायिक तथा वैचारिक गतिविधियों को चलाने वाली प्रभावशाली भाषा है। चूँकि हिंदी का साहित्य उच्चकोटि का होते हुए भी ज्ञान स्तर पर अंग्रेज़ी से कम है, इसीलिए इस स्तर पर हिंदी भाषा का संघर्ष अभी चल रहा है। जबकि देखा जाए, तो हिंदी एशिया के व्यापारिक जगत् में, धीरे-धीरे अपना स्वरूप बिम्बित कर, भविष्य की अग्रणी भाषा के रूप में स्वयं को स्थापित कर रही है। विश्व के लगभग 150 विश्वविद्यालयों तथा सैकड़ों छोटे-बड़े केंद्रों में पठन-पाठन और शोध करने तक हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था हुई है। 'कोर लैंग्वेज' नामक साइट ने इसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाषाओं में स्थान दिया है। हिंदी को एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थापित करने और विश्व हिंदी सम्मेलनों के आयोजन को संस्थागत व्यवस्था प्रदान करने के उद्देश्य से 11 फरवरी 2008 को विश्व हिंदी सचिवालय का कार्य आधिकारिक रूप से आरंभ हुआ।

'संयुक्त राष्ट्र रेडियो' ने अपना प्रसारण भी हिंदी में किया है एवं अगस्त 2018 से संयुक्त राष्ट्र साप्ताहिक हिंदी समाचार बुलेटिन का प्रसारण कर रहा है। इसके साथ ही जर्मनी के 'डॉयचे-वेले' तथा संयुक्त अरब अमीरात के 'हम-एफ़.एम.' भी हिंदी में प्रसारित हो रहे हैं। फ़रवरी 2019 में, आबू धाबी में हिंदी को न्यायालय की तीसरी भाषा के रूप में मान्यता मिली। हिंदी के संदर्भ में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि यह भारतीय राजनय का अंग भी है। इसी कारण विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य विदेश मंत्रालय के अंतर्गत किया जाता है। विदेशों में हिंदी शिक्षण के लिए विदेश मंत्रालय का अंग 'भारतीय सांस्कृतिक-संबंध परिषद्' महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्राप्त जानकारियों के अनुसार कैंब्रिज में हिंदी 150 वर्षों से चल रही है और पूर्वी यूरोप में कई देशों में लगभग 200 से अधिक वर्षों से हिंदी अध्ययन-अध्यापन का कार्य हो रहा है। उदाहरणस्वरूप हंगरी के ओतवोश लोरांद विश्वविद्यालय में भारतीय अध्ययन विभाग की स्थापना सन् 1873 में हुई थी। जहाँ पर लगभग पिछले 50 वर्षों से हिंदी पठन-पाठन का कार्य और आज विश्व के लगभग 600 से अधिक स्थानों पर हिंदी शिक्षण का कार्य हो रहा है। श्रीलंका स्थित भारतीय दूतावास के सहयोग से चलाई जा रही हिंदी की कक्षाओं में 250 से अधिक छात्र हर वर्ष प्रवेश लेते हैं। भारत सरकार द्वारा आयोजित होने वाले विश्व हिंदी सम्मेलन भी राजनय का अंग बन चुके हैं।

मनोरंजन के स्तर पर हिंदी सिनेमा अपने गीतों एवं संवादों के ज़रिए विश्व स्तर पर प्रसिद्ध हो चुका है। हिंदी की मूल प्रवृत्ति रागात्मक है। वह केवल राष्ट्र में ही नहीं, बल्कि नेपाल, पाकिस्तान, भूटान, मॉरीशस, गयाना, त्रिनिदाद, सूरीनाम जैसे देशों की संपर्क भाषा भी बनी है। वह भारतीय उपमहाद्वीप के लोगों के बीच खाड़ी देशों, मध्य एशियाई देशों, समूचे यूरोप, कनाडा, अमेरिका तथा मेक्सिको जैसे प्रभावशाली देशों में रागात्मक जुड़ाव तथा विचार-विनिमय का एक सबल माध्यम है।

भारत के बाहर हिंदी पढ़ने वाले दो प्रकार के लोग हैं - विदेशी और प्रवासी भारतीय। विदेशी जब हिंदी सीखते हैं, तब उसका कारण है भारत से अपने को आर्थिक, व्यापारिक, सामाजिक, आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से जोड़ना, हिंदी में वार्तालाप करना तथा भारतीय गीतों का आनंद लेना। इसके साथ ही हिंदी साहित्य के दर्शन को पढ़ना, समझना तथा आत्मसात करना। विदेशी हिंदी विद्वानों ने हिंदी हेतु तमाम सराहनीय कार्य किए हैं जैसे - साहित्यिक रचनाएँ लिखना, शब्दकोश बनाना, हिंदी की प्रसिद्ध साहित्यिक रचनाओं का अनुवाद अपनी-अपनी भाषा में करना इत्यादि। अंग्रेज़ी विद्वानों जे. आर. कारपेंटर ने 'गोस्वामी तुलसीदास' पर अपना शोध ग्रंथ 'द थियोलॉजी ऑफ़ तुलसीदास' लिखा। प्रो. आर. एस. मैक्ग्रेगर ने 'हिंदी-अंग्रेज़ी शब्दकोश', रूसी विद्वान प्रो. बेस्क्रोवनी ने 'हिंदी-रूसी शब्दकोश' बनाया, तो चीनी विद्वान प्रो. यीन ने 'हिंदी-चीनी शब्दकोश'। प्रोफ़ेसर लीनद्रे ने हिंदी के उपन्यासों तथा कहानियों का चीनी भाषा में अनुवाद भी किया तथा हिंदी साहित्य का इतिहास भी चीनी भाषा में लिखा। तुलसीदास की पुस्तक रामचरितमानस का, जो भारत की अक्षुण्ण धरोहर है, रूसी विद्वान प्रो. वारान्निकोव ने रूसी भाषा में अनुवाद किया तथा प्रो. चीन तिंग हान ने चीनी भाषा में अनुवाद किया। यह भारत के साहित्य के लिए गौरव की बात है कि हमारा साहित्य विश्व पटल पर अपनी पहचान बना रहा है। जापान के प्रो. क्युया दोई ने प्रेमचंद के 'गोदान', सुमित्रानंदन पंत के 'स्वर्णकिरण', जैनेंद्र कुमार की प्रतिनिधि कृतियों और महादेवी वर्मा की कुछ कविताओं का अनुवाद जापानी भाषा में किया। बेल्जियम मूल के फ़ादर कामिल बुल्के ने अपना संपूर्ण जीवन हिंदी को समर्पित कर दिया। उन्होंने रामकथा पर गहन शोध करके हिंदी साहित्य को अपार गौरव प्रदान किया। हिंदी के पहले आंचलिक उपन्यास, फणिश्वरनाथ 'रेणु' कृत 'मैला आँचल' का अनुवाद सुश्री चेचिलिया कोसिओ ने किया। प्रेमचंद की 22 कहानियों का अनुवाद श्री दनिल इंकजे ने रोमानियन भाषा में किया।

विश्व के तमाम ऐसे विद्वान हैं, जिन्होंने अपने-अपने देश की भाषाओं और हिंदी के बीच संवाद सेतु निर्मित किए। हिंदी के प्रति लगाव के कारण उन्होंने अपने देश में हिंदी भाषा को आगे बढ़ाया। ऐसे तमाम विद्वान हैं, जिनकी सूची बहुत लंबी है, सभी का उल्लेख करना कठिन है। भारतीय सदैव इन विद्वानों के ऋणी रहेंगे, क्योंकि उनके प्रयासों के कारण ही हिंदी का वैश्विक परिदृश्य अधिक विस्तृत हुआ है।

प्रवासी देशों में मॉरीशस में हिंदी की स्थिति सर्वाधिक सुदृढ़ है। मॉरीशस ने हिंदी के ध्वज को पूर्ण गरिमा और गौरव के साथ

गगनचुंबी बनाया हुआ है। मॉरीशस के डॉ. मुनिश्वरलाल चिंतामणि, सोमदत्त बखोरी, अभिमन्यु अनत, पं. बेणीमाधव रामखेलावन, प्रह्लाद रामशरण, रामदेव धुरंधर, डॉ. हेमराज सुंदर, पूजानंद नेमा, राज हीरामन आदि लेखकों ने हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि की है। फ़िजी के कमला प्रसाद मिश्र और विवेकानंद, त्रिनिदाद की ममता लक्ष्मना, दक्षिण अफ़्रीका के रामभजन सीताराम, गयाना के रण्डल बूटी सिंह, सूरीनाम के अमर सिंह रमण आदि हिंदी भाषा का ध्वज ऊँचा करने के लिए सराहनीय कार्य कर रहे हैं।

इस प्रकार यदि हम देखें, तो वैश्विक मंच पर हिंदी अपने कदम मज़बूत कर रही है। इस प्रयास में प्रवासी तथा विदेशी सभी एकजुट होकर हिंदी की मशाल को प्रज्ज्वलित कर रहे हैं। यदि यही भावना भारत के कुछ लोगों में आ जाए, तो हिंदी सदैव भारत के माथे की बिंदी बनी रहेगी, उसका गौरव रहेगा। भारतेंदु की निम्न पंक्तियाँ इस बात की पुष्टि करती हैं -

निज भाषा उन्नति अहै।
सब उन्नति को मूल।।
बिन निज भाषा ज्ञान के।
मिटत न हिय को सूल।।[17]

संदर्भ सूची :

1. सं. डॉ. विश्वनाथ तिवारी, दस्तावेज़ मासिक पत्रिका - द्वितीय अंक
2. जैकोबी, जैन महाराष्ट्री - भाग 34
3. A.V. Williams Jactio, Awesta Reader 1st Series - Ya-sua-57
4. डॉ कैलाश तिवारी, हिंदी भाषा और उसकी विविध बोलियाँ
5. डॉ. शिवराज वर्मा, हिंदी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास
6. भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग 66
7. डॉ. हेमचन्द्र जोशी, भाषा वैज्ञानिक निबंध
8. डॉ. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय
9. डॉ. भोलनाथ तिवारी, हिंदी भाषा का उद्भव और विकास
10. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, भारत की मौलिक एकता
11. डॉ. भोलनाथ तिवारी, हिंदी भाषा
12. भारत का भाषा सर्वेक्षण खंड-1, भाग-1
13. डॉक्टर कैलाश नाथ पांडेय, भाषा-विज्ञान का रसायन
14. प्रो. नंदलाल कल्ला, राजभाषा भारती पत्रिका - अप्रैल-जून 2018
15. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - विश्व भाषा हिंदी संस्कृति और समाज
16. abhivyakti-hindi.org
17. निज भाषा, भारतेंदु हरिश्चन्द्र

shipra.sagar@gmail.com

विश्व में हिंदी को आगे बढ़ाने के प्रयास एवं संभावनाएँ

डॉ. सुप्रिया प्रभाकर जोशी
औरंगाबाद, भारत

विश्व में सभी मनुष्यों के दैनिक व्यवहार के लिए भाषा अति आवश्यक होती है। प्रायः भाषा के माध्यम से ही सभी मनुष्य अपने सभी भावों को अभिव्यक्त कर पाते हैं, समस्याओं की चर्चा करते हैं और उसका हल भी निकालते हैं। इसी कारण मनुष्य का वैयक्तिक और सामाजिक जीवन सरल और सुविधापूर्ण हो जाता है। साधारणतः हम भाषा की परिभाषा निम्न रूप से कर सकते हैं - "बोलकर-सुनकर अपने विचारों तथा भावनाओं का पारस्परिक आदान-प्रदान करने का साधन भाषा है। बाह्य पदार्थों, परिस्थितियों, घटनाओं तथा क्रियाओं के संबंध में एक निश्चित अर्थ-बोध कराने वाले सार्थक शब्दों के समूह या संकेत को हम भाषा कहते हैं। "

इसी परिभाषा को सार्थक बनाने वाली 'हिंदी' भाषा भी विश्व की अनेक भाषाओं में से एक है। हिंदी केवल भाषा नहीं है, बल्कि एक वैज्ञानिक भाषा है। जिस क्रम से भाषा बोली जाती है, उसी क्रम से लिखी जाती है।

हिंदी भाषा की वर्णमाला में कुल 52 वर्ण हैं, जिनमें 14 स्वर और 38 व्यंजन हैं। इस वर्णमाला की रचना मनुष्य के मुख विवर की संरचना पर आधारित है। जिसे कंठ्य, दंत्य, तालव्य, मूर्धन्य, ओष्ठ्य के आधार पर विभाजित किया जाता है। अक्षरों की क्रम-व्यवस्था के साथ स्वर-व्यंजन, कोमल-कठोर, अल्पप्राण-महाप्राण, अनुनासिक-अंतस्थ-उष्म, आदि का वर्गीकरण भी वैज्ञानिक है। ऐसी वैज्ञानिक भाषा की लिपि देवनागरी है। नागरी वर्णमाला के समान सर्वांग पूर्ण और वैज्ञानिक किसी दूसरी वर्णमाला का गठन अभी तक नहीं हुआ है।

1. हिंदी की विशेषता

ऐसी समृद्ध हिंदी भाषा भारत की तो राजभाषा है ही, किंतु अपने अनेक गुणों तथा विशेषताओं के कारण वह समुचे विश्व पर छायी हुई है।

भारतवर्ष के अनेक नागरिक शिक्षा और अधिकतर नौकरी के कारण विश्व के विभिन्न देशों में वास करते हैं। ऐसे भारतीयों के लिए हिंदी केवल मूलभाषा या मातृभाषा ही नहीं, बल्कि प्राणभाषा और संपर्क भाषा का काम कर रही है। हिंदी भाषा में विविध क्षेत्रीय समाज, संस्कृति, भाषा, आदि को एकसूत्र में बाँधने की शक्ति है, जो हमारी राष्ट्रीय एकता की परिचायिका है। विश्व में भाषाओं के वर्चस्व के बारे में विचार करें, तो विगत तीन शताब्दियों में से अठारहवीं सदी में ऑस्ट्रिया और हंगरी का वर्चस्व रहा, उन्नीसवीं सदी में ब्रिटेन और जर्मनी, तो बीसवीं सदी में अमेरिका एवं सोवियत संघ के वर्चस्व को हम देख पाते हैं। वर्तमान में भारत और चीन के वर्चस्व को हम देख रहे हैं। संभवतः भविष्य में वर्चस्व रहने की पूरी संभावना है।

हिंदी की सकारात्मक बातों को देखा जाए, तो विश्व में साहित्य सृजन की परंपरा बारह सौ साल पुरानी है। हिंदी के कई ऐसे ग्रंथ हैं, जिनका रचनाकाल किस विशेष सदी से संबंध रखता है, यह तय कर पाना असंभव है। इतने प्राचीन काल से वर्तमान तक यह सृजन निरंतर प्रवाहमान है। संस्कृत के पश्चात् काव्य-साहित्य का भंडार हिंदी का ही है। हिंदी में लिखित साहित्य के सभी प्रकार श्रेष्ठतम हैं। हिंदी ने अनेकानेक भाषाओं के बहुप्रयुक्त शब्दों को उदारता से गृहीत कर लिया है, इसलिए उसकी शब्द-संख्या विपुल है। मानव हर क्षण बदलती हुई परिस्थितियों का सामना करता है, ऐसी बदली हुई स्थितियों को व्यक्त करने की अपार शक्ति हिंदी भाषा में है। हिंदी में अपनी जननी संस्कृत के अनुरूप उपसर्ग तथा प्रत्यय लगाकर शब्द बनाने की अभूतपूर्व क्षमता है, इसलिए हिंदी ने सुनियोजित विशेषज्ञता प्राप्त की है।

हिंदी साहित्य के बारे में कहा जाए तो 'पद्मावत', 'रामचरितमानस', 'कामायनी' आदि जैसे अनेक महाकाव्य विश्व की किसी अन्य भाषा में नहीं हैं। वर्तमान में भी नित-नवीन सामाजिक परिस्थितियों को साहित्य में उतारने का काम हो रहा है। इस साहित्य से नारी-विमर्श, दलित-विमर्श, आदिवासी-विमर्श, वृद्ध-विमर्श, किन्नर-विमर्श पर अपनी कलम चलाकर लेखकों ने पुन: मानव मूल्यों की प्रतिष्ठापना की है।

साहित्य-सृजन करने वाले अनेक साहित्यकार संसार के

अनेक देशों से हिंदी में लिखते हैं, जिसमें अमेरिका है - अमेरिका से 'विश्वा' और हिंदी जगत् की वैज्ञानिक पत्रिका 'विज्ञान प्रकाश' प्रकाशित होती हैं। मॉरीशस से 'विश्व हिंदी समाचार', 'विश्व हिंदी पत्रिका', 'विश्व हिंदी साहित्य', 'वसंत', 'रिमझिम' जैसी पत्रिकाएँ हैं। संयुक्त अरब अमीरात से वेब पर 'अभिव्यक्ति और अनुभूति' पिछले ग्यारह वर्षों से भी अधिक वर्षों से हिंदी की सेवा कर रही हैं।

आज हिंदी में 'हंस', 'सहचर', 'साहित्य वीथिका', 'जनकृति', 'हस्ताक्षर' जैसी सैकड़ों पत्रिकाएँ मुद्रित तथा ऑनलाइन रूप में प्रकाशित होती हैं। हिंदी की निजी अभिव्यक्ति-शैली और सांस्कृतिक मूल्यों के कारण वह विश्व-पटल पर भाषा के नए उमंग, तरंग और महत्त्व के साथ अपने अस्तित्व का मृदंग बजा रही है।

किसी भी राष्ट्र की अस्मिता उसकी भाषा से होती है। भाषा संस्कृति को प्रवाहित करती है और संस्कृति व दर्शन से प्रभावित भी होती है। हिंदी भी इसका अपवाद नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से भाषा का स्रोत वैदिक साहित्य, संस्कृत साहित्य, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा है। भारत में अंग्रेज़ों के राज के कारण यूरोपीय भाषाओं की शब्दावली को हिंदी ने आत्मसात किया है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी की लोकप्रियता और भूमिका महत्त्वपूर्ण है। संसार में 6000 के आसपास जनपदीय भाषाएँ बोली जाती हैं, जिनमें 'हिंदवी', 'हिंदुई', 'उर्दू', 'खड़ीबोली', 'दक्खिनी', 'हिंग्लिश' - जैसी मिश्रित तथा बदलते रूपों के साथ, हिंदी अनेक उतार-चढ़ाव झेलती हुई और भी निखरती हुई दिख रही है। हिंदी विश्व में जनभाषा और संपर्क भाषा होने की भूमिका निभाने में कोई कसर नहीं छोड़ रही है।

2. हिंदी बोलनेवाले लोगों की विश्व में संख्या

विश्वभाषा बनने के लिए कितने हिंदी भाषी हैं ? यह देखना आवश्यक है, उसके साथ किस भाषा से स्पर्धा में वह है? इस बात पर विचार करने से हमें यह ज्ञात होता है कि आज विश्व में लगभग 195 देशों में हिंदी है। आज चीनी भाषा के बाद हिंदी बोलने वालों की संख्या विश्व में सर्वाधिक है।

टोकियो विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर होजुनि तनाका ने शोध के बाद ये आँकड़े सभी के सामने लाकर यह सिद्ध किया है कि चीनी का स्थान प्रथम और हिंदी बोलने वालों का स्थान द्वितीय है। इसी शृंखला में डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल है, जिन्होंने भाषा शोध अध्ययन (2005) करने के बाद यह निष्कर्ष दिया है कि विश्व में हिंदी जानने-समझने वालों की संख्या एक अरब, दो करोड़, पच्चीस लाख, दस हज़ार, तीन सौ बावन (1,02,25,10,352) है, जबकि चीनी बोलने वालों की संख्या नब्बे करोड़, चार लाख, छ: हज़ार, छ: सौ चौदह (90,04,6614) है। इन आँकड़ों से ज्ञात होता है कि हिंदी विश्व की सबसे अधिक व्यवहृत भाषा है।

2018 में हुए एक शोध के अनुसार हिंदी आज संपूर्ण विश्व में 64 करोड़ लोगों की मातृभाषा, 26 करोड़ लोगों की दूसरी भाषा और 40 करोड़ लोगों की तीसरी अथवा विदेशी भाषा है।

भूमंडलीकरण के कारण, प्रशासनिक, व्यावसायिक तथा वैचारिक गतिविधियों को चलाने वाली सबसे प्रभावशाली भाषा हिंदी सिद्ध हो चुकी है।

भारतीय संस्कृति और साहित्य के मूल में एक ही अवधारणा है - 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की। हिंदी इसी पथ पर गतिमान है। हिंदी के विकास और विस्तार को लेकर केवल भारतीय ही नहीं, बल्कि प्रवासी भारतीय साहित्यकार और अन्य देशों के हिंदी प्रेमी विद्वान भी इस बात को लेकर जागरूक और कार्यरत हैं। संसार के लगभग 175 देशों में हिंदी का पठन-पाठन और हिंदी से संबद्ध शोधकार्य हो रहे हैं, जोकि हिंदी के बढ़ते कदमों के परिचायक हैं।

'वर्ल्ड एट्लस' नामक वेबसाइट पर लिखे हुए एक लेख के अनुसार हिंदी 425 करोड़ लोगों की मातृभाषा है, तो 120 करोड़ लोगों की दूसरी भाषा है। नेपाल में 8 करोड़ लोगों की भाषा हिंदी है। नेपाल की आबादी में से 80 प्रतिशत लोग हिंदी समझते हैं। यु. एस.ए. में छ: लाख पचास हज़ार लोग हिंदी बोलते और समझते हैं। मॉरीशस में साढ़े चार लाख लोग हिंदी बोलते हैं, जबकि उनकी संसद ने अंग्रेज़ी और फ्रेंच भाषा को अपनी अधिकृत भाषाओं के रूप में स्वीकार किया है। विश्व के प्रमुख देशों में हिंदी बोलने वालों की संख्या निम्नवत है -

भारत	- 4,22,048 642
नेपाल	- 8,000,000
यु.एस.	- 6,41,476
मॉरीशस	- 4,50,170
फ़िजी	- 3,80,00

साऊथ अफ़्रीका	- 2,50,292
सूरीनाम	- 1,50,000
युगांडा	- 1,00,000
यू.के.	- 45,800
न्यूज़ीलैंड	- 20,000
जर्मनी	- 20,000
त्रिनिदाद	- 16,000

इन संख्याओं को देखकर हम यही कह सकते हैं कि देश छोटा हो या बड़ा, हिंदी बोलने वाले कम हों या अधिक, समग्र रूप से देखते हुए कहा जा सकता है कि स्थिति संतोषजनक है।

3. हिंदी को विश्वभाषा बनाने के प्रयास

हिंदी को विश्वभाषा बनाने का हमारा सपना गतिमान है, हिंदी को विश्वभाषा बनाने के प्रयास किस तरह से हो रहे हैं ? इस पर हम चर्चा करेंगे। विदेशों में बसने वाले भारतीय मूल के लोगों के कारण और वैश्वीकरण तथा भूमंडलीकरण के कारण हिंदी सर्वाधिक लोकप्रिय हो रही है। वस्तुओं के विज्ञापन, बिक्री और उनके प्रचार के लिए सबसे पहले उपभोक्ताओं के स्थानीय या प्रांतीय भाषा अथवा देश की राष्ट्रभाषा का सर्वप्रथम उपयोग किया जाता है, इसीलिए बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपना उत्पादन बेचने के लिए हिंदी भाषा को उपयोग में ला रही हैं।

भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने की मुहिम की शुरुआत नागपुर में 10 जनवरी 1975 में आयोजित प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में की थी। विश्व में हिंदी का स्थान बनाने के लिए सबसे अधिक संयुक्त राष्ट्र संघ प्रयासरत है। संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रक्रिया नियम 51 से 57 में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा तथा इसकी विभिन्न समितियों एवं उप समितियों के लिए आधिकारिक तथा कार्य-संचालन की भाषाओं की व्यवस्था की गई है। वर्तमान में अरबी, चीनी, फ्रेंच, रूसी, स्पेनिश और अंग्रेज़ी इसकी आधिकारिक भाषाएँ हैं।

हाल ही में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में हिंदी भाषा से जुड़े प्रस्ताव को मंज़ूरी मिली है। इस प्रस्ताव में कहा गया है कि "संयुक्त राष्ट्र के सभी कामकाज और ज़रूरी सूचनाएँ आधिकारिक भाषाओं के अलावा हिंदी में भी जारी की जाएँगी।"

भारत के पूर्व प्रधानमंत्री मा. श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने संयुक्त राष्ट्र संघ में, वर्ष 1977 में, विदेश मंत्री के रूप में और वर्ष 2002 में प्रधानमंत्री के तौर पर हिंदी में भाषण दिया था। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अब तक भारत के अनेक नेताओं ने हिंदी का प्रयोग किया है। अटल बिहारी वाजपेयी की तरह पी.वी. नरसिम्हा राव ने भी संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी में वक्तव्य दिया था। श्रीमती इंदिरा गांधी जी के राष्ट्र मंडल के देशों की बैठक में तो चंद्रशेखर द्वारा शिखर सम्मेलन में दिए हुए हिंदी भाषण स्मरणीय हैं।

हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री मा. श्री नरेंद्र मोदी जी जब कभी विदेशों में जाकर, वहाँ की जनता को संबोधित करते हैं, तब अक्सर हिंदी का ही प्रयोग करते हैं, विदेशों में कई लोग मोदी जी को हिंदी का राजदूत और ब्रांड एम्बासाडर मानने लगे हैं।

अनेक अंग्रेज़ी समाचार-पत्र हिंदी में प्रकाशन की संभावना दे रहे हैं, उनमें 'इकॉनॉमिक टाइम' तथा 'बिज़नेस स्टैंडर्ड' सम्मिलित हैं।

'नेशनल ज्योग्राफ़ी', 'डिस्कवरी', 'एनिमल प्लेनेट', 'सोनी', 'बी.बी.सी.- अर्थ', 'ट्रेवेल XP' और 'हिस्ट्री चैनलों' पर सभी अंग्रेज़ी कार्यक्रमों का हिंदी अनुवाद भी दिखाया जाता है। खेल के चैनल्स में भी हिंदी के चाहने वालों के लिए 'हिंदी' कमेंट्री देने वाले अलग चैनलों की व्यवस्था की गयी है।

हिंदी को विश्व में ऊँचा स्थान देने के लिए उपग्रह चैनलों, विज्ञान एजेंसियों, बहुराष्ट्रीय निगम और यांत्रिक सुविधाओं का विशेष योगदान है।

दक्षिण पूर्व एशिया, मॉरीशस, चीन, जापान, कोरिया, मध्य एशिया, यूरोप, कनाडा तथा अमेरिका में हिंदी कार्यक्रम होते हैं। साथ ही, उपग्रह चैनलों के माध्यम से प्रसारित किए जा रहे हैं।

माइक्रोसॉफ़्ट, गूगल, याहू, आई.बी.एम. तथा ओरेकल जैसी विश्वस्तरीय कंपनियाँ हैं, जो हिंदी भाषा की लोकप्रियता और उसमें मिल रहे भारी मुनाफ़े को देखकर हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा दे रही हैं।

गूगल के सर्वेक्षण ने सिद्ध किया है- "विगत दो वर्षों में सोशल मीडिया पर हिंदी में प्रयुक्त होने वाली सामग्री में लगभग 14 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है।"

विश्व हिंदी सम्मेलन का इसमें विशेष उल्लेखनीय कार्य है। अब तक मॉरीशस, त्रिनिदाद, लंदन, सूरीनाम तथा न्यूयॉर्क में विश्व सम्मेलन संपन्न हो चुके हैं।

हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए 2006 से प्रति वर्ष 10 जनवरी को 'विश्व हिंदी दिवस' मनाया जाता है। हिंदी की व्यापकता को देखकर भारत से इतर विश्व के अनेक स्कूल, महाविद्यालय, विश्वविद्यालयों में हिंदी के पठन की सुविधा उपलब्ध करायी गई है। यूनिवर्सिटी ऑफ़ शिकागो, प्रिंस्टन, हार्वर्ड, येल, ड्यूक, मोंटाना, हॉस्टन आदि इन विश्वविद्यालयों में हिंदी को पढ़ाने की और शोधकार्य करने की सुविधाएँ हैं। अमेरिका में हिंदी पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं, जिनमें 'विश्वा', 'सौरभ', 'हिंदी जगत्', 'क्षितिज', 'विवेक', 'बालभारती', 'हिंदी चेतना' जैसी पत्रिकाएँ हैं।

कनाडा में भी 'हिंदी टाइम्स', 'हिंदी एब्रॉड', 'विश्वभारती', 'नमस्ते कनाडा', 'हिंदी चेतना', 'वसुधा', आदि पत्रिकाएँ तथा साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होते हैं। मॉरीशस में हिंदी ने सर्वाधिक गरिमा प्राप्त की है। मॉरीशस एक ऐसा देश है, जहाँ कि संसद ने हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की अधिकृत भाषा बनाने हेतु 'विश्व हिंदी सचिवालय' की स्थापना की है। यहाँ पर प्राथमिक विद्यालय से विश्वविद्यालय तक हिंदी पढ़ाई जाती है। रेडियो और टीवी पर निरंतर हिंदी में कार्यक्रम चलते रहते हैं। इटली में वेनिस, टूरिन, रोम, ऑरियंटल, मिलान विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। कोरिया के सियोल के हांकुक और बुशान के विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। रशिया और भारत का स्नेह काफ़ी पुराना है। मॉस्को अंतर्राष्ट्रीय संबंध संस्थान, मॉस्को विश्वविद्यालय और रूसी मानविकी विश्वविद्यालय में अनेक छात्र हिंदी का ज्ञान प्राप्त करते हैं। मॉस्को का जवाहरलाल नेहरू सांस्कृतिक केंद्र हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

फ़िनलैंड के हेल्सिंकी और स्वीडन के स्टॉकहोम विश्वविद्यालयों में तथा डेनमार्क के कोपेनहैगन विश्वविद्यालय में हिंदी अध्ययन की व्यवस्था है।

सिंगापुर में भी अनेक शिक्षण संस्थाओं की ओर से हिंदी को बढ़ावा दिया जा रहा है। महात्मा गांधी मेमोरियल, महात्मा गांधी पुस्तकालय आदि सुविधाओं से भारत का समृद्ध इतिहास एवं संस्कृति की जानकारी वहाँ के बच्चों को दी जा रही है। हिंदी सोसायटी सिंगापुर जैसी अनेक संस्थाएँ हिंदी को बढ़ावा दे रही हैं। हिंदी को विश्व के अनेक देश अपने सामर्थ्यानुसार सींच रहे हैं। हिंदी की ऐतिहासिक परंपरा और उसकी संस्कृति ही हिंदी की शक्ति है, जो विश्व के धरातल पर अपना स्थान दिन-प्रतिदिन उच्च शिखर पर ले जा रही है।

4. वैश्वीकरण

वैश्वीकरण एक ऐसी विचारधारा है, जिससे सामाजिक-भौगोलिक संबंधों का विकास होता है। वैश्वीकरण को सांस्कृतिक-सामाजिक साम्राज्यवाद के रूप में देखने से वैश्वीकरण ने नई अर्थ-व्यवस्था का प्रारंभ किया है। इंटरनेट, सूचना-प्रौद्योगिकी और सूचना-क्रांति का इस पर गहरा असर पड़ा है। संचार-माध्यम सभी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए वरदान सिद्ध हो रहा है। भौगोलिक दूरियाँ मिटने के कारण विश्व एक ग्राम बन गया है। भाषा-विद्वानों ने, हिंदी के भविष्य को लेकर, यह संकेत दिया है कि वैश्वीकरण के इस दौर में विश्व की दस भाषाएँ ही जीवित रहेंगी, जिनमें हिंदी भी एक होगी।

विश्वभाषा उसे कहा जाता है, जिस भाषा को बोलने वाले लोग एक से अधिक देशों में बसे हुए हों। विश्वभाषा बनने के लिए किसी भाषा को विश्व के अधिकतर देशों में पढ़ी-लिखी, सुनी-बोली और समझी जाती हो। आज भारत के बाहर नेपाल, भूटान, सिंगापुर, मलेशिया, थाईलैंड, फ़िजी, मॉरीशस, कनाडा, अमेरिका जैसे अनेक देशों में हिंदी भाषा-भाषी प्रचुर संख्या में हैं। दूसरी शर्त है, वह भाषा लचीली होनी चाहिए, जिसमें भिन्न संदर्भों की अभिव्यक्ति की क्षमता हो, उसका एक सर्वस्वीकृत मानक रूप हो, उसमें उपमानकों की परस्पर संप्रेषणीयता किसी-न-किसी स्वीकृत मानक के माध्यम से बनी हुई हो - ये गुण हिंदी में अवश्य हैं। विश्वभाषा से तीसरी अपेक्षा है कि भाषा में विश्व मन का भाव हो। हिंदी भाषा में ऐसे साहित्य की विशाल परंपरा है, जो विश्व के पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करती है।

वैश्वीकरण के कारण अनेक देशों में आवागमन, संपर्क, व्यापार आदि सहज और सामान्य हो रहा है। अति विस्तृत कार्यक्षेत्र मिल जाने के कारण हर देश अपनी मौलिक सभ्यता, संस्कृति को लेकर उभर रहा है तथा इस सभ्यता और संस्कृति के साथ

अपने देश की भाषा को माध्यम बना रहा है। वैश्वीकरण का यह दौर प्रत्येक राष्ट्र की शक्ति के परीक्षण का है, जिसमें भाषा की अभिव्यक्ति संप्रेषणीयता जितनी प्रखर होगी, उसके प्रसार में उतनी ही सुगमता और सफलता मिलेगी।

हिंदी के विकास में द्रविडीयन, तुर्की, फ़ारसी, अरबी, पुर्तगाली और अंग्रेज़ी भाषाओं के शब्दों का योगदान अविस्मरणीय है, इसलिए हिंदी का भंडार समृद्ध है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों में हिंदी का प्रयोग बढ़ रहा है। जर्मन, फ्रेंच, जापानी, स्पेनिश और चीनी जैसी प्रमुख भाषाओं के साथ होड़ में हिंदी भी आगे निकल रही है। मनुष्य के सुबह उठने के बाद से रात में सोने तक दिन भर मनुष्य को जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है, उसके अनगिनत ब्रांडों के विज्ञापन आज हिंदी में प्रसारित हो रहे हैं। जैसे - 'टुथपेस्ट-ब्रश', कपड़े धोने, नहाने या बर्तन माँजने के साबुन आदि ज़रूरतों की अनेकानेक वस्तुओं के लिए हिंदी में विज्ञापन हैं। हिंदी अपनी अभिधा-लक्षणा-व्यंजना की शक्ति से वस्तु का विज्ञापन चमत्कारी ढंग से करती है। घर के इलेक्ट्रिक साधन जैसे - 'टीवी', 'फ्रिज', 'पंखा', 'वाशिंग मशीन' आदि वस्तुओं के लिए भी हिंदी में विज्ञापन कर ग्राहकों को अपनी ओर आकर्षित करने का भरपूर प्रयास हो रहा है।

इस प्रक्रिया में, हिंदी फ़िल्मों को भी वैश्विक स्तर पर मान्यता प्राप्त हो रही है। हिंदी फ़िल्मों का अंग्रेज़ी में और अंग्रेज़ी फ़िल्मों की डबिंग (अनुवाद) या रिमेक हो रहा है। हॉलीवुड की बड़ी से बड़ी फ़िल्मों की हिंदी में डबिंग हो रही है। साथ ही, भारतीय अभिनेता एवं अभिनेत्रियों के हुनर को देखकर उन्हें बड़े सम्मान के साथ हॉलीवुड में काम करने के लिए बुलाया जा रहा है। इसी तरह वेब सीरिज़ भी वर्तमान में बहुत लोकप्रिय हो रही हैं। आज 'नेटफ़्लिक्स', 'आमाज़ोन प्राइम वीडियो', 'डिज़नी', 'हॉटस्टार' आदि विभिन्न प्लेटफ़ॉर्मों पर प्रसारित होने वाले सभी कार्यक्रमों को पूरे विश्व के लोग बड़े ही चाव से देखते हैं।

इन सभी स्थितियों को देखकर हम यह कह सकते हैं कि हिंदी वैश्वीकरण के इस दौर में खरी उतर रही है और आगे चलकर भी निरंतर इसकी अविरल धारा में बहती रहेगी।

5. हिंदी में रोज़गार की संभावनाएँ

भारत में आज अगर कोई विद्यार्थी हिंदी में ग्रेज्युएट या पोस्ट ग्रेज्युएट करता है, तो हमारे देश में उसे दुत्कार मिलती है, इंजीनियर या तकनीकी क्षेत्र के लोगों की अधिक माँग होती है, उन्हें तुरंत नौकरी मिल जाती है। वर्तमान में भाषाओं और संस्कृतियों के सम्मुख अपने अस्तित्व का संकट उत्पन्न हो रहा है, लेकिन वैश्वीकरण के कारण यही भाषा ज्ञान और रोज़ी-रोटी का साधन बन रहा है। अधिकतर 'अनुवादक' के रूप में रोज़गार प्राप्ति हो रही है। दैनिक ज़रूरतों को पूर्ण करने वाली वस्तुओं के विज्ञापन के लिए अनुवादक की ज़रूरत होती है। 'आमाज़ोन', 'फ़्लिपकार्ट' जैसी विश्वभर की विस्तृत कंपनियों में उनके हिंदी ग्राहकों के लिए हिंदी अधिकारियों की आवश्यकता होती है, इस रूप में भी हमें रोज़गर मिलने की पूरी संभावना है। फ़िल्म क्षेत्र में भी हिंदी अनुवादक की आवश्यकता होती है और पुरुष या स्त्री की आवाज़ों को डब करने के लिए भी हिंदी भाषियों की ज़रूरत होती है। साथ ही, विश्व में जितने भी विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ने की सुविधा है, वहाँ पर पढ़ाने के लिए अवश्य ही हिंदी अध्यापकों की ही ज़रूरत होती है। इस तरह हिंदी भाषा से जुड़े रोज़गर हमें विश्व स्तर पर मिल सकते हैं। संभवतः हिंदी से जुड़े रोज़गार के ऐसे अवसरों को देखकर विश्व स्तर पर अहिंदी भाषी भी हिंदी सीखने लगे हैं।

6. वैश्विक पटल पर हिंदी की समस्याएँ

हिंदी भाषा जिस तरह भारत देश में अपने ही लोगों से उपेक्षा सहती रही है, उसी तरह विश्व पटल पर भी अनेक समस्याओं से जूझती रही हैं।

पश्चिमी भोगवाद का विकास होता जा रहा है और जो भारतीय अन्य देशों में रहते हैं, वे भी उसी सभ्यता का हिस्सा बन जाते हैं। परिणामस्वरूप भारतीय संस्कृति तथा हिंदी का ह्रास होते हुए दिखाई देता है। यहाँ तक कि भारतीय घर में अपने बच्चों से अपनी मातृभाषा या हिंदी में भी बात नहीं की जाती है। ऐसी स्थिति में हिंदी भाषा अगली पीढ़ी तक कैसे पहुँचेगी?

विज्ञापन के क्षेत्र में भी विदेशी कंपनियाँ पहले अंग्रेज़ी में ही विज्ञापन बनाती हैं, बाद में चटपटी-सी भाषा में 'काम चलाऊ' तत्त्व पर उसका हिंदी अनुवाद कर देती हैं। इस तरह हिंदी अपनी मूल

गरिमा को खो रही है। हिंदी और अंग्रेज़ी के मेल से खिचड़ी भाषा बनती जा रही है। हिंदी की अपनी समस्याओं में से एक समस्या है - देवनागरी लिपि में टंकण की समस्या। गूगल इनपुट टूल्स के तहत हमें लगभग 80 भाषाओं की लिपियों में टंकण की सुविधा दी गई है। उनमें निश्चित ही 'देवनागरी लिपि' भी एक है। गूगल में इंस्क्रिप्ट, फ़ोनेटिक, हस्तलिखित, लिप्यंतरण की सुविधाओं के साथ ही वॉइस टाइपिंग की भी सुविधा उपस्थित है, किंतु अब भी अनेक लोगों को टंकण करते समय समस्याएँ होती हैं।

ज्ञान-विज्ञान और कानून के क्षेत्र में हिंदी का बहुत कम प्रयोग होता है, इसका मूल कारण यह है कि इनमें अनेक क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया गया है, इनसे बचने के लिए अंग्रेज़ी का ही प्रयोग सुविधाजनक लगता है। ऐसी स्थितियाँ हिंदी प्रेमियों में अरुचि पैदा करती हैं; ऐसे में हिंदी विश्वभाषा का दर्जा कैसे प्राप्त करेगी?

7. सुझाव

हिंदी को विश्वभाषा बनाने के लिए विश्व में हिंदी को पढ़ाने की सुविधा विद्यालयों से होनी चाहिए। अनुसंधान एवं शोध करने की सुविधा होनी चाहिए। चिकित्सा, इंजीनियरिंग, आदि विज्ञान के सभी विषयों को हिंदी में पढ़ाने की सुविधा होनी चाहिए।

सर्वप्रथम कम-से-कम भारतीयों को अपने घर में बच्चों के साथ हिंदी बोलनी चाहिए। अगर घर से इसका प्रारंभ होगा, तो बच्चों में उत्पन्न जिजीविषा हिंदी को कभी मरने नहीं देगी।

वैश्वीकरण के इस दौर में हिंदी को कंप्यूटर की भाषा बनाना होगा। हिंदी भाषा तथा देवनागरी लिपि को ध्यान में रखकर सॉफ़्टवेयर विकसित करने होंगे।

हिंदी के कूटपद तथा संकेताक्षरों को ध्यान में रखते हुए कंप्यूटर के प्रोग्रामिंग की रचना करनी होगी। जिससे कंपनियों के उत्पादन पर जैसे - वस्तु, पदार्थ, दवाइयाँ, आदि पर रोमन लिपि के साथ देवनागरी लिपि का लेबल होगा, तो निस्संदेह हिंदी का प्रचार-प्रसार होगा।

अनुवाद के क्षेत्र में, अनुवादकों की लंबी सूची होनी चाहिए, जिससे हिंदी के लोकप्रिय साहित्य का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हो। इसके लिए विश्व भाषाओं में से कुछ प्रमुख भाषाओं के द्विभाषी तथा बहुभाषी शब्दकोश होने चाहिए।

विदेशों में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं एवं समाचार-पत्रों का नियमित प्रकाशन और आसानी से वितरण करने की सुविधाएँ हों।

हिंदी को विश्वभाषा बनाने के लिए केवल कागज़ पर सुझाव देने से योजनाएँ तो बन जाती हैं, पर उन पर प्रत्यक्ष रूप से काम नहीं होता है। इसलिए विश्व स्तर पर हिंदी के लिए कुछ ठोस कदम उठाने होंगे, जिससे हिंदी विश्वभाषा बन पाए।

वर्तमान में, विश्व की सबसे विशाल जनसंख्या भारत और चीन में है। दूसरी ओर भारत में अधिक युवक हैं। जापान, अमेरिका और यूरोप की आधी से अधिक जनसंख्या बुढ़ापे की ओर झुक रही है। ऐसे में विदेशों में भी काम करने के लिए युवकों की माँग बढ़ेगी। भारत के युवक विदेश में जाएँगे, तो उनके साथ संपर्क भाषा हिंदी भी जाएगी और हिंदी को विदेशों में अपने प्रस्थापित स्थान को और भी गरिमामय बनाने का अवसर मिलेगा। हिंदी स्वयं विश्व पटल पर प्रभावी भूमिका का वहन करेगी।

आज हिंदी की स्थिति और भविष्य की संभावना को देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि आनेवाले दस सालों में हिंदी विश्व में सबसे अधिक बोली-समझी और पढ़ी-लिखी जाएगी, यही शुभ संकेत हम देख सकते हैं।

अंत में हिंदी को व्यापक स्तर पर व्यक्त करती हुई लोकेश इंदौरा जी की यह कविता प्रस्तुत है :

"हर 5वाँ धरती का प्राणी
हिंदी पढ़ना-लिखना जाने
20 फ़ीसदी दुनिया देखो
हिंदी के ही गुनगुनाये तराने

गूगल हिंदी को अपनाये
सोशल मीडिया भी इठलाये
अनुमान 2021 में इंटरनेट भी
सर्वाधिक हिंदी भाषी यूज़र पाये

हो अरबी उर्दू फ़ारसी
या फिर अंग्रेज़ों की अंग्रेज़ी
हिंदी ने दिल खोलकर
तन-मन से अपनाया जी"

संदर्भ सूची :

1. डॉ. मंजु रानी, हिंदी का वैश्विक परिदृश्य, मानसरोवर प्रकाशन, नोएडा, सं. 2017
2. प्रो. डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, विश्व में हिंदी का स्थान, साहित्य संवाद अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका, अप्रैल 2018
3. चौधरी बंसीला। विश्व पटल पर हिंदी के बढ़ते चरण, सितंबर 2020
4. अनिरुद्ध सिंह सेंगर, विश्व पटल पर हिंदी के बढ़ते चरण
5. https://newssonair.gov.in
6. https://www.vistawide.com
7. https://www.worlddata.info
8. https://www.worldatlas.com

supriyaj827@gmail.com

बर्मा में हिंदी की उपस्थिति तथा उसकी विकास-यात्रा

डॉ. कामता कमलेश
मेरठ, भारत

बर्मा और भारत का सांस्कृतिक सम्बन्ध एक सनातन सत्य है। बौद्ध मत भारत से बर्मा पहुँचा था। वर्तमान समय में वहाँ की 80 प्रतिशत जनता बौद्ध मतावलम्बी है। इस देश के अनेक धर्म-ग्रन्थ 'पालि भाषा' में हैं। बौद्धावतार की अनेक जातक कथाएँ हैं, जिन्हें यहाँ बड़े सम्मान के साथ सुना और पढ़ा जाता है।

भारतीय संस्कृति को भारत से पूर्व की ओर अग्रसर करने में बर्मा ने बहुत सहायता की - "बुद्ध, भारत और बर्मा दोनों के धर्म गुरु थे, अतएव भारत और बर्मा परस्पर गुरु-भाई हैं।"[1]

भारत के अंतिम नवाब बहादुरशाह ज़फ़र को, 21 सितम्बर सन् 1867 को अंग्रेज़ों ने हराकर, कैद कर लिया और दूसरे दिन उन्हें रंगून की जेल में डाल दिया। इसी जेल में उनकी मृत्यु हुई थी। मृत्यु से पहले ज़फ़र साहब ने बड़े दर्द में यह पद लिखा था -

"लगता नहीं है दिल मेरा उजड़े दयार में
राजे हशर से माँगकर लाया था चार दिन,
दो आरज़ू में कट गए, दो इन्तज़ार में।
इतना था बदनसीब 'ज़फ़र' दफ़न के लिए,
दो गज ज़मीन न मिली कूये यार में।।" [2]

ज़फ़र साहब की कब्र रंगून के 'श्वे डगोन पगोडा' के पास रायल झील के किनारे वाटिका में है।

भारत के स्वतंत्रता-संग्राम के अग्रदूत श्री बाल गंगाधर तिलक को अंग्रेज़ों ने बन्दी बनाकर रंगून लाया और माण्डले के जेल में बंद कर दिया। तब गोखले जी ने वहीं घोषणा की थी कि "स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा।" कारावास के समय उन्होंने 'गीता-रहस्य' जैसे महान् ग्रन्थ की रचना की थी। यह ग्रन्थ नौ सौ पृष्ठों का है। इसका श्री गणेश 02 नवम्बर 1910 को हुआ था और 30 मार्च 1911 को यह समाप्त हुआ। 'गीता-रहस्य' में चार खण्ड हैं। प्रथम तीन में 'रहस्य' और चतुर्थ में श्लोकों का अनुवाद और प्रस्तावना है। इस ग्रन्थ की रचना के समय तिलक जी को कुछ सन्दर्भ के लिए सहायक ग्रन्थों की आवश्यकता पड़ी। पर तत्कालीन शासन ने रंगून में सभी पुस्तकों को एक साथ रखने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। बहुत प्रयासों के बाद तिलक जी को जेल में केवल चार पुस्तकें एक बार में मँगाने की अनुमति मिली। इसको ध्यान में रखते हुए वे लगभग 350 से 400 पुस्तकें प्राप्त कर सकें। तब 'गीता-रहस्य' को पूर्ण किया।

इसके साथ बर्मी शासकों ने पाण्डुलिपि तैयार करने के लिए एक-एक पृष्ठ अलग से लिखने पर भी रोक लगा दी। तब उन्हें जिल्द बंद मोटी-मोटी कापियाँ दी गईं और साथ ही यह भी निर्देश दिया गया कि पाण्डुलिपि स्याही से न लिखी जाए, उसके स्थान पर पेन्सिल का प्रयोग किया जाए। 8 जून, 1914 को तिलक जी को कारावास से मुक्ति मिली, तो दुर्भाग्य से पुस्तक सरकार के पास ही रह गई। लोकमान्य तिलक जी के अपने शब्दों में व्यक्त की गई उत्सुकता के अनुसार वे पुस्तक की पाण्डुलिपि प्राप्त होने की आशा छोड़ चुके थे।[3]

सन् 1955 के अगस्त मास में जब भारत के प्रसिद्ध नेता श्री एस.के. पाटिल वर्मा भ्रमण के लिए आए, तब उन्हें माण्डले कारागार का 'तिलक निवास कक्ष' देखने की इच्छा हुई। फलतः बर्मा के भारतीय राजदूत महामहिम श्री लाल जी मेहरोत्रा का हृदय द्रवित हो उठा। तत्काल उन्होंने कारागार के उस स्थल पर 'तिलक-स्मारक' का निर्माण करवाया, जिससे माण्डले का गौरव द्विगुणित हो गया।

भारत और बर्मा के सनातन सांस्कृतिक सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाए रखने में, वहाँ के मूल भारतीय हिंदी को अब तक संजीवनी दे रहे हैं। बर्मा के मध्य में जियावड़ी और चैतगा महानगरों में हिंदी भाषी बहुल क्षेत्र हैं। यद्यपि ये नगर पहले बीहड़ जंगलों से आच्छादित थे, तथापि श्री जेम्स मिलर, जय प्रकाशलाल के साथ मिलकर बिहार के डुमरांव, बिहिया, भोजपुर और आरा से लाखों श्रमिक वहाँ ले गए श्रमिकों से यही कहा गया कि - "तुम लोग वहाँ तब तक रहो, जब तक कि तुम्हारी इच्छा हो। बाद में तुम भारत लौट आना। जेम्स उन्हीं भारतीय श्रमिकों को छाँटकर ले जाते, जो दस तक गिनती भी नहीं बोल और लिख पाते, पर वे बलिष्ठ एवं नौजवान थे।" [4]

चयन का यह अद्‌भुत ढंग बहुत दिनों तक चलता रहा। कालान्तर में भारत से पढ़े-लिखे लोग, व्यापारी आदि भी जाने लगे। जियावड़ी और चैतगा के श्रमिकों ने बीहड़ जंगलों को अपने खून-पसीने से साफ़ कर कृषि योग्य भूमि में बदल दिया। धान की खेती वहाँ बहुलता में होने लगी। बर्मा गए मूल भारतीयों की बोली भोजपुरी, मगही और अवधी थी। ये लोग हिंदी को अपनी पहचान का प्रमाण मानते थे। उनमें लाखों भारतीयों में अपने धर्म और रीति-रिवाज़ों के पालन के प्रति अडिग विश्वास है। फलस्वरूप, उसे अब तक सुरक्षित रखा है।

सन् 1937 के मार्च महीने में भारत से पं. हरिबदन शर्मा का यमेदिन नगर में आगमन हुआ। वे वहाँ धर्म-रक्षक के रूप में प्रतिष्ठित थे। यमेदिन के शिव मंदिर में 'श्री ब्राह्मण सभा' और हिंदी प्रचार के लिए 'अखिल ब्रह्म देशीय हिंदी साहित्य सम्मेलन' भी हैं। जियावड़ी में सरकार से मान्यता प्राप्त हिंदी मिडल स्कूल है। अब उसका नाम गांधी जी की स्मृति में श्री गांधी महाविद्यालय कर दिया गया है। इसी विद्यालय में 'हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग' की 'साहित्य रत्न' की परीक्षा का केंद्र भी बनाया गया। कालान्तर में इसे सरकारी शिक्षा विभाग ने मान्यता दे दी। फलतः हिंदी अध्यापकों को पूरा वेतन भी मिलना प्रारम्भ हो गया। पं. हरिबदन शर्मा के सतत् प्रयासों से उस समय तक हिंदी पढ़ने के लिए 360 स्कूल हो गए थे।

शर्मा जी ने बर्मा में हिंदी का सर्वप्रथम मासिक पत्र 'विश्वदूत' प्रकाशित किया, जो शीघ्र ही दैनिक पत्र बन गया। इसके बाद 'हिंदी-सन्देश', 'बर्मा-बन्धु', 'बर्मा-समाचार', 'हिंदी-पत्रिका', 'परिवर्तन', 'प्राची प्रकाश', 'नव जीवन' तथा 'प्रवासी' नामक हिंदी पत्रों की धूम मच गई। सन् 1950 में 'ब्रह्म-भूमि' मासिक पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ। सन् 1964 में सभी समाचार-पत्रों का राष्ट्रीयकरण होने से सभी पत्र बन्द हो गए। किन्तु 'ब्रह्मभूमि' का प्रकाशन आज भी हो रहा है।[5]

यद्यपि 1968 में 'हिंदी बुलेटिन', आर्य समाज रंगून द्वारा 'आर्य-जागृति' भी प्रकाशित हुई तथापि कुछ समय बाद इसका भी प्रकाशन बंद हो गया। जबकि वहाँ बर्मा-प्रेस, विश्वबंधु-प्रेस, बर्मा समाचार प्रेस, बर्मा सरस्वती प्रेस तथा माण्डले का कार्य यथावत चलता रहा।

नेताजी सुभाष चन्द्रबोस का सम्बन्ध बर्मा से हो चुका था। आठ जुलाई, 1943 को 'आज़ाद हिन्द सेना' का नामकरण हुआ। उसी अवसर पर नेताजी ने कहा दिल्ली पहुँचना और लाल किले पर तिरंगा फहराना हमारा अभीष्ट है। हमारा नारा है - 'चलो दिल्ली'।

बर्मा के मूल भारतीयों के दिलों में उनके प्रति अपार श्रद्धा और सम्मान होने के कारण उनकी 47वीं जयन्ती मनाने का निर्णय लिया गया। फलतः 23 जनवरी के शुभ दिन उन्हें सोने से तौला गया। तब उनका वज़न 212 पाउण्ड निकला। जयंती समारोह के अवसर पर उन्हें जो मालाएँ पहनायी गयी थीं, उनकी नीलामी भी हुईं। वे दो मालाएँ तीस और चालीस लाख में नीलाम हुईं। इस अवसर पर उपस्थित मूल भारतीयों ने अपनी पितृ-भूमि की आज़ादी के निमित्त 'उपस्थिति पत्रिका' पर रक्त से हस्ताक्षर भी किए।

हिंदी के विकास में आर्य समाज और रामकृष्ण मिशन का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इनके कार्यक्रम हिंदी में सम्पन्न होते रहे। माण्डले स्कूल में हिंदी-शिक्षण होने के साथ रंगून के डी.ए.वी. कॉलिज में भी हिंदी-शिक्षण होने लगा। 1925-26 में लड़कियों के लिए भी हिंदी पठन-पाठन का प्रबन्ध किया गया।

रंगून में एक 'रात्रि पाठशाला' भी स्थापित की गई। 1938 में "हिंदी की प्राथमिक ट्रेनिंग" की कक्षाएँ भी शुरू हुईं। 'श्रीराम मण्डली' नामक संस्था की देख-रेख में एक 'हिंदी मिडल स्कूल' भी संचालित की गई है, जिसका उद्‌घाटन तत्कालीन भारतीय राजदूत महामहिम श्री लाल जी मेहरोत्रा ने किया था।

बर्मा के टौंजी नगर में वहाँ के भारतीयों ने राष्ट्रपिता गांधी जी की स्मृति में 'गांधी स्मारक महाविद्यालय' की स्थापना की। महात्मा गांधी जी का आगमन सन् 1929 में हुआ। तब भारत में विदेशी सामान का बहिष्कार करने का आंदोलन चल रहा था। गांधी जी ने अपने भाषण में कहा था -"भारतीय, बर्मियों को भाई समझें और उनके साथ वही व्यवहार रखें, जो एक ईमानदार पड़ोसी बन्धु का होता है।"[6]

गांधी जी से पहले भारत के पूर्व राष्ट्रपति, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का आगमन वहाँ हो चुका था। उनका व्याख्यान सुनने के लिए मूल भारतवंशी विपुल संख्या में उपस्थित थे। उनके दर्शन होते ही भारतीयों ने नारा लगाया - 'बोलो गंगा जी की जय, बोलो महावीर जी की जय', जिसे सुनते ही डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने, गद्‌-गद् कंठ से

कहा - "यहाँ ऐसे दुर्दिन में भी आप लोग 'गंगा जी तथा महावीर जी' को नहीं भूले हैं। यह सन्तोष एवं गर्व की बात है।''

इसी क्रम में पंजाब केशरी लाला लाजपत राय और गांधी जी के प्रमुख अनुयायी सेठ जमनादास बजाज के बर्मा आगमन से दोनों राष्ट्रों के सांस्कृतिक संबंधों को दृढ़ता तथा भारतीयों में अपनी भाषा हिंदी पढ़ने की जागरूकता की प्रेरणा मिली। फलतः वहाँ हिंदी के प्रसार को संजीवनी मिली। मठ-मंदिरों के पुजारी अपने बच्चों को भी हिंदी पढ़ाने लगे। 25 मई, 1936 का 'पंचदश ब्राह्मण सभा' और 'षष्ठम् हिंदी साहित्य सम्मेलन' का विराट आयोजन चैतगा में हुआ, जो तीन दिनों तक चला।

सन् 1938 में 'श्री गणेश वर्नाक्यूलर स्कूल' तथा मंहगू बस्ती में एक हिंदी स्कूल खुला। वहाँ हिंदी के पठन-पाठन के लिए आठ पुस्तकें प्रकाशित हुईं, जोकि वहाँ के ही प्रेस में मुद्रित होती थीं। पुस्तकों के नाम हैं -

1. ब्रह्म भारती अक्षर बोध
2. ग्यारह कहानियाँ भाग 1, 2, 3
3. ग्यारह कविताएँ भाग 1, 2, 3
4. प्रवेश संग्रह

डॉ. ओम प्रकाश को 1956-57 में प्रयाग की साहित्य रत्न उपाधि प्राप्त हुई। वे कई वर्षों तक राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के केन्द्र संचालक और व्यवस्थापक भी रहे। उनके समय में बर्मा में लगभग पन्द्रह हज़ार छात्रों ने हिंदी सीखकर तथा सैंकड़ों ने कोविद रत्न, विशारद, शिक्षा-विशारद, वैद्य-विशारद, वैद्य-रत्न की उपाधियाँ प्राप्त कर हिंदी की लोकप्रियता को अग्रसर किया।

ठाकुर जी ने सन् 1924 में बर्मा की यात्रा की थी। इन्हीं के नाम से सन् 1961 में रंगून में 'विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर स्कूल' की स्थापना हुई, जो ठाकुर जी की जन्म-शती का वर्ष था। इसी कॉलिज के पहले हिंदी शिक्षक, फिर प्राचार्य के पद पर श्री श्यामा चरण मिश्र रहे। वे जनवरी 1975 को अवकाश प्राप्त कर स्वदेश भारत लौट आए। मिश्र जी ने हिंदी में - 'बर्मा का इतिहास', 'बर्मा आज और कल', 'समाजवादी बर्मा' तथा 'प्रवासी' - उपन्यास की रचना की है। मिश्र जी ऐसे प्रथम माँ सरस्वती हिंदी के पुत्र थे, जिन्हें बर्मा से अवकाश ग्रहण के समय तीन भाषाओं हिंदी, बर्मी और अंग्रेज़ी में एक बहुत भव्य अभिनंदन-पत्र प्रदान किया गया था।

मिश्र जी का जन्म सन् 1913 में देजनाथपुर ग्राम ज़िला जौनपुर उ.प्र. में हुआ था। वे बहुत दिनों तक बर्मा से वाराणसी के 'आम' पत्र में 'बर्मा की चिट्ठी' शीर्षक समाचार भेजते रहते थे। इससे बर्मा में हिंदी की महत्ता को बल मिला, जोकि वहाँ की हिंदी पत्रकारिता का एक सोपान माना जाता है। बर्मा से 'प्रवासी' हिंदी पत्र का प्रारंभ उन्हीं की देन है। मिश्र जी इसका वितरण पाठकों तक स्वयं साइकिल चलाकर करते थे। कालान्तर में आर्थिक हानि के कारण यह पत्र बन्द हो गया। बर्मा में महापंडित राहुल सांकृत्यायन, 'हल्दी घाटी' के रचयिता श्याम नारायण पाण्डेय, सेठ गोविन्द दास, 'आज' पत्र के संपादक श्री लक्ष्मीशंकर व्यास, विष्णु प्रभाकर, यशपाल जैन, भदन्त आनंद कौत्सल्यायन, महर्षि महेश योगी आदि समय-समय पर आते रहे। इससे हिंदी वट-वृक्ष को यथावत जल-अर्पण का अवसर मिलता रहा। श्री जैनेन्द्र कुमार भी पेकिंग जाते हुए यहाँ आए थे। तब रंगून में 'इण्डियन यूनिवर्सिटी मैट्रिकुलेशन कॉलिज' चल रहा था, जिसमें हिंदी ऐच्छिक विषय के रूप में पाठ्यक्रम में पढ़ाई जाती थी। सन् 1961 में इसका नाम 'ठाकुर कॉलिज' कर दिया गया, जो उस समय कलकत्ता विश्वविद्यालय से सम्बद्ध डिग्री कॉलिज बना।

बौद्ध दर्शन के दो प्रसिद्ध भारतीय विद्वान भिक्षुक जगदीश कश्यप तथा भदन्त आनंद कौत्सल्यायन ने सन् 1954 में, रंगून में हुए बौद्ध दर्शन के हिंदी रूपान्तर के आलोक में व्याख्यान भी दिया। तभी माण्डले के आर्य समाज-भवन के बाहर हिंदी में साइन-बोर्ड न देखकर अपना प्रवचन करते हुए, वहाँ के प्रबन्धकों की अच्छी खबर ली। उन्होंने कहा कि "हिंदी की ऐसी उपेक्षा कि आर्य-समाज भवन का साइन बोर्ड तक अंग्रेज़ी में ही हो। यह डूब मरने की बात है।"[7]

उनके इस प्रवचन से आज तक आर्य समाज का नाम हिंदी में लिखा हुआ मिलता है। सन् 1954 में रंगून एशियाई समाजवादी सम्मेलन में सर्वोदयी नेता जयप्रकाश नारायण भी बर्मा आए थे।

हिंदी के महान् कवि 'श्री रामधारी सिंह दिनकर' जी अपनी चीन-यात्रा से प्रत्यागत होते समय रंगून रुके थे। उसी समय 'अखिल बर्मा हिंदी साहित्य सम्मेलन' का वार्षिक समारोह भी था। वे 22 नवम्बर, 1957 में चार दिनों तक रहे। तत्कालीन भारतीय राजदूत महामहिम श्री लाल जी मेहरोत्रा समारोह के सभापति तथा संरक्षक भी थे। उसी समय दिनकर जी को एक अभिनंदन-पत्र समर्पित

किया गया था तथा इसी अवसर पर 'ब्रह्म देशीय हिंदी कवियों का एक सम्मेलन' हुआ, जिसे बर्मा का प्रथम 'हिंदी कवि सम्मेलन' भी कहा जा सकता है।

बर्मी भाषा के हिंदी लेखक ऊ पारगू (मूल नाम उल्हा चाई) ने हिंदी में ऐतिहासिक कार्य किया है। इन्होंने लगभग पाँच वर्ष काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में पालि, संस्कृत और हिंदी का अध्ययन किया था। इनका जन्म 1924 में ग्राम तनु तनो, ज़िला-हिन्दवाड़ा, बर्मा में हुआ था। ये बर्मा में हिंदी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं के उप-सभापति भी रह चुके हैं। इन्होंने अश्वघोष कवि की संस्कृत में लिखे 'सौंदरानन्द महाकाव्यम्' का बर्मी भाषा में अनुवाद किया है, जिसे सन् 1963 में बर्मा सरकार के द्वारा पुरस्कृत भी किया गया। 'भगवान बुद्ध', 'बुद्ध उपदेश', 'बुद्ध दर्शन', 'समाजवाद', 'नेहरू जी के पत्र पुत्री के नाम', 'भारत की खोज', 'चित्रलेखा', 'दिव्या', 'सिद्धार्थ', 'वोल्गा से गंगा तक', 'भिक्षुक की बुद्ध डायरी', 'बुद्ध और समाजवाद' और 'सिंह सेनापति' आपकी प्रमुख अनूदित कृतियाँ हैं।

इन सबका बर्मी अनुवाद से वहाँ के लोगों को भारतीय वाङ्गमय से विशद् परिचय हुआ। इन सबके अतिरिक्त ऊ पारगू ने हिंदी में 'प्रियदर्शी अशोक' उपन्यास की रचना की। उपन्यास पढ़ते समय ऐसा नहीं लगता कि यह किसी बर्मी-भाषी लेखक की रचना है। सम्राट अशोक के अन्तिम समय का वर्णन अतीव मर्मस्पर्शी है।

बर्मी भाषा में श्री चन्द्र प्रकाश प्रभाकर का नाम है 'ऊ मो ती रो'। इनका जन्म 25 फ़रवरी 1934 में बर्मा के चैमे नगर में हुआ था। आकाशवाणी केन्द्र दिल्ली में वे बर्मी भाषा प्रभाग के सुपरवाइज़र थे। प्रेमचन्द के 'गोदान' उपन्यास का बर्मी भाषा में अनुवाद किया है। सन् 1964 में बर्मी सरकार ने उन्हें 'श्रेष्ठ साहित्यकार' पुरस्कार से सम्मानित किया। प्रभाकर जी ने हिंदी में निम्न पुस्तकें लिखी हैं - 'किसान', 'प्रसिद्ध बर्मी कहानियाँ', 'खूनी दांत', 'शनि पुत्र', 'अनिष्ठ ग्रह', 'घृणा करती रहो' आदि। इसके अलावा उन्होंने प्रेमचन्द की पहली कहानी 'कातिल', जैनेन्द्र कुमार की 'एक दिन', कुशवाहाकान्त की 'लाल रेखा', 'विद्रोही सुभाष', 'मुल्कराज आनंद' और 'वीर वृषल' के तीनों भागों का बर्मी भाषा में अनुवाद किया है।

उनके द्वारा दिल्ली के विकासपुरी में स्थापित 'ऑक्सफ़ोर्ड सीनियर सेकेण्डरी स्कूल' चल रहा है। यह भारत का ऐसा विद्यालय है, जहाँ 'हिंदी' अनिवार्य है तथा बर्मी भाषा ऐच्छिक रूप में पढ़ाई जाती है।

बर्मा के हिंदी रचनाकार श्री जगत नारायण उपाध्याय की महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'बर्मा : भाषा, साहित्य और संस्कृति' सन् 1988 में प्रकाशित हुई, जिसमें बर्मा के तत्कालीन भारतीय राजदूत महामहिम श्री जी.जी. स्वेल ने अपना आशीर्वचन लिखा है।

हिंदी से संबंधित इन सब कार्यों से बर्मा में हिंदी के प्रति उत्साह, विश्वास और लगन की धारा प्रवाहित होने लगी।

पंडित जवाहर लाल नेहरू ने अपनी पुत्री इन्दिरा गांधी के साथ अप्रैल 1937 में अपनी पहली यात्रा की थी। उस समय वे अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की एक बैठक में भाग लेने आए थे। नेहरू जी की दूसरी यात्रा सन् 1942 में हुई, जब वे चीन से भारत प्रत्यागत हो रहे थे।

इसी क्रम में सन् 1951 में डॉ. राम मनोहर लोहिया रंगून आए और बर्मा हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में उन्होंने वहाँ के मूल भारतीयों से लेखन और प्रकाशन के साथ पाठ्यक्रम सम्बन्धी सभी वस्तुओं पर विचार-विमर्श किया, जिससे बर्मा में हिंदी के गहन कुहरे को हटाने में मदद मिली। सन् 1950 तक बर्मा में 300 से अधिक हिंदी स्कूल पुनः खुल गए। [8]

हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग और राष्ट्र भाषा प्रचार सभा, वर्धा की परीक्षाओं का केन्द्र रंगून के अलावा जियावड़ी, माण्डले, चैतगा, टोंजी, साटयो, मिचीता, सेम्यों आदि नगरों में दसवीं कक्षा तक की परीक्षाओं का केन्द्र बना, जिसमें हज़ारों छात्रों ने बड़ी प्रसन्नता से भाग लिया।

रंगून में 'बंगाल अकादमी' को कलकत्ता विश्वविद्यालय से मान्यता मिलने पर हिंदी प्रचार-प्रसार में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। 'बर्मा हिंदी साहित्य गोष्ठी' तथा 'हिंदी साहित्य मण्डल' नामक संस्थानों ने हिंदी कथाओं के माध्यम से हिंदी का प्रचार किया। श्रीमती कर्नल तारा आई.सी.पी. ने सन् 1922 में रंगून में 'शारदा सदन' स्कूल की स्थापना की, जहाँ हिंदी की विधिवत् शिक्षा दी जाने लगी।

सन् 1942 में द्वितीय विश्व युद्ध में जापान ने रंगून में कई स्थानों पर बम बरसाए, जिससे लोग घबराकर भागने लगे। बर्मा की कई हिंदी पाठशालाएँ भी बन्द हो गईं। सन् 1952-53 में पं. हरिबदन शर्मा के अथक प्रयासों से हिंदी सम्मेलन को संजीवनी

मिली, जिससे सन् 1957 तक हिंदी का पठन-पाठन पुनः होने लगा तथा उस समय तक हिंदी के चार सम्मेलनों का भी आयोजन हुआ। इनमें भारत के अनेक हिंदी विद्वानों ने भाग लिया। फलतः बर्मा के हिंदी भाषियों को उत्साहित और उल्लासित किया। रंगून तथा अन्य नगरों में हिंदी दिवस, कबीर जयंती, सूर जयंती आदि अवसरों पर नाटक-गोष्ठी, वाद-विवाद प्रतियोगिता आदि का आयोजन धड़ल्ले से होने लगा। आर्य-समाज के सहयोग से हिंदी बिरवा वृक्ष का रूप धारण करने लगी। बौद्ध भिक्षुक ऊ कित्तिमा ने 'बाल्मीकि रामायण', 'सत्यार्थ-प्रकाश' आदि धार्मिक पुस्तकों का बर्मी भाषा में अनुवाद करके बर्मा की धरती पर गंगावतरण जैसा काम किया। बर्मा के भारतीय मूल के श्री राम प्रवेश यादव ने 'गांधी-दर्शन' नामक पुस्तिका कवित्त छंद में लिखी।

रंगून केन्द्र, बर्मा से हिंदी परीक्षा देकर श्री सत्यनारायण राम जोकि बिहार से बर्मा गए थे, ने भोजपुरी में लोकगीतों की रचना की। उनके लोकगीतों में बिदेसिया शैली भिखारी ठाकुर की छाप मिलती है। माँ-सरस्वती हिंदी को लोकप्रिय बनाने में, जो दिन-रात सेवा हुई है, उसे बर्मा के हिंदी साहित्य में अतुलनीय माना जा सकता है।

हिंदी पाठशालाओं, केन्द्रों तथा पठन-पाठन में सहयोगी डॉ. सत्यनारायण गोयनका, जिनका जन्म 30 जनवरी 1924 को माण्डले, बर्मा में हुआ था, उन्होंने सन् 1943-47 में हिंदी का परचम वहाँ फहराने में अथक कार्य किया।

बर्मा हिंदी साहित्य सम्मेलन का पुनर्गठन हुआ और उसी समय गोयनका जी को इसका अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। जिससे हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के रंगून केन्द्रों को गरिमामयी वातावरण मिला।

तभी उनका भारत के श्री महेश योगी जी से बर्मा में परिचय हुआ। इनके बाद वे योगी जी के शिष्य हो गए। "विपश्यना साधना" के प्रति उन्हें राग हो गया। वे सन् 1940 में बर्मा छोड़कर भारत आ गए। भारतीय भिक्षुक संघ ने उन्हें 1972 में बोध-गया में 'धर्ममूर्ति' की उपाधि दी।

सन् 1983 में तृतीय विश्व हिंदी साहित्य सम्मेलन नई दिल्ली में हुआ था। इसमें भाग लेने के लिए बर्मा से एक मात्र प्रतिनिधि डॉ. ओम प्रकाश आए थे। उन्होंने सन् 1938 में रंगून विश्वविद्यालय से एम.बी.बी.एस. की पढ़ाई सम्पन्न की। वे बर्मा हिंदी साहित्य सम्मेलन के संचालक भी रहे। उन्होंने 'आर्य समाज', बर्मा तथा 'आर्य कुमार सभा' को अपने निर्देशन से पल्लवित किया। तभी उन्हें हिंदी से ऐसा गहरा लगाव हुआ कि अपनी वृद्धावस्था होने पर भी डॉ. ओम प्रकाश ने हिंदी की गरिमा बढ़ाने के लिए हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की 'साहित्य-रत्न' परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर कीर्तिमान स्थान प्राप्त किया। इससे प्रेरणा लेकर बर्मा के हज़ारों लोग सम्मेलन की परीक्षा में भाग लेने लगे। इससे वहाँ हिंदी पठन-पाठन और लेखन में अनेक लोग स्वतः ही आने लगे। 1953 में, रंगून में 'हिंदी साहित्य सम्मेलन', प्रयाग की परीक्षा का केन्द्र बना। कालान्तर में जियावड़ी और चैतगा में परीक्षा केन्द्रों की संख्या 34 हो गई।

उस समय आगरा (भारत) से प्रकाशित हिंदी पत्र 'सैनिक' के बर्मा से संवाददाता श्री रामप्रसाद वर्मा थे। उनका जन्म सन् 1920 में औचिन, रंगून में हुआ था। उन्हें अपनी पितृ-भूमि भारत से अतीव लगाव था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा डी.ए.वी. कॉलिज, रंगून में हुई थी। वे हिंदी विषय के साथ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। इन्होंने रंगून में 'हिंदी साहित्य मण्डल' संस्था बनायी, जिसमें हिंदी का पठन-पाठन होने लगा। उन्होंने उसी समय 'साहित्य' नाम से एक 'हस्त-लिखित' पत्रिका भी निकाली, जो फ़ोटो स्टेट विधि से हिंदी प्रेमियों के पास जाती थी। 1946 में वे बर्मा से प्रकाशित 'प्राची-प्रकाश' दैनिक पत्र के सम्पादक हुए। किन्तु प्रेस मालिकों से सैद्धांतिक विरोध होने पर उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया। हिंदी अनुराग के कारण उन्होंने एक 'नव-जीवन' दैनिक पत्र अपने संपादन में सन् 1957 में शुरू किया, जिसका सर्वत्र स्वागत हुआ और दो वर्ष बाद यह पत्र 'साप्ताहिक नव जीवन' होकर प्रकाशित होने लगा। इस आधार पर बर्मा में हिंदी पत्रकारिता को तीव्र गति मिली। बर्मा में श्री श्यामलाल भारती उर्फ़ ऊ बा ती भी हिंदी विकास-यात्रा में एक जाज्वल्य नक्षत्र के रूप में प्रकट हुए। उनके पिताश्री द्वारिका प्रसाद गोस्वामी गाजीपुर, उत्तर प्रदेश से वहाँ गए थे। श्यामलाल भारती का जन्म 21 जनवरी, 1920 को बर्मा के पेगू ज़िले में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा बर्मी भाषा में होने पर भी हिंदी के प्रति रुचि बनी रही। संयोगवश उन्हें अपने माता-पिता के साथ भारत आना पड़ा, जहाँ उन्होंने 'दयानन्द हाईस्कूल' में विधिवत हिंदी की पढ़ाई की। तब उस स्कूल में श्री विष्णु प्रभाकर, केलकर जी तथा उपाचार्य श्री कृष्ण प्रसाद गौड़ बेढब बनारसी जी थे। इस वातावरण में भारती जी का हिंदी ज्ञान परवान चढ़ चुका था।

संयोगवश उन्हें बर्मा लौटना पड़ा। 'रंगून आर्य समाज' के अध्यक्ष तथा 'बर्मा हिंदी साहित्य सम्मेलन' की केन्द्रीय समिति के सदस्य रहने के साथ 'बर्मी शब्दकोश एवं व्याकरण निर्माण समिति' के सदस्य भी रहे।[9]

श्री रामजीत वर्मा, जो जियावड़ी के एक हिंदी भाषा-भाषी किसान थे, जियावड़ी हाईस्कूल से शिक्षा प्राप्त कर हिंदी की सेवा में जुट गए। उन्होंने आचार्य चतुरसेन की 'वैशाली की नगर वधू', 'यशोधरा जीत गई', 'अतीत के चलचित्र', 'चाणक्य' और 'चन्द्रगुप्त' नाटकों का बर्मी भाषा में अनुवाद किया। इससे बर्मा में हिंदी अध्ययन के प्रति रुचि बढ़ गई। साथ ही लेखन, प्रकाशन तथा संचयन का मार्ग प्रशस्त होने लगा। बर्मा में समय पर भारत के हिंदी लेखकों, पत्रकारों, सम्पादकों, राजनेताओं, आर्य समाज के प्रचारकों और हिंदी कवियों की आवाजाही से यहाँ के मूल भारतीय लोगों में अपनी पितृ-भाषा हिंदी के प्रति अपार श्रद्धा का भाव बढ़ने लगा।

बर्मा में इस समय लगभग तीन लाख भारतीय मूल के निवासी हैं। बर्मा में सैनिक-शासन की वर्जनाओं तथा नियमों का पालन करते हुए सभी लोग उसी तरह रहने के अभ्यस्त हो गए हैं। बर्मा 04 जनवरी, 1959 को पूर्ण संप्रभुता सम्पन्न राष्ट्र बना। यह सन्तोष का विषय है। इन दिनों वहाँ हिंदी के विकास, संरक्षण, प्रसार आदि की संभावनाएँ भी प्रबल हैं। पूरे राष्ट्र में विशेषकर रंगून, जियावड़ी, चैतगा में हिंदी पाठशालाएँ कार्यरत हैं। इन पाठशालाओं में हम हिंदी साहित्यिक पुस्तकों, धार्मिक ग्रन्थों और पूजा-पाठ की सामग्रियों का अभाव न होने दें। उनकी परीक्षाओं को अपने यहाँ भी मान्यता देकर महत्त्व दें, ताकि उनके लिए बर्मा में भी नौकरी आदि का मार्ग प्रशस्त हो सके। श्री श्यामलाल भारती (बर्मी नाम ऊ बाती) ने 'हिंदी शिक्षावली' नामक पाठ्य-पुस्तक का संपादन और लेखन किया। इससे वहाँ भारतीयों को हिंदी पढ़ने की कठिनाइयों को दूर करने में अतिशय मदद मिली। साथ ही बर्मा और भारत के मधुर संबंधों में दृढ़ता आएगी और हिंदी का विकास होता रहेगा।

सन्दर्भ सूची :

1. श्यामाचरण मिश्र, बर्मा का इतिहास
2. श्यामाचरण मिश्र, बर्मा आज और कल
3. जय नारायण उपाध्याय, धर्मयुग, 15 अक्टूबर, 1978
4. ब्रजभूमि वर्ष 22, अंक 1, शुक्रवार, 15 जनवरी, 1982.
5. जगत नारायण उपाध्याय, बर्मा, भाषा, साहित्य और संस्कृति
6. श्यामाचरण मिश्र, बर्मा आज और कल
7. वही
8. वही
9. बर्मा, भाषा, साहित्य और संस्कृति, लेखकर भी जगत नारायण उपाध्याय

kavishrijaiswal01@gmail.com

हिंदी की उदारता तथा व्यापकता

डॉ. प्रभाकर कुमार पाण्डेय
दिल्ली, भारत

हिंदी का बदलता स्वरूप उस प्रभात की लाली के समान है, जो हृदय में नई उमंग और जिज्ञासा को जागृत करता है। हिंदी संपूर्ण भारत वर्ष को माला के मनकों की तरह एकसूत्र में बाँधे रखती है। जनमानस की आशाओं के अनुरूप ही हिंदी का हर क्षेत्र में द्रुत गति से विकास हो रहा है। भौगोलिक तथा राजनैतिक विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत की सांस्कृतिक एकता को बनाए रखने में हिंदी भाषा का अपना प्रमुख स्थान रहा है। समस्त विश्व को जोड़ने वाली सामाजिक कड़ी के रूप में हिंदी भाषा का सूर्य उदित हो गया है। यह कभी अस्त नहीं होगा।

हिंदी एक अद्‌भुत भाषा है। इसे अद्‌भुत बनाने वाली अनेकानेक विशेषताएँ इसमें मौजूद हैं। इसमें गेयता एवं भावप्रवणता है, लचीलापन है और व्याकरण से अनुशासन भी है। यह वह भाषा है, जिसमें गद्य एवं पद्य दोनों का प्रवाह देखते ही बनता है, जोकि एक जीवंत भाषा का लक्षण है। यह वैज्ञानिक ढंग से व्यवस्थित है, जिसमें ध्वनियों का क्रम पूर्णतः वैज्ञानिक है। इसकी लिपि देवनागरी है। यह संस्कृत से जन्मी है, इसकी प्राचीनता एवं गतिशीलता से सभी परिचित हैं। यह वह भाषा है, जिसने सदैव विकास के पायदान पर कदम आगे बढ़ाया है और सदैव सभी के प्रति समन्वयवादी आचरण बनाए रखा है। गैरों को अपनाया और निरंतर समृद्धि को विस्तार दिया। इसने उर्दू के साथ सगी और बड़ी बहन जैसा रिश्ता बनाकर अपनी उदारता दर्शायी है। उर्दू के साथ-साथ अरबी, फ़ारसी, तुर्की, अंग्रेज़ी, रूसी, पुर्तगाली, फ़्रांसीसी, चीनी एवं जापानी भाषाओं को भी गले लगाया है, जो इसकी सार्वभौमिकता का परिचायक है। इतनी भाषाओं का एक साथ समागम अन्यत्र कहीं और देखने को नहीं मिलता है। यह विज्ञान, व्यापार, कामकाज एवं साहित्य की भाषा है। यही प्रेम हिंदी का आकर्षण केंद्र है और इसी प्रेम से हिंदी सभी को अपने प्रेम-पाश में बाँधने में सक्षम है। यही कारण है कि हिंदी अपनी तमाम खूबियों के साथ आज विश्व मंच पर सुदृढ़ एवं मुखर भाषा है।

आज हिंदी करोड़ों भारतीयों के मस्तिष्क को ऊर्जा व शक्ति प्रदान करने वाली भाषा है। फ़ादर कामिल बुल्के ने कहा है - "हिंदी न केवल देश के करोड़ों लोगों की सांस्कृतिक व संपर्क भाषा है, वरन् बोलने और समझने वालों की संख्या की दृष्टि से तीसरी भाषा है।" वस्तुतः हिंदी भाषा को ईरानियों की देन माना गया है। 'हिंदी' फ़ारसी भाषा का शब्द है, 'हिंदी' शब्द की उत्पत्ति 'सिंधी' से हुई है, क्योंकि ईरानी भाषा में से 'स' का 'ह' उच्चारण होता है। वास्तव में, 'हिंदी' शब्द सिंधु का प्रतिरूप है। डॉ. हरिचरण वर्मा के अनुसार 'हिंदी' शब्द मूलतः 'सिंधु' का बदला प्रतिरूप है। 'सिंधु' से 'हिंदू' और 'हिंद' के साथ 'ई' प्रत्यय जोड़कर 'हिंदी' बना है। हिंदी आज समस्त भारत की राष्ट्रभाषा, राजभाषा एवं संपर्क भाषा के रूप में विद्यमान है। "हिंदी हमारी संस्कृति, अस्मिता, चेतना और स्वाभिमान की भाषा है। आज यह देश की मानक भाषा के रूप में विराजमान है। हिंदी को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करने में विदेशी लेखकों व साहित्यकारों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, जिसमें मैक्स मूलर, स्लेगन, सिल्वा लेवी, फ़ादर कामिल बुल्के आदि महत्त्वपूर्ण हैं। फ़ादर कामिल बुल्के ने कहा है कि 35 वर्ष पहले सन् 1982 के आस-पास मेरे एक मित्र ने जावा में एक मुस्लिम शिक्षक को रामायण पढ़ाते हुए देखा, तो उनसे पूछा कि आप तो मुस्लिम हैं, फिर रामायण क्यों पढ़ाते हैं? तो उत्तर में उन्होंने कहा - मैं अच्छा इंसान बनने के लिए रामायण पढ़ाता हूँ।"

भारत को सदैव से विश्वगुरु माना गया है। बीच-बीच में कुछ कालखंड ऐसे रहे, जहाँ भारत प्रतिकूल राजनीतिक परिस्थितियों से घिर गया था। किंतु वह आज भी विश्वगुरु बनने की राह में पीछे नहीं है। भारत में वैदिक गुरुकुल और शिक्षा को ग्रहण करने के लिए देश-विदेश से शिक्षार्थी आया करते थे। यहाँ गुरुकुल की शिक्षा दुर्लभ थी। नालंदा विश्वविद्यालय इसका प्रमुख उदाहरण है। भारत ने ही विश्व को वेद और योग तथा विज्ञान की शिक्षा दी है। आज के वैज्ञानिक भारतीय वेद-पुराणों में निहित रहस्यों को खोज रहे हैं। ठीक इसी प्रकार हिंदी की पकड़ विश्व स्तर पर बढ़ती जा रही है। इसके पाठकों के माध्यम से हिंदी भाषा का विस्तार हो रहा

है। विदेशी लोग भी अपने व्यापार करने के लिए भारत की ओर अग्रसर हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में वे हिंदी भाषा का गहन अध्ययन कर रहे हैं। आए दिन शोधों में यह पाया जा रहा है कि भारतीय हिंदी भाषा का गुणात्मक रूप से निरंतर विकास हो रहा है। अतः इनकी आबादी और पाठकों की संख्या बेहद अधिक है। ऐसे में विदेशी भी भारत की ओर अपनी संभावनाएँ तलाश रहे हैं। इंटरनेट पर इंग्लिश और चीनी भाषा के बाद हिंदी ही सबसे लोकप्रिय भाषा मानी जा रही है। देश-विदेश के लोग बड़ी उत्सुकता के साथ हिंदी सीखने लगे हैं। हिंदी जनसामान्य और मध्यवर्ग की सशक्त भाषा है, जिसमें प्रमुख रूप से अरबी, फ़ारसी, उर्दू, संस्कृत आदि भाषाओं के शब्द शामिल हैं। इंटरनेट पर भी हिंदी का प्रयोग इसलिए प्रसिद्ध है, क्योंकि इसके शब्दों को लिखना और उनका उच्चारण करना पाठकों के लिए सुलभ होता है। दिन-प्रतिदिन इसकी सुगमता के कारण हिंदी का निरंतर विकास होता जा रहा है।

हिंदी के साहित्य की वर्तमान में वैश्विक स्तर पर माँग बढ़ती जा रही है। वस्तुतः हिंदी मानवीय मूल्यों की भाषा के रूप में विकसित हुई है। उसके विकास के मूल में लोक के जीवन मूल्यों को प्रस्फुटित करने और लोकमंगल के विरोधी तत्वों से संघर्ष करने की असीम क्षमता रही है। उसमें मानवीय संस्कृति के उदार मूल्यों तथा प्रेम, करुणा और उदारता के गीत गाने की वृत्ति रही है। हिंदी भाषा की श्रीवृद्धि में हर मज़हब के लोग थे, हर ज़ुबान के लोग थे। धर्म, जाति, प्रान्त, ऊँच-नीच, पूँजी-प्रशासन सब की छाया से मुक्त उदात्त चेतनाओं ने हिंदी को खड़ा किया। एक भाषा खड़ी करने के लिए जिस शक्ति की आवश्यकता होती है, वह शक्ति आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित है।

हिंदी के प्रचार-प्रसार का दायित्व आज अकेले भारत पर ही नहीं, बल्कि विश्वभर पर है। हिंदी का साहित्य व्यक्ति के जीवन से जुड़ा है। उसमें हर्ष, विषाद और संवेदना आदि सभी प्रकार के भाव निहित हैं। हिंदी साहित्य मानवीय संवेदनाओं को प्रकट करने में सक्षम है। इस साहित्य को पढ़कर यह महसूस होता है कि यह हूबहू आपके सामने, आँखों देखा दृश्य प्रस्तुत कर रहा है। भारतेंदु, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद आदि प्रमुख रचनाकारों ने सामाजिक जीवन का वास्तविक रूप हिंदी साहित्य के पाठकों के सामने प्रकट किया है। इसलिए हिंदी साहित्य जनमानस का साहित्य है। इस साहित्य के पाठकों का दायरा विस्तृत एवं व्यापक है। आज हिंदी राष्ट्रभाषा की गंगा से विश्व भाषा गंगासागर बनने की प्रक्रिया में है। आज विश्व स्तर पर हिंदी की स्वीकार्यता को समझा जा सकता है।

भाषा के वैश्विक संदर्भ की विशेषताएँ

जब हम किसी भाषा के वैश्विक परिवेश पर विचार करते हैं, तब हमें अनेक पक्षों पर गंभीरता से देखने की आवश्यकता होती है। आज हिंदी वैश्विक परिदृश्य में अपनी भूमिका बखूबी निभाने के लिए सुसज्जित है। हिंदी सृजन की प्रदीर्घ परंपरा में प्रायः सभी विधाएँ वैविध्यपूर्ण एवं समृद्ध हैं। उसकी शब्द-संपदा विपुल एवं विराट है, जिससे कि विश्व की अन्य बड़ी भाषाओं से विचार-विनिमय करते हुए एक-दूसरे को अभिप्रेरित एवं प्रभावित करने के लिए सक्षम है। इसकी शाब्दिक एवं आर्थी संरचना तथा इसकी लिपि सरल, सुबोध एवं वैज्ञानिक है। इसका पठन-पाठन और लेखन सहज संभाव्यपूर्ण है। उसमें निरंतर परिष्कार और परिवर्तन की गुंजाइश है, इसमें ज्ञान-विज्ञान के तमाम अनुशासन हैं तथा नए विषयों पर सामग्री तैयार करने की पूर्ण क्षमता है और वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों के साथ-साथ अपने-आपको पुरस्कृत एवं समायोजित करने की ताकत भी इसमें मौजूद है। यह अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक संदर्भों, सामाजिक संरचनाओं, सांस्कृतिक चेतनाओं तथा आर्थिक विनिमय की संवाहिका है। यह विश्व मन की आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करने में सक्षम है। इसका प्रभाव जनसंचार माध्यमों में बड़े पैमाने पर देश-विदेश में दिख रहा है। आज हिंदी में मनुष्य द्वारा और यांत्रिक अनुवाद की आधारभूत तथा विकसित सुविधाएँ प्राप्त हैं। यह बहुभाषी कंप्यूटर की दुनिया में अपनी समग्र सूचना-सूत्र तथा प्रक्रिया सामग्री के साथ-साथ वर्तमान प्रौद्योगिकी उपलब्धियों, ईमेल, ई-कॉमर्स, ई-बुक, इंटरनेट तथा एम.एम.एस. एवं वेबजगत् में प्रभावपूर्ण ढंग से अपनी सक्रिय उपस्थिति का एहसास करा रही है। यह साहित्य अनुवाद के माध्यम से, विश्व की दूसरी महत्त्वपूर्ण भाषा है। पठन-पाठन तथा प्रसारण की सुविधा से युक्त होकर और अनेक देशों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराकर नवीन अभिव्यक्ति करते हुए हिंदी मनुष्य की बदलती ज़रूरतों एवं आकांक्षाओं को वाणी देने में समर्थ है। हिंदी भाषा वैश्विक चेतना की संवाहिका के रूप में विश्व दृष्टि संपन्न कृतिकारों

की भाषा बनकर विभिन्न समस्याओं को अपनी समझ और उसके निराकरण का मार्ग बताकर, उसे साहित्य में स्थान देकर विश्व-बंधुत्व, विश्व-मैत्री एवं विश्व-कल्याण की भावना से अनुप्राणित कर पुनीत और प्रांजल प्रवाह से निरंतर अग्रसर हो रही है। यही कारण है कि हिंदी विश्व-व्यवस्था को संचालित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में प्रयुक्त होने वाली भाषा कहलाने की अधिकारिणी है और अध्ययन-अध्यापन की ठोस निकष अथवा प्रतिमानों पर सटीक उतरती है।

आज हिंदी विश्व के प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण देशों के विश्वविद्यालयों में अध्ययन-अध्यापन में भागीदार है। अकेले अमेरिका में ही लगभग एक सौ पचास से ज़्यादा शैक्षिक संस्थानों में हिंदी का पठन-पाठन हो रहा है। 21वीं सदी के दौर में वैश्वीकरण के दबावों के कारण हिंदी विश्व की तमाम संस्कृतियों एवं भाषाओं के आदान-प्रदान व संवाद की प्रक्रिया से गुज़र रही है। हिंदी इस दिशा में विराट मानवता के विचार को निकट लाने के लिए सेतु का कार्य कर रही है। उसके पास पहले से ही बहु-सांस्कृतिक परिवेश में सक्रिय रहने का अनुभव है। जिससे वह अपेक्षाकृत ज़्यादा रचनात्मक भूमिका निभाने की स्थितियों में है। हिंदी सिनेमा अपने संवादों एवं गीतों के कारण विश्व-स्तर पर लोकप्रिय हुआ है। उसने सदा सर्वदा से विश्व मन को जोड़ा है। हिंदी की मूल प्रकृति लोकतांत्रिक तथा रागात्मक संबंध निर्मित करती रही है। वह विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की राष्ट्रभाषा ही नहीं, बल्कि नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, फ़िजी, त्रिनिदाद, सूरीनाम, गयाना, मॉरीशस आदि देशों के साथ संपर्क-भाषा के रूप में भी प्रासंगिक है। वह भारतीय उपमहाद्वीप के लोगों और खाड़ी देशों के मध्य एशियायी देशों, रूस, समूचे यूरोप, कनाडा, अमेरिका तथा मेक्सिको जैसे प्रभावशाली देशों के बीच रागात्मक जुड़ाव तथा विचार-विनिमय के सम्बल प्रदान करने का माध्यम है। यदि निकट भविष्य में बहुध्रुवीय विश्व-व्यवस्था निर्मित होती है और संयुक्त राष्ट्र संघ का लोकतांत्रिक ढंग से विस्तार करते हुए भारत को स्थायी प्रतिनिधित्व मिलता है, तो यह यथाशीघ्र विश्व शीर्ष की भाषा बन जाएगी। आज स्थिति यह है कि गुण और परिणाम दोनों ही दृश्यों से हिंदी का काव्य-साहित्य अपने वैविध्य एवं बहुस्तरीयता में संपूर्ण विश्व में संस्कृत काव्य को छोड़कर सर्वोपरि है। 'रामचरितमानस', 'पद्मावत', 'कामायनी' आदि महाकाव्य विश्व की किसी भी भाषा में रचे नहीं गए हैं। आज हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में सृजन सुचारु रूप से हो रहा है। केवल संयुक्त राज्य अमेरिका में ही 200 से अधिक हिंदी साहित्यकार सक्रिय हैं, जिनकी पुस्तक छप चुकी हैं। अमेरिका से 'विश्वा', 'हिंदी जगत्' तथा श्रेष्ठतम वैज्ञानिक पत्रिका 'विज्ञान प्रकाश' हिंदी की दीपशिखा जलायी हुई हैं, वहीं मॉरीशस से 'विश्व हिंदी समाचार', 'सौरभ', 'वसंत' जैसी पत्रिकाएँ हिंदी के सार्वभौमिक विस्तार को प्रमाणित कर रही हैं। संयुक्त अरब अमीरात से वेब पर प्रकाशित होने वाली हिंदी पत्रिकाएँ 'अभिव्यक्ति' और 'अनुभूति' पिछले 11 से भी अधिक वर्षों से लोकमानस को तृप्त कर रही हैं और दिन-प्रतिदिन इनके पाठकों की संख्या बढ़ती जा रही है। आज हिंदी की 'ई-सहचर, 'जनकृति', 'हस्ताक्षर' जैसी सैकड़ों पत्रिकाएँ अपनी वैश्विक उपलब्धता का उद्घोष कर रही हैं - "सब भाषा को अपनाते पर अपना मूल न खोती, हिंदी की गूंज विदेशों में भी होती।"

यह कहा जा सकता है कि बिखर गया सब भाषाओं का आँचल बस हिंदी ने ही परिवार बनाया।

मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में "हिंदी उन सभी गुणों से अलंकृत है, जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में सभासीन हो सकती है।"

अतः हिंदी आत्मसम्मान की भाषा है। इसका विकास एवं प्रचार-प्रसार निरंतर होता रहे, हिंदी पूरे विश्व में अपना परचम लहरा सके और हमारे आत्मसम्मान, संस्कृति, धरोहर और इतिहास आदि की पहचान को मुखरित करती हुई और निखरती जाए – यही हर हिंदी-प्रेमी की मनोकामना है। इसके विकास के लिए आगे भी महत्त्वपूर्ण योगदान देने की आवश्यकता है। अवश्य ही वैश्विक संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में हिंदी का भविष्य उज्ज्वल एवं स्वर्णिम दिख रहा है। आने वाले दिनों में यह न सिर्फ़ विश्व की सबसे बड़ी पंचायत संयुक्त राष्ट्र की भाषा बनेगी, अपितु विश्व मंच को भी अपने सौरभ से सुगंधित करेगी। यह विश्वास हिंदी प्रेमियों में जाग चुका है। विश्व मंच पर हिंदी को स्थापित करने के लिए हम संकल्पबद्ध हैं तथा सम्यक एवं समवेत रूप से प्रयत्नशील भी हैं। विश्व मंच पर हिंदी की भव्य उड़ान का समय अब बहुत नज़दीक है। आइए, हम सभी हिंदी लय को मधुरता और प्रखरता प्रदान करें।

संदर्भ सूची :

1. डॉ. प्रो. केसरी कुमार, हिंदी साहित्य में सामासिक संस्कृति की सृजनात्मक अभिव्यक्ति
2. डॉ. एन. एस. दखिणामूर्ति, राजभाषा सामासिक संस्कृति
3. विश्व हिंदी सम्मेलन (केंद्रीय हिंदी निदेशालय)
4. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, विश्व भाषा, हिंदी संस्कृति और समाज
5. शिरीन, हिंदी प्रतियोगिता साहित्य
6. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास
7. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य, उद्भव और विकास
8. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य, संवेदना और विकास
9. डॉ. फणीश सिंह, हिंदी साहित्य एक परिचय
10. डॉ. उर्मिला जैन, हिंदी साहित्य के नए संदर्भ
11. शिवदानी सिंह चौहान, हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष
12. भगवतशरण उपाध्याय, विश्व साहित्य की रूपरेखा
13. विकिपीडीया

pkp050284@gmail.com

हिंदी देश से विदेश तक : एक परिप्रेक्ष्य

डॉ. पद्माकर पांडुरंग घोरपड़े
महाराष्ट्र, भारत

[हिंदी का भारतीय परिप्रेक्ष्य - 1857 से संविधान तक]

"हम चाहते हैं कि भारत की सब प्रांतीय बोलियाँ, जिनमें सुंदर साहित्य सृष्टि हुई है, अपने-अपने घर में और प्रांत में रानी बनकर रहें और आधुनिक भाषाओं के मध्य में हिंदी भारत-भारती होकर विराजमान रहे।" - रवींद्रनाथ ठाकुर

"हिंदी राष्ट्र की आत्मा है। ...जिस तरह बच्चों के मानसिक विकास के लिए माँ का दूध आवश्यक है, उसी तरह देश के विकास के लिए हिंदी भाषा रूपी दूध आवश्यक है।"- महात्मा गांधी।

आज महात्मा गांधी की यह बात उतनी ही सच है, जितना कि उस समय सच थी। आज हिंदी हमारे लिए उतनी ही महत्त्वपूर्ण है, जितना कि एक माँ के लिए उसका बच्चा। भारत में हिंदी भाषी लोगों की अपेक्षा अहिंदी भाषी लोग अधिक हैं। यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि पूरे विश्व पटल पर हिंदी को उसका उचित सम्मान मिलना चाहिए था या नहीं। आज ही नहीं, बल्कि प्राचीन काल से हिंदी भाषा का प्रचलन है। समय-समय पर उसने अपने रूप बदले हैं। कभी 'हिंदवी' तो कभी 'हिंदुस्तानी'। कभी रेख्ता, तो कभी रेख्ती। कभी 'उर्दू', तो कभी 'दक्खिनी'। समय-समय पर दुनिया के दरवाज़े पर हिंदी दस्तक देती रही है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि आज़ादी पूर्व भी दूसरों ने हमारी भाषा को उचित मान-सम्मान दिया। यादव काल, मुस्लिम काल, राजपूत काल, ब्रिटिश काल आदि में हिंदी को उचित मान-सम्मान मिला। आज़ादी के बाद भी हिंदी को स्वयं के घर में जगह पाने के लिए संविधान का सहारा लेना पड़ा। फिर भी आज भी वह एक याचिका की तरह खड़ी है। हिंदी के स्वरूप को लेकर, उसकी दशा-दिशा को लेकर, उसकी उपस्थिति को लेकर, अब तक जितनी चर्चाएँ हुईं, शायद ही अन्य किसी भाषा को लेकर हुई हों। स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने भी भारत में एक ही भाषा की अभिलाषा रखते हुए कहा था कि "भाई मेरी आँखें तो उस दिन को देखने को तरस रही हैं, जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक बस भारतीय एक भाषा समझने और बोलने लग जाए।" 1857 में प्रथम स्वातंत्र्य-संग्राम के असफल होने के बाद सन् 1879 में उत्तर प्रदेश की अदालतों में हिंदी आंदोलन अधिक तीव्र हुआ। सन् 1887 में ईश्वरचंद्र विद्यासागर तथा केशवचंद्र सेन ने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में मानते हुए घोषित किया था – "हिंदी ही अखिल भारतीय जातीय भाषा या राष्ट्रभाषा होने के योग्य है।" सन् 1905 में नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी द्वारा आयोजित सम्मेलन में लोकमान्य तिलक जी ने हिंदी को राष्ट्रभाषा स्वीकार करने पर ज़ोर देते हुए कहा था - "राष्ट्र संगठन के लिए आज एक ऐसी भाषा की आवश्यकता है, जिसे सर्वत्र समझा जा सके। सरलता से और शीघ्र सीखी जाने वाली भाषाओं में हिंदी ही सर्वोपरि है। दिसंबर 1917 में कोलकाता में आयोजित 'अखिल भारतीय समाज सेवा सम्मेलन' में महात्मा गांधी जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था - "अगर हम देशी भाषाओं को फिर से अपना लें और हिंदी को उसके उपयुक्त स्थान राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करें, तो देश की इससे बड़ी सेवा कोई और हो ही नहीं सकती।" 2 सितंबर 1921 में महात्मा गांधी जी ने ही 'हिंदी नवजीवन' में प्रकाशित लेख में कहा था - "अगर हमारे हाथ में तानाशाही सत्ता हो, तो मैं आज से ही विदेशी माध्यम के ज़रिए अपने लड़कों और लड़कियों की शिक्षा बंद कर दूँ और सारे शिक्षकों को और प्रोफ़ेसरों से शिक्षा का माध्यम तुरंत बदलवा दूँ या उन्हें बर्खास्त कर दूँ।" आगे चलकर गांधी के विचारों से प्रेरित होकर जनता में स्वभाषा प्रेम जगाने हेतु मैथिलीशरण गुप्त तथा माखनलाल चतुर्वेदी जी ने भी लिखा -

"हिंदी का उद्देश्य यही है, भारत एक रहे अविभाज्य।
यों तो रूस और अमेरिका जितना है, उसका जनराज्य।।"
- मैथिलीशरण गुप्त।

"हिंदी भारत की अमर वाणी है,
यह स्वतंत्रता संप्रभुता की गरिमा है।" - माखनलाल चतुर्वेदी।

सन् 1925 में कानपुर अधिवेशन में यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था - "सभी कार्यों में, प्रादेशिक कांग्रेस कमेटियाँ प्रादेशिक

भाषाओं या हिंदुस्तानी का प्रयोग करेंगी तथा अखिल भारतीय स्तर पर हिंदी का। गणेश शंकर विद्यार्थी जी को राष्ट्रीय एकता के लिए अपनी जान की कुर्बानी देनी पड़ी। उन्होंने यह कहा था - "हिंदी भाषा भारतीय जीवन और उसकी संस्कृति की सर्वप्रथम रक्षिका है, वह उसकी शैली का दर्पण और उसके विकास का वैभव है। एक दिन एशिया में ही नहीं, विश्व की पंचायत में वह महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी।" प्रेमचंद जी ने भी राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र की संकल्पना को अमान्य कर राष्ट्र को गूंगा माना है और राष्ट्रभाषा पर ज़ोर देते हुए हिंदी की वकालत की है। राष्ट्रभाषा ही राष्ट्र की आत्मा होती है।"

अनंत शयनम अयंगर जी ने कहा था - "जब अंग्रेज़ी का अंत हो जाए, तब फिर उसके स्थान पर समस्त भारतवर्ष के लिए एक सामान्य भाषा होनी भी आवश्यक है।" नेताजी सुभाष चंद्र बोस जी ने भी हिंदी को अखिल भारतीय स्तर पर विशुद्ध प्रेम और अपनापन निर्माण करने वाली भाषा मानते हुए कहा था - "प्रांतीय ईर्ष्या-द्वेष को दूर करने में जितनी सहायता इस हिंदी प्रचार से मिलेगी, उतनी दूसरी किसी चीज़ से नहीं मिल सकती।" उनका मानना था - "देश की एकता के लिए एक भाषा होना जितना आवश्यक है, इससे अधिक आवश्यक है, देशभर के लोगों में देश के प्रति विशुद्ध प्रेम तथा अपनापन होना। अगर आज हिंदी मान ली गई है, तो वह अपनी सरलता, व्यापकता और क्षमता के कारण किसी प्रांत-विशेष की भाषा नहीं, बल्कि सारे देश की भाषा हो सकती है।"

प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ चक्रवर्ती राजगोपालाचारी जी ने हिंदी का समर्थन करते हुए सन् 1928 में तमिल जनता से अपील की थी - "यदि दक्षिण भारत को क्रियात्मक रूप से पूरे देश के साथ एकसूत्र में बँधकर रहना है और दक्षिण भारतीयों को अखिल भारतीय मामलों में यदि तत्संबंधी निर्णयों के प्रभाव से अपने को दूर नहीं रखना है, तो उन्हें हिंदी पढ़नी ज़रूरी है। भारत की सांस्कृतिक एकता के लिए भी एक सर्वमान्य भाषा को ग्रहण करना पड़ेगा। दक्षिण भारत को पूरे भारतवर्ष में सरकारी कार्य तथा व्यवसाय के नाम पर या पानी के लिए भी हिंदी बोलने और समझने का ज्ञान प्राप्त करना ज़रूरी होगा। हिंदी को ग्रहण करने का अर्थ मातृभाषा के महत्त्व को कम करना नहीं है। भारत के इस भूभाग में हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाना हमारा उद्देश्य है। इसलिए दक्षिण के लोगों को हिंदी सीखनी चाहिए।"

सन् 1928 में स्वतंत्र भारत का संविधान बनाने हेतु पंडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में प्रस्तुत नेहरू रिपोर्ट में 'हिंदुस्तानी' को सर्वमान्य भाषा घोषित किया गया था। महात्मा गांधी ने हिंदुस्तानी की वकालत की थी। पंडित नेहरू जी ने भी अखिल भारतीय भाषा की आवश्यकता पर बल देते हुए हिंदी की वकालत की थी। सन् 1937 में प्रांतीय सरकार में पंडित नेहरू ने कहा था कि अखिल भारतीय भाषा होने के नाते 'हिंदुस्तानी' को सरकारी भाषा के रूप में माना जाए। आगे चलकर एक जगह पर उन्होंने कहा - "हिंदी एक जानदार भाषा है, यह जितनी बढ़ेगी देश का उतना ही लाभ होगा।" गुलामी में जकड़ी जनता जब राष्ट्राभिमान और राष्ट्रीयता की ओर अग्रसर हुई, तब अपनी इसी मिट्टी की भाषा को उन्होंने अपनाया। आज़ादी से पूर्व भगत सिंह, लोकमान्य तिलक, नेताजी सुभाषचंद्र बोस, महात्मा गांधी आदि ने हिंदी का सहारा लिया। गोखले ने कहा था - "आज़ादी मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और वह मैं लेकर रहूँगा", तो नेता जी ने घोषित किया था - "तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूँगा।" महात्मा गांधी जी जैसे कई नेताओं के उद्घोष - "चलो दिल्ली", "वंदे मातरम्" आदि स्वतंत्रता-संग्राम के स्वर बने।

राष्ट्रभाषा के बिना कोई भी राष्ट्र महान् उपलब्धि हासिल नहीं कर सकता, न ही विकास के सर्वोच्च पद पर विराजमान हो सकता है।

प्रजातांत्रिक देश में अधिकतम जन-समुदाय द्वारा बोली जाने वाली भाषा ही राष्ट्रभाषा का स्थान ग्रहण कर सकती है। इस कसौटी पर हिंदी खरी उतरती है। दक्षिण भारतीय, उत्तर भारतीय और मध्य भारत की मुख्य भाषाओं में एक सामान्य तत्व है, जो बोलने वाले को समझने में सहायता प्रदान करता है। यही आधार भारत के अधिकतर भाग की जनभाषा बनाने में सहायक है। केंद्रीय, राज्य और प्रांतीय सरकारों में व्यवहार की सर्वाधिक उपयुक्त भाषा हिंदी रहेगी। संपूर्ण भारत में हम हिंदी द्वारा ही एक-दूसरे से संपर्क बनाए रख सकेंगे। महात्मा गांधी ने कहा था - "हिंदी शिक्षित वर्गों के बीच संचार माध्यम ही नहीं, बल्कि जन-साधारण के हृदय तक पहुँचने का द्वार भी बन सकती है। इस दिशा में देश की कोई भाषा उसकी समानता नहीं कर सकती और अंग्रेज़ी, तो कदापि नहीं।"

15 अगस्त 1947 को महात्मा गांधी ने बी.बी.सी. को संदेश दिया था - "दुनिया से कह दो कि गांधी अंग्रेज़ी नहीं जानता।" इस संदेश के पीछे स्वदेशी हिंदी की ही अभिलाषा थी। पुरुषोत्तम दास टंडन जी ने भी कहा था - "भाषा और संस्कृति से खिलवाड़ करने वाले राजनीतिज्ञ आज है और कल नहीं रहेंगे, किंतु भारतीय संस्कृति का प्रतीक हिंदी सदा अमर रहेगी। हिंदी को गंगा नहीं, बल्कि समुद्र बनना होगा। राष्ट्रभाषा हिंदी द्वारा ही भारतीय संस्कृति की रक्षा हो सकती है।" अमृत लाल चक्रवर्ती जी ने भी कहा -"हिंदी भाषा चाहे उन्नत हो या अवनत, जिस किसी स्थिति में क्यों न हो, एक उसी में भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा होने की गुणवत्ता है।" सन् 1946 में संविधान सभा की पहली बैठक में अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद जी का चुनाव हुआ। सभा ने कहा था - "स्वतंत्र भारत की भाषा हिंदुस्तानी या अंग्रेज़ी होगी।" आज़ादी के पश्चात् सन् 1948 में हिंदी को ही आगे बढ़ाया गया। तत्पूर्वी जुलाई 1947 में बहुमत से 'हिंदुस्तानी' शब्द की जगह 'हिंदी' शब्द रखा गया। सन् 1948 में स्टीयरिंग कमिटी में यह निश्चित हुआ कि अंग्रेज़ी के साथ संविधान हिंदी भाषा में भी तैयार हो।

6 और 7 अगस्त 1949 को, हिंदी साहित्य सम्मेलन के तत्वावधान में, आयोजित 'राष्ट्रीय भाषा सम्मेलन' में नागरी लिपि में लिखित भाषा को सर्वसम्मति से स्वीकारा गया, किंतु 16 अगस्त 1949 को संविधान सभा में भाषा के प्रश्न पर गरमा-गरमी हुई। बाद में 22 अगस्त तक इस पर बहस चलती रही। इस बीच डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने एक फ़ार्मूला रखा। जब राष्ट्रभाषा-राजभाषा समिति नियुक्त की गई, तब इस समिति के अध्यक्ष दक्षिण भारतीय मुंशी अयंगर बने। समिति में कुल 8 सदस्य थे। अयंगर जी ने एक फ़ार्मूला रखा, जिसमें यह बात विदित थी - "विदेश के कामकाज के लिए हिंदी देश की सामान्य भाषा रहेगी।" इस पर 12 और 13 सितंबर - इन 2 दिनों में बहस और चर्चा चलती रही। इन चर्चाओं में एक-एक करके 400 से अधिक संविधान संशोधन किए गए। अतः 14 सितंबर 1949 को जब मतदान हुआ, तब हिंदी के पक्ष में 14 और विपक्ष में 14 मत मिले। अध्यक्ष जी ने अपना कीमती मत हिंदी के पक्ष में दिया और इस तरह 15-14 के बहुमत से मुंशी अयंगर जी के फ़ार्मूले के आधार पर देवनागरी लिपि लिखित हिंदी को भारत संघ की राजभाषा के रूप में मान्यता दी गई। इस मौके पर संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद जी ने कहा - "आज पहली बार हम अपने संविधान में एक भाषा स्वीकार कर रहे हैं।... राजभाषा हिंदी देश की एकता को कश्मीर से कन्याकुमारी तक अधिक सुदृढ़ बना सकेगी। अंग्रेज़ी की जगह एक भारतीय भाषा को स्थापित करने से निश्चित ही हम एक-दूसरे के करीब आ सकेंगे।"

संविधान में अनुच्छेद 343 से 351 तक में भाषा संबंधी प्रावधान हैं। अनुच्छेद 343 में कहा गया - "देश की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी रहेगी।" किंतु पुरुषोत्तम दास टंडन के प्रबल विरोध के बावजूद भी अनुच्छेद 343 खंड 2(1) में यह व्यवस्था की गई कि संविधान के प्रारंभ से 15 वर्षों तक संसद की कार्यवाही हिंदी और अंग्रेज़ी में होगी। इस बात की भी पूरी व्यवस्था की गई कि 15 वर्षों के बाद भी संसद कानून पारित कर इस अवधि को बढ़ा सकती है। कहने का तात्पर्य यह है कि हिंदी को संघ की राजभाषा का दर्जा तो दिया गया, पर नौकरशाहों और पूंजीपतियों के स्वार्थ के चलते अंग्रेज़ी को सहभाषा के रूप में रखा गया। परिणामतः आज तक अंग्रेज़ी अनाधिकारिक रूप में राजभाषा के पद पर स्थापित है। जहाँ दोनों भाषाओं में कागज़ात जारी करने का जो प्रावधान किया गया था, वहाँ हिंदी निर्जीव अनुवाद मात्र रह गई। अर्थात् आज वर्तमान में वास्तविक रूप में हिंदी में मूल कार्य और उनका अनुवाद अंग्रेज़ी में होना चाहिए था, वहाँ अंग्रेज़ी मुख्य भाषा बनी हुई है, वर्तमान में मूल काम अंग्रेज़ी में और अनुवाद हिंदी में होता है। भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट जो अंग्रेज़ी में है, यदि इसको प्रादेशिक भाषाओं में सार्वजनिक करके रखी होती, तो भारत देश में हिंदी विरोधी आंदोलन कभी नहीं होता। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि आज आज़ादी के 75 साल पूरे हुए हैं, हम आज़ादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं, फिर भी आज अनिश्चित काल के लिए इस अवधि को बढ़ाते हुए, अंग्रेज़ी को स्थापित किया गया। इसीलिए अरुण मित्तल अद्‌भुत जी को कहना पड़ा - "जिस दिन हर भारतवासी कागज़ के पृष्ठ पर हिंदी में लिखेगा, सचमुच उस दिन भारतवर्ष हिंदी दिवस मनाएगा।" इंदिरा गांधी ने भी कहा - "देश को संपर्क भाषा की आवश्यकता होती है और भारत में वह केवल हिंदी में ही हो सकती है।" साथ ही केसरीनाथ त्रिपाठी ने कहा - "यह बंगाल की धरती है, जहाँ हमेशा हिंदी राष्ट्रभाषा और नागरी लिपि की विचारधारा गंगा जल की तरह कलरव करती

बहती रही है। ... हिंदी धीरे-धीरे विश्व भाषा की ओर उन्मुख हो रही है। हिंदी रोज़गार की भाषा है। हिंदी के ज़रिए रोज़गार बढ़ाने के काफ़ी मौके हैं। इन मौकों को उन्मुख करने की कोशिश करनी चाहिए। इस भाषा के ज़रिए देश की एकता और अखंडता अक्षुण्ण है और भविष्य में वह और भी मज़बूत होगी।"

अज्ञेय जी ने भाषा के संदर्भ में कहा था - "राष्ट्रीय अस्मिता और राष्ट्रीय चरित्र का विकास भाषा के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा होता है। भाषा को कोई गढ़ता नहीं, वह तो हवा-पानी की तरह सहज भाव से बढ़ सकती है। माधव सोनटक्के जी ने भी कहा - "भाषा मनुष्य की अनमोल निधि है।... भाषा अपने आनंदमूलक एवं प्रयोजनमूलक प्रकार्य से हमारा जीवन समृद्ध करती रही है।... भाषा ज्ञान, संवेदना और अर्थ के विकास में अपना अमूल्य योगदान देती रही है।

वैश्विक पटल पर हिंदी

यूनिवर्सिटी ऑफ़ वेल्स के भाषा शास्त्री प्रोफ़ेसर डेविड क्रिस्टल ने वर्ल्ड वाइड वेब पर सर्वेक्षण कर अंग्रेज़ी की वैश्विक स्थिति पर कहा कि अंग्रेज़ी का प्रयोग 1997 में 80% तो 2000 में 70% और 2004 में घटकर 50% हो गया है। यह सर्वेक्षण यह साबित करता है कि अंग्रेज़ी के मुकाबले हिंदी और अन्य कई भाषाएँ तेज़ी से विश्व पटल पर उभरकर सामने आ रही हैं। अब किसी के रोकने से वह नहीं रुकने वाली, वह तो बहता पानी है -

"पत्थर के जिगर वालो, हिंदी में यह रुमानी है।
वह खुद राह बना लेगी, वह तो बहता पानी है।"

वर्तमान में एक ओर हम अपनी ही राष्ट्रभाषा का उपहास कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर विदेशी लोगों ने उसकी वैश्विक व्यापक महत्ता को स्वीकारा है। भले ही हिंदी को लाख दबाने का प्रयास हो, फिर भी वह बहुत तेज़ी से विश्व पटल पर बढ़ रही है। उसने अपनी योग्यता, नेतृत्व और क्षमता सिद्ध कर दी है। माइक्रोसॉफ़्ट के सर्वेसर्वा बिल गेट्स जब भारत दौरे पर मुंबई आए थे, तब उन्होंने कहा था - "भारत को हिंदी सॉफ़्टवेयर की आवश्यकता है और यह आवश्यकता पूरी करने के लिए माइक्रोसॉफ़्ट तैयार है। अब 2 वर्ष के भीतर भारतीय विश्व बाज़ार में हिंदी परिचालन प्रणाली में संगणक उपलब्ध होंगे।" अर्थात् हिंदी के महत्त्व को वैश्विक स्तर पर स्वीकारा गया है। भूमंडलीकरण के इस दौर में हिंदी वाणिज्य और व्यापार की परिधियों या सीमाओं को पीछे छोड़ रही हैं। उत्पादित वस्तुओं के अरबों के व्यापार के कारण हिंदी सीखना अब समय की अनिवार्य आवश्यकता बन गई है।

विदेशों में हिंदी या हिंदी का वैश्विक परिप्रेक्ष्य

भारोपीय परिवार की उपशाखा भारत-ईरानी, आर्य शाखा की अथवा भारतीय आर्य शाखा की हिंदी भारतीय संघ की राजभाषा है। हिंदी आज हिंदी प्रांतों में बसे 20 करोड़ से अधिक भारतीयों की मातृभाषा है, तो हिंदी प्रांतों के 40 करोड़ से अधिक हिंदी भाषियों ने इसे द्वितीय भाषा के रूप में स्वीकारा है। विदेशी धरती पर एक करोड़ दो लाख से अधिक लोग, जिनमें अमेरिका में एक लाख, मॉरीशस में सात लाख, दक्षिण अफ़्रीका में नौ लाख, यमन में ढाई लाख, युगांडा में डेढ़ लाख, नेपाल में अस्सी लाख, जर्मनी में पचास हज़ार, न्यूज़ीलैंड में तीस हज़ार, ऑस्ट्रेलिया में ढाई लाख से अधिक लोग हिंदी का व्यावहारिक प्रयोग करते हैं।

कोई भी भाषा बुरी नहीं होती है, बल्कि भाषाई संकुचित मानसिकता घातक होती है। इस संकीर्ण मानसिकता के कारण ही भाषा का विकास नहीं हो पाता है। उसकी अधोगति होती है। वह आगे बढ़ नहीं पाती है। कोई भी भाषा, जब दूसरी भाषा के शब्दों को अपने-आप में समा लेती है, तब वह व्यापक बनती है। विदेशी भाषा के शब्द हिंदी में इस तरह घुल-मिल गए हैं कि अब उन्हें अलग करना असंभव है। हिंदी ने अपने परिवेश में उन शब्दों को ढाल लिया है। वे शब्द हिंदी की अपनी एक विशेषता, अपनी एक पहचान बन गए हैं। वैश्विक पटल की ओर बढ़ने की दिशा में यह महत्त्वपूर्ण क्रांतिकारी कदम हो सकता है। किंतु यह बड़े दुख की बात है कि जहाँ हिंदी वैश्विक शिखर की दिशा में आगे बढ़ रही है, वहीं अपनी ही भाषा के प्रति भारत में उदासी है। वहीं विदेशी लोग हिंदी के लिए वैश्विक पटल पर अपना योगदान दे रहे हैं। विदेशों में 154 देशों के 200 से अधिक विश्वविद्यालयों एवं संस्थाओं में हिंदी पढ़ाई जाती है।

भारत से बाहर हिंदी पढ़ने वाले दो वर्ग के लोग हैं – एक तो विदेशी और दूसरा प्रवासी भारतीय। विदेशी जिन-जिन कारणों से हिंदी सीखते हैं, उनमें प्रमुख कारण हैं - भारत से आर्थिक,

सामाजिक, व्यापारिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक दृष्टि से जुड़ना, शिक्षा के क्षेत्र में शोध या गहन अध्ययन करना, हिंदी में बातचीत कर आनन्द लेना, जासूसी करना आदि।

हिंदी की पढ़ाई दो रूपों में होती है - एक साहित्य संस्कृति की मान्यताओं और भावनात्मक धरोहर को अक्षुण्ण रखने हेतु विधा जैसे - साहित्य (कहानी, उपन्यास, काव्य, नाटक, निबंध, यात्रावृतांत, पत्र, संस्मरण, डायरी आदि) के रूप में। और दूसरा रोज़ी-रोटी हेतु व्यावसायिक, व्यावहारिक भाषा के रूप में। आज हिंदी ज्ञान-विज्ञान और साहित्य-संस्कृति के आदान-प्रदान का माध्यम बनकर उभर रही है। अब वह दिन दूर नहीं जब विज्ञान, गणित, तकनीक की पाठ्य-पुस्तकें हिंदी में उपलब्ध होंगी और विशिष्ट वर्ग का जो विशेष अधिकार इस पर है, वह न रहकर आम जन भी विज्ञान-तकनीकी की पदवी, उपाधि, डिग्री हिंदी में लेगा, उसे पढ़ेगा।

भारत के बाहर विदेशों में हिंदी

भारत के बाहर विदेशों में हिंदी तीन वर्गों में फैली है -

(क) पहला वर्ग - एकता जीविकोपार्जन हेतु विदेश गए लोग हैं
(ख) दूसरा वर्ग - पड़ोसी देश के लोग हैं।
(ग) तीसरा वर्ग - पाश्चात्य राष्ट्र है।

क) जीविकोपार्जन हेतु विदेश गए लोग - जीविकोपार्जन हेतु विदेश गए लोगों का वर्ग, जिन्हें ब्रिटेन से मिली आज़ादी से पूर्व के दिनों में, गुलाम के रूप में, ले जाया गया था। वे देश हैं - मॉरीशस, सूरीनाम, फ़िजी, त्रिनिदाद, गयाना, दक्षिण अफ़्रीका आदि। इन देशों में ये लोग राजनीति, प्रशासन, सामाजिक जीवन के महत्त्वपूर्ण अंग बन गए।

ख) पड़ोसी देश - नेपाल, बांग्लादेश, श्रीलंका, पाकिस्तान, चीन आदि देशों में बिरादरी या रोज़ी-रोटी के लिए, कारोबार के लिए गए लोग हिंदी को बढ़ावा दे रहे हैं। चीन में बीजिंग, पीकिंग और गौग्दांग विश्वविद्यालय (दक्षिण चीन) शांघाई जैसे पाँच विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्यापन होता है। साथ ही, यहाँ का भारतीय दूतावास भी प्रति रविवार, गुरुकुल कक्षा द्वारा हिंदी शिक्षा दे रहा है। चीन में प्रोफ़ेसर चीनतिंगहान ने 'रामचरितमानस' का चीनी (मंदारिन) भाषा में अनुवाद किया। डॉ. गींशेंवा ने 'वाल्मीकि रामायण' का चीनी भाषा में अनुवाद किया। प्रोफ़ेसर यीन ने 'हिंदी-चीनी शब्दकोश' बनाया। अब वे 'चीनी-हिंदी शब्दकोश' बना रहे हैं। उन्होंने कुछ हिंदी उपन्यासों का चीनी भाषा में अनुवाद भी किया है। प्रोफ़ेसर लियो झानव ने चीनी भाषा में हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा। कई उपन्यासों और कहानियों का अनुवाद किया है।

ग) पाश्चात्य राष्ट्र - ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, जर्मनी, फ़्रांस, स्वीडन, बेल्जियम, हॉलैंड, ऑस्ट्रेलिया, थाईलैंड, उज़्बेकिस्तान, कनाडा, रोमानिया, बुल्गेरिया, हंगरी, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, रूस और जापान - इन देशों में भारतीय और हिंदी भाषियों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। लंदन की दूसरी भाषा के रूप में हिंदी तेज़ी से उभर रही है। इन देशों में हिंदी को बढ़ावा देने वाले लोग भारतीय न होकर केवल विदेशी हैं।

1) बेल्जियम - विदेशों में जिन-जिन लोगों ने हिंदी को आगे बढ़ाया, उनमें फ़ादर कामिल बुल्के का नाम सर्वोपरि आता है। सबसे पहले उन्होंने अपना समस्त जीवन हिंदी के प्रति समर्पित कर तन-मन-धन से हिंदी का प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने 'अंग्रेज़ी हिंदी का मानक कोश' तैयार किया। साथ ही, उन्होंने रामकथा पर गहन शोध कार्य किया है।

2) इंग्लैंड - डॉ. रुपर्ट स्नेल ने 17 वर्ष की आयु में ही हिंदी सीखी। फ़ेडीरिक सायीमान ग्राउन ने तुलसी रामायण का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया। फ़्रेडेरिक पिन्कॉट जी ने 'बाल दीपक' के चार खंड लिखे। इसके अलावा गिलख्रिस्ट, रोनाल्ड सटूअट मैकग्रेगर जैसे लोग हिंदी को इंग्लैंड की भूमि पर आगे बढ़ा रहे हैं। लंदन विश्वविद्यालय (लंदन) भी हिंदी को बढ़ावा देने का काम कर रहा है। लंदन में 26 सितंबर 2014 को प्रथम हिंदी छात्र सम्मेलन संपन्न हुआ। लंदन में पारोमिता वोहरा ने 'पिक्चर अभी बाकी है', जैसी चर्चित पुस्तक की रचना की। विनीत कुमार 'इश्क कोई न्यूज़ नहीं' जैसी लप्रेक (लघु प्रेम कथा) आकार पुस्तकें लिखकर इस नई विधा का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। जे. आर. कारपेंटर ने तुलसीदास पर 'द थियोलॉजी ऑफ़ तुलसीदास' शोध ग्रंथ लिखा। प्रोफ़ेसर आर.

एस. मैकग्रेगर ने 'हिंदी-अंग्रेज़ी कोश' गठित किया।

3) चेकोस्लोवाकिया- डॉ. स्मेकल भारत में राजदूत के रूप में सेवा देते आए हैं। उन्होंने प्रेमचंद के 'गोदान' का चेक भाषा में अनुवाद किया। डॉक्टर ओडोलन स्मेकल हिंदी पाठ्यक्रम की पूरी शृंखला तैयार कर चेकोस्लोवाकिया में हिंदी को बढ़ावा देने का काम कर रहे हैं।

4) फ़्रांस- फ़्रांस की श्रीमती आनी मोंतो ने कई हिंदी रचनाओं का फ़्रांसीसी भाषा में अनुवाद किया है।

5) रूस- रूस में डॉक्टर चेवर्गनी चेली सेप द्वारा हिंदी को बढ़ावा देने का काम हो रहा है। प्रोफ़ेसर ब्रेस्क्रोवनी ने 'हिंदी-रूसी शब्दकोश' का निर्माण किया। प्रोफ़ेसर वारान्निकोव ने 'रामचरितमानस' का रूसी में अनुवाद किया।

6) पोलैंड- पोलैंड में मारिया ब्रस्की हिंदी को बढ़ावा देने का काम कर रहे हैं। डॉक्टर रुत्कोव्सका, श्रीमती आग्नेयेष्का कोवालस्का, प्रोफ़ेसर दानुता स्ताशिक आदि द्वारा हिंदी भाषा और साहित्य की कई पुस्तकें पोलिश भाषा में अनूदित की गई हैं।

7) कनाडा - कनाडा में डॉक्टर कैथरिन जी हैन्सन हिंदी के प्रोफ़ेसर हैं। वे कनाडा में भी हिंदी को बढ़ावा देने का काम कर रहे हैं।

8) रोमानिया - श्री दनिल इकंजे द्वारा प्रेमचंद की 22 कहानियों का रोमानियन भाषा में अनुवाद हुआ है।

9) जापान - जापान में निवाको काईनुका सिनेमा द्वारा हिंदी शिक्षा दे रही हैं। उन्होंने भारत में नाटक का मंचन भी किया है। प्रोफ़ेसर क्यूमा दोई ने 'गोदान' का जापानी भाषा में अनुवाद किया। साथ ही, 'हिंदी-जापानी कोश' और 'जापानी-हिंदी कोश' का निर्माण किया है। उन्होंने पंत के 'स्वर्णकिरण', जैनेंद्र कुमार की प्रतिनिधि रचनाओं और महादेवी वर्मा की कुछ कविताओं का जापानी भाषा में अनुवाद किया है। प्रोफ़ेसर कोत्सुरो कोगा जी ने 1472 पृष्ठों में 'हिंदी-जापानी शब्दकोश' बनाया। साथ ही, हिंदी की कई रचनाओं का जापानी भाषा में अनुवाद किया गया है। डॉक्टर तोजियो मिनेकेनी जापान में हिंदी कहानीकार के रूप में चर्चित हैं। प्रोफ़ेसर तोशियो तनाका भी जापान में हिंदी पढ़ाते हैं। टोक्यो शहर एवं उसके उपनगरों में, जैसे, सईतामा, चिबा और कनागावा में बड़े पैमाने पर हिंदी शिक्षा दी जा रही है। जापान में स्थित 185 विश्वविद्यालयों में से 10-12 विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्यापन हो रहा है। इनमें साधारणतः प्रतिवर्ष 200 से अधिक छात्र हिंदी सीखते हैं।

10) इटली – इतालवी में जोजी मिलाएनेति ने 'पद्मावत', सुश्री चेहिलिया कोसियानी, सुश्री मारियोला ओफ़्रेदी आदि ने उपन्यासों का, तो प्रोफ़ेसर कराक्की और प्रोफ़ेसर स्तेफ़ेनो पियानो ने कई कहानियों का, इटालियन भाषा, इतालवी में अनुवाद कर हिंदी को बढ़ावा देने का काम किया है।

11) बुल्गेरिया - बुल्गेरिया में डॉ. वाल्या मारिनोवा ने कई हिंदी उपन्यासों का बुल्गेरियाई भाषा में अनुवाद किया है।

12) हंगरी – हंगरी में मारिया नज्येशी, डॉ. विजया सती (दिल्ली विश्वविद्यालय) एल्टे विश्वविद्यालय, बुदापेश्ट (हंगरी) में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की ओर से नियुक्त विज़िटिंग प्रोफ़ेसर के रूप में हिंदी को बढ़ावा देने का काम कर रही हैं। हंगरी की राजनीतिक, सांस्कृतिक और अकादमिक राजधानी बुदापेश्ट में कई शिक्षा एवं शोध संस्थानों में से एक प्राचीन एत्वोश लोरंद विश्वविद्यालय में भारोपीय अध्ययन विभाग द्वारा हिंदी की पढ़ाई होती है।

13) जर्मनी - जर्मनी में लोथार लुत्से हिंदी को बढ़ावा देने का काम कर रहे हैं। 'बसेरा' नामक हिंदी-जर्मनी द्विभाषी पत्रिका द्वारा म्यूनिख निवासी युवा रजनीश मंगला जर्मनी में बसे हिंदी भाषियों को जोड़ने का काम कर रहे हैं। वे इंटरनेट से फ़ेसबुक, यूट्यूब और ब्लॉग के माध्यम से सक्रिय रूप से हिंदी को बढ़ावा दे रहे हैं।

14) फ़िजी - फ़िजी मूल निवासी आईतौकाई समुदाय की लूसियाना पहली युवती है, जिसने हिंदी में उच्च शिक्षा प्राप्त की है। फ़िजी में आप्रवासी भारतीयों के बीच रहने वाली लूसियाना तथा उसकी सहपाठी रेशमी लता (जिसने भारत सरकार की छात्रवृत्ति पर हिंदी सीखी है) फ़िजी में हिंदी को बढ़ावा दे रही हैं।

15) स्पेन - वय्यादोलिद विश्वविद्यालय में अकादमीय पाठ्य पद्धति में हिंदी को सम्मिलित कर लिया गया है। यहाँ सन् 2004 से भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की योजनानुसार अतिथि आचार्य भेजे जाते हैं।

16) नॉर्वे - नॉर्वे में विनोद बब्बर ने 'इब्सेन के देश में' नामक नॉर्वे पर संस्मरण लिखा। नॉर्वे में, प्रवासी भारतीय सुरेश चंद्र शुक्ल हिंदी को बढ़ावा दे रहे हैं।

17) ऑस्ट्रेलिया - ऑस्ट्रेलिया में बसे दो लाख पचास हज़ार से अधिक भारतीय मूल के लोगों में से 80 हज़ार से अधिक हिंदी भाषी लोग हैं। यहाँ के भारतीय मूल के लोग फ़िजी, दक्षिण अफ़्रीका, मॉरीशस, इंग्लैंड आदि देशों से आए। उनकी हिंदी भाषा में अंतर होने के बावजूद भी, वे हिंदी का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। ऑस्ट्रेलिया में 40,000 से अधिक लोगों की प्रथम भाषा हिंदी है। कैनबेरा, मेलबर्न विश्वविद्यालय में हिंदी पत्राचार के माध्यम से सीखी जाती है। यहाँ हाई स्कूल में विद्यार्थियों के लिए दो यूनिट के रूप में हिंदी पढ़ाई जाती है। सिडनी में लेखिका कवयित्री रेखा राजवंशी हिंदी प्रचार-प्रसार का कार्य कर रही है। उनको एवोरीजनल्स की ड्रीम टाइम एनिमेशन फ़िल्म के हिंदी अनुवाद के लिए राष्ट्रीय स्तर के 'रनर-अप' अवार्ड से सम्मानित किया गया है। अब ऑस्ट्रेलियाई प्रधानमंत्री जूलिया गिलार्ड ने भी घोषणा की है कि 'ऑस्ट्रेलियाई स्कूलों में हिंदी एवं प्रमुख एशियाई भाषाएँ पढ़ाई जाएँगी।'

18) अमेरिका - अमेरिका के न्यूयॉर्क में राम चौधरी, वाशिंगटन में मधु महेश्वरी और गुलशन मधुर आदि हिंदी को बढ़ावा देने का काम कर रहे हैं। कोलंबिया, न्यूयॉर्क, न्यू जर्सी आदि विश्वविद्यालयों की पूर्व हिंदी प्रोफ़ेसर डॉ. अंजना संधीर ने अमेरिका की 18 महिलाओं को लेकर 'प्रवासी के बोल' नामक पुस्तक निकाली। साथ ही 'प्रवासी आवाज़' नामक अमेरिकी हिंदी के प्रथम इतिहास ग्रंथ की रचना की। युवा जूलियन एडलर तो पूर्ण रूप से हिंदी के प्रति समर्पित हैं। उनके हिंदी प्रेम के कारण उन्हें 'हिंदी प्रेमी' नाम से पहचाना जाता है। वाशिंगटन में रहकर आशुतोष 'हिंदी यूनिवर्सिटी' नामक इंटरनेट, यूट्यूब के माध्यम से सैकड़ों विदेशियों एवं प्रवासी भारतीयों की नयी पीढ़ियों को हिंदी सिखा रहे हैं। कैलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय में जून के आखिरी माह में अमेरिकी भारतीय लोगों के बच्चों के लिए एक माह के शिविर में चित्रों, ऑडियो, वीडियो के माध्यम से हिंदी पढ़ाई जाती है।

अमेरिका के 40 से अधिक विश्वविद्यालयों और 100 से अधिक महाविद्यालयों में (कुल मिलाकर 140 से अधिक विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में) हिंदी अध्ययन-अध्यापन होता है। अमेरिका में हिंदी के लिए फ़्रैंकलिन हिंदी पाठशाला, ट्रमबल, कनेक्टिकट हिंदी पाठशाला, ब्रिवाटर हिंदी पाठशाला, पिस्कैटेवे हिंदी पाठशाला, एडीसन हिंदी पाठशाला आदि हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं सेवा के लिए समर्पित हैं। यू.एस.ए. संस्था अमेरिका तथा कनाडा में 25 विद्यालयों में बारह सौ से अधिक बालक-बालिकाओं को साप्ताहिक कक्षा द्वारा हिंदी सिखाते हैं। इस संस्था में औपचारिक रूप से नियुक्त कोई अधिकारी नहीं है। सभी स्वयंसेवक के रूप में कार्य करते हैं। अब तक बाबा रामदेव, किरण बेदी, वेद प्रताप वैदिक, नितीश भारद्वाज, राजू श्रीवास्तव, अशोक चक्रधर, हुल्लड़ मुरादाबादी, माणिक वर्मा, ओम व्यास, गजेंद्र सोलंकी आदि इस संस्था से अतिथि के रूप में जुड़े हुए हैं।

अतः उपरोक्त आँकड़ों पर एक नज़र डालें, तो यह स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आता है कि यहाँ आबादी का 20% हिस्सा भारतीय मूल के लोगों का है और हिंदी को वैश्विक पटल पर आगे बढ़ाने में मूल भारतीयों से कई गुना अधिक प्रवासी एवं विदेशी लोगों का हाथ रहा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि विश्व में फैले देशी-विदेशी प्रवासी भारतीयों ने भारत की हिंदी और अपने-अपने देश की हिंदी को जोड़ने में एक सेतु की तरह महान् काम किया है। इन सब के कार्यों को हिंदी जगत् सलाम करता है तथा इन सबके प्रति सम्मान से नतमस्तक हो रहा है।

सहायक सूची :

1. करुणाशंकर उपाध्याय, हिंदी का विश्व संदर्भ
2. डॉ. माधव सोनटक्के, प्रयोजनमूलक हिंदी भाषा के विविध रूप
3. डॉ. माधव सोनटक्के, हिंदी के अद्यतन अनुप्रयोग
4. प्रो. हरिमोहन, आधुनिक जनसंचार और हिंदी
5. नवटीयाद, अनुवाद : सिद्धांत एवं व्यवहार
6. डॉ. विनोद गोदरे, हिंदी पत्रकारिता : स्वरूप एवं संदर्भ
7. रवीन्द्र श्रीवास्तव, भाषा-शिक्षण
8. स्मिता मिश्र, भारतीय मीडिया : अन्तरंग पहचान
9. त्रिभुवन शुक्ल, हिंदी कम्प्यूटिंग
10. असगर वजाहत, टेलीविजन लेखन

ghorpade.p123@gmail.com

हिंदी के प्रसार के लिए आवश्यक है हिंदी की माँग

डॉ. मोतीलाल गुप्ता 'आदित्य'
दिल्ली, भारत

सेनाओं के मनोबल के लिए, सेनाओं का गौरव-गान तो ज़रूरी है, लेकिन युद्ध में विजय पाने के लिए आवश्यक होता है - सेनाओं का सशक्तीकरण। सेना निरंतर अपनी शक्ति, अपनी कमज़ोरियों और आवश्यकताओं की बारीकी से पड़ताल करती है और उसके अनुसार कार्य-योजना बनाती हुई अपनी शक्ति को बढ़ाती है। यही बात हर क्षेत्र के विकास और सशक्तीकरण पर लागू होती है। हिंदी के वैश्विक प्रचार-प्रसार के लिए भी ठीक उसी प्रकार यह ज़रूरी है कि हिंदी के प्रसार के मार्ग में आने वाली बाधाओं का सूक्ष्मता से अध्ययन करते हुए कार्य-योजना बनानी चाहिए। यह भी समीक्षा करने की आवश्यकता है कि जो प्रयास किए गए हैं या किए जा रहे हैं, क्या उनके माध्यम से हिंदी का यथोचित प्रचार-प्रसार हो रहा है? क्या किए जा रहे प्रयास यथोचित और सही दिशा में हैं?

जीवन में विभिन्न अवसरों पर बड़े-बड़े रंग-बिरंगे गुब्बारों को उड़ते देखा जा सकता है। वे बहुत ही सुंदर लगते हैं। उन्हें देखकर खुशी भी होती है और तालियाँ बजाने को भी मन करता है। लेकिन हम सब अच्छी तरह जानते हैं कि कुछ ही देर में इन खोखले गुब्बारों की हवा निकल जाएगी और ये ज़मीन पर आकर खत्म हो जाएँगे। जहाँ तक हिंदी के प्रसार का मामला है, मैं पिछले करीब 35 वर्षों से देखता आ रहा हूँ, हिंदी के आयोजनों में अधिकांशतः हिंदी की प्रगति के रंगीन गुब्बारे उड़ाए जाते हैं। सकारात्मकता की ज़ोरदार तालियाँ बजती हैं। हिंदी के यशोगान के बाद सब वैसा ही रह जाता है, जैसे कि पहले था। वास्तविकता से साक्षात्कार करने-कराने का साहस कम ही लोग कर पाते हैं। अगर कोई करना भी चाहे, तो नकारात्मकता का बिल्ला लगाकर उसके तर्कों को खारिज कर दिया जाता है। इसलिए प्रायः 'समझदार वक्तागण' इससे बचते दिखते हैं। हिंदी के प्रचार-प्रसार संबंधी आलेखों में भी प्रायः यही प्रवृत्ति देखने को मिलती है। कहीं कोई नकारात्मकता का बिल्ला लगाकर खारिज न कर दे। प्रायः व्यक्तिगत चर्चाओं में वस्तुस्थिति को रखने और स्वीकारने वाले विद्वान भी सब कुछ जानते-समझते हुए भी लेखन में वस्तु-स्थिति रखने से बचते दिखते हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए सरकारी स्तर पर अनेकों योजनाएँ बनाई गई हैं। हिंदी भाषा के विकास के लिए भी केंद्र और राज्यों के स्तर पर अनेक संस्थान कार्यरत हैं। विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से निरंतर प्रयास किए जाते रहे हैं। भारतीय नागरिकों के अतिरिक्त विदेशों में हिंदी शिक्षण और विदेशियों के हिंदी शिक्षण के लिए भी विभिन्न प्रकार के संस्थान स्थापित किए गए हैं। हिंदी भाषा-साहित्य के विकास के प्रचार-प्रसार के लिए जितनी सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाएँ हैं, उतनी विश्व में किसी अन्य भाषा के लिए नहीं है। लेकिन इतने प्रयासों के बावजूद भी यदि देश-विदेश के स्तर पर हिंदी की अपेक्षित प्रगति और प्रसार नहीं हो पा रहा है, तो यह आवश्यक है कि हम इसकी सूक्ष्मता से समीक्षा करें। यदि हिंदी की सेना को विश्व-विजय के लिए आगे बढ़ना है, तो हमें अपनी खामियों और आवश्यकताओं की भी समीक्षा करनी होगी। गुब्बारे उड़ाने की बजाय ज़मीनी स्तर पर कुछ ठोस कदम उठाने होंगे। इस संबंध में आवश्यक निर्णय लेते हुए निर्णयों को लागू करने के लिए इच्छा-शक्ति भी दिखानी होगी।

हिंदी के प्रसार के लिए हमें उस प्रकार स्थितियों की समीक्षा करनी होगी, जिस प्रकार व्यापार-जगत में समीक्षा की जाती है। आँकड़ों का ईमानदार अध्ययन किया जाता है। प्रयासों की नहीं परिणामों की समीक्षा की जाती है। व्यापार जगत के लोग केवल सुनहरी और अच्छी बातों से नहीं, बल्कि ज़मीनी आँकड़ों में हुई प्रगति एवं अपने उत्पाद की माँग के रुझान से खुश होते हैं। यदि प्रगति में कोई कमी या बाधा उत्पन्न होगी, तो उससे निपटने के लिए गंभीरतापूर्वक निर्णय लेने पड़ेंगे। ऐसी ही व्यावसायिकता हिंदी के प्रसार के लिए भी हमें दिखानी होगी। इसलिए यह अत्यावश्यक है कि सर्वप्रथम हम हिंदी की विकास-यात्रा की बात ज़मीनी स्तर पर करें।

इस संबंध में स्वर्गीय विद्यानिवास मिश्र का यह कथन उपयुक्त ही है कि 'विश्व हिंदी की बात उठाते समय ऊपर से बड़ा बेतुका लगता है कि अपने देश में हिंदी पूरी तरह प्रतिष्ठित नहीं, फिर विश्व

हिंदी की बात की जा रही है। परंतु हिंदी विश्वभर में फैली हुई है, यह निर्विवाद है।' विश्व में भाषा संबंधित आँकड़े प्रसारित करने वाली संस्था एथनोलोग ने अपनी 2022 की रिपोर्ट में अंग्रेज़ी को प्रथम माना है तथा इसके बोलने वालों की संख्या 1,132 मिलियन अर्थात् 1 अरब 13 करोड़ 20 लाख दर्शाई है तथा मंदारिन को दूसरे स्थान पर रखा है। इसके बोलने वालों की संख्या 1 अरब 11 करोड़ 70 लाख बताई है तथा हिंदी को तीसरे स्थान पर रखा है और इसके बोलने वालों की संख्या सिर्फ़ 1 अरब 15 करोड़ दर्शाई है, जबकि शोधकर्ता जयंती प्रसाद नौटियाल के अनुसार विश्व में हिंदी बोलने वालों की संख्या 1 अरब 13 करोड़ 35 लाख 20 हज़ार अर्थात् अंग्रेज़ी जानने वालों से एक करोड़ 52 लाख अधिक है और हिंदी ही विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। भले ही इन आँकड़ों की सटीकता पर कुछ असहमति भी हो, लेकिन इससे हिंदी जानने वालों की एक मोटी तस्वीर तो सामने आती है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि गिरमिटिया देशों में ही नहीं अमेरिका यूरोप सहित विभिन्न महाद्वीपों में भी प्रवासी भारतीयों द्वारा प्रचुर मात्रा में स्तरीय साहित्य रचा जा रहा है। और इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन रचनाकारों में हिंदी से इतर विभिन्न व्यवसायों से जुड़े और शीर्ष पदों पर कार्यरत और व्यवसाय कर रहे प्रवासी भारतीय भी हैं। इन देशों में प्रवासी भारतीयों द्वारा न केवल साहित्य-सृजन किया जा रहा है, बल्कि हिंदी साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए भी सार्थक प्रयास किए जा रहे हैं। हाल ही में प्रकाशित 'प्रवासी हिंदी साहित्य और ब्रिटेन' में राकेश बी. दुबे ने केवल ब्रिटेन में ही पचास से अधिक साहित्यकारों के नाम दिए हैं। आज विश्व में सर्वाधिक प्रवासी भारतीय अमेरिका और कनाडा में हैं। इन दोनों देशों में इनकी जनसंख्या पच्चीस लाख से अधिक है। हाल ही में अंजना संधीर के संपादन में अमेरिका के 46 पुरुष कवियों की सौ से अधिक कविताओं के ई-कविता-संग्रह 'हम भी हैं' का विमोचन हुआ है। अत: न्यूज़ीलैंड, ऑस्ट्रेलिया, नॉर्वे, डेनमार्क, शारजाह, सऊदी अरब, रूस, यूक्रेन, चीन, जापान आदि देशों में जहाँ-जहाँ प्रवासी भारतीय गए हैं, वहाँ हिंदी साहित्य रचा जा रहा है। इसके अतिरिक्त मॉरीशस, दक्षिण अफ़्रीका, फ़िजी, सूरीनाम, गयाना, त्रिनिदाद आदि गिरमिटिया देशों में भी हिंदी साहित्य रचा जा रहा है। इस प्रकार निस्संदेह विश्व में हिंदी साहित्य अच्छी स्थिति में है। हिंदी साहित्य में मातृभूमि भारत से प्रेम निहित होने के कारण प्रवासी भारतीय भी इसमें रुचि लेते हैं। चिंता अगर है, तो दिशा को लेकर है। आज विश्व में जो साहित्य-सुमन खिल रहे हैं, वे तो भारत की उस भूमि पर तब अंकुरित हुए, जब यहाँ हिंदी का वातावरण था। अब जबकि हिंदी की जन्मभूमि पर ही हिंदी का वातावरण तेज़ी से बदल रहा है, तब हिंदी साहित्य की नयी पौध कहाँ तैयार होगी? जब पौध ही तैयार न होगी तब विदेशों में क्या भारत में भी साहित्य-सुमन कैसे खिलेंगे ? यहाँ इस बात पर गौर करने की आवश्यकता है कि भारत में भी अधिकांश हिंदी भाषा-साहित्य के कार्यक्रमों में पचास साल से ऊपर के ही लोग या भाषा के विद्यार्थी, शिक्षक आदि ही दिखते हैं। उस पर भी इनकी संख्या बहुत ही कम होती है।

भारतवंशियों का सर्वाधिक प्रतिशत अगर किसी देश में है, तो वह है मॉरीशस। मॉरीशस के साहित्यकार राज हिरामन से दो बार हिंदी संगोष्ठियों में मुलाकात हुई है। चर्चा में उन्होंने बताया कि वहाँ भी हिंदी के प्रचार का मुख्य कारण अधिकांशतः धार्मिक-सांस्कृतिक जुड़ाव है। हिंदी साहित्य के लिए दिए जाने वाले प्रतिष्ठित 'इफ़्फ़को पुरस्कार' से सम्मानित मॉरीसस के साहित्यकार रामदेव धुरंधर जब 'वैश्विक हिंदी संगोष्ठी' में मुंबई आए, तब अपने वक्तव्य में उन्होंने कहा था - "मैं वहाँ शब्द बोता हूँ और भारत में उनकी फ़सल काटता हूँ।" उनके मंतव्य को आसानी से समझा जा सकता है। उन्होंने बताया कि मॉरीशस में भी यूरोपीय भाषा का प्रचलन व प्रभाव है। बात लगभग वही दिखती है, जैसी कि भारत में है। यहाँ हिंदी का प्रभाव व प्रसार के घटने की स्थिति में विदेशों में इसके बढ़ने का कोई आसार नहीं दिखता।

मॉरीशस, फ़िजी, सूरीनाम त्रिनिदाद जैसे देशों में भारतीय मूल के निवासियों की उल्लेखनीय संख्या होने के कारण, वहाँ हिंदी स्वतः सस्नेह प्रचारित होती है। विश्व के प्रत्येक प्रमुख देश में भारत का दूतावास है। भारत के दूतावासों से राजनीतिक संदर्भों के अतिरिक्त यह भी आशा की जाती है कि वे हिंदी के प्रचार-प्रसार की ओर भी ध्यान दें। विदेशों में हिंदी के महत्त्व, प्रचार एवं प्रसार की स्थिति न तो सब जगह एक-सी है, न ही ऐसा होना संभव है। मॉरीशस, फ़िजी, सूरीनाम और त्रिनिदाद में हिंदी के लिए वहाँ की जनता के एक बड़े भाग में जो आदर और प्रेम है, वह यूरोप या अमेरिका जैसे देशों में कैसे मिल सकता है? इसलिए विदेशों में

हिंदी की स्थिति, प्रचार-प्रसार की समस्याओं के भी विविध रूप हैं, उनके समाधान भी विविध रूपों में खोजने होंगे। विदेशों में हिंदी की स्थिति, प्रचार तथा प्रसार को लेकर दो अलग-अलग दृष्टियों से विचार करना होगा।

भाषा-संस्कृति का चोली दामन का साथ है। विदेशों में संस्कृति के प्रसार के माध्यम से हिंदी का भी प्रचार-प्रसार होगा। इसी प्रकार हिंदी के प्रसार से भाषा और संस्कृति का प्रसार होगा। विदेशों में हिंदी के प्रसार में दूतावासों और उच्चायोगों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होनी चाहिए। लेकिन हमारे दूतावास इस दिशा में कोई विशेष प्रभावी भूमिका नहीं निभा पा रहे हैं। मुझे लगता है कि इस पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। सामान्यतः उन देशों में जहाँ भारतवंशी लोगों की संख्या अच्छी-खासी है, वहाँ हिंदी और भारतीय संस्कृति के प्रति आत्मीय अनुराग है। अत: वहाँ इस पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। भारतीय प्रवासियों, आप्रवासियों और भारतवंशियों को लेकर कार्य किया जाना चाहिए। भारत सरकार द्वारा इस प्रकार की योजनाएँ व दिशा-निर्देश भी दिये जाने चाहिए।

यह सही है कि हिंदी विश्व के तीस से अधिक देशों में पढ़ी-पढ़ाई जाती है, लगभग 100 विश्वविद्यालयों में उसके लिए अध्यापन केंद्र खुले हुए हैं। अकेले अमेरिका में लगभग 20 केंद्रों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है। परस्पर आर्थिक, सांस्कृतिक संबंधों को बढ़ाने के उद्देश्य से विश्व के अनेक देशों में हिंदी सीखी व सिखाई जाती है। भारत के साथ अपने राजनैतिक, कूटनीतिक और आर्थिक संबंध साधने के लिए भी विश्व के अनेक देशों के लिए यह आवश्यक है कि भारत की राजभाषा हिंदी सीखें। इस उद्देश्य से भी विश्व के अनेक देशों के लोग अपने विश्वविद्यालयों में विदेशी भाषा के रूप में हिंदी का अध्ययन करते हैं। संपन्न देशों के विद्यार्थी वहाँ रहकर हिंदी पढ़ने के बाद भारत आकर उसका व्यावहारिक अभ्यास भी करते हैं। भारत में विदेशियों को हिंदी सिखाने के लिए 'केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा' सहित कई संस्थानों और विश्वविद्यालयों में भी इस प्रकार की सुविधाएँ हैं। मुंबई में महात्मा गांधी द्वारा स्थापित 'हिंदुस्तानी प्रचार सभा' में भी अनेक देशों से लोग हिंदी व उर्दू सीखने के लिए आते हैं।

चीन आर्थिक और सामरिक मोर्चे के साथ-साथ सांस्कृतिक मोर्चे पर भारत को हराने और अपने हितों को साधने के लिए पिछले कुछ समय से हिंदी को भी अपना हथियार बना रहा है। इस समय चीन में हज़ारों जवान ऐसे हैं, जो हिंदी के कुछ वाक्य बोल और समझ सकते हैं। भारत-चीन सीमा पर तैनात चीनी जवानों को हिंदी इसलिए सिखाई जाती है कि वे हमारे जवानों और नागरिकों से सीधे बात कर सकें। उनका हिंदी-ज्ञान उन्हें जासूसी करने, भारतीय जवानों को धमकाने, चेतावनी देने और पटाने में उनकी खासी मदद करता है। आर्थिक हमले से चीन से भारत को काफ़ी आघात होता है। भारतीय व्यापारियों से संवाद के लिए भी बड़ी संख्या में चीन के लोग हिंदी सीखते और बोलते हैं। यही नहीं चीन के लगभग 20 विश्वविद्यालयों में बाक़ायदा हिंदी पढ़ाई जाती है।

लेकिन विश्लेषण तो इस बात का होना चाहिए कि विश्व में हिंदी-शिक्षण की दिशा और दशा क्या है? इसके लिए हमें ज़मीनी स्तर पर उतरकर स्थितियों को समझना होगा। जोहान्सबर्ग में 'हिंदी शिक्षा संघ' के सहयोग से 9वें विश्व हिंदी सम्मेलन के दौरान भारतवंशियों का एक जत्था 'हिंदी शिक्षा संघ' के नेतृत्व डरबन और नाटाल से आया था। उस जत्थे में ऐसे लोग भी थे, जो हिंदी कम समझते थे या बिल्कुल नहीं समझते थे। उनके लिए हिंदी का सम्मेलन केवल हिंदी का सम्मेलन नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति का और भारतीयता का सम्मेलन था, जहाँ वे भारत की धर्म-संस्कृति से जुड़ने आए थे। जोहान्सबर्ग से डरबन के करीब दस घंटे के सफ़र में रास्ते भर उन्होंने रोमन लिपि में छपे हुए हिंदी भजनों की पुस्तक से ऐसे-ऐसे धार्मिक भजन गाए कि सब भाव-विभोर हो गए और उसके बाद हिंदी फ़िल्मों की अंत्याक्षरी ठीक वैसे ही शुरू हुई, जैसे कि किसी पिकनिक में भारतवासी लोग अंत्याक्षरी खेलते हैं। ये लोग धर्म की जय के साथ-साथ हिंदी की जय के नारे भी लगा रहे थे। दक्षिण अफ़्रीका के डरबन में 'हिंदी शिक्षा संघ' है। 'हिंदी शिक्षा संघ' की अध्यक्षा रही प्रोफ़ेसर उषा शुक्ला जब मुंबई आई, तब उन्होंने बताया कि हिंदी शिक्षा संघ द्वारा दक्षिण अफ़्रीका में 55 स्थानों पर हिंदी पढ़ाई जाती है। 'हिंदी शिक्षा संघ' के कार्यकर्ता सेवा भाव से शिक्षण-कार्य करते हैं। ये कार्यक्रम स्कूल समाप्त होने के पश्चात् अथवा सप्ताहान्त में चलाए जाते हैं। 'हिंदी शिक्षा संघ' द्वारा डरबन में एक रेडियो स्टेशन भी स्थापित किया गया है, जहाँ हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के गीत व कार्यक्रम भी प्रस्तुत किए जाते हैं।

हिंदी फ़िल्मों के गीतों और कार्यक्रमों से वहाँ हिंदी के प्रसार में बहुत मदद मिलती है। वे कहती हैं कि 'हिंदी प्रसार व शिक्षण के कार्य में 'हिंदी शिक्षा संघ' का प्रमुख उद्देश्य भारतीय संस्कृति और संस्कारों की रक्षा है। ज़्यादातर भारतवंशी 'रामचरितमानस' पढ़ने और अपने धर्म और संस्कृति से जुड़ने के लिए हिंदी सीखते हैं। यहाँ के विश्वविद्यालय में हिंदी की विभागाध्यक्षा रह चुकीं प्रो. उषा शुक्ला बड़ी ही साफ़गोई से स्वीकार करती हैं - 'हिंदी के प्रति जो रुझान पहले था, वैसा अब नहीं रहा। विश्वविद्यालय ने भी हिंदी विषय को अब हटा दिया है। इस कारण उन्हें भी अपनी सेवा के कुछ अंतिम वर्षों में हिंदी के बजाए अंग्रेज़ी पढ़ानी पड़ी। जो लगाव है, वह भारत से और भारत की संस्कृति से है। जब भारत में ही लोग हिंदी के बजाय अंग्रेज़ी की तरफ़ जा रहे हैं, तो दक्षिण अफ़्रीका में वह कैसे बढ़ेगी?'

व्यापार-व्यवसाय या नौकरी के चलते पिछले पचास–सौ सालों में जो लोग भारत से जाकर विदेशों में बसे, उनमें सर्वाधिक संख्या यूरोप, अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और खाड़ी के देशों की रही। इन देशों में हिंदी की वास्तविक स्थितियों को भी वहीं के लोगों की ज़ुबानी बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। कई वर्ष पूर्व विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर मुंबई के के.सी. कॉलिज में आयोजित 'वैश्विक हिंदी संगोष्ठी में विद्वान वक्ता ब्रिटेन से आए कथाकार तेजेंद्र शर्मा ने स्पष्ट रूप से कहा कि यूरोप में आँकड़ों के सहारे हिंदी की जो तस्वीर बनाई जाती है, वैसा कुछ है ही नहीं। हिंदी मुख्यतः मंदिरों या सामाजिक-धार्मिक संगठनों के माध्यम से अपने धर्म और संस्कृति के जुड़ाव के लिए पढ़ाई जाती है और वहाँ भी कोई उत्साहपूर्ण वातावरण नहीं है। ब्रिटेन से ही पधारी साहित्यकार श्रीमती शैल अग्रवाल ने भी इस पर सहमति प्रकट की। मुंबई की प्राचार्या और ऑस्ट्रेलिया में रहीं श्रीमती शील निगम ने बताया कि 2013 में ऑस्ट्रेलिया में यह प्रश्न उठा था कि ऑस्ट्रेलिया में हिंदी क्यों पढ़ाई जाए? इस संबंध में ऑस्ट्रेलिया की सरकार के विदेश एवं व्यापार विभाग ने उक्त विषय पर परामर्श आमंत्रित किए, तब उनके पुत्र विनय निगम, जो वहाँ वित्तीय सेवाओं, उच्च शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा व प्रशिक्षण के कार्यों से जुड़े हैं, ने अपने मित्रों सहित, भारत-ऑस्ट्रेलिया संबंधों में हिंदी के महत्त्व को आधार बनाकर एक लेख ऑस्ट्रेलिया सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया। अंततः सरकार ने उनके व उनके साथियों के दृष्टिकोण को स्वीकारते हुए ऑस्ट्रेलिया में हिंदी-शिक्षण के लिए अधिक धनराशि उपलब्ध करवाने पर गंभीरता से विचार किया और किसी तरह हिंदी जाते-जाते बची।

कनाडा से 'प्रयास' नामक साहित्यिक हिंदी ई-पत्रिका निकालने वाले साहित्यकार शरण घई बताते हैं कि सिक्खों की बहुलता के चलते कनाडा में पंजाबी को तो शासकीय मान्यता प्राप्त हुई है पर हिंदी की कोई खास पूछ नहीं है। इंग्लैंड से मुंबई पधारी सुप्रतिष्ठित हिंदी साहित्यकार कादंबरी मेहरा जब भारत आई थीं, तब उन्होंने कहा - 'इंग्लैंड और दूसरे यूरोपीय देशों में वहाँ हिंदी का इस्तेमाल वे लोग करते हैं, जो भारत में जन्मे और पढ़े-बढ़े हैं, लेकिन उनके बाद की पीढ़ियाँ अब हिंदी नहीं बोलती हैं। 'गोंडा, उत्तर प्रदेश से ओमान के भारतीय समुदाय के स्कूल के हिंदी शिक्षक अशोक कुमार तिवारी ने जनवरी या फ़रवरी में एक संदेश भेजकर बताया कि वहाँ हिंदी के साथ सौतेला व्यवहार हो रहा है। प्रो. शिवकुमार सिंह, जो पुर्तगाल के लिस्बन विश्वविद्यालय में कला संकाय में हिंदी पढ़ाते हैं, बताते हैं कि "1961 तक गोवा, दमन, दीव और दादरा, नगर-हवेली क्षेत्र पुर्तगाल के अधीन थे और उनका भारत के साथ पाँच सौ साल का साझा इतिहास रहा है, इसके चलते भारत से जुड़ीं यादें आज भी पुर्तगालियों के मन में बसी हैं। इसलिए बहुत से भारतीय मूल के पुर्तगाली अपने बच्चों को गुजराती, कोंकणी और हिंदी सिखाने की कोशिश करते हैं।" उनके अनुसार पढ़ाने के अतिरिक्त दूसरी एक चुनौती विद्यार्थियों की आवश्यक संख्या को बनाए रखना भी है, ताकि शिक्षण-कार्य चलता रहे। ऑस्ट्रेलिया के विश्वविद्यालय में इंजीनियरिंग-प्रबंधन के विभागाध्यक्ष तथा हिंदी शिक्षा संघ के अध्यक्ष, प्रो. सुभाष शर्मा, प्रवासी भारतीयों को हिंदी से जोड़ने के लिए काव्य-संध्याओं का सहारा लेते दिखते हैं।

लेकिन इसमें कुछ आश्चर्यजनक हो, ऐसा नहीं है। आज जब भारत में स्कूलों, कॉलिजों में हिंदी पढ़ने के लिए विद्यार्थी न मिल रहे हों और हिंदी प्रदेशों में हिंदी भाषियों की संतानें हिंदी में स्वयं को असहज अनुभव करते हों, तो विदेशों में ऐसा होना स्वाभाविक ही है। अब इस स्थिति पर विचार करते समय हमें हिंदी के शिक्षण और हिंदी माध्यम से शिक्षण की स्थिति पर नज़र डालनी होगी।

जहाँ स्वतंत्रता के समय भारत में 99 प्रतिशत से भी अधिक विद्यार्थी मातृभाषा में पढ़ते थे। सर्वाधिक अंग्रेज़ी जानने वाले लोग मद्रास (तमिलनाडु) में थे, जहाँ शिक्षित आबादी लगभग एक प्रतिशत थी । लेकिन 1986 की शिक्षा-नीति के बाद जो परिदृश्य बदला, उसके चलते शिक्षा का तेज़ी से अंग्रेज़ीकरण हुआ। उस समय तक भी दिल्ली जैसे महानगर में भी स्नातकोत्तर स्तर तक के अनेक विषयों की शिक्षा हिंदी माध्यम से सम्पन्न होती थी अब छोटे-छोटे गाँवों तक और प्राथमिक स्तर से भी नीचे नर्सरी तक 'अंग्रेज़ी माध्यम' पसर गया है।

हिंदी की जन्मभूमि में हिंदी की स्थिति की भयावहता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद् की ओर से जारी किए गए दसवीं और बारहवीं बोर्ड की परीक्षा में हिंदी विषय के परीक्षा-परिणाम काफ़ी खराब रहे हैं। बोर्ड के हाईस्कूल और इंटरमीडीएट कक्षाओं में करीब 11,00,000 (ग्यारह लाख) छात्र-छात्राएँ हिंदी में ही असफल हो गए। यही नहीं अब उत्तर प्रदेश और हरियाणा जैसे राज्यों में भी सरकारी स्तर पर अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूल खुल रहे हैं।

भारत सरकार के अंतर्गत गठित राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा भी हिंदी या मातृभाषा के बजाए अंग्रेज़ी माध्यम को बढ़ावा देने के लिए 'अंग्रेज़ी शिक्षण राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार पत्र' दिसंबर 2008 से आरंभ हुआ। राष्ट्रीय फ़ोकस समूह अंग्रेज़ी शिक्षण के सभी सदस्य अंग्रेज़ी शिक्षा से जुड़े हुए हैं। इनमें हिंदी अथवा भारतीय भाषाओं के शिक्षण से जुड़ा कोई नाम नहीं मिलता है। अंग्रेज़ी का स्रोत औपनिवेशक है, अब इस बात को भुला दिया गया है। इस बात को स्पष्ट कर दिया गया है कि भारत में अंग्रेज़ी की माँग का विस्फ़ोट हुआ है, क्योंकि यह समझा जाने लगा है कि अंग्रेज़ी से अच्छे अवसर मिल सकेंगे। यानी सरकार की नीति भी हिंदी सहित भारतीय भाषाओं के स्थान पर अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ी माध्यम को ही आगे बढ़ाने लगी।

स्वतंत्रता के समय प्रायः सभी भारतीय मातृभाषा में पढ़ते थे। हिंदी भाषियों की विपुल जनसंख्या के चलते हिंदी का देश-दुनिया में वर्चस्व था। लेकिन माँग और पूर्ति के सिद्धांत के कारण आगे चलकर धीरे-धीरे विद्यार्थियों का झुकाव अंग्रेज़ी की तरफ़ होने लगा। जो अंग्रेज़ों के शासनकाल में न हुआ, वह आज़ादी के बाद होने लगा। जिसका परिणाम यही हुआ कि मातृभाषा में वही पढ़ रहा है, जिसके पास अंग्रेज़ी में पढ़ने की सुविधा नहीं है। इसका कारण यह नहीं है कि अचानक हमारे भीतर अंग्रेज़ी प्रेम जाग गया। वास्तविक कारण हैं - उच्च शिक्षा और रोज़गार के अवसर। सभी क्षेत्रों में धीरे-धीरे संसाधनों की ढलान अंग्रेज़ी की ओर बनती चली गई। आर्थिक रूप से मध्यम और निम्न वर्ग को भी यह समझ में आने लगा कि यदि आगे बढ़ना है, तो बिना अंग्रेज़ी के कोई उपाय नहीं। 'दैनिक भास्कर – हिंदी' के अनुसार तमाम सरकारी अभियानों के बाद भी ज़िले के हिंदी माध्यम स्कूलों की ओर बच्चों के कदम नहीं बढ़ पा रहे हैं। विश्वास नहीं होता है कि ऐसी स्थिति तब उपस्थित हुई है जब हिंदी को हर स्तर पर बढ़ावा देने की बात की जा रही है। अगर सिर्फ़ नागपुर की बात करें, तो यहाँ कुल स्कूलों की संख्या 4000 है और हिंदी माध्यम की स्कूलों की संख्या मात्र 280 है, अर्थात्, लगभग 7 प्रतिशत। साल-दर-साल विद्यार्थियों की संख्या घटने से स्कूलों को बंद करने की नौबत बनी हुई है। ज़िले में पिछले सत्र की तुलना में 70 प्रतिशत विद्यार्थी कम हुए हैं बिगड़ती स्थितियों का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि हिंदी माध्यम के कई स्कूलों के शिक्षक ऑटो और बस का किराया अपनी जेब से भरकर या अपनी गाड़ी से आस-पास के क्षेत्रों से विद्यार्थियों को लाने का प्रबंध कर रहे हैं। विचित्र स्थिति यह है कि इन स्कूलों में कोई हेडमास्टर बनने को तैयार नहीं, क्योंकि उनपर विद्यार्थी संख्या बढ़ाने का काफ़ी दबाव रहता है। सब कुछ निःशुल्क मिलने के बाद भी हिंदी माध्यम स्कूलों से अभिभावक मुँह मोड़ रहे हैं। क्योंकि हिंदी की माँग घट रही है और हिंदी माध्यम से रोज़गार के अवसर धीरे–धीरे कम हो रहे हैं। मुंबई और दिल्ली जैसे महानगरों में भी यही स्थिति है। डी.ए.वी. विद्यालय, जो हिंदी के लिए बने थे ज़्यादातर अंग्रेज़ी माध्यम के हो गए हैं या धीरे-धीरे परिवर्तित हो रहे हैं। जो विद्यार्थी अपने देश में अपनी मातृभाषा को अपनाने को तैयार नहीं, जब वे यहाँ से अंग्रेज़ीयत के साथ विदेशों में जाएँगे, तो वहाँ हिंदी को क्यों और कैसे अपनाएँगे? जब भारत की धरा पर हिंदी के पौधे लगते थे, जो वृक्ष बनकर विश्वभर में फैलते थे, उस धरा पर हिंदी के पौधे लगाने वाला, उन्हें सींचने वाला अब कोई नहीं, तो अंग्रेज़ी माध्यम में पढ़-बढ़ रहीं पीढ़ियों से बहुत आशा नहीं रखी जा सकती है।

बात वहीं आकर टिकती है - हिंदी की भूमि पर हिंदी की माँग और रोज़गार की स्थिति। संघ लोक सेवा आयोग, कर्मचारी चयन आयोग, रेलवे भर्ती बोर्ड आदि सरकारी भर्ती परीक्षाओं में इस प्रकार के परिवर्तन हुए हैं कि अंग्रेज़ी माध्यम वालों को उसका लाभ मिलने लगा। इसके चलते भी हिंदी माध्यम वालों ने भी अंग्रेज़ी की ओर रुख किया। हालाँकि इसे लेकर संघ लोक सेवा आयोग के बाहर ऐतिहासिक धरना दिया गया, जिसमें पूर्व राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री तक शामिल हुए, लेकिन स्थितियों में कोई बड़ा परिवर्तन न हो सका। चयनित हिंदी माध्यम के उम्मीदवारों में गिरावट का सिलसिला तब शुरू हुआ, जब वर्ष 2011 में प्रारंभिक परीक्षा में सीसैट को शामिल किया गया। 2013 में सिविल सेवा मुख्य परीक्षा में भी बदलाव हुआ। छात्र दो वैकल्पिक विषय चुन सकते थे। 400 अंकों का सामान्य अध्ययन और 200 अंकों का सीसैट होता है। हिंदी माध्यम के छात्र अंग्रेज़ी कंप्रीहेंशन के प्रश्नों में फँस जाते हैं, क्योंकि इनके अनुवाद जटिल होते हैं। सफलता के प्रतिशत की बात करें, तो हिंदी माध्यम के चयनित उम्मीदवार 2013 में 17 प्रतिशत थे। 2014 में यह आँकड़ा 2.11 प्रतिशत था, 2015 में 4.28 प्रतिशत, 2016 में 3.45 प्रतिशत और 2017 में यह 4.06 प्रतिशत था। हिंदी मीडियम से 2018 में चयनित उम्मीदवारों की संख्या मात्र 2.16 प्रतिशत रही। चयन परीक्षाओं में पिछले कुछ वर्षों में संघ लोक सेवा आयोग (यूपीएससी) द्वारा आयोजित होने वाली सिविल सेवा परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले हिंदी माध्यम के उम्मीदवारों की संख्या में भारी गिरावट देखने को मिली है। इन्हीं परिस्थितियों के चलते हिंदी माध्यम से दी जा रही शिक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

हालाँकि भारत सरकार के कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग (डीओपीटी) के सचिव सत्यानंद मिश्र के अनुसार मातृभाषाओं में होने वाली पढ़ाई की गुणवत्ता खराब होने के कारण और विश्वविद्यालयों में इन भाषाओं में अच्छे छात्रों की कमी के कारण भी हिंदी माध्यम के उम्मीदवारों की संख्या कम हो रही है। अब छोटे या मध्यम शहरों में रहने वाले मध्यमवर्गीय परिवार बड़ी संख्या में अपने बच्चों को अंग्रेज़ी मीडियम स्कूलों में पढ़ने के लिए भेजते हैं। इस वजह से अंग्रेज़ी के उम्मीदवारों की संख्या बढ़ रही है। 2013 में 202 में से 48 उम्मीदवार ही हिंदी मीडियम स्कूलों में पढ़े थे। वहीं, इनमें से 22 उम्मीदवारों ने हिंदी मीडियम विश्वविद्यालयों में पढ़ाई की थी। हिंदी की माँग बढ़ाने के लिए ज़रूरी है कि हिंदी के माध्यम से हिंदी में शिक्षा के साथ-साथ रोज़गार उपलब्ध करवाने के लिए संसाधनों की ढलान को हिंदी व भारतीय भाषाओं के पक्ष में किया जाए। जब विद्यार्थी हिंदी माध्यम से शिक्षा पाएँगे, तब विदेशों में जाकर भी हिंदी के साथ जुड़े रहेंगे। वर्तमान में विभिन्न देशों में अनेक वरिष्ठ इंजीनियर, डॉक्टर व अन्य व्यवसायी, जो विदेशों में हिंदी का ध्वज थामे हुए हैं, उपस्थित रहे।

धर्म और संस्कृति के अतिरिक्त भारतवंशियों या प्रवासी भारतीयों के हिंदी से जुड़ाव का दूसरा प्रमुख कारण है, गीत-संगीत तथा साहित्य और सिनेमा। आज भी हिंदी सिनेमा भारत की तरह भारतवंशियों को हिंदी से जोड़ता है। हिंदी फ़िल्मों के पुराने सुरीले गीत हिंदी के प्रमुख प्रचारक रहे हैं। करीब दो वर्ष पूर्व, डरबन में, किसी प्रसिद्ध भारतीय हिंदी गायक का कार्यक्रम था। भारतवंशियों का उत्साह उफ़ान पर था। ऐसे अनेक भारतवंशी हिंदी प्रेमियों का मुझसे परिचय रहा है, लेकिन विदेशी धुनों पर लिखे गए गीतों में अब वह बात नहीं। पाश्चात्य धुनों पर ठूंसे हिंदी के बोलों में वह बात कहाँ कि वे महीने भर भी टिक पाएँ। हालाँकि आज भी हिंदी सिनेमा, टीवी कार्यक्रम, गीत-संगीत प्रवासी भारतीयों को हिंदी से जोड़े हुए हैं।

किसी भी भाषा की प्रगति का सबसे महत्त्वपूर्ण कारक है, उसकी माँग। जब विभिन्न क्षेत्रों में उसकी माँग बढ़ेगी, तब लोग उसे पढ़ना चाहेंगे, चाहे वह कोई विदेशी भाषा ही क्यों न हो। इसका सबसे सटीक उदाहरण है अंग्रेज़ी। अंग्रेज़ी का प्रसार भारत में या अन्य देशों में कृत्रिम उपायों से तो नहीं हुआ। चीन, रूस, जापान जैसे बड़े और विकसित देश, जहाँ मातृभाषा में ही शिक्षा दी जाती है, वहाँ भी आज बड़ी संख्या में लोग अंग्रेज़ी विषय पढ़ते हैं, तो उसका एक बड़ा कारण यह है कि विश्व में उसकी माँग बढ़ी है और वह ज्ञान-विज्ञान की एक प्रमुख भाषा बनी है। अगर भारत सहित विभिन्न देशों में आज अंग्रेज़ी निरंतर अपने पाँव पसार रही है, तो इसके पीछे है, उसकी माँग। जब माँग बढ़ेगी तब सिद्धांत के अनुसार माँग-पूर्ति भी करनी पड़ेगी। इस कारण लोग उसे सीखेंगे-पढ़ेंगे। विदेशों में कहीं कोई हिंदी शिक्षक की नौकरी कूटनीतिक आवश्यकताओं के लिए; दुभाषिए के रूप में कोई काम हो, तो

बात अलग है, अन्यथा वहाँ कोई ऐसी माँग नहीं होती है कि किसी आवश्यकता के कारण कोई हिंदी पढ़े। हिंदी को लेकर जो भी है, केवल इतना है कि जो हिंदी भाषी भारत से गए हैं, वे थोड़ा-बहुत अपनी भाषा से प्रेम या फिर अपने धर्म-संस्कृति को बचाने की इच्छा रखते हुए हिंदी पढ़ने–पढ़ाने के लिए प्रयासरत हैं। लेकिन विदेश में पैदा हुए पले-बढ़े प्रवासी भारतीयों के बच्चों में इसकी कितनी ललक है या होगी, यह समझा जा सकता है। सरल शब्दों में विदेशों में हिंदी की स्वाभाविक माँग नहीं है, जो भी प्रयोग-प्रसार है, वह भारत से लगाव के कारण है।

उड़ती हुई खबरों या बातों से हवा महल बना सकते हैं, उससे कोई परिवर्तन नहीं होता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार व प्रयोग का सीधा संबंध भारत से है। यदि भारत में हिंदी की माँग बढ़ेगी, तो प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से उसका प्रभाव विदेशों पर भी पड़ेगा। यदि भारत में हिंदी की माँग घटेगी, तो कृत्रिम उपायों से उसका कुछ विशेष लाभ नहीं होगा। लंबे विदेशी शासन के बावजूद स्वतंत्रता के समय और उसके लंबे समय बाद तक भी देश में मातृभाषा ही माध्यम था। देश के हिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी माध्यम था, हर कोई हिंदी में पढ़ता था। भारत में अंग्रेज़ी के प्रचार-प्रसार के कोई प्रत्यक्ष अभियान नहीं चलाया गया। लेकिन जैसे-जैसे संसाधनों की रुझान अंग्रेज़ी की तरफ़ झुकती गई, उसकी माँग बढ़ती गई और भारतवासी मातृभाषा छोड़ अंग्रेज़ी की तरफ़ लुढ़कते गए वैसे-वैसे हिंदी के बड़े-बड़े पैरवी करने वाले भी अपने बच्चों को अंग्रेज़ी विषय ही नहीं, अंग्रेज़ी माध्यम में पढ़ाने के लिए विवश हो गए।

विदेशों में भाषा के प्रचार-प्रसार का एक स्वाभाविक कारक तो यही है कि हिंदी अपनी भूमि पर बढ़े और उसे मान–प्रतिष्ठा मिले। जिस प्रकार से संसाधनों की ढलान अंग्रेज़ी की तरफ़ बनी या बनाई गई, वह हिंदी की तरफ़ बने, तो हिंदी अपनी पूर्णता प्राप्त करती हुई दिखेगी। इससे उसकी माँग बढ़ेगी और प्रतिष्ठा भी। जब माँग बढ़ेगी तब रोज़गार मिलेंगे। रोज़गार मिलेंगे, तो लोग हिंदी पढ़ेंगे, हिंदी माध्यम से भी पढ़ेंगे। अभी उन्हें हिंदी माध्यम में लाने के लिए प्रयास असफल हो रहे हैं, रोज़गार मिलेगा तो वे स्वयं आएँगे। अंग्रेज़ी माध्यम की तरह मोटी फ़ीस देकर भी आएँगे। विदेशों की कौन कहे, माँग न होने पर तो हिंदी-भाषी क्षेत्र में ही मुफ़्त शिक्षा वाले हिंदी या अन्य भारतीय भाषा माध्यम के स्कूल केवल असमर्थों-गरीबों के शिक्षण केंद्र बन कर रह गए हैं। हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के पक्ष में संसाधनों के झुकाव को बदलने का काम तभी संभव है, जब केंद्र की सरकार और राज्य सरकारें इसके लिए प्रतिबद्ध हों और वे युक्तिपूर्वक बहाव के विपरीत कोई राह बनाएँ।

जिस प्रकार आज भारत की आर्थिक व सामरिक शक्ति बढ़ने के कारण विश्व में भारत की प्रतिष्ठा भी बढ़ी है। इसके चलते विश्व में हिंदी की प्रतिष्ठा भी बढ़ी है। इसके कारण हिंदी के लिए भी माँग बढ़ने के रास्ते खुल रहे हैं। इसका एक बड़ा उदाहरण है संयुक्त राष्ट्रसंघ में बहुभाषिकता के चलते हिंदी के प्रयोग का निर्णय। निश्चय ही हिंदी के लिए, विशेषकर विदेशों में हिंदी के प्रयोगकर्ताओं के लिए यह एक सुखद समाचार है। इसमें हिंदी के प्रति संवेदनशील सरकारों के प्रयास सराहनीय हैं। वैश्विक स्तर पर हिंदी के प्रसार व हिंदी-शिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण कारण है - 'वैश्विक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक कारक। भारत न केवल विपुल जनसंख्या वाला एक बड़ा देश है, बल्कि एक शक्तिशाली देश भी है। आर्थिक रूप से भी भारत एक महाशक्ति के रूप में उभर रहा है। आज भारत विश्व का सबसे बड़ा बाज़ार बनकर उभरा है। इसलिए अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के चलते भी विश्व के विभिन्न देशों के लिए यह आवश्यक है कि वे भारत की भाषाएँ, विशेषकर हिंदी सीखें। इसी प्रकार यदि विदेशी कंपनियों को भारत के बाज़ारों में अपना माल बेचना है, तो इसके लिए भी हिंदी सीखनी आवश्यक है। इसी प्रकार पर्यटन उद्योग के लिए भी हिंदी सीखना एक व्यावसायिक आवश्यकता है। यदि भारत के लोग अंग्रेज़ीपन छोड़कर अपनी मातृभाषा को अपनाएँगे, तो हिंदी की माँग बढ़ेगी और तभी विश्व हिंदी सीखने के लिए विवश होगा।

जिस प्रकार किसी पौधे को फलने-फूलने के लिए खाद-पानी की आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार भाषा को भी फलने-फूलने के लिए खाद-पानी की आवश्यकता होती है। यह खाद-पानी है - उस भाषा से शिक्षा व रोज़गार। वर्ष 2015 में भोपाल में आयोजित 'विश्व हिंदी सम्मेलन' में तत्कालीन गोवा की राज्यपाल व साहित्यकार स्व. मृदुला सिन्हा ने कहा था - "हमें हिंदी को हृदय और पेट की भाषा बनाना होगा।" अतः अगर हिंदी पेट की भाषा बने, तो हृदय की भाषा अपने-आप बन जाएगी। जिस भाषा से जेब

गर्म हो, वह तो भाएगी ही, जेब तो दिल के ठीक ऊपर ही तो होती है। हमें हिंदी को अकादमियों व संस्थानों से अधिक पेट से जोड़कर चलना पड़ेगा।

यहाँ विश्व में हिंदी के प्रयोग व प्रसार की स्थिति की समीक्षा करते हुए हमें भारत में हिंदी के प्रयोग व प्रसार की स्थिति से जोड़कर आगे बढ़ना होगा। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि हिंदी की भूमि भारत है। हिंदी की जड़ें भारत में हैं - विशेषकर उन राज्यों में हैं, जो राजभाषा नियमों के अनुसार 'क' क्षेत्र में आते हैं। आज विश्व में जो हिंदी की व्याप्ति है, वह भारत में हिंदी की मज़बूत जड़ों से है। जब जड़ों को पानी और खाद मिलता है, तो उसमें नवपल्लव आते हैं, टहनियाँ दूर-दूर तक फैलती हैं, जो आज हिंदी की विश्व-व्याप्ति के रूप में दिखाई देती हैं। जिसके चलते देश में ही नहीं विदेशों में भी साहित्य के रंग-बिरंगे पुष्प खिल रहे हैं। यदि हिंदी की भूमि पर हिंदी की जड़ें मज़बूत या कमज़ोर होंगी, तो विश्वस्तर पर भी उसी के अनुरूप हिंदी की वही दिशा व दशा होगी। इसके लिए हमें अलग-अलग मानदंडों पर विदेशों में ही नहीं देश में भी हिंदी की प्रगति की समीक्षा करते हुए स्थिति को समझना होगा। भारत में हिंदी की फ़सल जितनी मात्रा में उगेगी, उतनी ही विश्व में पहुँचेगी। हिंदी जितनी भारत में प्रयोग में आएगी, उसी के अनुरूप विश्व में भी उसका प्रचलन होगा। और फिर भारत की आर्थिक - राजनीतिक शक्ति बढ़ेगी, हिंदी भी बढ़ेगी। भारत में हिंदी की माँग बढ़ेगी, तो विश्व में हिंदी की माँग हिंदी की प्रगति भी होगी।

संदर्भ सूची :

1. स्मारिका विश्व हिंदी सम्मेलन, मॉरीशस, 18-20 अगस्त 2018, विश्व परिप्रेक्ष्य में हिंदी और भारतीय संस्कृति - ममता शर्मा
2. राजभाषा हिंदी, प्रकाशन विभाग, विश्व में हिंदी अध्ययन और अध्यापन की स्थिति - विमलेश कांति वर्मा।
3. डॉ. पुष्पिता अवस्थी, प्रवासी साहित्य, जोहान्सबर्ग के आगे। नीदरलैंड में हिंदी भाषा बनाम सरनामी भाषाई संस्कृति
4. राकेश बी. दुबे, प्रवासी हिंदी साहित्य और ब्रिटेन,
5. डॉ. इन्द्रदेव भोला इंद्रनाथ, हिंदी विश्व भर में, मॉरीशस।
6. हिंदी की विश्व यात्रा ।
7. हिंदी सब संसार, आठवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन, प्रवासी भारतीय समाज द्वारा प्रकाशित
8. 'हिंदी विश्वभर में, डॉ. इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ, मॉरीशस।
9. हिंदी सब संसार, 8वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन, स्मारिका। संपादक सुरेश ऋतुपर्ण एवं नारायण कुमार।
10. अंग्रेज़ी शिक्षण राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार पत्र राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् दिसंबर 2008।
11. हिन्दस्तान ई-पेपर टीम शनिवार, 05 जनवरी 2019।
12. दैनिक भास्कर हिंदी 31 जुलाई 2018।
13. दिव्य हिमालय - सितंबर 2018।
14. आज तक इन नई दिल्ली, 08 मई 2018।

mlgdd123@gmail.com

नेपाल में हिंदी

डॉ. कविश्री जायसवाल
मेरठ, भारत

भारतीय संविधान की आठवीं सूची में 'नेपाली' को एक भाषा के रूप में मान्यता दी गई है। वस्तुतः नेपाली भाषा आर्य परिवार से संबंधित है, इसलिए वह भारतीय संविधान की स्वीकृत भाषा के रूप में जानी जाती है। नेपाल के तराई क्षेत्रों में - कपिलवस्तु, मघेटा, दांग, बर्दिया आदि में, अवधी मिश्रित हिंदी बहुलता से बोली और समझी जाती है। यह अनुमान है कि वहाँ लगभग पचास लाख लोग इस भाषा का प्रयोग करते हैं। नेपाली कांग्रेस के तत्कालीन मंत्री श्री रामनारायण मिश्र तथा स्पीकर श्री महेन्द्र नारायण निधि के प्रयासों के फलस्वरूप, हिंदी नेपाल में प्रथम संसद की द्वितीय भाषा बनी।

हिंदी भाषा तराई क्षेत्र के निवासियों की अस्मिता से जुड़ी थी और साहित्यिक भाषा के रूप में बहुव्यवहृत थी। नेपाल के पूर्व प्रधानमंत्री श्री वी.पी. कोइराला की मातृभाषा नेपाली है, परन्तु उन्होंने अपनी प्रारम्भिक रचनाएँ हिंदी भाषा में ही कीं। भारत की 'हंस' पत्रिका में भी उनकी कहानियाँ छपती थीं। वे बाद में नेपाली में लिखने लगे। उन्होंने नेपाली कथा एवं उपन्यास में भी लोकप्रियता प्राप्त की। दोनों भाषाओं में उन्हें लेखनी चलाने में झिझक नहीं होती थी। कोइराला की शिक्षा-दीक्षा भारत के पटना और वाराणसी में हुई थी। उनके जीवन पर महात्मा गांधी और जयप्रकाश नारायण का प्रभाव पड़ा, क्योंकि वे उनके प्रेरणा-स्रोत के रूप में थे। सन् 1961 ई. तक तराई के सभी स्कूलों और कॉलिजों की माध्यम भाषा हिंदी ही थी। प्रत्येक स्कूल और कॉलिज में हिंदी भाषा और साहित्य पढ़ाने के लिए अलग से शिक्षकों की नियुक्ति होती थी। पटना विश्वविद्यालय और बिहार सेकेण्डरी बोर्ड से अनुमोदित पाठ्यक्रम यहाँ प्रचलित था और हिंदी ऐच्छिक रूप में सीखी जाती थी। काठमांडू के त्रिभुवन विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष डॉ. सूर्यनाथ गोप उस समय ऐच्छिक रूप से हिंदी पढ़ने वाले छात्र थे। सन् 1961 ई. में उन्होंने हिंदी माध्यम स्कूल, सिरहो से सेकेण्डरी परीक्षा पास की थी। उस समय त्रिचन्द कॉलिज, काठमाण्डू, रामस्वरूप रामसागर कॉलिज, जनकपुर और मोरंग कॉलिज, विराटनगर में हिंदी माध्यम से शिक्षा प्राप्त होती थी।

नेपाल हमारा निकटतम पड़ोसी भाई है। धार्मिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं भाषिक दृष्टिकोणों से प्रत्येक भारतीय इसका अभिनंदन करता है। हिमालय के आँचल में बसा इस राष्ट्र में विश्व का सर्वोच्च पर्वत शिखर 'सागरमाथा,' 'माउन्ट एवरेस्ट के रूप' में विश्वप्रसिद्ध है। शिव-शक्ति की लीला-भूमि, पशुपति क्षेत्र, सीता माता की जन्म-भूमि, जनकपुर मिथिलापुरी आदि पावन भूमि इसी उपत्यका की देन हैं। 'जनकपुर बौद्धिक समाज' से प्रकाशित 'नेपाल में हिंदी की अवस्था' नामक कृति में कहा गया है कि पिछले एक हज़ार वर्षों से, दक्षिण के भू-भाग में, सबसे अधिक प्रचलित होने के कारण, इस भू-भाग में, हिंदी भाषा और साहित्य का महत्त्व वर्तमान में भी दृष्टिगोचर होता है।

नेपाल के प्रसिद्ध कवि भानु भक्त ने नेपाली सामान्य बोलचाल में 'रामायण' की रचना की थी। उन्हें 'नेपाल का तुलसीदास' भी माना जाता है। वस्तुतः यहाँ सन्त-साहित्य और भक्ति-काव्य की सभी धाराओं में विपुल रचनाएँ मिलती हैं।

कवि सूरजब्रज को नेपाल का प्रथम हिंदी कवि माना जाता है। इनका समय 1660 ई. के लगभग अनुमानित किया जाता है। वर्तमान समय में हिंदी यहाँ उच्च तथा उच्चतर शिक्षा में जीवित है। त्रिभुवन विश्वविद्यालय के छः कैम्पसों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है। स्व. डॉ. कृष्णचन्द्र मिश्र कई वर्षों तक इसके अध्यक्ष रहे।

अपनी दक्षिणी पश्चिमी सीमाओं से लगे होने के कारण, नेपाल का भारत के हिंदी प्रदेशों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिए हिंदी नेपाल के लिए विदेशी भाषा नहीं है। यह निर्विवाद है कि नेपाली साहित्य के विकास में हिंदी साहित्यकारों की प्रेरणात्मक पृष्ठभूमि आरम्भिक काल से ही महत्त्वपूर्ण रही है।

आधुनिक काल में, बहुत से लेखकों ने, नेपाली और हिंदी दोनों भाषाओं में रचनाएँ की हैं। जैसे - कवि लेखनाथ, पौडयाल, लक्ष्मी प्रसाद देवकोटा, केदारमान 'व्यथित' आदि। व्यथित की कुछ कविताएँ नॉर्वे के ओस्लो से अमित जोशी द्वारा संपादित 'शान्तिदूत'

पत्रिका के मार्च-अप्रैल, अंक में 'काल : तीन टुकड़े' शीर्षक से 1993 में प्रकाशित हुई थी। इस कविता के प्रारम्भिक पद हैं -

"प्रस्तुत है
तुम्हारे सम्मुख आज
मेरी ही तलवार से
तीन विभाजित काल
प्रथम टुकड़ा,
जिस पर हुआ हिमपात
इसे
मेरी ही भाँति कुचल दो
बूटों से।"

नेपाल की कुछ कवयित्रियों ने भी हिंदी में उत्कृष्ट कविताएँ लिखी हैं, जैसे - पारिजात, प्रेमा शाह, मंजू तिवारी, बेटी वर्जाचार्य, वानिरा गिरि तथा बेजू शर्मा आदि। आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रख्यात गीतकार गोपालसिंह 'नेपाली' को शायद ही कोई हिंदी प्रेमी नहीं जानता होगा।

प्रजातांत्रिक नेपाल में हिंदी को द्वितीय राजभाषा बनाने की माँग प्रारम्भ से ही शुरू हो गई। सन् 1951 में स्थापित तराई कांग्रेस ने हिंदी को नेपाल की राजभाषा के रूप में घोषित करने की माँग की। 22 नवम्बर 1957 को प्रमुख अंग्रेज़ी दैनिक 'कॉमनर' में उस समय के कांग्रेस के अध्यक्ष और भारत में नेपाल के तत्कालीन राजदूत, वेदानन्द झा ने दावा किया था कि हिंदी तराई के 40 लाख लोगों की भाषा है और इसे उचित स्थान मिलना चाहिए।

इस समय, नेपाल के काठमाण्डू से त्रैमासिक पत्रिका 'हिमालिनी' का प्रकाशन हो रहा है। अब तक इसके कई विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं; जैसे कि - 'हिंदी कथा-साहित्य की समसामयिक प्रवृत्ति', 'सहस्त्राब्दी विशेषांक' आदि। इस पत्र का आर्ष वाक्य है - "सत्ये नास्ति भयं क्वचित् ।"

नेपाल में प्रथम राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन, सन् 1996 में 'नेपाल में हिंदी अवस्था' विषय पर आयोजित हुआ। इस अवसर पर जनकपुर बौद्धिक समाज द्वारा एक विशेषांक प्रकाशित हुआ, जिसके सम्पादक थे - श्री राजेश्वर नेपाली। इसकी प्रस्तावना में श्री बड़ा महाराजाधिराज पृथ्वी नारायण शाह का एक भजन 'बाबा' प्रथम पृष्ठ पर छपा था, जिसका प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है -

"बाबा गोरखनाथ सेवक सुष दाये,
भजहुं तो मन लाये।
बाबा चेला चतुर मछिन्द्र नाथ को,
अधवधु रूप बनाए।।
शिव में अंश शिवासन कावे,
सिद्धि माहाबनि आए।।"

यह अंक त्रिभुवन विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष स्व. डॉ. कृष्णचन्द्र मिश्र को समर्पित है।

नेपाल में हिंदी के उत्कृष्ट कवि स्व. चन्द्रदेव ठाकुर 'चंचरीक' ने लिखा है कि "प्राचीन भाषाओं में जिस प्रकार 'संस्कृत' भाषा महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है, उसी प्रकार आधुनिक भाषाओं में 'हिंदी' भाषा कई दृष्टियों से अपनी महत्ता के लिए प्रसिद्ध है। हिंदी भाषा का विकास वैज्ञानिक प्रणाली से हुआ है। यह भाषा अपने में पूर्ण वैज्ञानिकता एवं यथार्थता संजोई हुई है।"

वस्तुतः भाषा का प्रश्न राजनैतिक नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक होता है। हिंदी, फ़ारसी या अंग्रेज़ी की तरह न तो विदेशी भाषा है और न संस्कृत की तरह देवभाषा, अपितु जन-भाषा के रूप में इसे सार्वभौमिक समाज की अभिव्यक्ति का प्रमुख स्वर माना जा सकता है।

"नेपाल में शिलालेखों एवं उपलब्ध हस्तलिखित लेखों से हिंदी के व्यवहार का प्राचीनतम रूप देखा जा सकता है। पश्चिमी नेपाल की दांग घाटी से प्राप्त लगभग 650 वर्ष पूर्व के शिलालेखों में दांग के तत्कालीन राजा रत्नसेन की एक 'दंगीशरण कथा' नामक रचना भी मिली है। यह कृति नेपाल में हिंदी के व्यापक प्रयोग और गहरी जड़ को पुष्ट करती है।"

हिंदी साहित्य का जो इतिहास आज तक लिखा और पढ़ा जा रहा है, वह भारत के हिंदी साहित्य का ही एक रूप माना जा सकता है। इस समय भारतीय हिंदी साहित्य की जो धाराएँ एवं प्रवृत्तियाँ हैं, उन्हें भी नेपाल के हिंदी साहित्य से संपृक्त किया जाए, तो उचित माना जा सकता है। नेपाल पाल्पा के नेसेबंशीय नरेशों ने हिंदी को अपनी राजभाषा ही मान लिया था। कृष्णशाह, मुकुन्दसेन आदि नरेशों के सभी पत्र हिंदी में ही मिलते हैं।

पूरा नेपाल हिंदी कवियों, उपन्यासकारों, कहानीकारों, निबन्धकारों और नाटककारों की लेखनी से परिचित है। नेपाल

में रचनाकार धूस्वां सायमि का नाम उल्लेखनीय है। गंकी लेखक धूस्वां सायमि का मूल नाम गोविन्द मानन्धर है। उनके उपन्यास का अनुवाद डॉ. कामता कमलेश ने सन् 1984 में हिंदी में किया था। नारी-मनोविज्ञान और समाज-मनोविज्ञान की दो पटरियों पर चलने वाला प्रस्तुत उपन्यास निश्चय ही मानवीय चेतना का सक्षम उदाहरण है।

हिंदी लेखन में दुर्गा प्रसाद श्रेष्ठ भी एक परिचित नाम है। वे अनिवार्यतः निम्न मध्यवर्गीय पात्रों की परिस्थितियों और दुविधाओं-पीड़ाओं के कथाकार हैं। दुर्गा प्रसाद श्रेष्ठ का प्रथम उपन्यास 'डॉ. चण्डीघोष स्ट्रीट' बहुचर्चित है। उनका कहानी-संग्रह 'सत्रारे मौसी' तो उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत भी हो चुका है। नेपाल के कथाक्षेत्र में श्री बुन्नीलाल सिंह और सिरहा निवासी का लेखन अतिचर्चित एवं जनप्रिय है। डॉ. कामता कमलेश द्वारा संपादित 'नेपाल की हिंदी कहानियाँ' नामक संग्रह में नेपाल के प्रसिद्ध कहानीकारों की उत्तम कहानियाँ संकलित हैं। डॉ. कामता कमलेश ने 'गंकी' उपन्यास का हिंदी में अनुवाद किया है।

यथार्थ में नेपाल राजर्षि जनक जगदम्बा जानकी और महर्षि याज्ञवल्क्य की पावन तपोभूमि के रूप में चर्चित है। तिब्बत में नेपाल को 'नेपा' कहा जाता है। नेपाली भाषा में भी 'नेपा' का उल्लेख हुआ है। नेपाली में 'ने' का अर्थ होता है - 'मध्य' और 'पा' का अर्थ होता है - 'देश'। तिब्बती भाषा में 'ने' का अर्थ 'घर' और 'पा' का अर्थ 'ऊन' है, अर्थात् 'ऊन का घर'। नेपाल की उपत्यका में बागमती और विष्णुमती नदियाँ बहती हैं। इसी क्षेत्र में, 'ने' नामक मुनि ने तपस्या की थी। उनके आशीर्वाद से 'नेपाल' की उत्पत्ति हुई। पुराणों के अनुसार यहाँ मिथला के सायण निमि की राजधानी थी। फलतः इस पवित्र भूमिक्षेत्र का नाम 'निमियाल' पड़ा, जो कालान्तर में नेपाल के रूप में प्रचलित हुआ।

"विश्व का एकमात्र हिन्दू राष्ट्र नेपाल एक बहुभाषी देश है और भारत के बाद हिंदी पढ़ने, लिखने और बोलने वालों की संख्या सबसे अधिक नेपाल में ही है।"

वस्तुतः हिमालय उपत्यका में बसे नेपाल की लम्बाई 331 कोस तथा चौड़ाई 75 कोस है। पूर्व में मेची नदी, पश्चिम में महाकाली, दक्षिण में भारत और उत्तर में हिमालय है। हिमालय से कौशिकी और कर्णाली नामक प्रमुख नदियाँ निकलती हैं।

सन् 1983 में 'नेपाल की हिंदी कहानियाँ' नाम से डॉ. कामता कमलेश के संपादन में पराग प्रकाशन, दिल्ली से एक संग्रह प्रकाशित हुआ, जिसमें कुल 28 कहानियाँ संकलित हैं। जिसमें वहाँ के मुख्य कहानीकार बुन्नीलाल सिंह, किशोर नेपाल, ध्रुव मधिकर्मी, रतन कोजी, राम भरोसै कापड़ि, डॉ. राम दयाल राकेश, दुर्गा प्रसाद श्रेष्ठ आदि हैं। यह कहानी-संग्रह त्रिभुवन विश्वविद्यालय के तत्कालीन हिंदी विभागाध्यक्ष स्व. डॉ. कृष्णचन्द्र मिश्र और उपन्यासकार धूस्वां सायमि, जिनका मूल नाम गोविन्द मानन्धर है को समर्पित है।

नेपाल में हिंदी में काव्य-रचना करने वाले स्व. केदारमान व्यथित का स्थान सर्वोपरि माना जाता है। इनकी कई कविताएँ नॉर्वे से प्रकाशित 'शान्तिदूत' में छपी हैं। जैसे – 'काल : तीन टुकड़े', 'कामना' आदि।

इन सबके योगदान ने नेपाल में रचे जा रहे हिंदी साहित्य को अंतर्राष्ट्रीय महत्ता प्रदान की है। धूस्वां सायमि ने, सन् 1955 में, वाराणसी हिन्दू विश्वविद्यालय से प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृत में एम.ए. की पढ़ाई की। नेपाल में हिंदी के विकास और प्रचार में उनका वरेण्य कार्य है। उन्हें कई साहित्यिक पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया है।

सन् 1921 में जन्मे श्री सूर्यदेव सिंह 'प्रभाकर' भोजपुरी बोली में 'दिल फ़रेब भगत' उपनाम से कविता लिखते थे। उनकी कविताओं का एक संग्रह 'चिनगारी' है, जिसमें लगभग 20 कविताएँ हैं। नेपाल में 'थेरवादी बौद्ध धर्म का संक्षिप्त इतिहास' नामक ग्रन्थ की रचना श्री पुष्पेन्द्र कर्णवाल ने की है। इसी क्रम में श्री लक्ष्मी प्रसाद देवकोटा और मूना मदन नेपाली की रचनाओं में हिंदी की स्पष्ट छाप मिलती है।

श्री चन्द्रदेव ठाकुर चंचरीक ने हिंदी में 'शैलबाला' काव्य-ग्रन्थ की रचना की, जिसके प्रारम्भिक पृष्ठों के आधार पर डॉ. कामता कमलेश ने इसे हिंदी का स्तरीय ग्रन्थ माना है। इनकी कहानियों का संग्रह 'परदेस पिया की आस नहीं' हिंदी की श्रेष्ठतम कृतियों में से एक है। श्री सिंह कभी-कभी काव्य-रचना भी करते हैं।

त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमाण्डू, नेपाल के हिंदी विभाग की पत्रिका 'साहित्य लोक' के अंक यथावत प्रकाशित होते रहते हैं। इसका 'प्रेमचंद' विशेषांक उस समय सर्वाधिक चर्चित हुआ था। डॉ. सूर्यनाथ गोप ने श्री जयराजाचार्य विरचित 'श्रीमनः कामना

माहात्म्यम्' का हिंदी अनुवाद किया है। स्व. डॉ. कृष्णचन्द्र मिश्र और डॉ. सूर्यनाथ गोप ने प्रारम्भिक विश्व हिंदी सम्मेलनों में अपने राष्ट्र का प्रतिनिधित्व भी किया था।

डॉ. उषा ठाकुर ने हिंदी में रचित निबन्धों की समीक्षा की है। नेपाल में भारत के हिंदी जगत् का मूल्यांकन सदा होता रहता है। श्रीमती वानीरा गिरि ने 'कारागार' उपन्यास की रचना की है। इसी क्रम में युवराज नेपाली ने 'केही प्रतिमा केही प्रवृत्ति' उपन्यास की रचना की, जिसका प्रकाशन भानु प्रकाशन, भद्रपुर, झापा से हुआ है।

नेपाल में कई हिंदी समाचार-पत्र भी प्रकाशित होते रहते हैं। मुम्बई से प्रकाशित 'संयोग साहित्य' के संपादक श्री मुरलीधर पाण्डेय हैं। 2017 में, नारनौल, हरियाणा में 'इण्डो-नेपाल विशिष्ट प्रतिभा सम्मान' समारोह का आयोजन किया गया था, जिसमें साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए श्री वीर बहादुर चंद कंचनपुर, श्री हरि प्रसाद जोशी और भीमदत्त नगर को सम्मानित किया गया। 'नेपाल पत्रकारिता सम्मान' श्री पुष्कर राज भट्ट को और 'काठमाण्डू साहित्य सम्मान' श्री राजेन्द्र सिंह रावल को प्रदान किया गया तथा घनगठी नेपाल को 'इतिहास लेखन' हेतु सम्मानित किया गया।

इस विवरण में साहित्य जगत् में भारत और नेपाल का लम्बे समय से चलने वाला भ्रातृ-भाव देखने को मिलता है। उनकी सहभागिता प्रशंसनीय ही नहीं, वरन् अनुकरणीय भी है। नेपाल और भारत एक धरातल के दो राष्ट्र हैं। हिन्दुओं के लिए काशी और जनकपुर धाम का अद्वितीय महत्त्व है, जो जनक और जानकी की पावन भूमि है। यह महर्षि याज्ञवल्क्य की साधना का क्षेत्र भी है। 'भारत-नेपाल' अनादिकाल से एक ही सांस्कृतिक धारा में बंधे रहे हैं। हिमालय दोनों देशों के लिए आत्म-साधना का स्थान रहा है। अनन्तकाल से हिमालय की विशाल चोटियों ने दोनों को आध्यात्मिक शक्ति दी है। नेपाल में जाकर बसे आर्य हिंदी प्रदेश से गुज़रे थे और अपने साथ यहाँ की भाषा भी ले गए थे। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि नेपाल में बहुसंख्यक आबादी के द्वारा हिंदी समझी और पढ़ी जाती है।

समय-समय पर वहाँ हिंदी विषयक सेमिनार, सम्मेलन और गोष्ठियाँ होती रहती हैं, जिनमें भारत और नेपाल के सैकड़ों लोग सम्मिलित होते हैं। वहाँ से हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं, जिनमें काठमाण्डू में प्रकाशित मासिक पत्र 'हिमालिनी' अग्रणी है। इसके माध्यम से दोनों देशों के हिंदी सेवी रचनात्मक भाव से जुड़े रहते हैं। 'नेपाली' नाम से एक दैनिक पत्र हिंदी में प्रकाशित होता है। इसके संपादक श्री उमाकान्त दास जी हैं। उन्होंने संस्कृत में शास्त्री और बी.ए. की शिक्षा प्राप्त की है। वे छात्र-जीवन से ही पत्रकारिता से सम्बन्ध रखते हैं। काठमाण्डू से प्रकाशित 'नेपाल टाइम्स-हिंदी' के सह-सम्पादक रहे। नेपाल में वे उच्चकोटि के साहित्यकार माने जाते हैं।

महिला हिंदी लेखिकाओं में श्रीमती उषा शर्मा एक कहानीकार के रूप में चर्चित हैं। भारत के चित्रकूट से संत पं. सीताराम दास की शिष्या प्रेमलता तो रामभक्ति में अनुरक्त हो गईं। अपने स्वरचित गीतों और भजनों को गा-गाकर वे 'प्रेमबाई' बन गईं।

नेपाल में लोग उन्हें 'मीराबाई' भी कहने लगे, जो 'जानकी जन्म महोत्सव' में प्रतिवर्ष 'जानकी नवमी' को चरितार्थ करती हैं। अपने भजनों और बधाई गीतों से वे नेपाल में हिंदी के भक्ति साहित्य की पुरोधा गायिका मानी जाने लगीं।

"नेपाल विश्व में एकमात्र घोषित हिन्दू राष्ट्र है, लेकिन सर्वविदित है कि हिन्दुओं की सबसे बड़ी संख्या भारत में है। नेपाल और भारत के कई तीर्थस्थल सभी हिन्दुओं के लिए समान पवित्र और पूज्य हैं। भगवान पशुपतिनाथ के दर्शन हेतु अंसख्य हिन्दू नेपाल आते हैं। उसी तरह नेपाल के हज़ारों भक्तजन काशी विश्वनाथ, रामेश्वरम, बद्रीनाथ, केदारनाथ आदि चारधाम तीर्थयात्रा के लिए भारत जाते हैं।

पाल्या के सेन वंशीय नरेशों तथा पूरब में मोरंग और अन्य कई राज्यों के तत्कालीन नरेशों ने हिंदी को अपनी राजभाषा बनाया था।

नेपाल में 'साहित्य संगम' तत्वावधान में समय-समय पर हिंदी की गोष्ठियाँ एवं परिसंवाद होते रहते हैं। 'कला संगम' का मुख्य पत्र 'साहित्य संगम' नाम से प्रकाशित होता है। इसके प्रधान संपादक विजय कुमार दास और सम्पादकीय सहयोगी जयकान्त लाल, जी.पी. सिंह और संजीता वर्मा हैं। इसका प्रथम अंक सितम्बर 1997 में प्रकाशित हुआ था, जो त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमाण्डु के हिंदी

विभागाध्यक्ष डॉ. कृष्णचन्द्र मिश्र की स्मृति में प्रकाशित हुआ था। इसमें नेपाल और भारत के अनेक हिंदी रचनाकारों के उत्कृष्ट लेख प्रकाशित हुए थे। हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में वहाँ से हिंदी विभाग की पत्रिका 'साहित्य लोक' का प्रकाशन होता है। 'हिमालिनी' तथा 'साहित्य संगम', 'नेपाली' हिंदी दैनिक उमाकान्त दास के सम्पादन में प्रकाशित है। नेपाल में हिंदी और संस्कृत के पठन-पाठन का चलन सदियों से होता आया है। इसके लिए वहाँ के छात्र वाराणसी (काशी), प्रयाग, इलाहाबाद, दिल्ली और पटना को प्रमुख केन्द्र मानते हैं और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से अध्ययन करने में ये गौरव का अनुभव करते हैं। इससे सहज ही प्रमाणित होता है कि नेपाल और भारत भारतीय संस्कृति, पौराणिक आख्यानों और वेद-वेदांत के पावन क्षेत्र हैं।

"नेपाल की तराई में रहने वाले पचास लाख से अधिक लोगों की स्थानीय भाषा मैथिली, भोजपुरी, अवधी और राजवंशी होने के बावजूद क्षेत्रीय भाषा एकमात्र हिंदी है। भारतीय नगरों से प्रकाशित प्रमुख सभी हिंदी दैनिक और साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाएँ हज़ारों की संख्या में नेपाल पहुँचती हैं और उनके पाठक लाखों की संख्या में हैं।"

डॉ. कृष्णचन्द्र मिश्र का यह कथन उपयुक्त लगता है कि "हिंदी नेपाल के लिए विदेशी भाषा नहीं हैं।"

सन् 1993 में भारत के बहुभाषी प्रखर विद्वान पं. राहुल सांकृत्यायन की जन्मशती पर 'साहित्य लोक' पत्रिका का एक विशेषांक 'नेपाल में राहुल' नाम से प्रकाशित हुआ। तानाशाही शासक के बन्धन में कसे हुए, निष्प्राण हुए नेपालियों को राहुल जी ने पहले 'दामोदर' साधु के रूप में आकर जागृत किया तथा बार-बार नेपाल आकर उन्होंने नेपालियों को सचेत किया। बौद्ध भिक्षु के रूप में वे सिंहल देश में रहे, तिब्बत से विलुप्त हो रहे बौद्ध पुस्तकों का उद्धार किया और हिंदी को 'हमारी राष्ट्रभाषा की निकटतम भाषा' कहकर वे जन-साधारण को जगाते रहे। नेपाल में वे लगभग पैंतालिस दिन रहे थे, जो सन् 1923 ई. के मार्च-अप्रैल का समय था। उस समय, उनके साथ रहने वाले श्री जनक लाल शर्मा का संस्मरण 'साहित्य-लोक' में प्रकाशित हुआ था, जिसका हिंदी अनुवाद डॉ. कृष्णचन्द्र मिश्र ने किया था।

वर्तमान समय में, 'मनोकामना मंदिर' का सचित्र हिंदी अनुवाद डॉ. सूर्यनाथ गोप ने किया है। हिंदी और नेपाली की धाराओं के सतत् प्रवाहित होने से महासागर का विशाल मनमोहक दृश्य मानस मन में सदा उद्वेलित रहता है। मन-मष्तिस्क में इन दोनों भाषाओं के विद्यमान रहने से चेतना निरन्तर सजग रहती है।

नेपाल में तुलसीकृत श्री रामचरितमानस की लोकप्रियता सदा से है। श्री भानुभक्त ने तुलसीदास का अनुकरण करते हुए सात काण्डों में राम-कथा का चित्रण किया है, जैसे बालकाण्ड, अयोध्या काण्ड, अरण्य काण्ड, किष्किन्धा काण्ड, सुन्दर काण्ड, युद्ध काण्ड (लंका काण्ड) और उत्तर काण्ड।

भानुभक्त को नेपाल का 'तुलसी' कहा जाता है। यह हिंदी के लिए गौरव की बात है।

कवि राम भरोसे कापड़ि भ्रमर की कविता भारत और नेपाल के मैत्री सम्बन्ध का सफल चित्रण करती है-

"हम और तुम
इस जगह खड़े हैं कि
एक दूसरे के बिना इतिहास नहीं बनता,
हमारी पहचान ही
इतिहास के कथानक रचते हैं।"

नेपाल और हिंदी के रचना-संसार को सिक्के के दो पहलुओं के रूप में भी देखा जा सकता है। एक बार प्रेमचंद जयन्ती शताब्दी समारोह में मुख्य अतिथि तत्कालीन भारतीय राजदूत ने कहा था "नेपाल और भारत के बीच कई मधुर लड़ियाँ रही हैं। नेपाली और हिंदी दोनों ही देवनागरी में लिखी जाती हैं।"

जनकराज किशोरी शरण 'रसिक अलि' ने जो जनकपुर के सिद्ध संतों में लगभग दो सौ वर्ष पूर्व एक सिद्ध संत थे, हिंदी में आठ पुस्तकें लिखीं। इनके 'रसिक निवास' नामक मंदिर को देखने के लिए भारत से दर्शनार्थी आते रहते हैं। 25 जनवरी 1982 को इस स्थान के दर्शन के लिए भारत से साहित्यकारों का एक समूह श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन अज्ञेय के नेतृत्व में वहाँ गया था।

समय-समय पर भारत से उत्कृष्ट हिंदी रचनाकार नेपाल में हिंदी रचनाओं के मूल्यांकन हेतु नेपाल जाया करते हैं। महापंडित विश्व पर्यटक स्व. राहुल सांकृत्यायन, वहाँ लगभग पाँच-छः बार आते-जाते रहे। इन सब प्रसंगों एवं विवरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नेपाल में हिंदी का प्रकाश स्तम्भ सबको

देदीप्यमान कर रहा है और मेरा अडिग विश्वास है कि नेपाल में हिंदी साहित्य का सृजन होता रहेगा।

सन्दर्भ सूची :

1. डॉ. सूर्यनाथ गोप, नेपाल में हिंदी पठन-पाठन की सुविधाएँ एवं समस्याएँ, विश्व हिंदी की यात्रा (02) 2. डॉ. कृष्णचन्द्र मिश्र, नेपाल में हिंदी भाषा और साहित्य, तब, अब और आगे
2. डॉ. कृष्णचन्द्र मिश्र, हिंदी साहित्य को नेपाल की देन
3. उषा आनन्द, नेपाल में हिंदी, आजकल फ़रवरी 1962
4. नेपाल में हिंदी की अवस्था प्रथम प्रतिवेदन अंक
5. विश्व भाषा कैम्पस पत्रिका, वर्ष तीन, 1981 अंक
6. डॉ. श्रीनाथ गोप, नेपाल में हिंदी और हिंदी साहित्य राजभाषा भारती, अंक 24, जनवरी-मार्च 1984
7. सारिका, नवम्बर, 1975
8. डॉ. त्रिलोकी नाथ दीक्षित, हिंदी साहित्य कुछ विचार
9. श्री चन्द्रदेव ठाकुर, विश्व भाषा कैम्पस पत्रिका, वर्ष-3, अंक 3
10. श्री राजेश्वर नेपाली, नेपाल में हिंदी की अवस्था
11. शशिकला, नेपाल की लोककथाएँ
12. शान्तिदूत अंक जुलाई-अगस्त, 1983, तथा मार्च-अप्रैल 1993
13. डॉ. सुरेन्द्र प्रसाद शाह, नेपाल और हिंदी, विश्व में हिंदी खण्ड-2, संपादक हरि बाबू कंसल
14. डॉ. सूर्यनाथ गोप, श्रीमन कामना माहात्म्यम्, अनुवादक की ओर से शीर्षक में।
15. डॉ. सूर्यनाथ गोप, विश्व में हिंदी, खण्ड दो
16. डॉ. राजेश्वर प्रसाद शाह, जनकपुर धाम, धर्मयुग, नवम्बर 1976, वर्ष 27, अंक 45
17. डॉ. कृष्णचन्द्र मिश्र, साहित्य लोक त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू नेपाल हिंदी विभाग का मुख्य पत्र, वर्ष 4, अंक-1 का हिंदी साहित्य को नेपाल की देन।
18. स्व. धर्मरत्न यमि, नेपाल को राहुल की देन, साहित्य लोक, वर्ष 11, अंक-1 (20 पं. श्री नारायण शास्त्री, नेपाली भाषा का रामचरितमानस भानुभक्तीय रामायण, प्राचीन दर्शन
19. संपादक, अर्चना, जनकपुर धाम, सितम्बर 1981
20. श्री राजेश्वर नेपाली, नेपाल में हिंदी की अवस्था, भारतीय साहित्यकारों का सामूहिक चित्र

kavishrijaiswal01@gmail.com

विश्व हिंदी सचिवालय
इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फ़ेनिक्स ७३४२३, मॉरीशस
World Hindi Secretariat
Independence Street, Phoenix 73423, Mauritius
फ़ोन / Phone : +230-6600800
ई-मेल / E-mail : info@vishwahindi.com
वेबसाइट / Website : www.vishwahindi.com
डेटाबेस / Database : www.vishwahindidb.com

मुद्रक : Star Publications PVT LTD, Hindi Book Centre, New Delhi - 110002
info@starpublic.com & info@hindibook.com

कवर डिज़ाइनर : BAHADOOR PRINTING LTD,
Avenue St. Vincent De Paul, Les Pailles, Mauritius
Tel: +230 2081317, Fax: +230 2129038